
प्रकाशकः—रामचंद्र राधो. ग्रिटर—रामचंद्रराधो.
ठिकाना—लक्ष्मीवैकटेश्वर मेस—त्रैलगुप्ता कल्याण.



COLLECTION OF VARIOUS

- > HINDUISM SCRIPTURES
- > HINDU COMICS
- > AYURVEDA
- > MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!

प्रस्तावना।

भरतखंडमें वैद्यशास्त्रमें रोगके निदान, वैद्य, रोगी, औषध इत्यादिकोंका वर्णन आचार गुणगुण जिसमें वर्णन किये ऐसे सूत्रस्थान, चिकित्सा, शारीरक इत्यादि-कोंका विस्तारसे अच्छी तरहका विचार जिसमें किया ऐसे बहुत ग्रन्थ एक एक विषयकरके प्रसिद्ध हैं तैसे निदानमें और रुग्णविनिश्चय जिसको माधवनिदान कहते हैं वही प्रसिद्ध है। जैसे-

निदाने माधवः प्रोक्तः सूत्रस्थाने तु वाऽभटः ।

शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तश्चरकस्तु चिकित्सिते ॥

भाषा-सब निदानग्रन्थोंमें माधवनिदान श्रेष्ठ है, सूत्रस्थानमें वाऽभट अच्छा है, शारीरस्थानमें सुश्रुत उत्तम और चिकित्सा नाम औषधविचारमें चरक बहुत अच्छा है।

इस ग्रन्थका कर्ता ग्रन्थनामसेही माधव विदित पड़ता है। पंडित माधवके सब शास्त्रोंमें ग्रन्थ हैं इसकी भाषा काशी आदि नगरमें भई है, परन्तु ऐसी कहाँभी नहीं। इस टीकामें सब शब्द प्रसिद्ध बालकोंकेभी समझमें जलदी आ जाय ऐसे हैं और इसमें मधुकोश आतंकदर्पण इत्यादि टीकाके अशयकी पंक्तिकी भाषा बनाई है और शंकासमाधान लिखा है और बहुतसे निदान जो आजतक किसी टीकाका-रोने नहीं लिखे सो प्रसंगवशसे इसमें लिख दिये हैं। जैसे चरकके मतसे क्लीवका निदान इत्यादि और अंग्रेजी मतसे हकीमके मतसे जो निदान हैं वेभी लिखे हैं, और परीक्षीषमें शुक्र, आर्तव, गर्भ, स्नायु इत्यादि निदानका अन्य ग्रन्थोंसे प्रमाण लेकर इसकी भाषा बनाई है।

इस भाषाके बनानेवाले प्रसिद्ध आयुर्वेदोद्धारक माथुरपंडित दत्तारामजी हैं। इन्होंने भाषा करके दो बार दिल्लीमें और मथुरामें छपाई थी अब इनसे कृपापूर्वक सब हक्क लेकर यहा उक्त पण्डितसेही शुद्ध कराकर और बढ़ाकर हमने छापी है सो इस ग्रन्थको इस प्रतिसे और दिल्ली मथुरामें छपे पुस्तकसेभी कोई छापनेका अधिकार नहीं है। इति प्रार्थना ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

“ लक्ष्मीवेङ्गटेश्वर ” छापाखाना,
कल्याण-मुंबई.

॥ श्रीः ॥

अथ माधवनिदानस्थविषयाणामनुक्रमणिका ।

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
मंगलम् १		पित्तज्वरके लक्षण १६	
ग्रथकर्तुः प्रतिज्ञा „		सन्निपातज्वरके लक्षण „	
अन्य निदानश्रद्धोंसे इसकी उत्तमता. २		सन्निपातोंके भेद १८	
रोग जाननेके पांच उपाय „		मर्तारसे सन्निपातके त्रयोदश भेद २०	
निदानके पर्यायवाचक शब्द.... ४		कुभीपाकादि त्रयोदश सन्निपातोंके	
व्याधिक प्राग्नूपका लक्षण „		क्रमसे लक्षण „	
व्याधिके रूपके पर्यायशब्द ५		सन्निपातके विस्फारकादि षोडश भेद २२	
उपशयके लक्षण „		सन्निपातोंकी उत्पत्ति और सप्राप्ति	
हेतुविपरीतादिकोंका उदाहरण ६		ग्रथांतरसे „	
अनुपशयके लक्षण ७		सधिकादि तेरह सन्निपातोंके नाम „	
सप्राप्तिके लक्षण „		तेरह सन्निपातोंकी मर्यादा २३	
सप्राप्तिके भेद ८		उक्त सन्निपातोंमें साध्यासाध्य विचार. ,	
संख्यारूप सप्राप्तिके लक्षण „		असाध्यकृच्छ्रसाध्यके लक्षण.... „	
विकल्परूप सप्राप्तिके लक्षण „		सधिकादि त्रयोदश सन्निपातोंके पृथक्	
प्राधान्यरूप सप्राप्तिके लक्षण.... ९		पृथक् लक्षण.... २४	
बलरूप सप्राप्तिके लक्षण „		सन्निपातोपद्रव २७	
कालरूप सप्राप्तिके लक्षण „		त्रिदोषज्वरोंकी साधारण मर्यादा „	
निदानपञ्चकका उपसहार „		धातुपाकलक्षण.... २८	
निदानपञ्चकद्वारा रोगनिवृत्तिरूप		मलपाकलक्षण „	
सिद्धिके ज्ञानार्थ उपदेश १०		आगतुकज्वर „	
ज्वरनिदानम् ।			
ज्वरकी उत्पत्ति ११		विषजन्य आगतुकज्वर.... २९	
ज्वरकी सप्राप्ति १२		औषधगधनित ज्वर.... „	
ज्वरके लक्षण १३		कामज्वरके लक्षण „	
ज्वरका पूर्वरूप.... „		भय शोक और कोपज्वर „	
वातज्वरके लक्षण १४		अभिचार और अभिधातज्वर „	
पित्तज्वरके लक्षण १५		भूताभिषंगज्वरके लक्षण „	
कफज्वरके लक्षण „		विषमज्वरकी सप्राप्ति ३०	
वातपित्तज्वरके लक्षण १६		धातुगत ज्वरके नाम „	
वातकफज्वरके लक्षण „		सततज्वरके लक्षण ३१	

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
उत्कृष्ट दोषभेदकरके तृतीयचतुर्थकोंके दूसरे लक्षण	३१	इंग्रजीमतानुसारेण ज्वरनिदानम् ।	
विषमज्वरके भेद	३३	सरदी	४२
वातबलासकज्वर	"	मदवायु	"
प्रलेपकज्वर	"	गरिष्ठभोजन	"
विषमज्वर विशेषभेद	३४	अनेक प्रकारके ज्वरोंके लक्षण	४३
इन्होंका विपरीत द्वितीय ज्वर	"	कुंकुमज्वरके लक्षण	"
शीतपूर्वज्वरके लक्षण	"	यकृत् वा कलेजाज्वरके लक्षण	"
दाहपूर्वज्वरके लक्षण	"	आतिसारानिदानम् ।	
सत्प्राप्तुगत ज्वरोंके लक्षण	३५	आतिसारादिकोंका कारण	४३
रसगत ज्वरके लक्षण	"	आतिसाररोगकी संप्राप्ति	४४
रक्तगत ज्वरके लक्षण	"	आतिसारके पूर्वरूप	"
मांसगत ज्वरके लक्षण	"	वातातिसारके लक्षण	४५
सेहोगत ज्वरके लक्षण	"	पित्तातिसारके लक्षण	"
अस्थिगत ज्वरके लक्षण	"	कफातिसारके लक्षण	"
मज्जागत ज्वरके लक्षण	३६	संनिपातातिसारके लक्षण	"
शुक्रगत ज्वरके लक्षण	"	शोकातिसारके लक्षण	"
प्राकृत और वैकृतके लक्षण	"	शोकातिसारके कुच्छसाध्यत्वलक्षण.	४६
प्राकृत ज्वरोंकी चिकित्साके निमित्त		आमातिसारके लक्षण	"
उत्पत्तिकम्	"	आमके लक्षण	"
संप्राप्तिज्वर दो लक्षणोंसे कहा है	"	पृष्ठलक्षण	"
उसके लक्षण	३७	असाध्य लक्षण	४७
ज्वरके दृश उपद्रव	३८	दूसरे असाध्यके लक्षण	"
पच्यमानज्वरके लक्षण	"	आतिसारके उपद्रव	४८
पक्व किंवा निरामज्वरके लक्षण	"	असाध्यके लक्षण	"
जीर्णज्वरके लक्षण	"	रक्तातिसारलक्षण	"
साध्यज्वरके लक्षण	३९	प्रवाहिकाकी सम्प्राप्ति	"
असाध्यज्वरके लक्षण	"	प्रवाहिकाके वातादिभेदकरके लक्षण.	४९
असाध्यज्वरके और लक्षण	"	अतिसार चला गया उसके लक्षण,	"
गंभीरज्वरके लक्षण	"	ग्रहणीनिदानम् ।	
दूसरे असाध्यज्वरके लक्षण	"	ग्रहणीकी सप्राप्ति	४९
और असाध्य लक्षण	४०	ग्रहणीरोगकी सप्राप्तिपूर्वक सामान्य	
ज्वरसुक्तिके पूर्वरूप	"	लक्षण	५०
ज्वरसुक्तिके लक्षण	४१	ग्रहणीके पूर्वरूप	"
अंथांतरसे प्रसंगवशात् ज्वरसुक्तलक्षण	"	वातज ग्रहणीका निदान	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक
वातजन सत्रहणीका रूप ९०	उपद्रवसे असाध्यत्व लक्षण ६१
पित्तज ग्रहणीके लक्षण ९१	चर्मकीलकी सप्राप्ति "
कफज ग्रहणीकी उत्पत्ति ९१	वातादिभेदकरके उसके लक्षण ६२
त्रिदोषकी सत्रहणीके लक्षण ९२	अग्निमांदिनिदानम् ।	
द्वाकटरीमतके अनुसार परीक्षा कारण ९२	अजीर्णरोग (विषमाग्नि किसी रोगको उत्पन्न करे) ६२
अशोरोगनिदानम् ।		सामाग्र्यादिकोंके लक्षण "
सख्यारूप सप्राप्ति ९३	अजीर्णनिदानम् ।	
सप्राप्तिपूर्वक अर्शका रूप ९३	अजीर्णप्रकार ६३
वातकी बवासीरके कारण ९३	अजीर्णके कारण ६४
पित्तकी बवासीरके कारण ९३	आमादिक अजीर्णके लक्षण "
कफकी बवासीरके कारण ९४	विद्यग्वार्जीर्णके लक्षण ६५
द्वृद्वज बवासीरके कारण ९४	विष्टब्धाजीर्णके लक्षण "
त्रिदोषकी बवासीरके कारण ९४	रसशेष अजीर्णके लक्षण "
वातकी बवासीरके लक्षण ९४	अजीर्णके उपद्रव "
पित्तकी बवासीरके लक्षण ९५	बहुत भोजन अजीर्णका हेतु है "
कफकी बवासीरके लक्षण ९५	विषूचिकाकी निरुत्ति ६६
सन्त्रिपात और सहज बवासीरके लक्षण. ९६		विषूचिकाके लक्षण "
रक्तार्शके लक्षण ९६	अलसकके लक्षण ६७
रक्तार्शके वातादिभेदकरके लक्षण ९७	विलविकाके लक्षण "
कफसबधके लक्षण ९६	अनीर्णजन्य आमके दूसरे कार्यात्मक "
बवासीरका पूर्वरूप ९६	विषूचिका और अलसकके असाध्य	
सुखसाध्य लक्षण ९८	लक्षण "
कृच्छसाध्यके लक्षण ९८	अजीर्ण जाता रहा उसके लक्षण ६८
असाध्यके लक्षण ९९	कृभिरोगनिदानम् ।	
याप्य लक्षण ९९	कृभिरोगके प्रकार ६८
प्रसंगवशसे रोगी, वैद्य, औषध और सेवकके लक्षण ९९	बाह्यकृमिके नाम ६९
वैद्यलक्षण ९९	कृभिरोगका कारण "
निषिद्धवैद्यके लक्षण ६०	कौनकारणसे कौनसी कृमि प्रगट होती है,,	
रोगीके लक्षण ९९	पेटमें कृमि पड़ गई हों उसका लक्षण.,	
उत्तम औषधके लक्षण ९९	कफकी कृमिके लक्षण ७०
दुष्ट औषधके लक्षण ९९	रुधिरकी कृमिके लक्षण "
दूतके लक्षण ९९	विषासे प्रगट कृमिके लक्षण "

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
पांडुरोगनिदानम् ।		त्रिरूपक्षयके लक्षण	८२
पांडुरोगके प्रकार	७१	एकादशरूप, षट्खूप और त्रिरूप	
पांडुरोगके कारण और संप्राप्ति ,		क्षयके लक्षण	८३
पांडुरोगके पूर्वरूप	७२	साध्यासाध्यविचार	,
वातज पांडुरोगके लक्षण ,		असाध्यलक्षण	,
पित्तज पांडुरोगके लक्षण ,		कौनसे रोगीको औषध देना योग्य सो. ८४	
कफज पांडुरोगके लक्षण ,		असाध्यलक्षण	,
सन्त्रिप्तात्युक्त पांडुरोगके असाध्य लक्षण ,		व्यवायशोषके लक्षण....	८५
मिट्टी खानेसे प्रगट पांडुके लक्षण ७३		शोकशोषीके लक्षण	,
पांडुके विशेषलक्षण ,		जराशोषीके लक्षण	,
असाध्य पांडुके लक्षण.... ,		अध्वप्रशोषीके लक्षण	,
कामलाके लक्षण ; ७५		व्यायामशोषीके लक्षण	८६
कुम्भकामलाके लक्षण ; ,		तीन कारणोंसे व्रणशोष होय है सो.... ,	
असाध्यकामलाके लक्षण ,		उरःक्षतरोगकथन	,
दूसरे असाध्य लक्षण ७६		पूर्वरूप	८७
कुम्भकामलाके असाध्य लक्षण ,		क्षतक्षीणके असाध्य लक्षण	,
हल्हीमिकरोगकथन ,		साध्यलक्षण	८८
पानकीरोगके लक्षण ,		कासनिदानम् ।	
रक्तपित्तनिदानम् ।		कारण संप्राप्ति और निश्चिति	८८
रक्तपित्तका पूर्वरूप	७७	पूर्वरूप	८९
कफयुक्त रक्तपित्तके लक्षण ,		वातकी खांसीके लक्षण	,
धातिक रक्तपित्तके लक्षण ,		पित्तकी खांसीके लक्षण	,
पित्तज रक्तपित्तके लक्षण ,		कफकी खांसीके लक्षण	,
द्विदोषजादि रक्तपित्तके लक्षण		क्षतकासका लक्षण	,
उर्ध्वगाढ़ि रक्तपित्तोंका साध्या-		क्षयकी खांसीके लक्षण	,
साध्यविचार ,		साध्यासाध्यविचार	९०
साध्य होनेके कारण	७९	हिङ्कानिदानम् ।	
दोषभेदसे साध्यासाध्य लक्षण		हिङ्काका स्वरूप और निश्चिति	९१
रक्तपित्तके उपद्रव ,		हिङ्काके मेद और संप्राप्ति	९२
असाध्य लक्षण.... ,		पूर्वरूप	,
दूसरे असाध्य लक्षण ,	८०	अब्जनाके लक्षण	,
राजयक्षमनिदानम् ।		यमलाके लक्षण	,
राजयक्षमाकी विशिष्ट संप्राप्ति....	८१	क्षद्राके लक्षण	,
राजयक्षमाके पूर्वरूप	८२	गंभीराके लक्षण	,
			९३

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक.
महती हिचकीके लक्षण ९३	त्रिदोषज छाँदिके लक्षण.... १०३
असाध्य लक्षण ,	असाध्य छाँदिके लक्षण ,
यमिकाके असाध्य लक्षण ,	आगतुक छाँदिके लक्षण १०४
यमिकाके साध्यलक्षण ९४	कृमिकी छाँदिके लक्षण ,
श्वासनिदानम् ।		साध्यासाध्य लक्षण ,
श्वासके पूर्वरूपके लक्षण ९४	उपद्रव १०६
श्वासरोगकी सप्राप्ति ,	तृष्णानिदानम् ।	
महाश्वासके लक्षण ,	तृष्णाकी सप्राप्ति १०६
ऊर्ध्वश्वासके लक्षण ,	अन्नजादि तृष्णाकी सप्राप्ति	... ,
छिन्नश्वासके लक्षण ,	बातज तृष्णाके लक्षण १०६
तमकश्वासके लक्षण ,	पित्तज तृष्णाके लक्षण ,
प्रतमकश्वासके लक्षण ,	कफकी तृष्णाके लक्षण ,
प्रतमकके दूसरे लक्षण ,	क्षतज तृष्णाके लक्षण ,
क्षुद्रश्वासके लक्षण ,	क्षयज तृष्णाके लक्षण १०७
साध्यासाध्यविचार ,	आमज तृष्णाके लक्षण ,
स्वरभेदनिदानम् ।		अन्नज तृष्णाके लक्षण ,
बातज स्वरभेदके लक्षण ९९	उपसर्गज तृष्णाके लक्षण.... १०८
पित्तज स्वरभेदके लक्षण ,	असाध्य तृष्णाके लक्षण ,
कफज स्वरभेदके लक्षण ,	मूर्छानिदानम् ।	
सन्निपातन स्वरभेदके लक्षण ,	निदान और सप्राप्ति १०८
क्षयजन्य स्वरभेदके लक्षण १००	मूर्छाका पूर्वरूप १०९
मेदके स्वरभेदके लक्षण.... ,	बातज मूर्छाके लक्षण ,
असाध्य लक्षण ,	पित्तज मूर्छाके लक्षण १००
अरोचकनिदानम् ।		कफज मूर्छाके लक्षण ,
पित्तजादि अरुचियोंके लक्षण १०१	सन्निपातन मूर्छाके लक्षण ,
शोकादि अरुचियोंके लक्षण ,	रक्तज मूर्छाके लक्षण ,
बातजादि भेदकरके अन्य खिकृति.... ,	विषज और मद्यज मूर्छाके लक्षण.... १११
छाँदिनिदानम् ।		रक्तजादि तीन मूर्छाओंके लक्षण ,	
छाँदिके कारण और निश्चिकी १०२	मूर्छा, भ्रम, तन्दा और निद्रा इनके	
छाँदिके पूर्वरूप ,	भेद ११२
बातज छाँदिके लक्षण ,	तन्द्रोके लक्षण ,
पित्तज छाँदिके लक्षण ,	सन्यासके भेद ,
कफज छाँदिके लक्षण ,	सन्यासके लक्षण ११३

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
मदात्ययनिदानम् ।		सन्निपातके उन्मादके कारण १२३
विधिसे मद्य पीनेका फल १४	शोकज उन्मादके लक्षण "
विधिसे मद्य पीनेके दूसरे गुण "	विषज उन्मादके लक्षण.... १२४
पूर्वमद्यके लक्षण १९	असाध्य लक्षण "
द्वितीय मद्यके लक्षण "	भूतज उन्मादके लक्षण.... "
तृतीय मद्यके लक्षण "	देवग्रहजके लक्षण "
चतुर्थ मद्यके लक्षण "	असुरपीडितके लक्षण १२५
विधिहीन मद्यपानका परिणाम १६	गन्धर्वग्रहजके लक्षण "
अन्नके साथ मध्य सेवन करा भयामी		यक्षग्रहजके लक्षण "
कुद्रव्यादि कारणोंसे जो विकार		पितृग्रहजके लक्षण "
करता है सो सर्वविकार "	सर्पग्रहयुक्तके लक्षण १२६
धातमदात्ययके लक्षण १७	राक्षसग्रहपीडितके लक्षण "
पित्तमदात्ययके लक्षण.... "	पिशाचज्ञष्टके लक्षण "
कफमदात्ययके लक्षण.... "	मूतोन्मादके लक्षण १२७
सन्निपातमदात्ययके लक्षण "	देवादियोंका आवेशसमय "
परमद्यके लक्षण "	अपस्मारनिदानम् ।	
पानार्जीणिके लक्षण १८	अपस्मारकी निदानपूर्वक सम्प्राप्ति १२९
पानविश्रमके लक्षण "	वाग्मटके मतसे निदान "
असाध्य लक्षण "	अपस्मारके सामान्य लक्षण १३०
उपद्रव १९	अपस्मारके पूर्वरूप "
दाहनिदानम् ।		वातज अपस्मारके लक्षण "
रक्तज और पित्तज दाहके लक्षण....	११९	पित्तको मृगीके लक्षण १३१
प्यास रोकनेके दाहके लक्षण १२०	कफकी मृगीके लक्षण "
शावधातज दाहके निदान "	सन्निपातकी मृगीके लक्षण "
घातुक्षयजनन्य दाहके लक्षण "	मृगीके असाध्य लक्षण.... "
क्षतज दाहके लक्षण "	मृगीरोगकी पार्छी "
मर्माभिधातज दाहके लक्षण "	वातव्याधिनिदानम् ।	
उन्मादनिदानम् ।		वातव्याधिके पूर्वरूप १३३
उन्मादके सामान्य कारण और		कोष्ठाश्रित वायुके कार्य.... १३४
संप्राप्ति १२१	सर्वांगकुपित वायुके कार्य.... "
उन्मादका रवरूप १२२	गुदामें स्थित वायुके कार्य "
विशेष लक्षण.... "	आमाशयस्थित वायुके कार्य "
पित्तज उन्मादके कारण और लक्षण. , "	पक्षाशयस्थ वायुके कार्य.... "
कफज उन्मादके कारण और लक्षण. १२३		इन्द्रियोंमें स्थित वायुके कार्य १३५

विषय.	पृष्ठांक.	विषय	पृष्ठांक.
रसधातुगत वायुके कार्य.... १३५	पादहृपेके लक्षण १४४
रक्तगत वायुके कार्य "	असशोष और अपवाहुकके लक्षण "
मासमेदोगत वायुके लक्षण "	मूकादिक रोगोंके लक्षण "
मज्जास्थिगत वायुके लक्षण १३६	तूनीरोगके लक्षण "
शुक्रगत वायुके लक्षण "	प्रतूनीके लक्षण....... १४५
शिरागत वायुके लक्षण "	आधमानरोगके लक्षण "
स्नायुगत और सधिगत वायुके लक्षण ..		प्रत्याधमानके लक्षण "
पित्त और कफ इनसे आदृत हुई		वाताष्टीलाके लक्षण "
प्राणादिक वायुके लक्षण "	प्रत्यष्टीलाके लक्षण १४६
आक्षेपकके सामान्य लक्षण १३७	मूत्रावरोधके लक्षण "
आक्षेपकके दो भेद "	कपवायुके लक्षण "
दंडापतानकके लक्षण १३८	खलोंके लक्षण....... "
अंतरायामके और वहिरायाम इनके		ऊर्ध्ववातके लक्षण "
साधारण रूप "	प्रलापके लक्षण १४७
अंतरायामके लक्षण "	रसाज्ञानके लक्षण "
बाह्यायामके लक्षण १३९	अनुकृत वातरोगस्यह "
पूर्वोक्त आक्षेपकको पित्तकफका अनु-		साध्यासाध्यविचार "
बघ होय सो	वातव्याधिके उपद्रव "
असाध्यत्व	असाध्य लक्षण १४८
पक्षाधातके लक्षण	वातरक्तनिदानम् ।	
संकीर्णरोगके लक्षण	वातरक्तकी सप्राप्ति १४९
आर्द्धितरोगके लक्षण	वातरक्तका पूर्वरूप "
आर्द्धितरोगके असाध्य लक्षण १४१	वातरक्तको अन्य दोनोंका संसर्ग	
आक्षेपकसे लेकर आर्द्धितरोगके लक्षण		होनेसे उसके न्यारे न्यारे लक्षण १५०	
रोगोंका वेग.	रक्ताधिकरके लक्षण "
हनुश्रहके लक्षण	पित्ताधिकके लक्षण "
मन्यास्तमके लक्षण	कफाधिकके लक्षण "
जिह्वास्तमके लक्षण	अनेक दोषोंके लक्षण १५१
शिराग्रहके लक्षण	असाध्य लक्षण "
गृष्मसीके लक्षण	उपद्रव "
विश्वाचीके लक्षण	साध्यासाध्य विचार १५२
क्रोष्टशीर्षिके लक्षण	ऊरुस्तंभनिदानम् ।	
खन और पांगुरेके लक्षण	ऊरुस्तंभका पूर्वरूप १५३
कलायखनके लक्षण		
वातकटकके लक्षण		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
जरुस्तमके लक्षण १५३	कफके और सन्निपातके गुलमके कारण और लक्षण १६६
असाध्य लक्षण "	द्वंद्वज गुलमके लक्षण १६७
आमवातनिदानम् ।		सन्निपातगुलमके लक्षण "
आमवातके सामान्य लक्षण	१५४	रक्तगुलमके लक्षण "
आमवात अत्यत बढ़ गया उसके लक्षण १५५		असाध्य लक्षण १६९
विशेष लक्षण "	हृद्रोगनिदानम् ।	
साध्यासाध्यविचार "	संप्राप्ति और सामान्य लक्षण १७०
शूलनिदानम् ।		वातज हृद्रोगके लक्षण "
वातशूलके कारण और लक्षण १६६	पित्तज हृद्रोगके लक्षण "
पित्तशूलके कारण और लक्षण १६७	कफज हृद्रोगके लक्षण "
कफशूलके कारण और लक्षण "	त्रिदोषके लक्षण "
आमशूलके लक्षण १६८	कूमिज हृद्रोगके लक्षण १७१
द्वंद्वज शूलोंके लक्षण "	सबोंके उपद्रव "
अंथ्रांतरोक्त शूलके स्थान "	मूत्रकृच्छ्रनिदानम् ।	
शूलोंके उपद्रव "	संप्राप्ति १७२
परिणामशूलनिदान १६९	पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रके लक्षण "
वातिक परिणामशूलके लक्षण "	वातेक मूत्रकृच्छ्रके लक्षण "
पैत्तिक परिणामशूलके लक्षण "	कफज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण "
त्वेषिक परिणामशूलके लक्षण "	सन्निपातज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण "
द्विदोषज और त्रिदोषजके लक्षण "	शल्यज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण "
अन्नके उपद्रवसे प्रगट शूलके लक्षण १६०		मलज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण १७३
उदावर्तनिदानम् ।		अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्रके लक्षण "
उदावर्तके लक्षण १६०	शुक्रजके लक्षण "
तेरह उदावर्तोंके क्रमसे लक्षण "	अश्मरी और शर्करा इनका साम्य और अवांतर भेद "
अधोवायुकी अप्रवृत्ति १६२	मूत्राघातनिदानम् ।	
आनाहरोगनिदान १६३	वातकुड़ालिकाके लक्षण १७४
असाध्य लक्षण १६४	अष्टीलाके लक्षण "
गुलमनिदानम् ।		वातबस्तिके लक्षण १७५
गुलमके सामान्य रूप १६४	मूत्रातीतके लक्षण "
संप्राप्ति "	मूत्रजठरके लक्षण "
पूर्वरूप १६६	मूत्रोत्सगके लक्षण "
गुलमके साधारण लक्षण "		
वातगुलमके कारण और लक्षण "		
पित्तगुलमके कारण और लक्षण १६६		

विषय.	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
मूवक्षयके लक्षण.... १७६	दूसरे असाध्य लक्षण १८५
मूवप्रथिके लक्षण	कुलपरपरागत अन्यविकारोंका असाधत्व „	,
मूवशुक्रके लक्षण....	मधुमेहों पत्तिः	”
उच्छवातके लक्षण	आवरणके लक्षण १८६
मूवसादके लक्षण	मधुप्रेमहशब्द जी प्रवृत्ति विषय निमित्त. „	,
विड्घातके लक्षण	प्रेमहपिटिकानिदानम् ।	
वस्तिकुंडलरोगके लक्षण.... ”	सबके लक्षण १८७
साध्यासाध्य लक्षण १७८	पिटिकाकी उत्पात्त १८८
कुण्डलीभूतके लक्षण ”	असाध्यपिटिका लक्षण	”
अङ्गरीरोगनिदानम् ।		मेदोनिदानम् ।	
अङ्गरीकी सप्राप्ति १७८	मेदका कारण और संप्राप्ति १८९
पूर्वरूप	मेदस्वी पुरुषके लक्षण	”
पर्याके सामान्य लक्षण.... ”	मेदस्वीका जवस्थाविशेष....	”
वातकी पर्याके लक्षण ”	अत्यत मेद बढ़नेका परिणाम १९०
पित्तकी पर्याके लक्षण.... ”	स्थूललक्षण	”
कफकी पर्याके लक्षण.... १८०	कार्यनिदानम् ।	
शुक्रांगरीके लक्षण ”	कृशमनुष्यके लक्षण १९१
पथरीशर्कराके उपद्रव ”	अतिकृशको वर्जनीय वस्तु	”
असाध्य लक्षण १८१	अतिकृशको रोगका वर्णन	”
अथ उत्तरभागः ।		कस्थचित् स्थूलस्थापि तोद्ग्र वल न	
प्रेमहनिदानम् ।		दृश्यते तत्र हेतुः १९२
कफपित्तवातप्रमेहोंकी क्रमसे सप्राप्ति. १८२		असाध्य कार्य	”
प्रमेहका दोपद्वृज्यसंग्रह.... ”	उदरोगनिदानम् ।	
प्रमेहका पूर्वरूप	उदरकी सप्राप्ति १९३
सामान्य लक्षण	उदरके सामान्यरूप	”
प्रमेहका कारण	उदरोगसख्या	”
कफके १० प्रमेहोंके लक्षण ”	वातोदरके लक्षण	”
पित्तके ६ प्रमेहोंके लक्षण १८४	पित्तोदरके लक्षण १९४
वातके ४ प्रमेहोंके लक्षण ”	कफोदरके लक्षण	”
कफप्रमेहके उपद्रव	सन्निपातोदरके लक्षण १९५
पित्तप्रमेहके उपद्रव	ज्ञाहोदरके लक्षण	”
वातप्रमेहके उपद्रव ”	यकृद्वालयुदरके लक्षण १९६
प्रमेहके असाध्य लक्षण.... ”	इसमें दोषोंका सबध	”

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
वद्वगुदांदरके लक्षण १९६	गलगंडनिदानम् ।	
क्षतोदरके लक्षण "	गलगडकी संप्राप्ति २०६
जलोदरके उत्पात्तिसह लक्षण १९७	बातज गलगडके लक्षण.... २०७
साध्यासाध्यविचार "	कफज गलगंडके लक्षण.... "
जातोदरके लक्षण चरकमेसे १९८	मेदन गलगडके लक्षण "
असाध्य लक्षण "	असाध्य लक्षण "
शोथरोगनिदानम् ।		गंडमालापचीनिदानम् ।	
शोथकी संप्राप्ति १९९	अपची लक्षण २०८
शोथका निदान "	असाध्य और साध्य लक्षण "
शोथका पूर्वसूख २००	ग्रंथिनिदानम् ।	
सामान्य लक्षण "	बातज ग्रंथिके लक्षण २०९
बातज शोथके लक्षण "	पित्तज ग्रंथिके लक्षण "
पित्तज शोथके लक्षण "	कफज ग्रंथिके लक्षण "
कफज शोथके लक्षण २०१	मेदन ग्रंथिके लक्षण "
द्वंद्वन और सन्निपातज शोथके लक्षण ,		शिराज ग्रंथिके लक्षण २१०
अभिधातज शोथके लक्षण "	साध्यासाध्य लक्षण "
विषज शोथके लक्षण "	अर्बुदनिदानम् ।	
जिस जिस ठिकाने दोष सूजन उत्पन्न करे सो २०२	अर्बुदकी संप्राप्ति २१०
सूजनके कुच्छादिमेद "	रक्तार्बुदके लक्षण - २११
असाध्य लक्षण "	माँसजार्बुदकी संप्राप्ति "
शोथके उपद्रव २०३	साध्यमें असाध्यप्रकार "
अंडवृद्धिनिदानम् ।		अध्यर्बुदके लक्षण "
अंडवृद्धिकी संप्राप्ति २०३	द्विरर्बुदके लक्षण २१२
घात पित्त कफ और मेद इनसे प्रगट भईके लक्षण २०४	अर्बुद न पकनेका कारण "
पित्तकी अंडवृद्धिके लक्षण "	श्लीपदनिदानम् ।	
कफकी अंडवृद्धिके लक्षण "	श्लीपदकी संप्राप्ति २१२
मूत्रवृद्धिके लक्षण "	बातज श्लीपद "
अंडवृद्धिके लक्षण "	पित्तज श्लीपद २१३
इसकी आधिकारनेका परिणाम २०५		श्लैषिमक श्लीपद "
असाध्य लक्षण "	असाध्य लक्षण "
वधर्मरोगनिदान "	श्लीपदमें कफका प्राधान्य "
		श्लीपद कौनसे देशमें उत्पन्न होय	
		सो असाध्य लक्षण "

विषय.	पृष्ठांक	विषय.	पृष्ठांक
विद्विनिदानम् ।			
वातन विद्विधिके लक्षण २१४	व्याधिविशेषकरके ब्रणकृच्छसाध्यत्व. २२२	
पित्तन विद्विधिके लक्षण.... "	साध्यासाध्यलक्षण " "
कफन विद्विधिके लक्षण.... २१६	असाध्यव्रणके लक्षण " २२३
पकनेके अन्तर उनकी स्थाव "	दूसरे असाध्य लक्षण " "
सन्निपातकी विद्विधिके लक्षण "	ब्रणरोगमें अपथ्य " "
आगतुन विद्विधिकी संप्राप्ति "	आगंतुकव्रणनिदानम् ।	
रक्तज विद्विधिके लक्षण २१६	ब्रणकी सख्या और संप्राप्ति २२४	
अतर्विद्विधिके लक्षण "	छिन्नके लक्षण " "
विद्विधिका स्थान "	भिन्नके लक्षण " "
स्नावनिर्गम २१७	कोष्टके लक्षण " "
विद्विधिमें साध्यासाध्य "	कोष्टके भेदोंके लक्षण " "
असाध्य लक्षण "	आमाशयस्थित रक्तके लक्षण २२५	
ब्रणनिदानम् ।			
ब्रणपाक २१८	पक्षाशयस्थके लक्षण " "
कच्चे फोटके लक्षण "	विद्ववणके लक्षण " "
पच्यमानब्रणके लक्षण "	क्षतके लक्षण..... "
पक्षव्रण लक्षण २१९	पिच्चितके लक्षण " २२६
पकनेके समय तीनों दोषोंका सर्वथ „		घृष्टके लक्षण "
राघन निकालनेसे परिणाम "		श्लयव्रणके लक्षण " "
आमादिलक्षणज्ञानसे वैयक्ते गुणदोष २२०		कोष्टभेद लक्षण.... "
अपकका च्छेदन और पकेकी उपे		असाध्य कोष्टभेद " "
क्षा करनेमें दोष "		मास, शिरा, स्नायु और अस्थि	
ब्रणनिदानम् "	इन्होंमें चोट लगनेसे सामान्यलक्षण २२७	
वातिक ब्रण "	मर्मरहित शिराविद्वके लक्षण "	
पित्तव्रणके लक्षण "	स्नायुविद्वके लक्षण "	
कफव्रणके लक्षण २२१	सधिविद्वके लक्षण "	
रक्तन और हृदज ब्रणके लक्षण "	आस्थिविद्वके लक्षण २२८	
सुखव्रणके लक्षण "	मासाविद्वके लक्षण "	
छृच्छसाध्य और असाध्यके लक्षण ,		सर्वव्रणके लपद्रव "	
दुष्प्रवणके लक्षण "	भग्ननिदानम् ।	
शुद्धव्रणके लक्षण २२२	भग्नके दो प्रकार २२८	
भरनेवाले ब्रणके लक्षण "	सधिभग्नके लक्षण २२९	
ब्रण भर गया उसके लक्षण "	सधिभग्नके सामान्य लक्षण "	

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
असाध्यके लक्षण २३१	फिरंगरोगके उपद्रव २३९
असाध्य लक्षण "	साध्यासाध्य कष्टसाध्यत्व "
असाधारणतासे असाध्यता "	शूक्रदोषनिदानम् ।	
असाध्यता दिखाते हैं "	सर्षपिकाके लक्षण २३९
अस्थिविजेयके भग्नविशेष "	अष्टलिके लक्षण २४०
नाडीवणनिदानम् ।		अथितके लक्षण "
सह्यारूप सप्राप्ति २३२	कुभिकाके लक्षण "
वातनाडीवणके लक्षण "	अलजीके लक्षण "
पित्तज नाडीवणके लक्षण "	मृदितके लक्षण "
कफज नाडीवणके लक्षण २३३	समूढपिटिकाके लक्षण "
सन्त्रिपातज नाडीवणके लक्षण "	अवभयके लक्षण "
श्वयन नाडीवणके लक्षण "	पुष्करिकाके लक्षण २४१
साध्यासाध्य लक्षण "	स्पर्शहानिके लक्षण "
भग्नदग्ननिदानम् ।		उत्तमाके लक्षण "
भग्नदरका पूर्वरूप २३४	शतपोनकके लक्षण "
शतपोनकके लक्षण "	त्वक्पथाकके लक्षण "
उद्धशिरोधरके लक्षण "	शोणितार्दुदके लक्षण "
परिस्तावी भग्नदरके लक्षण २३५	मांसार्दुदके लक्षण २४२
शब्दुकावर्तके लक्षण "	मांसपाकके लक्षण "
दन्मार्गभग्नदरके लक्षण.... "	विद्रविके लक्षण "
साध्यासाध्य लक्षण "	तिलकालकके लक्षण "
असाध्यके लक्षण "	असाध्य शुक्रदोषके लक्षण "
उपदंशनिदानम् ।		कुष्णनिदानम् ।	
उपदंशके कारण २३६	कुष्टके भेद २४३
घातोपदंशके लक्षण "	कुष्टके पूर्वरूप.... २४४
पित्तोपदंश और रक्तोपदंशके लक्षण. , "	सप्त महाकुष्ठोंके लक्षण.... "
कफोपदंशके लक्षण "	ओंडुंवरकुष्टके लक्षण "
सन्त्रिपातोपदंशके लक्षण.... "	मंडलकुष्टके लक्षण २४६
असाध्य लक्षण.... २३७	ऋग्यजिह्वाकुष्टके लक्षण "
लिंगवर्तिके लक्षण "	पुण्डरीककुष्टके लक्षण "
फिरंगरोगनिदानम् ।		सिध्मकुष्टके लक्षण "
फिरंगशब्दकी निस्ति २३८	काकणकुष्टके लक्षण "
विश्रकृष्टनिदान "	ग्यारह क्षुद्रकुष्ठोंके लक्षण २४६
रूपमाह	किटिभकुष्टके लक्षण "

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
वैपादिकके लग्ज २४६	उर्ध्वगतके लक्षण २५३
अलसकके लक्षण ,	कफपित्तजन्यके लक्षण २५४
दुहुमडलके लक्षण ,	साध्यासाध्यविचार ,
चर्मदलके लक्षण ,	अम्लपित्तमें केवल वायुका और वातकफका ससर्ग होय सो ,
पामाकुष्ठके लक्षण २४७	वायुयुक्त अम्लपित्तके लक्षण ,
कच्छूके लक्षण ,	कफयुक्त अम्लपित्तके लक्षण २५५
विस्फोटकके लक्षण ,	वातकफयुक्तके लक्षण ,
शतारुके लक्षण ,	कफपित्तयुक्तके लक्षण ,
विचार्चिकाके लक्षण ,	विसर्पनिदानम् ।	
वातजादि कुष्ठोंके लग्ज ,	विसर्पका कारण २५६
द्वज कुष्ठोंके लक्षण ,	वातविसर्पके लक्षण ,
रसादि सप्तधातुगत कुष्ठोंके लक्षण २४८	पित्तविसर्पके लक्षण ,
रक्तगतके लक्षण ,	कफविसर्पके लक्षण ,
मासगतके लक्षण ,	सन्त्रिपातज विसर्पके लक्षण ,
मेदोगतके लक्षण ,	अग्निविसर्पके लक्षण ,
आस्थिमज्जागतके लक्षण ,	ग्रथिविसर्पके लक्षण २५७
शुकार्तवगतकुष्ठके लक्षण २४९	कर्द्मभिसर्पके लक्षण २५८
साध्यादिमेद ,	क्षतज विसर्पके लक्षण ,
कुष्ठमें प्रधानदोषके लक्षण ,	विसर्पके उपद्रव २५९
किलासनिदान २५०	साध्यासाध्य लक्षण ,
वातावृभेदसे उनके लक्षण ,	विस्फोटकनिदानम् ।	
श्वितके साध्यासाध्य लक्षण ,	विस्फोटकके लक्षण २५९
किलासके असाध्य लक्षण ,	विस्फोटकस्वरूप २६०
सासार्गिक रोग २५१	वातविस्फोटकके लक्षण ,
शीतविचानिदानम् ।		पित्तविस्फोटकके निदान ,
संग्रासि २५२	कफविस्फोटकके लक्षण ,
पूर्वरूप २५२	कफपित्तात्मकके लक्षण ,
उदर्दृका लक्षण ,	वातपित्तात्मकके लक्षण ,
उदर्दृका दूसरा धर्म ,	कफवातात्मकके लक्षण २६१
कोठेके लक्षण ,	सन्त्रिपातके लक्षण ,
अम्लपित्तनिदानम् ।		रक्तज विस्फोटकके लक्षण ,
निदानपूर्वक स्वरूप २५३	साध्यासाध्यविचार ,
अम्लपित्तके लक्षण ,	विस्फोटकके उपद्रव ,
अघोरेगतके लक्षण ,		

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
मसूरिकानिदानम् ।		पाषाणगर्दमके लक्षण २६९
कारण और सप्राप्ति २६२	पनसिकाके लक्षण "
मसूरिकाके पूर्वरूप "	जालगर्दमके लक्षण "
बातकी मसूरिकाके लक्षण "	इरिवेल्लिकाके लक्षण २७०
पित्तज मसूरिकाके लक्षण २६३	कक्षा (कसलाई) के लक्षण "
रक्तज मसूरिकाके लक्षण "	गधनाम्बिके लक्षण "
कफज मसूरिकाके लक्षण "	अग्निरोहिणीके लक्षण "
त्रिदोषज मसूरिकाके लक्षण २६४	चिप्पके लक्षण "
चर्मपिटिकाके लक्षण "	अनुशायके लक्षण २७१
रोमात्तिको लक्षण "	विदारिकाके लक्षण "
रसादिसपथातुगतके लक्षण "	शर्कराके लक्षण "
रक्तगतमसूरिकाके लक्षण "	शर्करारुद्वके लक्षण "
मासगतके लक्षण २६५	पाददारीके लक्षण २७२
मेदोगतके लक्षण "	कद्रके लक्षण "
अस्थिमज्जागतके लक्षण "	अलसके लक्षण "
शुक्रगतके लक्षण "	इंद्रलुपके लक्षण "
सपथातुगतमसूरिका दोषके संवर्धने लक्षण २६६	दारुणके लक्षण २७३
धातुगत और दोषज मसूरिकामें कौन कौन साध्य सो "	अरुंधिकके लक्षण "
कष्टसाध्य "	पलिं (सफेदबाल) के लक्षण "
असाध्यके लक्षण "	मुखदृष्टिकाके लक्षण २७४
सर्व मसूरिकाके अवस्थाविशेष करके लक्षण "	पानिनीकंटकके लक्षण "
मसूरिकाके उपद्रव २६७	जंतुमणि (लहसन) के लक्षण "
क्षुद्ररोगनिदानम् ।		माष (मस्सा) के लक्षण "
अजगल्लिकाके लक्षण २६७	तिलकाल्क (तिल) के लक्षण "
यवप्रस्थ्याके लक्षण "	न्यच्छके लक्षण २७५
अंघालजीके लक्षण २६८	व्यग (झाई) के लक्षण "
विवृतापिडिकाके कच्छपिकाके लक्षण "	नीलिकाके लक्षण "
वर्मीकपिडिकाके लक्षण "	परिवर्तिकाके लक्षण २७६
इद्रवृद्धाके लक्षण २६९	अवपाटिकाके लक्षण "
गद्दमिकाके लक्षण "	निरुद्धप्रकाशके लक्षण "
		सनिरुद्धगुदके लक्षण २७७
		अहिपूतनाके लक्षण "
		वृषणकच्छूके लक्षण "
		गुदध्रेशके लक्षण २७८
		गूँकरके दंडके लक्षण "

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
मुखरोगनिदानम् ।		जिह्वागत ५ रोगनिदानम् ।	
मुखरोगोंकी सत्त्वा २७८	पित्तजके लक्षण २८६
हॉठरोगकी संप्राप्ति २७९	कफजके लक्षण "
वातिक ओष्ठरोगके लक्षण "	अल्लासके लक्षण "
पौत्रिकके लक्षण "	उपजिह्वाके लक्षण "
श्वेषिमके लक्षण "		
सत्त्विपातिकके लक्षण "	तालुगत ९ रोगनिदानम् ।	
रक्तजके लक्षण २८०	कठशुंडिके लक्षण २८६
मांसजके लक्षण "	तुडकेरीके लक्षण "
मेदोजके लक्षण "	अधुदके लक्षण "
अभिधातजके लक्षण "	कच्छपके लक्षण "
		अर्वुदके लक्षण "
दंतमूलगतरोगनिदानम् ।		मांससधातके लक्षण "
शीतादके लक्षण २८०	तालुपुष्टुके लक्षण ४८७
दंतपुष्टुके लक्षण २८१	तालुशोषके लक्षण "
दंतवेष्टके लक्षण "	तालुपाकके लक्षण "
सौषिरके लक्षण "		
महासौषिरके लक्षण "	कण्ठगत १७ रोगनिदानम् ।	
परिदरके लक्षण २८२	पाच रोहिणीकी सामान्य संप्राप्ति	२८७
उपकुशके लक्षण "	वातजाके लक्षण "
स्थलीवर्धनके लक्षण "	पित्तजाके लक्षण "
करालके लक्षण "	कफजाके लक्षण २८८
अधिमासकके लक्षण २८३	त्रिदोषजाके लक्षण "
नाडीव्रणके लक्षण "	रक्तजाके लक्षण "
		कण्ठशालूकके लक्षण "
दंतरोगनिदानम् ।		अधिजिह्वके लक्षण "
दंतोंके लक्षण २८३	वलयके लक्षण "
कृमिदंतके लक्षण "	बलासके लक्षण २८९
भजनकके लक्षण "	एकवृन्दके लक्षण "
दृतहर्षके लक्षण २८४	वृन्दके लक्षण "
दृतशर्शराके लक्षण "	शतनीके लक्षण "
कपालिकाके लक्षण "	गिलायुके लक्षण २९०
श्यावदृतके लक्षण "	गङ्गविद्रघिके लक्षण "
हनुमोक्षके लक्षण "	गङ्गौषधके लक्षण "
		स्वरम्भके लक्षण "

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
मांसतानके लक्षण २९१	नासारोगनिदानम् ।	
विदारीके लक्षण "	पीनसके लक्षण २९७
मुखपाकनिदानम् ।		पूतिनस्यके लक्षण "
बातजके लक्षण २९१	नासापाकके लक्षण "
पित्तजके लक्षण "	पूयरक्तके लक्षण "
कफजके लक्षण "	क्षवथु (छीक) के लक्षण २९८
असाध्य मुखरोगके लक्षण "	आगंतुज क्षवथुके लक्षण "
कर्णरोगनिदानम् ।		अंशयुके लक्षण "
कर्णशूलके लक्षण २९२	दीमिके लक्षण "
कर्णनादके लक्षण "	प्रतिनाहके लक्षण "
बाधिर्थ (बहरा) के लक्षण २९३	नासास्वावके लक्षण "
कर्णध्वेष्टकके लक्षण "	नासापरिशोथके लक्षण २९९
कर्णस्वावके लक्षण "	चिकित्साभेदार्थ पीनसके आम-	
कर्णकण्ठूके लक्षण "	पड़के लक्षण "
कर्णगृथके लक्षण २९३	प्रतिशयायकी सप्राप्ति "
कर्णप्रतिनाहके लक्षण "	च्यादिकमसे इसका दूसरा निदान "
कुमिकर्णके लक्षण २९४	पूर्वरूपके लक्षण ३००
कानमें पत्तगादि कीड़ा धसनेके लक्षण	,,	वातिकप्रतिशयायके लक्षण "
द्विविधकर्णविद्रधिके लक्षण "	पैत्तिकप्रतिशयायके लक्षण "
कर्णपाकके लक्षण "	सन्निपातके लक्षण ३०१
पूतिकर्णके लक्षण "	दुष्टप्रतिशयायके लक्षण "
कर्णशोथ, कर्णार्द्द, कर्णश्वीके लक्षण	,,	रक्तप्रतिशयायके लक्षण "
बातजके लक्षण २९६	असाध्य लक्षण "
पित्तजके लक्षण "	नेत्ररोगनिदानम् ।	
कफजके लक्षण "	कारण ३०२
सन्निपातजके लक्षण "	अभिष्यंद (नेत्र आना) के लक्षण	३०३
कर्णपालिरोगनिदानम् ।		वाताभिष्यंदके लक्षण ३०४
कर्णशोथके लक्षण २९५	पित्ताभिष्यंदके लक्षण "
परिपोटके लक्षण २९६	कफजाभिष्यंदके लक्षण "
उत्पातके लक्षण "	रक्तजाभिष्यंदके लक्षण "
उन्मयकके लक्षण "	अभिष्यंदसे अधिमथकी उत्पाति "
दुःखवर्धनके लक्षण "	दूसरे सामान्य लक्षण ३०५
परिलेहुकी लक्षण "	दोषभेदस कालमर्यादाके लक्षण "

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
नेत्ररोगके सामान्य लक्षण ३०६	पित्तविद्यधके लक्षण ३१४
निरामके लक्षण ,	दिवांधके लक्षण "
शोथसहित नेत्रपाकके लक्षण	. ३०६	कफविद्यधट्टिके लक्षण ३१५
हत्ताधिमंथके लक्षण ,	नक्तान्ध (रत्तोधि) के लक्षण ,
वातपर्ययके लक्षण ,	घूमदर्शीके लक्षण ,
शुष्काभिपाकके लक्षण ,	ह्रस्वट्टिके लक्षण ,
अन्यतोवातके लक्षण ,	नकुलाध्यके लक्षण ,
अम्लाध्युषितके लक्षण ,	गभरिरट्टिके लक्षण ,
शिरोत्पातके लक्षण ,	आगंतुज लिंगनाशके लक्षण ३१६
शिराहर्षके लक्षण ,	आनिमित्तके लक्षण ,
नेत्रोंके काले रंगमें रोग ।		अर्मरोग (९) प्रकारका है	
सब्रण शुक्रके लक्षण ,	शुक्तिरोगके लक्षण ३१७
सब्रण शुक्रके असाध्य लक्षण ,	अर्जुनके लक्षण ,
अब्रण शुक्रके लक्षण ,	पिष्टकके लक्षण ,
अब्रण अवस्था विशेषकरके साध्य लक्षण. ,	जालके लक्षण ,
अब्रण अवस्थामेदके असाध्य लक्षण	३०९	शिराजपिडिकाके लक्षण ,
दूसरे असाध्य लक्षण ,	बलासके लक्षण ,
अक्षिपाकात्ययके लक्षण.... ,	नेत्रसंधिरोगनिदानम् ।	
अजकाजातके लक्षण ,	पूयासके लक्षण.... ३१८
द्विष्टिरोगनिदानम् ।		उपनाहके लक्षण ,
पहले पटलमें दोष जानेके लक्षण ३१०	स्नाव अथवा नेत्रनाडीके लक्षण ,
द्वितीयपटलस्थितदोषके लक्षण ,	पर्वणी व अलजिके लक्षण ३१९
तृतीयपटलगतदोषके लक्षण ३११	कूमिग्राधिके लक्षण ,
चतुर्थपटलगततिमिरके लक्षण ,	वर्त्मरोगनिदानम् ।	
तृतीयपटलाश्रितकाचदोपकी दू० स० ३१२ ,	उत्सगपिडिकाके लक्षण.... ३१९
दोषविशेषकरके रूपका दिखाना ,		कुभिकाके लक्षण ,
पित्तसे दूसरे परिम्लायसज्जक. तिमिरलक्षण ,	पोथकीके लक्षण ३२०
रोगमेदसे लेगनाशका षड्विधत्व ,	वर्त्मशर्कराके लक्षण ,
वातिकरगेगके विशेष लक्षण ,	अर्झोवर्त्मके लक्षण ,
द्विष्टमंडलगत रोगके लक्षण ३१४	शुष्काश्वके लक्षण ,
सर्वद्विष्टिरोगकी सख्त्या ,	अजनाके लक्षण ,
		बहलवर्त्मके लक्षण ३२१
		वर्त्मवधके लक्षण ,

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
छुट्टवर्त्मके लक्षण ३२१	योनिव्यापत्तिनिदानम् ।	
वस्त्रकर्दमके लक्षण " "	योनिके वीस रोगोंके लक्षण ३३०
श्याववर्त्मके लक्षण " "	स्नाव और पातके लक्षण ३३२
आछुट्टवर्त्मके लक्षण ३२२	गर्भ अकालमें कैसे गिरे इसका निदान ॥	
वातहृतवर्त्मके लक्षण " "	प्रसूत होते समय मूढगम होनेका ल०	" "
अरुदके लक्षण " "	मूढगमकी आठ प्रकारकी गति "
निमेषके लक्षण ३२३	असाध्य मूढगर्भ और गर्भिणीके लक्षण ३३३	
शोणितार्शके लक्षण " "	मृतगर्भके लक्षण "
लगणके लक्षण " "	गर्भमरणहेतु ३३४
विसवर्त्मके लक्षण " "	गर्भिणीके दूसरे असाध्य लक्षण "
कुच्चनके लक्षण " "	सूतिकारोगनिदानम् ।	
पक्षमकोपके लक्षण ३३५	प्रसूतिरोगकी उत्पत्ति ३३५
पक्षमशातके लक्षण " "	प्रसूतिरोगलक्षण ३३६
नेत्ररोगोंकी संख्या " "	स्तनरोगनिदानम् ।	
शिरोरोगनिदानम् ।		स्तनरोगकी उत्पत्ति ३३६
वातजके लक्षण ३२५	स्तनरोगलक्षण ३३७
पौत्रिकके लक्षण " "	स्तन्य (दूध) रोग ३३७
श्लैष्मिकके लक्षण " "	वातादिकसे दूषित दूधके लक्षण ३३८
सान्निपातके लक्षण " "	शुद्ध दूधके लक्षण "
रक्तजके लक्षण " "	बालरोगनिदानम् ।	
क्षयजके लक्षण ३४६	वातदूषित दूधके लक्षण ३३७
कृमिजके लक्षण " "	पित्तदूषित दूधके लक्षण "
सूर्योवर्त्मके लक्षण " "	कफदूषित दूधके लक्षण ३३८
अनन्तवातके लक्षण " "	बालकोंकी अन्तर्गत पीड़ा जानेका	
अर्धावभेद (आधासीसी) के लक्षण	३२७	उपाय "
शंखकके लक्षण " "	द्वंद्वज और सान्निपातज दूषित हुग्ध ल०	
प्रदररोगनिदानम् ।		कुकूणकके लक्षण "
प्रदररोगके सामान्यरूप ३२८	परिगर्भिकके लक्षण ३३९
उपद्रवके लक्षण " "	तालुकण्टकके लक्षण "
श्लैष्मिकके लक्षण " "	महापञ्चविसर्पके लक्षण "
पौत्रिकके लक्षण ३२९	और विकार जो बालकोंके होते हैं सो कहते हैं ३४०
वातिकके लक्षण " "	सामान्य ग्रहजुषके लक्षण "
त्रिदोषजके लक्षण " "	स्कन्दग्रह हीत बालकके लक्षण "
विशुद्धार्तवके लक्षण " "		

विषय.	पृष्ठांक	विषय.	पृष्ठांक.
स्कन्दापस्मारके लक्षण ३४१	उनके काटनेके सामान्य लक्षण	३५२
शकुनिग्रहके लक्षण ,	दूषीविष लूताके काटनेके लक्षण ,	,
रेवतीग्रहके लक्षण ,	प्राणहर लूताके लक्षण ,
पूतनाग्रहके लक्षण ,	दूषीविष आखलक्षण ३५३
अन्धपूतनाग्रहके लक्षण.... ३४२	प्राणहर मूषकविषके लक्षण ,
शीतपूतनाग्रहके लक्षण.... ,	कृकलास (न्यौले) के काटनेके लक्षण ,	,
मुखमण्डकाग्रहके लक्षण ,	वृश्विकविषके लक्षण ,
नैगमेयग्रहके लक्षण ,	वृश्विकविषके असाध्य लक्षण ३५४
विषरोगनिदानम् ।			
विषका स्थान ३४३	कणभद्रष्टके लक्षण ,
जंगमविषके सामान्य लक्षण ३४४	उच्चिट्ठगर (झींगर) के विषके लक्षण ,	,
स्थावरविषके सामान्य लक्षण ,	मड़ूक (भेढ़क) के विषके लक्षण.... ,	,
विष देनेवालेके दूढ़नेके निमित्त कुछ लक्षण ,	विषेल मत्स्य (मछली) के विषके ल० ३५५	
मूलादिविषोंके लक्षण ३४५	सविष जलौका (जोक) के विषके ल० ,	
विषलिंग शब्दहतके लक्षण ३४६	गृहगोधिका (छिपकली) के विषके ल० ,	
सर्पविष यह अति तीक्ष्ण है इसीसे प्रथम सर्पोंकी जाति ,	शतपदी (कनखजूरा) के विषके लक्षण ,	
मौर्गीसर्पके काटनेपर वातादिकोंके लक्षण ३४८	मशक(मच्छर वा डास)के विषके ल० ३५६	
विशिष्टदेशमें तथा विशिष्ट नक्षत्रमें काटनेके असाध्यलक्षण			
गर्भी होनेसे विषके जोरका लक्षण.... ,	असाध्य मशकक्षतके लक्षण ,	
सर्पके काटेमें असाध्य लक्षण ,	सविषमाक्षिका (मक्खी) विषके ल० ,	
दूसरे असाध्य लक्षण ३४९	चतुष्पदादि विषके साधारण लक्षण.... ,	
तथा असाध्य लक्षण ,	विष उतर गया हो उसके लक्षण ,	
दूषितविषके लक्षण ,	ग्रंथपरिशिष्टम् ।	
दूषीविषके लक्षण ,	क्षेत्रपक्षके सामान्य लक्षण.... ३५७
स्थानभेदकरके उसके विशिष्ट लक्षण.... ३५०	बीजोपघात क्षीबिके लक्षण ३५८
दूषीविषकी निरुक्तिके लक्षण ,	ध्वजभंगक्षीबकी उत्पत्ति ,
इन दोनों विषोंके लक्षण ३५१	ध्वजभंगके लक्षण ३५९
दूषीविषके असाध्यादि लक्षण ,	आसेक्य नपुंसकके लक्षण ३६०
लूताविषकी उत्पत्तिके लक्षण ,	सौगधिक नपुंसकके लक्षण ,

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
जरासभव (दूसरे) नपुसकके लक्षण ३५३		कुत्तेके काटनेके लक्षण.... ३६८
क्षयज क्लीवके लक्षण "	सार्विष निर्विष दंशके लक्षण "
असाध्य नपुसकलक्षण ३६४	असाध्यके लक्षण ३६९
शुकर्त्तवदे षनिदान "	जटसंत्रासनामाके लक्षण "
दूषित शुक्रके भेद ३६५	गोधेरकदशके लक्षण ३७०
वातदूषित शुक्रके लक्षण.... "	सषेपिकादशके लक्षण "
पित्तदूषित शुक्रके लक्षण "	विश्वभराके लक्षण "
कफदूषित शुक्रके लक्षण.... ३६६	आहिङ्काके लक्षण "
शुद्धशुक्रके लक्षण "	कहूमकादष्टके लक्षण ३७१
शुक्रदोषनिदान.... "	शूकवृत्तादिदृष्टके लक्षण.... "
आर्तवदोषके लक्षण ३६७	पिपरीलिकादंशके लक्षण.... "
विष्टुभग्नमके लक्षण "	ज्ञायुके निदान "
उपविष्टग्नमके लक्षण "	ध्वजभंगके संगृहीत श्लोक ३७२
मथरज्वरके लक्षण "	रोगानुक्रमाणिका "
कुत्तेके विषका निदान.... ३६८	टीकाकर्त्ताकी वशाखली.... ३७३

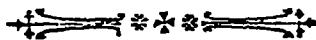
इति अनुक्रमाणिका समाप्त ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
“लक्ष्मीवेङ्गटेश्वर” छापाखाना,
कल्याण—मुंबई।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

भाषाटीकासहितं
माधवनिदानम् ।



परम कारुणिक, श्रीसदाशिवचरणचंचरिक, श्रीमाधवाचार्ये निःशेष विश्वविद्यातार्थे
और ग्रन्थकी निर्विज्ञपरिसमाप्तिके निमित्त ग्रन्थके आड़िमें मंगलाचरण करते हैं-

प्रणम्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम् ॥

स्वर्गोपवर्गयोद्वारं त्रैलोक्यशरणं शिवम् ॥ १ ॥

नानामुनीनां वचनैरिदानीं समासतः सद्विषज्ञानियोगात् ॥

सोपद्रवारिष्टनिदानलिङ्गो निबद्धयते रोगविनिश्चये उपम् ॥ २ ॥

नरवरपुधारी गोकुलानद्वारी द्रजयुवतिविहारी रासलीलाप्रचारी ॥

प्रणवहु बननारी केसको मान मारी सकलविधनद्यारी लीजिये सुधि हमरी ॥ ३ ॥

कर्त्ता भर्ता तथा हर्ता भोगमोक्षकदायिनम् ॥

बन्दे श्रीगिरजाकान्त शकर लोकशंकरम् ॥ २ ॥

भाष-जगदकी उत्पत्ति पालन और प्रलयके प्रधान कारण, स्वर्ग (मुख)
अपवर्ग (मोक्ष) के द्वार अर्थात् दाता, तथा त्रिलोकीके रक्षक शिवको व्रणाम का
अनेक चरक सुश्रुत आदि मुनीश्वरोंके वचनोंके अनुसार उत्तम वैद्योंकी आज्ञामे अब
में संक्षेपसे रोगविनिश्चय नाम ग्रन्थकी रचना करता हूँ। जिसमे उपद्रव, अग्नि,
निदान और चिह्न इनका लक्षण अच्छी रीतिसे किया गया है ॥

शिष्य-यह अति स्फूर्ति निदानपञ्चक सर्वज्ञ कृष्णमुनियोंके जानने चोरव है ।
उनके वाक्योंका निरादर कर मनुष्यकृत तुम्हारे ग्रन्थमें मनुष्योंकी कैमे प्रवृत्ति
होवेगी ? इस कारण माधवाचार्यने “ नानामुनीना वचनैः ” इस पदश्चो धरा,
अर्थात् अनेक मुनीश्वरोंके वचनोंका आशय लेमेने यह ग्रन्थ निर्माण किया है ।

१ मया अय रोगविनिश्चयो ग्रन्थः इदानीं समासतः निवध्यते । कि कृत्वा शिवं
प्रणम्य, कथंभूतं शिवं ? जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणं, पुनः कथभूतं शिवं ? स्वर्गोपवर्गं-
योद्वारं, पुनः कथभूतं ? त्रैलोक्यशरण, किविशिष्टो ग्रन्थः ? सोपद्रवारिष्टनिदानलिङ्ग ,
कैः ? नानामुनीना वचनैः, कस्मात् ? सद्विषज्ञानियोगादित्यन्वयः । २ उपद्रवो रोगार-
म्भकदोषप्रकोपनन्यो विकारः । ३ नियतमरणस्व्यापकलिंगमरिष्टम् । ४ निदान रोगो-
त्पादको हेतुः । ५ लिंग रोगव्यापको हेतुः । तेन लिंग्यते ज्ञायते व्याधिः अनेनोति ष्वुत्प-
त्या पूर्वद्वपूर्वोपशयसप्राप्तयो विज्ञायते ।

किंतु मेरे मनकी उक्तिसे कल्पित नहीं है । शंका—पहलेही वहुत ग्रन्थ निर्माण करे उपस्थित हैं फिर तुम्हरे इस ग्रन्थको कौन पढ़ेगा ? इस कारण माधवाचार्यने “ इदा-नाम् ” पद मूलमें धरा, इस पदका यह आशय है कि हमही अनेक मुनीशरोंके बचनोंसे अब ऐसा अलौकिक ग्रन्थ रचते हैं कि, पहिले किसी आचार्यने अद्यापि नहीं निर्माण कग । कोई वादी शंका करे कि, तुमने ग्रन्थ रचाभी परंतु किसीने नहीं पढ़ा तो आपका ग्रन्थ निर्माण करना व्यर्थ होयगा । इस कारण माधवाचार्यने “ सद्दिवजा नियोगात् ” यह पद धरा । इस पदका आशय यह है कि, हमारे पढ़नेके निमित्त कोई निदानग्रन्थ निर्माण करो ऐसे बुद्धिमान् वैद्योंके कहनेसे इस ग्रन्थकी रचना करी है । शंका—श्रीमहादेवजीके हर, मृड, रुद्र, शास्त्रव इत्यादि नामोंको त्यागकर शिव इस नामको वयों प्रणाम का ? उत्तर—इस रोगविनिश्चयग्रन्थके पठन पाठन करनेवालोंकी कल्याणकी इच्छा कर सर्व कामना देनेवाला कल्याणवाचक शिव नाम विचार इसीको ग्रन्थके आदिमें माधवाचार्यने प्रणाम करा ॥

अ य निदान ग्रन्थोंसे इसकी उत्तमता दिखाते हैं ।

नानातंत्रविहीनानां भिषजामल्पमेधसाम् ॥

सुखं विज्ञातुमातंकमयमेव भविष्यति ॥ ३ ॥

भाषा—अनेक ग्रन्थोंके विचार करनेमें असमर्थ ऐसे मन्त्र बुद्धिवाले वैद्योंको सुख-पूर्वक रोगज्ञानके निमित्त यही ग्रन्थ कारण होवेगा । वयोंकी रोगका जाननाही मुख्य है सो ग्रन्थान्तरोंमें लिखाभी है ॥

रोग जाननेके पांच उपाय उनको कहते हैं ।

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ॥

संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पंचधा स्मृतम् ॥ ४ ॥

भाषा—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति ये पांच प्रकार पृथक् पृथक् और सदस्त व्याधिके बोधक होते हैं । इस प्रकार रोगोंका जानना मुनीशरोंने पाच प्रारक्षा कहा है ॥

१ अथमेव आतकम् अल्पमेधसां भिषजा सुख विज्ञानु भविष्यति । किविशिष्टानां भिषजा नानातंत्रविहीनानामित्यन्वयः । २ “ रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् । ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ञानपूर्वं समाचरत् ॥ रोगज्ञानार्थमेवादौ यत्नः कायों भिषग्वरैः । सति तस्मिन् क्रियारम्भः पुण्याय यशसे श्रिये ॥ ” प्रसंगवश रोगज्ञानकी विधि कहते हैं । जैसे रोग चार प्रकारसे जाना जाता है । प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्दसे । तदा चित्रकुष्ठादि व्याधि प्रत्यक्ष देखनेसे प्रतीत होती है । ज्वरादि त्वगिन्द्रियसे जाने जाते हैं । ३ रोगाणा विज्ञान पञ्चधा स्मृतम् इत्यन्वयः ।

“ इस क्षेत्रमें “ उपशयस्तथा ” यह जो पद धरा इसका यह आशंक्य है कि, जैसे निदान, पूर्वरूप और रूपसे रोग जाना जाता है । उसी प्रकार उपशयसे और संप्राप्तिसे भी रोग जाना जाता है । “ संप्राप्तिश्चेति ” इस पदमें च और इतिके धरनेसे यह प्रयोजन है कि रोग जाननेके इन पांचोंसे विशेष और उपाय नहीं हैं । अब कहते हैं कि रोगोंका निदान संनिकृष्ट (समीप) और विप्रकृष्ट (दूर) इन भेदोंसे दो प्रकारका है । संनिकृष्ट उसे कहते हैं कि, जैसे वातादिक कुपित ज्वरादिक रोगोंको प्रगट करे हैं और विप्रकृष्ट उसे कहते हैं जैसे हेमतंक्रुतुमें संचित हुआ कफ वसंतऋतुमें कुपित होता है । पूर्वरूप उसे कहते हैं जैसे ज्वरमें आलस्यादि धर्मे । रूप उसे कहते हैं जैसे १८ के क्षेत्रमें लिखा है “ स्वंटावरोध इति ” अर्थात् पसीनोंका अवरोध होना इत्यादिक । उपशय उसे कहते हैं जैसे वातरोग तैल आदिके लंगानेसे ज्ञान्त होय है । सम्प्राप्ति उसे कहते हैं जैसे १० के क्षेत्रमें लिखा है । “ यथा दुष्णे दोषेण ” इत्यादि । शंका-क्योंजी ! ये पांच जो व्याधि जाननेके उपाय कहे इनमें एकहीसे रोगका निश्चय हो सके हैं किंतु माधवाचार्यने पांच प्रकार व्यर्थ क्यों लिखे ? क्योंकि पांचोंका प्रयोजन केवल रोगका जानना है । उत्तर-तुमने कहा सो ठीक है परंतु इन पांचोंका पृथक् पृथक् प्रयोजन है । जैसे निदानसे यह प्रयोजन है कि जिस वस्तुके खानेसे या लगानेसे रोग प्रगट हो उसका त्याग करनेसे रोग नहीं बढ़े किंतु उलटा ज्ञान्तही होता है और पूर्वरूपके जाननेसे यह प्रयोजन है जैसे सुश्रूतमें लिखा है कि, वातज्वरके पूर्वरूपमें घृतपान करनेसे वातज्वरकी उत्पत्ति नहीं होय । रूपके जाननेसे यह प्रयोजन है कि व्याधि अर्थात् रोगका साध्याऽसाध्य और कष्टसाध्यत्व निश्चय होता है । जैसे जिस रोगका अलरूप होवे वह सुखसाध्य है और मध्यरूप कष्टसाध्य और संपूर्ण रूप असाध्य जाननेसे असाध्यका परित्याग करना और कष्टसाध्य तथा सुखसाध्यकी व्यौषधि करनी उचित है । उपशयके जाननेसे यह प्रयोजन है कि सुपरीक्षित व्याधिके संपूर्ण लक्षण न मिलनेसे व्याधिका यथार्थज्ञान नहीं होय उसको उपशयके द्वारा निश्चय को सो चरकर्में लिखा है कि जिस व्याधिके लक्षण प्रगट न होय उसकी उपशय और अनुपशयके द्वाग परीक्षा वरे । उसी प्रकार सुश्रूतमें लिखा है जैसे उवटना, तेल लगाना, स्वेदनविधि इत्यादिक कर्म करनेसे वातरोग

१ अर्थात् नाड़ी, नेत्र, जिह्वा, मल, मूत्र आदि परीक्षाओंसे रोगोंको ज्ञान यथार्थ नहीं हो । २ वातिकज्वरे पूर्वरूपे घृतपानमिति तथाच साध्याऽसाध्यत्वमपि ज्ञायते । ३ कष्टसाध्यके लक्षण चरकर्में लिखे हैं । यथा—“निमित्तं पूर्वरूपाणि रूपाणां मध्यमे वले ” इति । ४ गूढलिंगं व्याधिमुपशयाऽनुपशयाभ्यां बुद्धयेत इति । ५ “ अभ्यंगल्येहस्वेदाचै-वातदोषो न शास्यति । विकारतत्र विजेयो दुष्टमत्रास्ति शाणितम् ॥ ” इति ।

ज्ञांत न होय तो उसके रुधिरका विकार जाने और संप्राप्तिके जाननेसे यह प्रयोग-जन है कि संप्राप्तिके बिना जाने पूर्वल्पपादिकोंकरके जानी भईभी व्याधि चिकित्साके योग्यभी हैं परंतु अंशांश विकल्प वल काल आदिको जबतक नहीं जाने तबतक चिकित्सा यथार्थ नहीं हो सके । इसीसे अत एव वैद्य निदानपंचकका अवश्यही परिचय करे ॥

अब निदानके पर्यायवाचक शब्दोंको कहे हैं ।

निमित्तेत्वायतनप्रत्ययोत्थानशःरणः ॥

निदानमाहुः पर्यायैः प्रागूपं येन लक्ष्यते ॥ ५ ॥

भाषा-निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण ये निदानके पर्यायवाचक शब्द शाखव्यवहारके अर्थ मुनीश्वर कहते हैं । इनके कहनेका कारण यह है कि, व्यवहारके बास्ते अर्थात् शास्त्रमें इन छः शब्दोंमेंसे कोई शब्द आवे उसको निदानवाचकही जाने ॥

व्याधिके प्रागूपका लक्षण ।

उत्पत्तिसुरामयो दोषोविशेषेणानधिष्ठितः ॥

लिंगमध्यत्तमल्पत्वाद्याधीनां तद्यथायथम् ॥ ६ ॥

भाषा-जिस जंभाई, आलस्य आदि करके उत्पत्ति होनेवाली व्याधिका जान होवे उसको प्रागूप अर्थात् पूर्वल्प कहते हैं । फिर वह व्याविदोष (वात, पित्त, कफ) से बहुधा अप्रगट होवे । यदि वातादिक दोषोंसे अप्रगट होवेगी तो व्याधिका प्रगट होना अनम्भव है क्योंकि, कारण तो वातादिक दोष हैं । जब दोषही नहीं तो गोग केसे प्रगट हो सकते हैं ? इस पदवा यह अर्थ है कि दोष वात, पित्त, कफ इनका व्याविके अल्प होनेसे अप्रगटरूप होना अर्थात् योडा योडा होना, अत एव तत्त्व ज्वरादिव्याधिके अपने अपने अप्रगट लक्षण पूर्वल्प तैसे तैसेही होते हैं । अब कहते हैं कि पूर्वल्प दो प्रकारका है । एक सामान्य, दूसरा विशिष्ट सामान्य । प्रागूप (पूर्वल्प) उसे कहते हैं जैसे दोष (वात, पित्त, कफ) से दूपित धातु उसके विगडनेसे प्रगट होनेवाले ज्वरादि व्याविमात्रहीनी प्रतीति होवे और वात आदि दोषोंके चिह्न न मालूम हों जैसे “ श्रमो रतिर्धिवर्ण-त्वमिति ” अर्थात् ज्वरमें श्रम हो, मनका न लगना । देहका विवरण इत्यादि लक्षण और जिसमें होनहार रोगारम्भक दोष हो उन्होंके चिह्न तिसके एक अंशभी

१ देन उत्पत्त्सुः आमयः लक्ष्यते ज्ञायते तत्प्रागूपम् । किभूतः आमयः ? दोषविशेषणानधिष्ठितः अत एव ज्वरादिव्याधीनाम् अल्पत्वात् अव्यक्तं लिंग तत् यथायथम् आत्मीयमात्मस्यमूल्यम् इत्यन्वयः ।

अर्थात् हो उसको विशिष्ट प्रायूप कहते हैं । जैसे “ जृंभात्यर्थं समीणत् ” अर्थात् जंभाईका आना केवल बातके दोषसे ही है । इसमें होनदार रोग कौन ? जब, उसका आरम्भक दोष कौन ? बात, बातका एक अंश कौन ? जंभाई, ऐसे औरभी जानने चाहिये । इस विशिष्ट पूर्वरूपमें जंभाई आदि रूप देखकर कदाचित् पूर्वरूपको रूप न समझना चाहिये । क्योंकि यह तौ केवल व्याधिके आगम्भक दोषमात्रका सूक्ष्म चिह्न है इस बातको दृष्टान्त देकर समझाते हैं । दृष्टान्त—जैसे तुगके ममूदर्भे छोटी अप्रिकी चिनगारी गिरनेसे धूप (धूआं) मात्र प्रगट देखकर हाथ, वज्ञ आठिके मारनेसे ही शान्ति कर सकते हैं परन्तु जब अप्रि एकसाथ जोरमें प्रज्ञालित हो गई तब आर्ति नहीं हो सके । ऐसेही विशिष्ट पूर्वरूपको अल्प होनेसे चिनित्सा करनेसे शान्ति कर सकते हैं, परन्तु जब रूप हो गया तब उसका उपाय नहीं हो सकते हैं इसीसे पूर्वरूप और रूपमें भेद है । अब कहते हैं पूर्वरूप और रूप इन दोनोंमें कोई शारीरिक अर्थात् शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं और कोई मानसिक अर्थात् मनसे सम्बन्ध रखते हैं । शारीरक जैसे ज्वरमें सुखका विरस होना, देह भागी, नेत्रसे जड़ गिरना इत्यादिक और मानसिक जैसे मनका एक जगह न लगना और अपने हितकारक वचनोंसे शान्ति न होना तथा खट्टे, चगपरे पदार्थपर मन चलना इत्यादि ॥

तदेव व्यक्ततां यातं रूपमितरभिधीयते ॥

संस्थानं व्यञ्जनं लिंगं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ ७ ॥

भाषा—जब पूर्वोक्त प्रयूर प्रगट हो जाय तब उसका रूप ऐसे कहते हैं और संस्थान, व्यञ्जन, लिंग, लक्षण, चिह्न और आकृति यह छः शब्द रूपके पर्याय वाचक हैं ॥

उपशयके लक्षण ।

हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् ॥

औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥

विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः ॥ ८ ॥

भाषा—जब उपशयके लक्षणको कहते हैं । हेतुविपरीत, व्याधिविपरीत, हेतुव्याधिविपरीत, हेतुविपर्यस्तार्थकारी, डगाधिविपर्यस्तार्थकारी, हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी ऐसे जो औषध अन्न (पथ्य) विहार (आचरण) इनका सेवन सुखकारक

१ व्याधेः सुखावहम् उपयोगम् उपशय विद्यात् स हि सात्म्यम् इति स्मृतः । केषा ? औषधान्नविहाराणां, किमूताना ? हेतुव्याधि वे पर्यस्तविपर्यार्थकारिणाम् इत्यन्वयः । उपयोगः सुखावहस्तमुपशयं विद्यात् जानीयात् । उपयुज्यत इनि उपयोगः सेवन सुखमावहति सम्यग्नुवधेन सुखमुत्पादयतोति सुखावहः केषामुपयोगः औषधान्नविहारा-

जानना उसको व्याधिका उपशय कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि, रोग और रोगका हेतु इनको सुखकारक जो औषधि पथ्य आचरणरूप प्रयोग उसको उपशय कहते हैं और व्याधिसात्म्य यह पर्यायवाचक नाम उसी उपशयका है। सुखकारकके कहनेसे यह प्रयोजन है कि दाह और प्यासयुक्त नवीन ज्वरमें शीतलजलका पीना व्याधिका बढ़ानेवाला है इससे शीतल जल सुखकर्ता न भया अत एव शीतलजलको उपशय न समझना चाहिये। परंतु दाहयुक्त प्यासमें शीतल जल उपशय माना जायगा क्योंकि सुखकारक है॥

बागे अब क्रमसे उदाहरण लिखते हैं। हेतुविपरीत औषध—जैसे शीतकफज्वरमें सोंठ, तो इसमें प्रथम समझना चाहिये कि यहाँ हेतु कौन है कि बात (सर्दी)। उस बातका शीतल धर्म है तो अब शीत, कफ, यह कव शान्त होय कि जब सर्दी और कफके विपरीत औषध मिले, ऐसी औषध कौन कि शुंठी, यह सर्दीको और कफ दोनोंको शान्त करे है तो शीत कफज्वरमें हेतुविपरीत औषध सोंठ हुई। ऐसेही हेतुविपरीत अन्न। जैसे श्रम और सर्दीसे प्रगट ज्वरमें मांसका रत और चावल इसमें हेतु कौन कि श्रम और सर्दी, यह कव आन्त होय कि श्रम और सर्दी हरणकर्ता पथ्य मिले, ऐसी पथ्य कौन कि मासरस और चावलोंका भात ये श्रम और सर्दीके विपरीत हैं अर्थात् नाशक हैं ऐसीही हेतुविपरीत विहार कहिये आचरण कौन, जैसे दिनके सोनेमें प्रगट कफकर रातमें जागना, यहा हेतु कौन भया कि दिनका सोना, उससे प्रगट दोष कौन कि कफ, यह कफ कव शान्त होय कि जिस हेतुसे प्रगट भया उस हेतुसे विपरीत आचरण करा जाय तौ, दिनके सोनेपर उलटा आचरण कौन कि रातमें जागना तो यह हेतुविपरीत आचरण भया। इसी प्रकार

एम् । औषध चान्न च विहारश्चाष्टान्नविहारास्तेषाम् । अपथ हरीतक्यादि, अन्न रक्त-शाल्यादि, विहारो देहमनोनिवृत्तित्वेषाविशेषः, व्यायामो जागरणाध्ययनादिरूपः । किभूतानां औषधात्रविहाराणा हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणां हेतुश्व व्याधिश्व हेतुव्याधी तथोव्यस्तसमस्तयोः विपर्यस्ता व्याधिनिदानयोर्विपरीताः तथा विपर्यस्ताना अर्थो विपर्यस्तार्थः तथोव्यस्तसमस्तयोरेव विपरीतमर्थ वर्वतीति विपर्यस्तार्थकारिणः । हेतुव्याधिविपर्यस्ताश्व विपर्यस्तार्थकारिणश्व हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणः तेषां केषा विपर्यस्तानाम् अर्थ कुर्वतीति प्रकृतत्वात् हेतुव्याधिविपर्यस्तानाम् । तदायमर्थः । निदानरोगयोर्व्यस्तसमस्तयोर्विपरीता अपि कारणरूपा इव भासमानाः व्याधिरूपा इव भासमानाः हेतुव्याधिविपरीतानाम् अर्थ व्याध्युपशमलक्षणं कुर्वन्तीति । यथा हेतुविपरीताः औषधात्रविहारैः व्याध्युपशमः क्रियते प्रतिपक्षत्वात् । एवं विपर्यस्तार्थविपर्यस्तार्थकारिभिरपीत्यर्थः । तथा च हेतुविपरीताना व्याधिविपरीतानां हेतुव्याधिविपरीताना हेतुविपरीतार्थकारिणा व्याधिविपरीतार्थकारिणां हेतुव्याधिविपरीतार्थकारिणा औषधात्रविहाराणां यः सुखावह उपयोगः स उपशय इति पिण्डार्थः । अर्थेषा क्रमेणोदाहरणानि भाषायां वेदितव्यानि ।

और उदाहरण व्याधिविपरीत आदिके आगे लिखे हुए चक्रके अनुसार बुद्धिवान् मनुष्य समझ लेंगे ॥

नाम.	ओषध	अन्न	विहार.
हेतुविपरीत	शीतज्वरमें गरम औषधि सोंठ	श्रम और वाहीसे प्रगट पेगपर मांसका रस और गात	दिनके सोनेसे प्रगट कफरोगपर विपरीत आचरण रातमें जागना
व्याधिविपरीत	अतिसाखें दस्त बढ़ करनेवाली औषधि पाठ। आदि।	दस्तोंमें दस्तके बदकार क पथ्य मसूर।	उदावर्तीरोगम शब्दपूर्वक अधोवायुका निकसना मत्र औषध धारण देव गुरकी सेवा करनी
हेतुव्याधिविपरीत	वातकी सूजनमें दशमूलका काढा वात और सूजन दोनोंको दूर करनेवाला है	कफकी स्थ्रहणीमें छाटका पीना वातनाशक, कफनाशक और स्थ्रहणीनाशक है	द्विष्य जो दिनके सोनेसे उत्पन्न तदा तिसमें रुक्ष तदासे विपरीत और द्विघनाशक रात्रिमें जागना
हेतुविपर्यस्तार्थकारी	जैसे पित्त प्रधान त्रणसूजनमें पित्तकारक उष्मापिण्डीका वाधना।	पित्तकी सूजनमें दाहकारक अन्नका भोजन करना	जैसे वातसे पैदा उन्मादमें त्रासका देना
व्याधिविपर्यस्तार्थकारी	जैसे कफरोगमें वमनकारक मैनफल आदि	अतिसारोगमें दस्तकारक दुष्प देना	छर्दिरोगमें हाथका अग्नु गलेमें कर वा कमलनाट आदिसे उलटीका लाना
हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी	जैसे अग्नि जलेपर गरम अगर आदि लेप अथवा विषपर विष	जैसे मध्यपानके करनेके प्रगट मदात्थयरोगमें मदकारक फिर मद्य पीना	दड कसरतसे प्रगट वातमें जलका ऐनारूप व्यायामका करना

अनुपशयके लक्षण ।

विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्यमिति रसूतः ॥ ९ ॥

भाषा—जो उपशयके लक्षण कहे हैं उससे विपरीत लक्षण अनुपशयके हैं और व्याधीका असात्म्य अर्थात् असमान नाम उक्ती अनुपशयका पर्यायवाचक शब्द है ॥

सम्प्राप्तिके लक्षण ।

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ॥

निर्वृतिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिरागतिः ॥ १० ॥

भाषा—दोष कहिये वात, पित्त, कफ इनका दुष्ट होना नाम कुपित होना अनेक प्रकारका है अर्थात् स्वकारण या दूसरेके कारण करके ऐसे कुपित दोष अपने स्थान-को छोड़कर देहमें ऊपर नीचे तिरछे विचरते हैं । उस विचरनेसे जो रोग प्रगट हो उसको सम्प्राप्ति कहते हैं और जाति तथा आगति ये दोनों पर्यायबाचक नाम उसी सम्प्राप्तिके हैं । तात्पर्यार्थ यह है कि मनुष्यके देहमें वात, पित्त, कफ ये सम्पूर्ण दोष बढ़कर जैसे रोगको प्रगट करे तेसेही उसको सम्प्राप्ति कहते हैं । उदाहरण जैसे कुपित दोषोंका आमाशयमें प्रवेश होनेसे और उस स्थानमें इत्स्ततो गमन करनेसे तथा रसकी बहनेवाली नाडियोंके मार्गोंको रोकनेसे और पक्षाशयमें गहनेवाली अग्निको बाहिर निकालनेसे तथा उसी जठर अग्निसे सर्व देहके तप्त होनेसे यह ज्वर है ऐसा जो निश्चय किया जाता है उसीको संप्राप्ति कहते हैं । ऐसेही अतिसारादि रोगोंकी संप्राप्ति जाननी चाहिये ॥

सम्प्राप्तिके भद्र ।

संख्याविकल्पप्राधान्यवलकालविशेषतः ॥

भाषा—अब संप्राप्तिके भेद कहते हैं सा कहिये सो संप्राप्ति संख्यादि विशेषण करके पांच प्रकारकी है । जैसे १ संख्या, २ विकल्प, ३ प्राधान्य, ४ वल, ५ काल इति ॥

संख्याल्प संप्राप्तिके लक्षण ।

सा भिद्यते यथात्रेव वक्ष्यन्तेऽहौ ज्वरा इति ॥ ११ ॥

भाषा—जैसे इसी ग्रन्थमें आगे आठ प्रकारका ज्वर, पांच प्रकारकी खासी अर्थात् रोगोंकी गणनाकोही संख्याल्प संप्राप्ति कहते हैं ॥

विकल्परूप संप्राप्तिके लक्षण ।

दोषाणां समवेतानां विकल्पोऽशांशकल्पना ॥

भाषा—मिले हुए दोष कहिये वात, पित्त, कफ इनके अंशांशका अनुमान करना उसको विकल्परूप संप्राप्ति कहते हैं । जैसे धूंएके निकलनेसे यह पर्वत अग्निवान् है ऐसेही यह रोगोंके देहमें वातका अंश विशेष है काहेसे कि वातके अंश विशेष मिलनेसे इसी अनुमानको विकल्पसंप्राप्ति कहते हैं । उदाहरण जैसे ल्खी शीतल हल्की और फैलनवाली इत्यादि गुणयुक्त जो पद्म उसका रौक्षादि गुणयुक्त कैपैला रस वातको सर्वांश करके बढ़ानेवाला है । जैसेही कटु रस, सर्व भावकरके पित्तका बढ़ानेवाला है अर्थात् कटु, उष्ण, तीक्ष्णत्व करके हींग पित्तको बढ़ानेवाली है । तमेही मधुररस जैसे भैंसका दूध ये सर्व भावकरके कफ बढ़ानेवाला है इत्यादि । इसमें ‘दोषाणां’ जो बहुवचन है सो दोषोंके पृथक् २ ग्रहणके वास्ते है और ‘समवतानां’ यह पद जो है सो द्वंद्ज और सन्निपातके ग्रहणनिमित्त धरा है ॥

प्राधान्यरूप संप्राप्तिके लक्षण ।

स्वातंत्र्यपारतंत्राभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ १२ ॥

भाषा-व्याधिके स्वतंत्र और परतंत्र करके प्राधान्यता कही है । जैसे स्वतंत्र ज्वरको प्रधानता है और ज्वराधीन श्वास आदि रोगोंको अप्रधानता है ॥

बलरूप संप्राप्तिके लक्षण ।

हेत्वादिकात्स्नावयवैर्वलावलविशेषणम् ॥

भाषा-हेतु आदि शब्दसे पूर्वरूप और रूप इनके सर्व अवयव (लक्षण) मिल-जैसे व्याधिको बलवान् जानना और थोड़े लक्षण मिलनेसे निर्वल जानना । जैसे रोगके प्रति जो निदान कहा है वह निदान संपूर्ण रोगको उत्पन्न करनेवाला है कि एकदेश ऐसेही पूर्वरूपभी समस्त अवयवोंकरके व्याधिका प्रकाशित है या एक देशसे इत्यादि ॥

कालरूप संप्राप्तिके लक्षण ।

नक्तं दिनर्तुभुक्तांशैव्याधिकालो यथामलम् ॥ १३ ॥

भाषा-नक्त (रात्रि) दिन (दिवस), ऋतु (वसन्तादि), भुक्त (आहार) इनका अंश कहिये एकदेश उसको यथा दोष (वात, पित्त, कफ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोगके घटनेके बढ़नेके हेतुका समय जाने । उदाहरण दिखाते हैं जैस रात्रक तीन भाग करे प्रथम, मध्य और अन्त तौ रात्रिका प्रथमभाग कफका है, मध्यभाग पित्तका, अन्तभाग वातका है । ऐसेही दिनकेभी तीन भाग करे तौ पूर्वाह्न कफका, मध्याह्न पित्तका, अपराह्न वातका । ऐसेही ऋतु जैसे वस्त्रत-ऋतुमें कफ, ग्रीष्मऋतुमें पित्त और वर्षामें वात कुपित होता है । ऐसेही भोजनका जस भोजन करनेके समय कफका काल और अन्नके पचनेके समय पित्तका काल और जब भले प्रकार परिपक्ष हो गया तब वातका काल । इसके जाननेसे यह प्रयोजन है कि, जिस दोष (वात, पित्त, कफ) का जो काल कहा है उसका उसी २ कालमें जान लेना कठिन मालूम नहीं होता ॥

निदानपञ्चकका उपसंहार ।

इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्याख्योपदेश्यते ॥ १४ ॥

भाषा-इति कहिये यह संक्षेप प्रकारसे जो निदानार्थ कहा उसे विस्तारपूर्वक प्रतिरोगके निदान पूर्वरूपादि करके कहते हैं ॥

१ व्याधेः स्वातंत्र्येण च पुनः पुरतंत्रेण प्राधान्यम् आदिशेत् अप्राधान्य खेति शेषः इत्यन्वयः । २ अत्रापि व्याधेरित्यनुवर्तते । हेत्वादेः हेतुपूर्वरूपद्वयाणा कात्स्न्येन साक्षेयेन अवयवैर्वलावलयोर्विशेषण विशेषावबोधः । ३ केचन ऋत्वशाः कतिव्याहोरात्राणि कथयति । यदुक्त वाग्मद्वे । ऋत्वोरित्यादिसप्ताहान्वृत्तुसधिरिति स्मृतः ॥

**सर्वेषामेव रोगणां निदानं कुपिता मलाः ॥
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाऽहितसेवनम् ॥ १६ ॥**

भाषा—अब पूर्व चतुर्थ क्लोककी व्याख्यामें कहे निदानके दो भैद कौन सभि-कृष्ट और विप्रकृष्ट तिसमें सञ्चिकृष्ट कौन वातादिक सभीपके कारण करके सर्व रोगोंका कारण हैं सो कहते हैं । सर्वेषामिति । कुपित भये जो मल (वात, पित्त, कफ) ये संपूर्ण रोगोंके कारण होते हैं और उन वात, पित्त, कफ दोषोंके कोपका कारण अनेक प्रकारका जो अपथ्यसेवन करना सो है ॥

**निदानर्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते ॥
तद्यथा ज्वरसंतापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते ॥ १६ ॥
रक्तपित्तज्वरस्ताभ्यां श्वासश्वाप्युपजायते ॥
पुणीहाभिवृद्धच्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ १७ ॥
अश्वाभ्यो जाठरं दुःखं गुलमश्वाप्युपजायते ॥
प्रतिश्यायादथो कासः कासात्संजायते क्षयः ॥
क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोषस्याप्युपजायते ॥ १८ ॥**

भाषा—कोई प्रश्न करे कि जो पूर्व कह आये हैं यही निदान है अथवा इसके अति-रिक्त और इसलिये कहते हैं रोगका रोगमी निदान होता है अर्थात् जो निदानसे कार्य होता है वही रोगसेभी होता है इसवास्ते दृष्टांत देकर कहते हैं । यद्यथेति । जैसे ज्वर संतापसे रक्तपित्त, प्रकट होता है और रक्तपित्तसे ज्वर और रक्तपित्तज्वरसे श्वास प्रगट होता है और प्लीहाके बढ़नेसे जैसे उदररोग और उदररोगसे सूजन और बवासीरसे जैसा उदररोग और गुलम (गोला) रोग और पीनसरोगसे खांसी तथा खांसीसे ओजप्रभृति धातुओंका क्षय होता है और यह क्षयरोग (राजयद्धमा) जो सम्पूर्ण रोगमें राजा है उसको प्रगट करे है ॥

ते पूर्वे केवला रोगाः पश्चाद्वेत्वर्थकारिणः ॥ १९ ॥

भाषा—वे रोग प्रथम स्वतंत्र थे और जब बल मिल गया तौ वेही हेत्वर्थकारी अर्थात् रोगके उत्पन्न करनेवाले होते हैं जैसे ज्वरसे रक्तपित्त होता है ॥

**काञ्चिद्दिरोगो रोगस्य हेतुभूत्वा प्रशाम्यति ॥
न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ॥
एवं कुच्छ्रतमा नृणां दृश्यते व्याधिसंकराः ॥ २० ॥**

भाषा—अब उसी रोग उत्पन्न करनेवाली व्याधिकी विचित्रता दिखाते हैं । जैसे कोई एक दूसरेका कारण हो अर्थात् दूसरे रोगको प्रगट कर आप शांत हो जाता है । जैसे पीनसरोग आप शांत नहीं होने पाता और खासी उत्पन्न होती है । और कोई रोग दूसरे रोगको प्रकट कर आप जैसाका तैसा बना रहता है । जैसे बवासीर नहीं जाय और गुलम तथा उदररोग पैदा होते हैं । इस प्रकार मनुष्योंको घोर क्षेत्रदायक मिले हुए रोग लिखाते हैं विशेषकर चिकित्सा विरुद्ध होनेसे ये रोग कृच्छ्रतम होते हैं ॥

तस्माद्यत्नेन सद्वैरिच्छिद्धिः सिद्धिमुत्तमाम् ॥

ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः ॥ २९ ॥

भाषा—अब कहे भये निदानादिपंचकद्वारा रोगनिवृत्तिरूप सिद्धिकी इच्छा करके अवश्य जानने योग्यको कहते हैं । तस्मादिति । इसी कारण उत्तम सिद्धि हमको प्राप्त हो ऐसी जिन सद्वैयोंकी इच्छा है उनको ज्वरादीरोगोंका निदान जो आगे कहते हैं वह यत्नसे जानना चाहिये ॥

इति श्रीमाघवभार्यदीपिकाया सर्वरोगनिदानादिपञ्चककथन समाप्तम् ॥ १ ॥

अथ ज्वरनिदानम् ।

अब सर्व देहके रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसे, बली, देह इन्द्रिय मनको तपायमान करनेसे, जन्म मरणका कारण होनेसे, स्थावर जंगम प्राणियोंमें स्थिति होनेसे सम्पूर्ण शरीरके रोगोंमें चरक मुश्शुतादि आचार्योंने ज्वर राजा कहा है ॥

तदुक्तं चरके ।

देहोन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगायजो बली ॥

ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा ॥ १ ॥

भाषा—देह इन्द्रिय मनको तपायमान करनेसे, रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसे बलवान् ज्वरको सब रोगोंमें प्रधानता है ॥

ज्वरकी उत्पत्ति ।

दुक्षापमानसंकुद्धरुद्रनिःशाससम्भवः ॥ -

ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वंद्वसंघाताग्नुजः समृतः ॥ २ ॥

भाषा—दक्षप्रजापविकृत तिरस्कारसे क्रोधित श्रीरुद्र भगवान्के शाससे उत्पन्न

जो ज्वर सो आठ प्रकारका है । वात, पित्त, कफ इनसे ३, द्वंद्वज २, सत्रिपात १ और आगंतुज १ ऐसे मिलकर संक्षेपसे ज्वर आठ प्रकारका है ॥

इस श्लोकमे 'निःश्वाससम्बवः' यह जो पद धरा है सो श्वास इस जगह कोधके लक्षण करके कहा है किंतु ज्वरकी श्वासमे उत्पत्ति नहीं है क्योंकि जैसे गुश्चूतमें लिखा है यथा " रुद्रक्षेपाग्निसंभूतः सर्वभूतप्रतापनः । " इति । अर्थात् कोधित रुद्रने ललाटस्थ तीसरे अग्निमय चक्षु (नेत्र) को स्पर्श कर आग्नेयवाण निर्माण किया तथा च चरके " स्पृष्टा ललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वा तानसुग्राह्यभुः । वाणं क्रोधाग्नि-संतसमसृजच्छवुनाशनम् ॥ " इत्यादिक वाक्योंसे ज्वरमात्रकी पित्तप्रकृति जाननी । प्रयोजन यह है कि सर्वज्ञरमें पित्तकी विरोधी क्रिया न को । सो वाग्भटने कहा है यथा— "उष्मा पित्तादते नाभित नात्युष्माणं विना ज्वरः । तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम् ॥ " इदि । अर्थात् गरमी पित्तके विना नहीं होती और ज्वर गरमीके विना नहीं होवे इसीसे ज्वरमें पित्तविरुद्ध क्रिया न करे और पित्तज्ञरमें विशेषकरके पित्तविरुद्ध क्रिया त्याज्य है । अन्य आचार्य कहते हैं कि श्रीरुद्रसे उत्पत्ति होनेसे ज्वर देवता है इसलिये ज्वरका पूजन करनेसे शांत होता है जैसे विदेहका वाक्य है । " ज्वरस्तु पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यति । " और ज्वरका स्वल्पभी हारिवंशमें लिखा है । यथा " ज्वरविपादविक्षिराः पद्मुजौ नवलोचनः । भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥ " इति । अर्थात् ज्वरके तीन चरण, तीन मस्तक, छः भुजा, नव नेत्र, भस्मयुक्त देह, रौद्र, कालकाभी काल यमराजके समान है ॥

ज्वरसंप्राप्ति ।

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाथ्रयाः ॥

बहिर्निररुद्ध कोष्ठार्थं ज्वरदाः स्थू रसानुगाः ॥ ३ ॥

भाषा-मिथ्या चाहार । देश काल प्रकृति आदिसे विरुद्ध और संयोगविरुद्ध भोजन) मिथ्याविहार (देहके मुरुषार्थसे विशेष कामना करना) इन कारणोंसे हुए हुए जो दोष (वात, पित्त, कफ) सो नाभिस्तनके बीच औमाशयमें प्राप्त हो रसको विगाढ़कर और कोष्ठस्थानमें रहती जो अग्नि उसको देहवे बाहर निकाल करके प्रगट करनेवाले होते हैं ॥

यह संप्राप्ति शारीरिकरोगोंकी है आगंतुजकी नहीं है क्योंकि आगंतुज रोगोंका तो

- १ " अकाले चातिनात्रं च असाध्य यच्च भोजनम् । विषमाशन च यदुक्तं मिथ्या हारः स उच्यते ॥ " इस श्लोकमें हिन्दी और फारसीकी ऐक्यता दिखाई है ।
- २ " अशक्तः कुरुते कर्म शक्तिमात्र करोति च । मिथ्याविहार इत्युक्तः सदा चैव विवर्जयेत् ॥ " ३ " नाभिस्तनान्तरं जन्तोरामाशय इति रूपूतः । "

व्यथापूर्वक वातादि दोषोंके रोकनेसे प्रयोजन है। जैसे सुश्रूतमें लिखा है श्रम और चोटके लगनेसे देहधारियोंके देहमें कुपित हुआ वात सब देहको परिपूर्ण कर ज्वरको पैदा करता है। और चरकमेंभी लिखा है कि चोटके लगनेसे प्रगट वात रुधिरको बिगड़ व्यथा और शोष तथा विवर्णयुक्त वातज्वरको प्रगट करता है। शंका-क्यों जी? आगंतुकभी शारीरोगही है क्योंकि आगंतुकज्वरमेंभी गरमी रहती है। क्योंकि “उष्मा पित्ताद्वते नास्ति” इत्यादि वाक्य प्रमाण होनेसे। उच्चर-ये जो तुमने कहा सो ठीक है परन्तु इस आगंतुकरोगोंमें पित्तकी पूर्वकालसेही उत्पत्ति नहीं होती पीछे उत्पत्ति होती है इस आगंतुकरोगोंको शारीरत्व नहीं है। इस श्लोकमें ‘कोषाग्निम्। यह जो पद धरा है सो धातुकी अग्निके निवारणार्थ है अर्थात् जब धात्वाग्नि बाहर आ जावेगी तो दोषोंका पचना नहीं हो सके और दोष पचें बिना ज्वर शांत नहीं होवेगा। इसलिये इसका अर्थ ऐसा न करना चाहिये। ‘वहिनिरस्य कोषाग्निम्’ कोठेके अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर ऐसा अर्थ करना चाहिये ॥

ज्वरके लक्षण ।

स्वेदावरोधः संतापः सर्वाग्नयहृणं तथा ॥

युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपादिश्यते ॥ ४ ॥

भाषा-जिस रोगमें पसीना न अवे, देहमें सन्ताप और सर्वाग्नमें पीड़ा ये एकही समय हों उसको ज्वर ऐसे कहते हैं। शंका-क्योंजी! पित्तज्वरमें तो पसीने आते हैं तो इस श्लोकमें विरुद्धता आती है। इसपर जययादिक उत्तर लिखते हैं कि स्वेदावरोध कहिये “स्विद्यते अनेनेति स्वेदः” इस व्युत्पत्तिकरके स्वेद कहिये अग्नि तिसका अवरोध कहिये दोषकी व्याप्ति ऐसा अर्थ करनेसे श्लोकार्थमें विरुद्ध नहीं पड़ता ॥

ज्वरका पूर्वरूप ।

श्रमोऽरतिविवर्णत्वं वैरस्यं नयनपूष्वः ॥

इच्छाद्वेषो मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ५ ॥

जृम्भांगमदौ गुरुता रोमद्वेषोऽरुचिस्तमः ॥

अप्रहृष्टश्च शीतं च भवत्युत्पित्सति ज्वरे ॥ ६ ॥

भाषा-कारण बिनाही श्रम, कर्म करनेमें उत्साह न हो अथवा खेलनेमें अरुचि, देहमें मलीनता, मुखमें विरसता, नेत्र अशुपातयुक्त, सर्दी, गर्मी, पवन इनकी वारं-

बार इच्छा होना और बारंबार द्वेष हो इसमें जो आदि शब्द है उससे जल और अग्निका ग्रहण है अर्थात् इनकी बार २ इच्छा और द्वेष यह चरकका मत है। तदुक्तं चरके—“ ज्वलनातपवाय्वंभृमत्तद्वेषाभिलापिता । ” इति । ‘ अन्ये तु शैत्योष्मसाध्यर्याजलानलौ गृह्णते ते तु आदिशब्देन शयनादिकं मन्यन्ते ’ और अन्य आचारी सदीं गरमीके साधर्म्यसे जल अग्निको कहते हैं और वे आदिशब्दसे शयन आदि बानते हैं। जंभाई, अंगोंका टूटना, देह भारी, रोमांचोंका खड़ा होना, अन्नमें अरुचि अंधेरेका आना, आनन्दकी निवृत्ति, सरदीका लगना । शंका-क्योंजी ! पूर्व कह आये कि सरदी गरमीकी बार २ इच्छा और बार बार द्वेष फिर पुनः शोत पद क्यों धरा ? उत्तर-इस पदके धरनेसे मरदीकी आधिक्यता दिखाई अर्थात् सरदी विशेष लगे ये लक्षण जरके पूर्व होते हैं ॥

ये माधवाचार्यने सामान्य पूर्वरूपके लक्षण सुश्रुतोक्त लिखे हैं विशिष्ट पूर्वरूपके लक्षण नहीं लिखे सो हम ग्रन्थांतरसे लिखते हैं-

सामान्यतो विशेषात् जृंभात्यर्थं सभीरणात् ॥

पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नान्नाभिवन्दनम् ॥ ७ ॥

भाषा-विशेषकरके वातज्वरमें जंभाई बहुत आती है, पित्तज्वरमें नेत्रोंमें दाह हो और कफज्वरमें अन्नमें अरुचि होती है यह श्लोक क्षेपक है। पग्न्तु बहुत पुस्तकोंमें मूलके साथ लिखा है ॥

वातज्वरके लक्षण ।

वेपथुर्विषमो वेगः कंठौष्ठमुखश्चोषणम् ॥

निद्रानाशः क्षवः स्तंभो गात्राणां रौक्षयमेव च ॥ ८ ॥

शिरोहृद्दात्ररुग्वक्वैरस्यं गाढविद्कता ॥

शूलाध्माने जृंभणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥ ९ ॥

भाषा-कंप होना, जरका लिप्तमेव, कण्ठ होठ मुख इनका सूखना, निद्राका नाश, छींकका न आना, देहका रुखापना, चकारसे नेत्र विष्टा मूत्र इनका काला होना, और आचारी “ रौक्षमेव च ” इस जगह “ इयावांगमलमूत्रता ” ऐसा पाठ कहते हैं और मस्तक, हृदय, गात्र इनमें पीड़ा । कोई शंका करें कि गात्रपदके धरनेसे ही दस्तक हृदय आदिका बोध हो गया फिर मस्तक और हृदय पद क्यों धरा ? उत्तर-ये दोनों पदके धरनेसे इनमें दर्दकी आधिक्यता दिखाई अर्थात् मस्तक हृदयमें बहुत पीड़ा होय, मुखकी विरसता, मलका रुकना, शूल, अफरा, जम्माई ये लक्षण वातज्वरके होते हैं ॥

पित्तज्वरके लक्षण ।

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राऽल्पत्वं तथा वामिः ॥
कंठौषुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ १० ॥
प्रलापो वक्ककटुता मूच्छीं दाहो मदस्तृषा ॥
पीतविषमूत्रनेत्रत्वक् पैत्तिके भ्रम एव च ॥ ११ ॥

भाषा-ज्वरका तीक्ष्णवेग हो, आतिसार (यानी पित्तके वेगसे दस्तका पतला होना नहीं आतिसार रोग हो), थोड़ी निद्रा आवे, पित्तको कफके स्थानमे पहुँच-नेसे बमनका होना, कंठ सुख नाक इनका पक्ना और पसीनोंका आना, बड़बडाना, मुखमें कड़ा आट, मूच्छी, दाह, उन्मत्तपना, प्यास, विष्टा मूत्र नेत्र देहकी त्वचा इनका पीला होना, तथा भ्रम ये लक्षण पित्तज्वरमें होते हैं । शंका-क्षयोंजी ! भ्रमको वातविकारमें लिखा है इससे यह तो वातका धर्म है फिर पित्तके विकारमें भ्रमशब्द क्यों धरा ? उत्तर-तुमने कहा सो ठीक है परंतु रोग पक्ही दोषमेही नहीं प्रगट होवे किन्तु अनेक दोषोंसे होय है सो लिखा है “ न रोगोऽप्येकघोषजः ” इति और “ पैत्तिके भ्रम एव च ” इस श्लोकमें चकार जो पड़ा है इससे इस श्लोकमें जो नहीं कहे कौनकी तीव्र गरमी, लाल चकत्ते, शीतकी इच्छा, दाह, अरुचि इत्यादि जानने ॥

कफज्वरके लक्षण ।

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता ॥
शुक्लमूत्रपुरीषत्वत्क्लवस्तम्भस्तृष्टिरथापि च ॥ १२ ॥
गौरवं शीतमुक्तेद्वा रोमहृषोऽतिनिद्रता ॥
प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफनेऽक्षणोश्च शुक्लता ॥ १३ ॥

भाषा-स्तैमित्य (गीले कपडेसे देहको आच्छादित कर ढेनेसे जैसा हो ऐसा मालुम हो), ज्वरका मंद वेग, आलस्य, मुख मीठा, मल मूत्र सफेद, देहका जकड़ना, तृप्तसरीखा, अग्रिमें अरुचि, देह भारी, शीत लगे, ओकारी आवे । अन्य आचार्य कहते हैं कि कफका थूकना, रोमांचका होना, अविनिद्रा, रसके वहनेवाली नाड़ीके मार्गोंका रुकना, दस्तका थोड़ा उत्तरना, पसीना, मुखमें नोनकासा स्वाद हो, देहका थोड़ा गरम होना, रहका होना, लारका गिरना, मुखपाल तथा मुखनाकमें कफका पड़ना, अरुचि, खांसी, नेत्र श्वेत हो ये लक्षण कफज्वरमें होते हैं । “ स्तंभ-स्तृष्टिरथापि च ” इस पदमें जो चकार है उससे देहमें पीड़ा, शीतका लगना, लारका गिरना, बमन, तंत्रिकरोग, हृदय लिंगासासा, गरमी प्यासी लगे, मन्दायि इत्यादि जानने ॥

वातपित्तज्वरके लक्षण ।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्रनाशः शिरोरुजा ॥
कंठास्यशोषो वमथू रोमहृषोऽहृचिस्तमः ॥
पर्वभेदश्व जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ १४ ॥

भाषा-प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडा, कंठ, मुखका सूखना, वमन, रोमांच, अरुचि, अंधकारदर्शन, संधियोंमें पीडा और जंभाई ये वातपित्त-ज्वरके लक्षण हैं ॥

वातकफज्वरके लक्षण ।

रूतैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च ॥ १५ ॥
शिरोग्रहः प्रतिइयायः कासः स्वेदाप्रवर्तनम् ॥
संतापो मध्यवेगश्व वातश्वेष्मज्वराकृतिः ॥ १६ ॥

भाषा-स्तैमित्य नाम गीले कपडेसे देहको ढकनेसे जैसा हो ऐसा मालूम हो, संधियोंमें फूटनी, निद्रा, देह भारी, मस्तक भारी, नाकसे पानी गिरे, खांसी, पसी-नेका आना, शरीरमें दाह, ज्वरका मध्यमवेग ये वातश्वेष्मज्वरके लक्षण हैं ॥

पित्तकफज्वरके लक्षण ।

लिप्ततिक्तास्यता तंद्रा भोह द्वासोऽहृचिस्तृष्णा ॥

मुहुर्दाहो मुहुः शीतं श्वेष्मपित्तज्वराकृतिः ॥ १७ ॥

भाषा-मुख कफसे लिप्त हो तथा पित्तके जोरसे मुखसे कड़आट तंद्रा, मूर्च्छा, खांसी, अरुचि, प्यास, वारंवार दाह हो और वारंवार शीतका लगना ये कफपित्त-ज्वरके लक्षण हैं, स्तंभ (देहका जकडना), पसीना, कफ, पित्तका गिरना ये सुश्रु-तोक्त लक्षण औरभी जानने चाहिये ॥

सत्रिपातज्वरके लक्षण ।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसंधिशिरोरुजा ॥ सप्तावे कलुषे रक्ते
निर्भुग्ने चापि लोचने ॥ १८ ॥ स्वस्वनौ सरुजौ कण्ठौ कंठः
शूकरिवावृतः ॥ तंद्रा भोहः प्रलापश्व कासः श्वासोऽहृचिर्भ्रमः
॥ १९ ॥ परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्वस्तांगता परम् ॥ छीवनं
रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिथ्रितस्य च ॥ २० ॥ शिरसो लांडनं
तृष्णा निद्रानाशो ह्वादि व्यथा ॥ स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिरादर्श-

नमत्पशः ॥ २१ ॥ कृशत्वं नातिग्राणां सततं क्षण्ठकूज-
नम् ॥ कोष्ठानां इयावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम् ॥ २२ ॥
मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च ॥ चिरत्पाकश्च दो-
षाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ २३ ॥

भाषा—अक्समात् क्षणमें दाह, क्षणभरमें शीत लगे, हाड संधि मस्तक इनमें शूल. अश्रुपातयुक्त काले और लाल तथा फटेसे नेत्र हो जावे (अथवा टेढे नेत्र हों यह जैयटका मत है), कानोंमें शब्द और पीड़ा हो, कंठमें कांटे पड़ जाय, तंद्रा. बेहोशी हो, अनर्थ बोले, खांसी, श्वास, असुख, भ्रम ये हों, जीभ परिदृग्घब्द (काली) और खर्दीरी गोजीभके समान तथा शिथिल (लठर) हो, पित्त और रुधिर मिला कफ थूके, शिरको इधर उधर पटके, तृष्णा बहुत लगे, निद्राका नाश हो. हृदयमें पीड़ा, पसीना, मूत्र मल इनकां बहुत कालमें थोड़ा उत्तरना, दोषोंके पूर्ण होनेसे देहका कृश न होना कंठमें कफका निरंतर बोलना, रुधिरसे काले लाल कोँडे और चक्कोंका होना, शब्द बहुत मंद निकले, कान नाक मुख आदि छिद्रोंका पकना, पेटका भारी होना, बात पित्त कफ इनका देहमें पाक हो “ उदासन च ” इस पदमें जो चकार है इससे बाघभटने जो लिखे हैं कौन ? शीतका लगना, दिनमें घोर निद्राका आना, नित्य रात्रिमें जागना अथवा निद्रा कभी आवेही नहीं, पसीना बहुत आवे और नहीं आवे, कभी गान करे, कभी नाचे, हँसे, रोवे और चेष्टा पलट जाय इत्यादि जानने । ये सन्निपातज्वरके लक्षण जानने ॥ १

जंका—क्योंजी ! बातादिक दोषोंके परस्पर विरुद्ध गुण हैं । फिर उनको एकत्र मिलकर एकही कार्यका करना नहीं घट सके हैं. क्योंकि परस्पर विरुद्ध गुण होनेसे जैसे अति और जलके विरुद्ध गुण होनेसे एकही कार्य नहीं हो सके । ऐसेही बात पित्त कफके विरुद्ध गुण हैं । फिर ये मिलकर कैसे सन्निपातरूपी विकारको ग्रहण करते हैं ? उत्तर—इसका समाधान दृढ़वल्त आचार्यने इस ग्रकार कहा है कि गुण विरुद्धभी बात पित्त कफ दोष हैं तथापि एक संग उत्पन्न होनेसे तथा परस्पर समान गुण होनेसे एक दूसरे दोषको शात नहीं कर सकते हैं । जैसे सर्पका विष सर्पको वाधक नहीं । गदाधर आचार्यने इसमें और हेतु कहे हैं । जैसे दैवकी इच्छासे और दोषोंके स्वभावसे तथा विरुद्ध गुण होनेसे सन्निपातमें एक दोष दूसरे दोषका

१ कोढके लक्षण भालुकीने कहे हैं यथा—“ वरटीदृशसकाशः कंडुमान् लोहितोऽस्त्रक-
फलपित्तवान् । क्षणिकोत्पत्तिविनाशः कोढ इत्यभिधीयते सद्धिः ॥ ” इति । २ “ विरुद्धैरपि
न त्वेते गुणैर्ग्रन्थितं परस्परम् । दोषाः सहनसाम्यत्वाद्विष घोरमहीनिव ॥ ३ “ दैवात्
दोषस्वभावाद्वा दोषाणां सान्निपातिके । विरुद्धश्च गुणस्तीश्च लोपघातः परस्परम् ॥ ”

नाशक नहीं है । शंका-क्योंजी ! वातपित्तकफका अलग कालमें संचय होता है और अलग अलग कोष होता है । इनका एकही कालमें प्रगट होना असंभव है तो कहिये तीनों दोष मिलकर कैसे सन्निपात ज्वरको प्रगट करते हैं ? उत्तर-ये त्रिदोष प्रगट कारक कारण औषध अन्नविहारके बलकरके एकही कालमें इन तीनों दोषोंका प्रकोप होता है यह सिद्धांत है ॥

सन्निपातोंके भेद ।

सुश्रुत वाग्मटके मतसे सन्निपात एकही प्रकारका है परंतु और आचार्योंके मतसे उल्वणादि भेदकरके ५२ प्रकारका है । यथा-

अभः पिपासा दाहश्च गौरवं शिरसोऽतिरुक्तं ॥ वातपित्तोल्वणे
विद्याञ्जिङ्गं मंदकफे ज्वरे ॥ १ ॥ शैत्यं क्लासोऽरुचिस्तंद्रा पिपा-
सादाहस्तद्वयथाः ॥ वातश्वेष्मोल्वणे व्याधी लिङ्गपित्तानुगे विदुः
॥ २ ॥ छर्दिः शैत्यं शुहुर्दाहस्तरुज्ञा मोहोऽस्थिवेदना ॥ मंदवाते
व्यवस्थान्ति लिङ्गं पित्तकफोल्वणे ॥ ३ ॥ सन्ध्यास्थिशिरसः
शूलं प्रलापो गौरवं श्रगः ॥ वातोल्वणे स्याद्वानुगे तृष्णा कण्ठा-
स्यशुष्कता ॥ ४ ॥ रक्तविष्णवृत्रता दाहः स्वेदतृणावलक्षयः ॥
मूर्छा चोति त्रिदोषे स्थाञ्जिङ्गं पित्ते गरीयसि ॥ ५ ॥ आलस्था-
रुचिहृलासदाहस्तद्वयरतिप्रबैः ॥ कफोल्वणं सन्निपातं तंद्राकासे
न चादिशेत् ॥ ६ ॥ प्रतिइयाच्छर्दिरालस्यं तंद्रारुच्याद्विमाद्व-
वम् ॥ हीनवाते पित्तमध्ये लिङ्गं शुष्माधिके मतम् ॥ ७ ॥
हारिद्रसूत्रनेत्रत्वं दाहस्तरुज्ञा श्रमोऽरुचिः ॥ हीनवाते मध्यकफे
लिङ्गं पित्ताधिके मतम् ॥ ८ ॥ शिरोरुग्वेपथुः श्वासप्रलापच्छ-
र्द्धरोचकाः ॥ हीनपित्ते मध्यकफे लिङ्गं वाताधिके मतम् ॥ ९ ॥
शोतकं गौरवं तन्द्रा प्रलापोऽस्थिशिरोऽतिरुक्तं ॥ हीनपित्ते वा-
तमध्ये लिङ्गं शुष्माधिके पिदुः ॥ १० ॥ वचोभेदोऽग्निदौर्वल्यं
तृष्णा दाहोऽरुचिर्भ्रमः ॥ कफहीने वातमध्ये लिङ्गं पित्ताधिके
पिदुः ॥ ११ ॥ श्वासः कासप्रतिइयायौ मुखशोषोऽतिपार्थरुक्तं ॥
कफहीने पित्तमध्ये लिङ्गं वाताधिके मतम् ॥ १२ ॥

ये उल्बणादि भेद चरकके मतसे कहे हैं परन्तु मालुकी आचार्यने अपने श्रंथर्मे उल्बणादि लक्षण औरही प्रकारसे कहे हैं । यथा—

वातोष्टिथिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ तस्य ज्वरोऽङ्गम-
दैस्तृदत्तालुशोषप्रमीलकाः ॥ १३ ॥ आध्मानतन्द्रावरुचिश्वास-
कासप्रमथ्रमाः ॥ पित्तश्वेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति
॥ १४ ॥ अन्तर्दाहो वहिः शीतस्तस्य तन्द्रा विवर्द्धते ॥ तु द्यते
दक्षिणं पार्श्वमुरःशीष्णगलयहाः ॥ १५ ॥ निष्ठीवेत्कफपित्तं च
तृष्णा कण्ठश्च दूयते ॥ विइभेदश्वासहिकाश्च बाध्यन्ते सप्रमी-
लकाः ॥ १६ ॥ विधुफलगू च तौ नामा सन्निपाताबुदाहृतौ ॥
श्वेष्मानिलाधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ १७ ॥ तस्य
शीतज्वरो निद्रा क्षुत्तृष्णा पार्श्वसंग्रहः ॥ शिरोगौरवमालस्य भ-
न्यास्तम्भप्रमीलकाः ॥ १८ ॥ उदरं तु द्यते चास्य कटी बल्ति-
श्च दूयते ॥ सन्निपातः स विशेयो मकरीति सुदारुणः ॥ १९ ॥
वातोल्बणः सन्निपातो यस्य जन्तोः प्रकुप्यति ॥ तस्य तृष्णा
ज्वररुलानिपार्श्वरुद्दृष्टिसंशयाः ॥ २० ॥ पिण्डिकोद्देष्टनं दाह
ऊरुसादो वलक्षयः ॥ सरक्तं चास्य विष्मूत्रं शूलं निद्राविपर्य-
यः ॥ २१ ॥ निर्भिद्यते गुरुं चास्य वस्तिश्च परिकृष्यति ॥
आयम्यते भिद्यते च हिक्तते विलपत्यपि ॥ २२ ॥ सूर्च्छति
स्फार्यते रौति नामा विस्फुरकः सृतः ॥ पित्तोल्बणः सन्निपातो
यस्य जन्तोः प्रकुप्यति ॥ २३ ॥ तस्य दाहज्वरो घोरो बहिर-
न्तश्च वर्द्धते ॥ शीतं च सेवमानस्य कुप्यतः कफमारुतौ ॥ २४ ॥
ततश्चैनं प्रधावन्ते हिक्ताश्वासप्रमीलकाः ॥ विपूङ्गिका पर्वभेदः
प्रलापो गौरवं छुमः ॥ २५ ॥ नाभिपार्श्वरुजा तस्य स्विन्नस्याशु
विवर्द्धते ॥ स्विद्यमानस्य रक्तं च स्रोतोभ्यः संप्रपद्यते ॥ २६ ॥
शूलेन पीड्यमानस्य तृष्णा दाहश्च वर्द्धते ॥ असाध्यसन्निपातो-
इयं शीघ्रकारीति कथ्यते ॥ २७ ॥ न हि जीवत्यहोरात्रमेतेना-

विष्वविश्रहः ॥ कफोल्बणः सन्निपातो यस्य जन्तोः प्रकुप्याते
॥ २८ ॥ तस्य शीतज्वरस्वप्नौरवालस्यतन्द्रिकाः ॥ छदिष्व-
च्छातृष्णारोचकहृष्टहाः ॥ ष्ठीवनं मुखमाधुर्यं श्रोत्र-
वाग्वास्त्रिनियहः ॥ २९ ॥

मतान्तरभेद ।

कुम्भीपाकः पौर्णनावः प्रलापी अन्तर्दाहो दण्डपातोऽतकश्च ॥
एणीदाहश्चाथ हारिद्रसंज्ञो भेदा एते सन्निपातज्वरस्य ॥ १ ॥
अजघोषभूतहासौ यन्त्रापीडश्च संन्यासः ॥

संशोषी च विशेषास्तस्यैवोक्तास्त्रयोदश च ॥ २ ॥

भावा—१ कुम्भीपाक, २ पौर्णनाव, ३ प्रलापी, ४ अन्तर्दाह, ५ दण्डपात,
६ अन्तक, ७ एणीदाह, ८ हारिद्रसंज्ञक, ९ अजघोष, १० भूतहास, ११ यन्त्रापीड,
१२ संन्यास, १३ संशोषी ये तेरह प्रकारके सन्निपात हैं। इन तेरहके क्रमसे
लक्षण लिखे हैं ॥

कुम्भीपाक ।

घोणाविवरगलद्वुशोणासितलोदितं सार्तं ॥
विकुठमस्तकमभितः कुम्भीपाकेन पीडितं विद्यात् ॥ ३ ॥
पौर्णनाव ।

उत्क्षिप्य यः रुमंगं क्षिपत्यधस्तान्नितांतमुच्छ्वसति ॥
तं पौर्णनावजुष्टं विचित्रकष्टं विजानीयात् ॥ २ ॥

प्रलापी ।

स्वेदध्रमांगमर्दाः कंपो दवथुर्वर्षी व्यथा कण्ठे ॥
गाव्रं च गुर्वतीदं प्रलापिजुष्टस्य जायते लिंगम् ॥ ३ ॥
अन्तर्दाह ।

अन्तर्दाहः शैत्यं वहिश्च यस्यातिसंततः श्वासः ॥
अंगमिव दग्धकल्प सोऽतर्दाहादितः काथितः ॥ ४ ॥
दण्डपात ।

नक्तं दिवा न निद्रामुपैति गृह्णाति मूढधीर्नभसः ॥
उत्थाय दण्डपाते भ्रमातुरः सर्वतो भ्रमति ॥ ५ ॥

अन्तक ।

संपूर्य्यते शरीरं अन्थिभिरभितस्तथोदरं महता ॥
श्वासातुरस्य सततं विचेतनस्यांतकार्तस्य ॥ ६ ॥

एणीदाह ।

परिधावतीव गात्रे रुक्षपात्रे भुजगपतंगहरिणगणः ॥
वेपथुमतः सदाहस्यैणीदाहज्वरात्तस्य ॥ ७ ॥

हारिद्र ।

यस्यातिपीतमंगं नयने सुतरां मलं तपोऽप्यधिकम् ॥
दाहोऽतिशीतता वाहिरस्य च हारिद्रको ज्ञेयः ॥ ८ ॥

अजघोष ।

छण्डकशरीरगंधः स्कंधरुजावान्निरुद्धगलरंधः ॥
अजघोषसन्निपातादातान्न्राक्षः पुमान्धवति ॥ ९ ॥

भूतहास ।

शब्दादीनधिगच्छति न स्वान्विषयात् यदिदियग्रामः ॥
हसति प्रछपति पहवं स ज्ञेयो भूतहासात्तः ॥ १० ॥

यन्त्रापीड ।

येन सुहुञ्जरवेगाद्यंतेवावपीञ्जते गात्रम् ॥
स्तं पीतं च वमेद्यन्त्रापीडः स विज्ञेयः ॥ ११ ॥

सन्यास ।

अतिसरति दमति कूजति गात्राण्यभिताश्चिरं नरः क्षिपति ॥
सन्याससन्निपाते प्रछपति भुग्नाक्षिमण्डलो भवति ॥ १२ ॥

संशोषी ।

मेचकवपुरतिमेचकलोचनयुगलोऽवलोत्सर्गात् ॥
संशोषिणि सितपिटकामण्डलयुक्तो ज्वरो भवति ॥ १३ ॥

इति कुम्भीणकादीनां त्रयोदशानां लक्षणानि ।

सन्निपातके विस्फारकादि १६ भेदोंको कहते हैं ।

१ विस्फारक, २ शीघ्रकारी, ३ कम्पन, ४ बभू, ५ विरुद्धारब्ध, ६ दर्करारब्ध, ७ मल्लू, ८ कूटपालक, ९ संमोहक, १० पाकल, ११ याम्ब, १२ संग्राम, १३ क्रकच, १४ कर्णोटक, १५ दारिक, १६ व्यालाकृति इन १६ सन्निपातोंके लक्षण ग्रन्थ बढ़नेके भयसे हमने नहीं लिखे । अब प्रसंगवश सम्पूर्ण सन्निपातोंकी उत्पत्ति और सम्प्राप्ति ग्रन्थांतरोंसे लिखते हैं ॥

अम्लस्निग्धोष्णतीक्ष्णैः कटुमधुरसुरातापसेवाकपायैः

कामक्रोधातिरूक्षेषुरुतरपिशिताहरनीहरकृतिः ॥

शोकव्यायामर्चितश्वहगणवानेतात्यंतसंगप्रसङ्गः

प्रायः कुप्यन्ति पुंसां मधुसमयश्वरद्वर्षणे सन्निपाताः ॥ १ ॥

भाषा—खट्टा, चिकना, गरम, तीखा, कडुआ, मीठा, मद, सूर्यकी घामसे आदि ले तापका सेवन, कषेला, काम, क्रोध, रुक्ष, भारी, मांस आदि पदार्थका सेवन, नीहार, शीत, शोक, दण्ड, कसरत आदि श्रम, चिंता, भूतपिशाचकी वाधा, अत्यंत खीसंग इन कारणसे और चैत्र, वैशाख, आश्विन, कार्तिक, श्रावण, भाद्रपद इन महीनोंमें मनुष्योंके प्रायः सन्निपातोंका कोप होता है ॥

आमो ह्याहारदोषात्प्रथममुपचितो हंति वर्हिं शरीरे

श्वेष्मत्वं याति शुक्तं सक्षलभपि ततोऽसौ कफो वायुदुष्टः ॥

स्नोतांस्यापूर्य रुध्यादनिलमथ मरुत्कोपयोत्पत्तमंतः

संमूछ्याऽन्योऽन्यमेते प्रवलमिति नृणां कुर्वते सन्निपातम् ॥ २ ॥

भाषा—आहारके दोषसे प्रथम संग्रहीत जो आम सो देहकी जायिको ज्ञान्त करे और मनुष्य जो कुछ खाय सो सब कफ हो जाय और फिर इस कफको वायु दूषित करे तब ये पवनके बहनेवाली नाडियोंके मार्गमें प्राप्त हो उनको रोक दे तब पवन पित्तको कुपित करे ऐसे तीनों दोष अन्योन्य कुपित हो मनुष्योंके प्रवल सन्निपात रोग प्रगट करे हैं ॥

अब संधिकादि तेरह सन्निपात और उनके लक्षण पृथक् लिखते हैं ।

संधिकश्वांतकश्वैव रुग्दाहश्चित्तविभ्रमः ॥ शीताङ्गस्तंद्रिकः

प्रोक्तः कंठकुञ्जश्च कर्णकः ॥ ३ ॥ विरुद्धातो भुमनेत्रश्च रक्तष्टी-

वी प्रलापकः ॥ जिह्वकश्वेत्यभिन्यासः सन्निपातास्त्रयोदशा ॥ ४ ॥

भाषा—१ संधिक, २ अंतक, ३ रुगदाह, ४ चित्तविभ्रम, ५ शीतांग, ६ तंद्रिक, ७ कण्ठकुब्ज, ८ कर्णक, ९ मुग्नेत्र, १० रक्तष्टीवी, ११ प्रलापक, १२ जिह्वक, १३ अभिन्यास ये तेरह सन्निपात कहे हैं ॥

अथ तेरह सन्निपातोंकी मर्यादा ।

संधिके वासराः सप्त चान्तके दश वासराः ॥ रुगदाहे विंशति-
ज्ञेया वह्यष्टौ चित्तविभ्रमे ॥ ५ ॥ पक्षमें तु शीतांगे तान्द्रिके
पंचांविंशतिः ॥ विज्ञेया वासराश्वैव कंठकुब्जे त्रयोदशा ॥ ६ ॥
कर्णके च त्रयो मासा भुग्नेत्रे दिनाष्टकम् ॥ रक्तष्टीवी दशा-
हानि चतुर्दशा प्रलापके ॥ ७ ॥ जिह्वके षोडशाहानि कला-
भिन्यासलक्षणे ॥ परमायुरिदं प्रोक्तं प्रियते तत्क्षणादूषि ॥ ८ ॥

भाषा—संधिककी ७, अंतककी १०, रुगदाहकी २०, चित्तविभ्रमकी २४,
शीतांगकी १५, तंद्रिककी २५, कंठकुब्जकी १३, कर्णककी तीन महीने (९० दिन)
भुग्नेत्रकी ८, रक्तष्टीवीकी १०, प्रलापकी १४, जिह्वकी ६६, अभिन्यासकी १६
दिनकी ये सन्निपातोंकी परमायुके दिन कहे हैं । परंतु रोगी शीघ्रभी मर जाता है ॥

उक्त सन्निपातोंमें साध्यासाध्यविचार ।

सन्धिकस्तन्द्रिकश्वैव कर्णकः कंठकुब्जकः ॥

जिह्वकश्चित्तविभ्रंशः षट् साध्याः सप्त मारकाः ॥ ९ ॥

भाषा—संधिक १, तंद्रिक २, कर्णक ३, कंठकुब्ज ४, जिह्वक ५, चित्तविभ्रंश ६
ये छः साध्य हैं । बाकी वचे सात सो मारक हैं ॥

असाध्यकृच्छ्रसाध्यके लक्षण ।

दोषे विवृद्धे नष्टेऽन्नौ सर्वसम्पूर्णलक्षणः ॥

सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ १० ॥

माषा—जिसमें दोष (वात, पित्त, कफ) वृद्धि होकर अर्थात् सम्पूर्ण लक्षण
होकर मिलते हों और अभि शांत हो गई हो वह सन्निपातज्वर असाध्य है और
इससे विपरीत अर्थात् दोष बढ़े न हों, अल्प लक्षण हों, अनि थोड़ी दीप्त हो वह
सन्निपातज्वर कृच्छ्रसाध्य है ॥

१ जय्यने दोषशब्दका मल अर्थ करा है अर्थात् पुरीषादिक वडे सते इत्यादि ।
इस श्लोकका तात्पर्यर्थ यह है कि असाध्य और कृच्छ्रसाध्य अयेपर सुखसाध्य नहीं
होता है इससे भाल्की आचार्यने किखा है ।

मृत्युना सह योद्धव्यं सञ्चिपातं चिकित्सता ॥

यस्तु तत्र भवेजेता स जेताऽमयसंकुले ॥ ११ ॥

भाषा-जो वैद्य सञ्चिपातकी चिकित्सा करे है वह मौतके साथ संग्राम करता है । जो इस सञ्चिपातको जीते अर्थात् शात करे वह सर्व रोगके गणोंका जीतनेवाला है ॥
तथा च ।

सञ्चिपातार्णवे मर्मं योऽभ्युद्धरति मानवम् ॥

कस्तेन न कृतो धर्मः कां च पूजां न सोऽर्हति ॥ १२ ॥

भाषा-जो वैद्य सञ्चिपातरूपी सागरमें झूंचे मनुष्यको निकालता है उसने कौनसा धर्म न करा अर्थात् सब धर्म कर चुका और वह कौन पूजाके योग्य नहीं है अर्थात् वह सब पूजाओंके योग्य है ॥

संधिक ।

शुर्वरूपकृतशूलसम्भवं शोषवात्वहुवेदनान्वितम् ॥

शुष्मतापवलहानिजागरं सञ्चिपातामिति सन्धिकं वदेत् ॥ १ ॥

भाषा- जिसके पूर्वरूपमें शूल, वातसे बहुत पीड़ा, कफका गिरना, सन्ताप, वल-हानि, रात्रिमें जागरण ये लक्षण होंय तिसकी सन्धिक सञ्चिपात कहते हैं ॥

अन्तक ।

**द्वाहं करोति परितापनमातनोति मोहं ददाति विदधाति
शिरःप्रकंपम् ॥ हिक्कां करोति कसनं च समाजुहोति जानोहि
तं विबुधवर्जितमंतकाख्यम् ॥ २ ॥**

भाषा-दाह करे, संतापको बढ़ावे, मोहको देवे, शिर कंपावे, हिचकी करे और खांसीको बढ़ावे ऐसा पंडितोंकरके त्याज्य अंतक सञ्चिपात जानना ॥

रुद्धाह ।

**प्रलापपरितापनप्रबलमोहमांघश्रमः परिभ्रमणवेदनाव्यथित-
कृष्टमन्याह्वाः ॥ निरंतरतृष्णाकरः श्वसनकासहेकाकुलः स
कृष्टतरसाधनो भवति हन्त रुद्धाहकः ॥ ३ ॥**

भाषा-अनर्थभाषण, सन्ताप, अतिमोह, मंदता, अनायास श्रम और पीड़ा, कंठ मन्यानाड़ी और ठोड़ी इनमें व्यथा, निरंतर प्यास लगे, श्वास खांसी और हिचकी इन लक्षणोंकरके युक्त ऐसा यह रुद्धाहनामक सञ्चिपात कृष्टसाध्य है ॥

चित्तभ्रम ।

यदि कथमपि पुंसां जायते कायपीडा भ्रममदपरितापो
मोहवैकल्यभावः ॥ विकल्नयनहासो गीतनृत्यप्रलापी
ह्याभिदधाति असाध्यं केऽपि चित्तभ्रमाख्यम् ॥ ४ ॥

भाषा—जिसके कोई प्रकार करके पीडा होय तथा भ्रम (धतूग खाये सरीखी अवस्था हो), सन्ताप, मोह, विकल्प, नेत्रोंमें बेकली, इसना, गाना, नाचना, बकना ये लक्षण होंय उसको कोई असाध्य चित्तभ्रम सन्निपात ऐसा कहते हैं ॥

शीतांग ।

द्विमसद्वशशरीरो वेपथुः श्वासहिक्का शिथिलितसकलांगः
खिन्ननादोग्रतापः ॥ कुमथुदवथुकासच्छर्वतीसारयुक्त-
स्त्वरितमरणहेतुः शीतगात्रप्रभावात् ॥ ५ ॥

भाषा—शरीर वर्फके समान शीतल होय, कम्प, श्वास, हिचकी, मवे अङ्ग शिथिल हों, मन्द शब्द, देहके भीतर उग्र सन्ताप, अनायास श्रम, मनका संताप, खांसी, छाँदि, अतीसार इन लक्षणोंसे युक्त सन्निपातको जीताङ्ग कहते हैं । यह प्राणोंका शीघ्र नाशकर्ता है ॥

तंद्रिक ।

प्रभूता तन्द्रार्तिं ज्वरकफिपिपासाकुलतरो भवेच्छयामा जिह्वा
पृथुलक्षठिना कण्टकवृता ॥ अतीसारः श्वासः कुमथुपरितापः
श्रुतिरुजो भृशं कण्ठे जाव्यं इयनमनिशं तंद्रिकगदे ॥ ६ ॥

भाषा—तन्द्रा बहुत होय, शूल ज्वर कफ तृपासे रोगी बहुत पीडित हो, जीभ काले रंगकी मोटी कठोर और कांटेयुक्त हो और अतीसार, श्वास, शूनि, संताप, कण्शूल, कंठमें जडता और रातदिन निद्रा ये लक्षण तंद्रिक सन्निपातमें होते हैं । यह असाध्य है ॥

कंठकुब्ज ।

शिरोर्तिं कण्ठग्रहदाहमोहकं पञ्चरात्कसमीरणार्तिः ॥

इनुग्रहस्तापविलापमूच्छां स्यात्कण्ठकुब्जः खलु कष्टसाध्यः ॥ ७ ॥

भाषा—शिरमें पीडा, कंठमें पीडा, दाह, वेहेशी, कंप, ज्वर, वातरक्तसम्बंधी पीडा, हनुग्रह, संताप, बकना और मूच्छां इन लक्षणोंसे युक्त सन्निपातको कण्ठकुब्ज कहते हैं । यह कष्टसाध्य है ॥

कर्णक ।

प्रलापः श्रुतिहासकण्ठग्रहांगव्यथाश्वासकासप्रसेकप्रभावम् ॥

ज्वरं तापकर्णीतयोर्गङ्गपीडा बुधा कर्णकं कष्टसाध्यं वदंति ॥ ८ ॥

भाषा—अनर्थभाषण करे, वहरा हो जावे, कंठमें दर्द होय, अंगोंमें पीडा, श्वास, कास, पसीना, लारका गिरना, ज्वर, संताप, कर्ण और गाल इनमें पीडा जिसमें ये लक्षण हो उसको पण्डित कष्टसाध्य कर्णक सन्निपात कहते हैं ॥

मुग्नेत्र ।

ज्वरबलापचयः स्मृतिशून्यता श्वसनभुग्नविलोचनमोहितः ॥

प्रलपनभ्रमकंपनशोफवांस्त्यजति जीवितमाशु स भुग्नहृक्ष ॥ ९ ॥

भाषा—ज्वर, बलका नाश, स्मृतिनाश. श्वास, देढ़ी दृष्टि, बेहोशी, अनर्थभाषण, भ्रम, कंप और सूजन ये लक्षण मुग्नेत्र सन्निपातके हैं । यह रोगी जलदी मरता है ॥

रक्तष्टीवी ।

रक्तष्टीवी ज्वरवितृष्णामोहशूलातिसारा हिक्काध्मानभ्रमणद्-

वथुश्वाससंज्ञाप्रणाशाः ॥ इयामा रक्ताधिकतरसना मण्ड-

लोत्थानरूपा रक्तष्टीवी नियदित इह प्राणहंता प्रसिद्धः ॥ १० ॥

भाषा—रक्तकी उलटी करे, ज्वर. बमन, तृष्णा, मूच्छी, शूल, अतिसार. हिचकी, अफरा, भौंरका आना, संताप, श्वास. संज्ञानाश, काली और लाल जीभ. देहमें रुधिरके विकारसे चकत्ता जिसमें ये लक्षण हो उसको रक्तष्टीवी सन्निपात कहते हैं, यह प्राणनाशक प्रसिद्ध है ॥

प्रलापक ।

कम्पप्रलापपरितापनशीर्षपीडा प्रौढप्रभावपदमानपरोऽन्य-

चिन्ता ॥ प्रज्ञाप्रणाशविकलप्रचुरप्रवादः क्षिप्रं प्रयाति पितृ-

पालपदं प्रलापी ॥ ११ ॥

भाषा—कम्प, बड़वडाना, संताप, शिरमें पीडा इनका विशेष जेर हो, पवित्र-तामें आसत्त, दूसरेकी चिंता करे, बुद्धिका नाश हो, विकल और बहुत बकवाद् करे ऐसा यह प्रलापक सन्निपातवाला रोगी यमराजके पुरको जाता है ॥

जिह्वक ।

श्वसनकासपरितापविह्वलः कठिनकंटकपरीतजिह्वकः ॥

वाधिरभूक्यलहानिलक्षणो भवति कष्टतरसाध्यजिह्वकः ॥ १२ ॥

भाषा—श्वास, खांसी, संताप, विहळ, कठोर और कांटोंसे व्याप्त ऐसी जीभ, बहरा, गूँगा और बलकी हानि इन लक्षणोंसे संयुक्त ऐसा यह जिहक सन्निपात कष्टसाध्य है ॥

आभिन्यास ।

दोषत्रयस्तिर्घमुखत्वनिद्रा वैकल्यनिश्चेष्टनक्षषवाग्मी ॥ बल-
प्रणाशः थसनादिनेयहोऽभिन्यास उक्तो ननु मृत्युकल्पः ॥ १३ ॥

भाषा—त्रिदोषोंके कोपके समान मुखपर चिकनापना, निद्रा, बेकली, चेष्टाहीन हो, कष्टसे बोले, बलनाश, श्वासादिकोंका रुकना ये लक्षण आभिन्यास सन्निपातमें होते हैं । यह महासाध्य मृत्युके तुल्य है ॥

सन्निपातोपद्रव ।

सन्निपातज्वरस्यांते कर्णमूले सुदारुणः ॥

शोथः संजायते तेन कथिदेव प्रमुच्यते ॥ १४ ॥

ज्वरस्य पूर्वं ज्वरमध्यतो वा ज्वरांततो वा श्रुतिमूलशोथः ॥

क्रमादसाध्यः खलु कष्टसाध्यः सुखेन साध्यो मुनिभिः प्रादिष्टः १५

भाषा—सन्निपातज्वर शात होनेके पीछे कानकी जड़में इरुण सूजन पैदा होती है, उस सूजनसे कोई रोगी बचे है । प्रायः यह मारही डाले है । यदि यह सूजन ज्वरके पहिले होते तौ असाध्य है, ज्वरके मध्यमें होय तौ कष्टसाध्य है और ज्वरके अंतमें होय तौ सुखसाध्य है ऐसा मुनीश्वरोंने कहा है ॥

सद्यास्त्रिपञ्चसत्ताहादशाहाद्वादशादपि ॥

एकविंशहिनैः शुद्धः सन्निपाती सुजीवन्ति ॥ १६ ॥

भाषा—सन्निपात हुएपर तत्काल, तीन, पांच, सात, दश और बारह दिनसे इक्कीस दिवसतक सन्निपातवाला रोगी शुद्ध होकर जीवे है ॥

त्रिदोषज्वरोंकी साधारण मर्यादा ।

सप्तमो द्विशुणा यावन्नवम्येकादशी तथा ॥

एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥ १७ ॥

पित्तकफानिलवृद्धया दशदिवसद्वादशाहसत्ताहात् ॥

हांति विषुचति पुरुषं त्रिदोषजो धातुमलपाकात् ॥ १८ ॥

१ “ सप्तमे दिवसे प्राते दशमे द्वादशोऽपि वा । मुनवैरतो भूत्वा प्रजाम याति हति वा ॥ ” इति ।

माषा—जबसे त्रिदोष प्रगट हो उस दिनसे लेकर ७ किंवा १४ और ९ किंवा १८ तथा ११ किंवा २२ दिनतक त्रिदोषज्वरोंकी मर्यादा है। इस ज्वरधिमे ज्वर जाता रहे अथवा सृत्यु होय। सात नौ और ग्यारह दिनमें मर्यादा वातानिक, पित्तानिक और कफानिक सञ्चिपातोंकी क्रमसे जाननी। पित्त, कफ और वात इनकी वृद्धि क्रमकरके दश दिनकी, बारह दिनकी और सात दिनकी है। इसमें त्रिदोषज्वर धातुपाक होनेसे मार डाले और मलपाक होनेसे रोगी रोगमुक्त हो जाय।

धातुपाकलक्षण ।

निद्राबलौजोरुचिवीर्यनाशो स्वद्वेदना गौरवताल्पच्छेष्टा ॥

विष्टुभृता यस्य किलारतिः स्यात्स धातुपाकी मुनिभिः प्रदिष्टः १९

माषा—निद्रा बल तेज रुचि वीर्य इनका नाश, हृदयमें पीड़ा, देह भारी, हीन-चेष्टा, अफरा, मनका न लगना ये लक्षण जिसके हों उसको धातुपाकी मुनीश्वरोंने कहा है। धातुपाक कहिये उत्तरोत्तर रोगकी वृद्धि और बलकी हानि होकर शुक्रादि धातुसहित मूत्रादिकोंका जो पाक होय उसे धातुपाक कहते हैं ॥

मलपाकलक्षण ।

दोषप्रकृतिवैकृत्यं लघुता ज्वरदेहयोः ॥

इन्द्रियाणां च वैमल्यं दोषाणां पाकलक्षणम् ॥ २० ॥

माषा—दोषोंका स्वभाव पलट जाय, हल्का होना, देह हल्की हो, इन्द्रियोंका निर्मल होना ये मलपाकके लक्षण जानने। धातुपाक और मलपाक होना केवल ईश्वरपर है। इसमें दूसरा कोई हेतु नहीं है ॥

आगंतुकज्वर ।

अभिधाताभिचाराभ्यामभिषंगाभिशापतः ॥

आगंतुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत् ॥ २१ ॥

माषा—तलवार, छुरा, मुक्का, लकड़ी इत्यादि शख्त आदिके लगनेसे प्रगट ज्वरको अभिधातज कहते हैं। विपरीतमंत्रके जपनेसे, लोहके सुचासे, मारणार्थ सर्षपादिक होम अथवा कृत्याका प्रयोग करनेसे उत्पन्न ज्वरको अभिचारज कहते हैं। काल, ज्वोक, भय, कोध, भूतादिकोंके आवेशसे उत्पन्न ज्वरको अभिषंगज कहते हैं। ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, सिद्ध इनके शाप देनेसे प्रगट ज्वरको अभिशापज कहते हैं। ये चार प्रकारसे आगंतुक ज्वर उत्पन्न होय हैं इस ज्वरके आरंभसे पूर्व कोई दोषका प्रकाश नहीं हो पीछे जैसे दोष कुपित हों वे तिनको उन्हीं उन्हीं दोषोंके लक्षणकरके

जाने । जैसे “ कासशोकभयादायुः ” अर्थात् काम शोक भयसे बात कुपित होता है ॥

विषजन्य आगंतुकज्वर ।

इथावास्थता विषकृते दाहोऽतीसार एव च ॥

भलारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूच्छ्या ॥ २२ ॥

भाषा—अब आगंतुकज्वरोंके हेतुभेदकरके लक्षण कहते हैं । स्थावरजंगम विष मक्षण करनेसे जो ज्वर होय उससे मुख इथामवर्ण और दाह तथा दस्तोंका होना, अन्नमें अरुचि, प्यास, झुई चुमनेकीसी पीड़ा और मूच्छी ये लक्षण होते हैं ॥

औषधगंधजनित ज्वर ।

औषधीगन्धजे मूच्छी शिरोरुग्यमथुः क्षवः ॥

भाषा—तीक्ष्ण औषधके सूखनेसे जो ज्वर होय उसमें मूच्छी, शिरमें पीड़ा, वमन, ढींक ये लक्षण होते हैं ॥

कामज्वरके लक्षण ।

कामजे चित्तविश्रंशस्तन्द्राऽलस्यमभोजनम् ॥

हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुष्यति ॥ २३ ॥

भाषा—सुन्दर स्त्रीके देखनेसे मनुष्यके मनमें घोर कामकी बाधा उत्पन्न हो उससे प्रगट ज्वरके ये लक्षण हैं । चित्तकी अस्थिरता, तंद्रा, आलक्ष, मोजनमें अरुचि, हृदयमें पीड़ा और शरीर सूख जावे ॥

भय शोक और कोपज्वर ।

भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ॥ २४ ॥

भाषा—भयसे और शोकसे उत्पन्न ज्वरमें अनर्थ वके कोपसे प्रगट ज्वरमें कंप होय ॥

अभिचार और अभिधातज्वरके लक्षण ।

अभिचाराभिधाताभ्यां मोहस्तृष्णा स जायते ॥

भाषा—अभिचार और अभिधातसे प्रगट ज्वरमें मोह और तृष्णा होवे ॥

भूताभिषंगज्वरके लक्षण ।

भूताभिषंगादुद्देगो हास्यरोदनकंपनम् ॥ २५ ॥

भाषा—भूतबाधासे उत्पन्न ज्वरमें चित्तमें उद्देग, हँसे, रोवे और कम्प ये लक्षण होते हैं ॥

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पितं त्रयो मलाः ॥

भूताभिषंगात्कुप्याति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ २६ ॥

भाषा—काम शोक और भय इनसे बात कुपित होता है, क्रोधसे पित्त कुपित होता है और भूताभिषंगसे तीनों दोष कुपित होते हैं। इसमें औरभी लक्षण होते हैं अर्थात् उन्मादनिदानमें जिस जिस देवग्रहोंके लक्षण “ हास्यरोदनकंपादि ” कहे हैं वे लक्षण होते हैं ॥

विषमज्वरकी संप्राप्ति ।

दोषोऽल्पोऽहितसंभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः ॥

धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ २७ ॥

भाषा—जिस मनुष्यके ज्वर, औषधादिक सेवन करनेसे ज्वांत होनेके पथात और आरंभसे इक्षीस दिन वीतनेपर तथा जीर्ण ज्वस्था होनेपर अपश्य करनेसे बात-पित्तादि दोष पुनः थोड़े प्रकुपित हों रसरक्तादि धातुओंमेंसे किसी धातुमें ग्रास हो और उनको दूषित कर विषमज्वर कहिये तृतीय चतुर्थादिक ज्वर उत्पन्न करे। वाशब्दकरके प्रथमसेही विषमज्वर होय है यह सूचना करी। यथा “ व्यारम्भाद्विषमो यस्तु ” इति अल्पशब्दसे यह दिखाया कि वह दोष बलहीन होनेसे कालातरमें बलवान् होकर ज्वर करे और जो दोष बलवान् है वह नित्यज्वर करे है। विषमज्वरके लक्षण भालुकीने कहे हैं सो ऐसे, अनियतकालमें शीत उष्णकरके विषमवेग ज्वर होय उस ज्वरको विषमज्वर ऐसे कहते हैं। दूसरे लक्षण ऐसे कि “ मुक्तानुबंधित्वं विषमत्वं ” अर्थात् जो ज्वर छोड़ दे और फिर आ जावे उसको विषमज्वर ऐसे कहते हैं ॥

धातुगत ज्वरके नाम ।

**संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थको ॥ सततं रसरक्तस्थः
सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः ॥ २८ ॥ मेदोगतस्तृतीयेऽहित अस्थिम-
ज्ञागतः पुनः ॥ कुर्याच्चातुर्थकं घोरसंतकं रोगसंकरम् ॥ २९ ॥**

भाषा—संतत, सतत, अन्येद्यु (व्याहिक), तृतीयक (त्र्याहिक) जिसका तिजारी कहते हैं और चातुर्थक जिसने चौथिया कहते हैं ऐसे पांच प्रकारके विषमज्वर हैं। संतत शब्दकरके सतत और संतत ये दोनों जानने अर्थात् रसस्थ दोष संततज्वर करे हैं और रक्तस्थ दोष सतत ज्वर करे हैं। इससे संतत और संतत ये दोनों शब्द केवल संज्ञावाचक हैं। सातत्यावाचक नहीं हैं ऐता जाने। वेही दोष मांसगत अन्येद्युष्क अर्थात् व्याहिक (एकतरा) को करे हैं और मेद-

गत दोष तृतीयक (तिजारी) ज्वर करे हैं और वेही दोष अस्थिमज्जामें प्राप्त भये हुःसह मृत्युकारक अनेक रोगोंसे व्याप्त ऐसा चाहुर्थिक ज्वर प्रगट करे हैं ॥

संततज्वरके लक्षण ।

सप्तशाहं वा दृशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥

संतत्या यो विसर्गी स्यात्संततः स निगद्यते ॥ ३० ॥

भाषा—सात दिनपर्यंत किंवा दश दिनपर्यंत किंवा बारह दिनपर्यंत एकसा जो ज्वर रहे और उत्तरे नहीं तिसको संततज्वर कहते हैं । सात, दश, बारह ये जो कहे सो अनुक्रम करके वात, पित्त, कफ इनके उल्लेखनसे कहे हैं । यह संततज्वर त्रिदोषज है कारण इसका बारह पदार्थोंके साथ होना है । ऐसे वातादिदोष धातुके प्रमाण मूत्र और मल इनको एकही समयमें ग्रसकर संततज्वर उत्पन्न करे हैं । बारह पदार्थ ये हैं । वातादि दोष ३, मसधातु ७, मूत्र १ और मल १ मिलकर बारह हुए ॥

संततकादिकोके लक्षण ।

**अहोरात्रे सततको द्वौ कालावत्तुर्थते ॥ अन्येद्युष्कस्त्वहोर-
त्रमेककालं प्रवर्तते ॥ ३१ ॥ तृतीयकस्त्वतीयेऽहि चतुर्थेऽ-
हि चतुर्थकः ॥ केचिद्भूताभिषंगोत्थं वदंति विषमज्वरस् ॥ ३२ ॥**

भाषा—काल छः हैं । १ पूर्वाह्न, २ मध्याह्न, ३ अपग्रह, ४ प्रदोष, ५ अर्द्ध-रात्रि, ६ प्रत्यूष । पूर्वाह्न और प्रदोष ये कक्षके काल हैं, मध्याह्न और अर्द्धरात्रि ये पित्तके काल हैं, अपराह्न और प्रत्यूष ये वातके काल हैं । संततज्वर दिनगतमें दो समय आता है । ईशानदेव कहते हैं कि दिनके दो वेला अथवा रात्रिके दो वेला अथवा दिनके एक वेला और रात्रिके एक वेला एकके दो वेला अमुक वेलामें आविंगा । जैसे ज्वरके आनेका समय नहीं कहा है । अन्येद्युष्कज्वर अहोरात्रिमें एक वेलामें आता है । तृतीयकज्वर निस दिन आता है उससे तीसरे दिन फिर आता है और चाहुर्थिक चौथे दिन आता है और कोई आचार्य इस विषमज्वरको भूताभिषंगोत्थ कहते हैं । यह मत सुश्रुताचार्यहीका मान्य है अर्थात् उसने विषमज्वरपर बलि होमादिक भूतोचित और कषायपानादिक दोषोचित ऐसी चिकित्सा कही है और विषमज्वर ये प्रायशः आगंतुकके सम्बन्धी हैं यह चरकने कहा है ॥

उत्कृष्टदोष भेदकरके तृतीयकचतुर्थकोके दूसरे लक्षण ।

कफपित्तात्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः ॥ वातपित्ताच्छ्रोगा-

ही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ ३३ ॥ चातुर्थिको दर्शयति प्रभावं
द्विविधं ज्वरः ॥ जंघाभ्यां शैष्मिकः पूर्वे शिरसोऽनिलसंभवः ॥ ३४ ॥

माषा-तृतीयक ज्वर कफपित्तके जोरसे त्रिक्षणान (तीन हड्डी) में पीड़ा करे हैं, बातकफके जोरसे पीठमें पीड़ा करे, बातपित्तके जोरसे मस्तकमें पीड़ा करे हैं, ऐसे तृतीयक ज्वर तीन प्रकारका है। त्रिकंग्राही जो कहा इसका तात्पर्य यह है कि त्रिक वातका स्थान है, उसके स्थानमें कफ पित्त दूसरेके स्थानमें पहुँचनेसे निर्वल हो जाते हैं इससे तीसरे दिन ज्वर करते हैं। यदि कफ पित्त स्वस्थानपर स्थित हों तौ तंततज्वरको करते हैं यह जट्यटका मत है। ऐसेही मस्तक कफका स्थान है और पीठ पित्तका स्थान है इनमें दूसरे दोषोंके पहुँचनेसे दुर्वर्ल होकरके तृतीयक ज्वर करते हैं। यदि त्रिक वातका स्थान है तो फिर आप पित्तकफका उस स्थानमें गमन कैसे कहते हो ? यह स्थानका नियम प्रकृति स्थिति दोषोंका कहा है कुपित दोषोंका नहीं कहा है। क्योंकि कुपित दोषोंका सर्वत्र गमन होता है, यह सुश्रुतका मत है। ऐसेही दोषोंको अन्यस्थानगतत्व होनेसे तथा दोषोंको निर्वलत्व होनेसे चातुर्थिक ज्वरमेंभी जानना। चातुर्थिकज्वर दो प्रकारकी शक्ति दिखाता है सो ऐसे। कफाधिक जिसमें होवे वह प्रथम जंघाओंमें व्याप्त होकर पश्चात् सर्व देहमें व्याप्त होय और वाताधिक्य जिसमें होवे वह पहिले मस्तकमें व्याप्त होकर पीछे सर्व देहमें व्याप्त होता है। ये पांच प्रकारके विषमज्वर प्रायशः सन्निपातसे प्रगट होते हैं यह चरकका मत है। हारीत ऋषि कहते हैं कि चातुर्थिक ज्वरमें पित्त प्रधान है। इन विषमज्वरोंका उत्पत्तिक्रम बुद्धसुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है कफके पांच स्थान हैं उनमें जिस जिस स्थानमें दोष प्राप्त होते हैं वहां उसी उसी विषमज्वरको प्रगट करते हैं। उन पांच स्थानोंके नाम आमाशय १, हृदय २, कंठ ३, शिर ४ और संधि ५। तहां आमाशयमें दोष पहुँचनेसे संततकज्वर दो समय आता है। हृदयस्थित दोष आमाशयमें आनेसे एकतरा एक समय आता है। कंठमें स्थित दोष एक दिनमें हृदयमें आता है दूसरे दिन आमाशयमें प्राप्त हो ज्वर प्रगट करे उसे तृतीयक (तिजारी) कहते हैं। शिरमें स्थित जो दोष सो क्रमसे कंठ, हृदय और आमा-शयमें तीन दिनमें प्राप्त हो चतुर्थ दिवस (चातुर्थिक) ज्वर प्रगट करता है और उन दोषोंका उल्टकर पुनः स्वस्थानमें पहुँचना उसी दिन होता है क्योंकि दोष वेगवान् होते हैं। और दोष संधिस्थित होते हैं तब प्रलेपक ज्वर प्रगट करते हैं। ये विषमज्वरके समान ज्वर हैं कारण इसका यह है कि संधि आमाशयमें स्थित है

१ त्रिक कीहये कमर और जघाके मध्यकी तीन हड्डी। २ सुश्रुते—“ कुपिताना हि दोषाणां शरीरे परिधावताम् । यत्र सुगः स्वैरुण्याद्वाधिस्त्रोपजायते ॥ ”

और सुश्रुतने कहा है कि प्रलेपक यह विषमज्वर है धातुशोष रोगियोंको क्लेशका देनेवाला है ॥

विषमज्वरके भेद ।

विषमज्वर एवान्यश्वातुर्थिकविषयः ॥

स मध्ये ज्वरयत्यहि आद्यंते च विसुचति ॥ ३५ ॥

भाषा—चातुर्थिक ज्वरका उलटा यह दूसरा विषमज्वर है यह प्रथम और अंतका दिन छोड़कर बीचके दो दिन आता है । जैसे यह चातुर्थिकका विषय है तैसेही तृतीयक आदिकाभी विषय होता है उनको कहते हैं जैसे बीचके एक दिन ज्वर आवे और आदि अन्तके दिन नहीं आवे यह तृतीयकका विपरीत और जो एक काल छोड़कर सब दिन रात्रि ज्वर रहे वह अन्येत्युष्मक (इकतरे) का विपरीत जानना । इनके विषयमें ग्रन्थकारोंके मिन्न भिन्न मत हैं । विस्तारके भयसे इस जगह नहीं लिखे हैं ॥

वातबलासकज्वर ।

नित्यं मन्दज्वरो रुक्षः शूनकस्तेन सीदिति ॥

स्तब्धांगः श्वेष्मभूयिष्ठो नरो वातबैलासकी ॥ ३६ ॥

भाषा—वातबलासक नामक ज्वर जिस मनुष्यके हो वह उस ज्वरकरे शोथ-युक्त अर्थात् सूजन हो और मन्दज्वर सदैव बना रहे । देह रुक्षी हो, अंग जकड़ जावे, कफ दिशेष होय यह ज्वर वात और कफसे होता है इसको वातबलासक ज्वर कहते हैं ॥

प्रलेपकज्वर ।

प्रलिपिञ्चिव गात्राणि घर्मेण गौरवेण च ॥

मन्दज्वरविलेपी च स शीतः स्यात्प्रलेपकः ॥ ३७ ॥

भाषा—जिस ज्वरमें पसीनेसे तथा सूर्यकी घामसे अथवा देहके गौरवसे मानो देहको लिप्स कर दियासा मालूम हो इसी हेतुसे मन्द ज्वर हो शीत लगे । यह ज्वर कफपित्तसे प्रगट होता है और राजयक्षमारोग्यमें यह होता है । कोई इसको निदो-षजनित कहते हैं इसको प्रलेपक ज्वर कहते हैं ॥

१ “ प्रलेपकस्त्वविषमः प्रायः क्लेशाय शोषणाम् । ” अन्ये रात्रिज्वरादयोऽपि विष-मज्वरा बोद्धव्याः । यथोक्तं “ समी वातकफौ यस्य क्षीणपित्तस्य देहिनः । रात्रौ प्रायो ज्वरस्तस्य दिवा हीनकफस्य तु ॥ ” २ वातबलासलक्षणं प्रन्यान्तरे—“ बलासो वायुना कुक्तः शीतादि षडहे ज्वरम् । जनयेन्नयनस्त्रावं हत्थीडां मधुरास्थताम् ॥ ”

विषमज्वर विशेषभेद ।

विदग्धेऽन्नसे देहे श्वेषमपित्ते व्यवस्थिते ॥
तेनार्धं शीतलं देहमध्मुष्णं प्रजायते ॥ ३८ ॥

भाषा—अचका रस दुष्ट होनेसे और देहमें कफ पित्त दुष्ट होकर स्थित होनेसे अर्धनारीश्वररूप अथवा नरसिंहरूप अर्धांग ज्वर प्रगट करे है अर्थात् अर्धदेह कफसे शीतल और अर्धदेह पित्तसे गरम होता है ॥

काये दुष्टं यदा पित्तं श्वेषमा चान्ते व्यवस्थितः ॥

तेनोष्णत्वं शरीरस्य शीतत्वं हस्तपादयोः ॥ ३९ ॥

भाषा—जिस मनुष्यके कोठमें पित्त दुष्ट होय और कफ हाथ पैरमें दुष्ट होकर स्थित होवे तिसकरके सब देह उष्ण रहे और हाथ पग शीतल रहे ॥

इन्होंका विपरीत द्वितीय ज्वर ।

काये श्वेषमा यदा दुष्टः पित्तं चांते व्यवस्थितम् ॥

शीतत्वं तेन गात्राणामुष्णत्वं हस्तपादयोः ॥ ४० ॥

भाषा—जिस सभय कोठमें कफ दुष्ट हो और पित्त हाथ पैरमें होकर रहे तब शरीर शीतल हो और हाथ पैर उष्ण होंगे ॥

शीतपूर्वज्वरके लक्षण ।

त्वकस्थौ श्वेषमानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरम् ॥

तयोः प्रशांतयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च ॥ ४१ ॥

भाषा—कफ और वात ये दुष्ट होकर त्वचामें प्राप्त हों अर्थात् रसधातुका आश्रय वर प्रथम शीतज्वर उत्पन्न करते हैं और जब इनका बेग शांत होता है तब पिछाड़ी पित्त दाह करे है

दाहपूर्वज्वरके लक्षण ।

करोत्यादौ तथा पित्तं त्वकस्थं दाहमतीव च ॥

तस्मन्प्रशास्ते त्वितरौ कुरुतः शीतमंततः ॥ ४२ ॥

द्वावेतौ दाहशीतादिज्वरौ संसर्गजौ स्मृतौ ॥

दाहपूर्वस्तयोः कष्टः सुखसाध्यतमोऽपरः ॥ ४३ ॥

भाषा—उसी प्रकार पहिले पित्त रसगत होकर अत्यंत दाह करे है पीछे उसका बेग शांत भवेपर वात कफ ये शीत करते हैं । दाहपूर्वक और शीतपूर्वक ये

दोनों ज्वर संसर्ग अर्थात् त्रिदोषोंके संबंधसे होते हैं ऐसा ऋषियोंने कहा है। उनमें दाहपूर्वक ज्वर दुःखप्रद और कृच्छ्रसाध्य है और शीतपूर्वक ज्वर सुखसाध्य है ॥

सप्तधातुगत ज्वरोंके लक्षण रसगत ज्वरके लक्षण ।

गुरुता हृदयोत्क्लेशः सदनं छर्यरोचकौ ॥

रसस्थे तु ज्वरे लिङं दैन्यं चास्योपजायते ॥ ४४ ॥

भाषा-सप्तधातुमें स्थित ज्वर होय तौ देह भारी, दोषोंको हृदयमें स्थित होनेसे उपस्थित वमनसी मालूम है, शुनि, ओकारी, अन्नमें अरुचि और दैन्य कहिये मनमें खेद ये चिह्न होते हैं ॥

रक्तगत ज्वरके लक्षण ।

रक्तनिष्टीवनं दाहो मोहश्छदनविभ्रमौ ॥

प्रलापः पिटिका तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ ४५ ॥

भाषा-रुधिरका गिरना, दाह, मोक्ष, वमन, भ्रम, अनर्थ बोले, देहमें फुंसी, प्यास ये लक्षण रक्तगत ज्वरके होनेसे होते हैं ॥

मांसगत ज्वरके लक्षण ।

पिंडिकोद्देष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता ॥

उष्मात्तद्वाहविक्षेपो ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ४६ ॥

भाषा-जानुके नीचे मांसका पिंड हो तथा दंड आदिके लगनेकीसी पीड़ा, प्यास, मलमूत्रका निकलना, गरमी, अंतर्दाह, हाथ पैरोंका इधर उधर पटकना और शुनि ये लक्षण जब मांसमें ज्वर पहुँच जाय है तब होते हैं ॥

मेदोगत ज्वरके लक्षण ।

भृशी स्वेदस्तुषा मूच्छी प्रलापच्छादिरेव च ॥

दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदःस्थे चासद्विष्णुता ॥ ४७ ॥

भाषा-अत्यंत पसीनेका आना, प्यास, मूच्छी, प्रलाप, वमन, देहमें दुर्गंध, अन्नमें अरुचि, शुनि और बेदना न सही जाय ये लक्षण मंदगत ज्वरमें होते हैं ॥

आस्थिगत ज्वरके लक्षण ।

भेदोऽस्त्रीं कूजनं श्वासो विरेकश्छदिरेव च ॥

विक्षेपणं च गात्राणामेतदस्थिगते ज्वरे ॥ ४८ ॥

भाषा-हड्डूटनी तथा हाँडोंका गूंजना, श्वास, दस्तका होना, वमन, हाथ, पैरोंका बदलना ये आस्थिगत ज्वरके लक्षण हैं ॥

मज्जागत ज्वरके लक्षण ।

तमः प्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वामिस्तथा ॥

अन्तर्दृहो महाश्वासो मर्मच्छेदश्च मज्जगे ॥ ४९ ॥

भाषा-अंधेरा आना, हिचकी, खांसी, शीत लगे, बमन, अंतर्दृह, महाश्वास अर्थात् जो श्वासके निदानमें कहेंगे और मर्म, २ में पीड़ा यह मर्मशब्द इस जगह हृदयवाचक है अर्थात् हृदयमें पीड़ा हो ये मज्जागत ज्वरके लक्षण हैं ॥

शुक्रगत ज्वरके लक्षण ।

मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे ॥

शेफसः स्तव्धता मौक्षः शुक्रस्य च विशेषतः ॥ ५० ॥

भाषा-रसादि धातुगत ज्वर शुक्रस्थानमें पहुँचनेसे रोगीका मरण होय, इस ज्वरमें लिंगका जकड़ जाना और शुक्रका विशेष होना और सुश्रुतादिक आचार्य कहते हैं कि रक्तादि पदार्थका थोड़ा थोड़ा साव हो ॥

प्राकृत और वैकृत ज्वरके लक्षण ।

वर्षाश्वरद्रसंतेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात् ॥

वैकृतोऽन्यैः सुदुःसाध्यैः प्राकृतश्चानिलोद्भवैः ॥ ५१ ॥

भाषा-वर्षाक्रिड्यु, शरद्वतु और वसंतक्रिड्यु इनके मध्यमें वातादिकके क्रमसे जो ज्वर होय वह प्राकृत ज्वर कहाता है । जैसे वर्षाकालमें वातज्वर, शर्त्कालमें पित्तज्वर और वसंतकालमें कफज्वर । इससे विपरीत जो ज्वर होय उसको वैकृतज्वर कहते हैं । जैसे वर्षाकालमें ऐत्तिक, शरद्वतुमें शैषिङ्गक और वसंतक्रिड्युमें वातिक ये वैकृत ज्वर दुःसाध्य हैं अर्थात् प्राकृत ज्वर सुखसाध्य है, वातज्वर प्राकृत ज्वरमी दुःसाध्य है और ये गोंमें प्राकृतत्व दुःसाध्य है परन्तु ज्वरमें व्याधिस्वभाव करके सुखसाध्यत्व कहा है ॥

प्राकृतज्वरोंकी चिकित्साके निमित्त उत्पात्तिरूप कहते हैं ।

वर्षासु मारुतो दुष्टैः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् ॥

कुर्याच्च पित्तं शरदि तस्य चानुबलः कफः ॥ ५२ ॥

१ यदुक्तम्—‘प्राकृतः सुखसाध्यस्तु वसंतशरद्दुष्टः । २ अनुबलं यथा-स्वतत्रस्य कस्यचिद्राज्ञो गजरथतुरेगपुरुषादिबलवतो वैरिभिः सह युध्यमानस्य; पश्चादन्यबलं तच्छक्तेनुबलोपबृहणार्थमागच्छति एव स्वतंत्रस्य पित्तस्य ज्वरं कुर्वतो बलोपबृंहणं शरादि-कफः करोति । तयोः पित्तश्लेष्मणोः प्रकृत्या स्वभावेन तत्कृतयोज्वरयोरनशनाल्पघनाद्यं न भवतीति । वर्षा शरद् और हेमंत ये विसर्गकाल हैं इसमें चन्द्रमाका बल रहे हैं । इसमें प्राणोंका बल बढ़े हैं और शिशिर ग्रीष्म ये आदान काल हैं इसमें सूर्यका बल आधिक होता है इसीसे प्राणोंका बल क्षीण होता है ।

**तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्यम् ॥
कफो वसन्ते तमपि वातपितं भवेदनु ॥ ६३ ॥**

भाषा—ग्रीष्मऋतुमें संचित हुआ वायु वर्षाकालमें कुपित हो पित्तकफयुक्त हो ज्वरको प्रगट करे ह। उसी प्रकार वर्षाकालमें संचित हुआ पित्त शरद्वतुमें दुष्ट होकर ज्वरको उत्पन्न करे है, उसको कफका अनुवंध होता है उस ज्वरमें कफ-पित्तके स्वभाव करके और विसर्ग काल करके लंघन करनेसे भय नहीं होय। तैसेही हेमर्तकालमें संचित भया कफ वसंतकालमें ज्वर उत्पन्न करे है विसके पिछाड़ी वातपित्त सहायक होते हैं।

काले यथास्वं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा ॥

निदानोक्तानुपशयो विपरीतोपशायिता ॥ ६४ ॥

भाषा—वातादिकोंका आप अपने कालमें उत्पत्ति और वृद्धि होवे है। जैसे काल यह दोषविशेष जाननेका लक्षण है। उसी प्रकार उपशय और अनुपशयमीं रोग जाननेके कारण है सो इस प्रकार जानना। निदानत्व करके जो आहार विहार कहे हैं उनके सेवन करनेको अनुपशय कहिये दुःख उत्पत्ति होती है और दोषोंके विपरीत जो आहार विहार उन्होंसे उपशायिता कहिये सुखकी उत्पत्ति होय है।

संप्राप्तिज्वर दो लक्षणोंसे कहा है उसका लक्षण ।

**अंतर्दीहोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः ॥ संघास्थिशूल-
मस्वेदो दोषवचोविनियहः ॥ ६५ ॥ अंतर्वेगस्य लिंगानि ज्वर-
स्यैतानि लक्षयेत् ॥ संतापोऽभ्यधिको बाह्यतृष्णादीनां च
मार्दवम् ॥ बहिर्वेगस्य लिंगानि सुखसाध्यत्वमुच्यते ॥ ६६ ॥**

भाषा—पिछाड़ी जो ज्वर कहे हैं उन्होंमें सम्प्राप्तिके भेदसे कोई एक ज्वर अंतर्वेग होय है और कोई बहिर्वेग होय है, तिन दोनोंके लक्षण कहते हैं। अंतर्दीह, अतितृष्णा, बडबडाना, श्वास, भ्रम, संधि और हाड़ इनमें पीड़ा, पसीना न आवे, वायु और मलका बाहर न निकलना ये अंतर्वेग ज्वरके लक्षण जानने। शरीरके बाहर संताप अधिक होवे, तृष्णादिक लक्षण थोड़े होवे ये बहिर्वेगज्वरके लक्षण हैं। यह ज्वर सुखसाध्य है। इस ज्वरके सुखसाध्य कहनेसे अंतर्वेगज्वर कृच्छ्रसाध्य और असाध्य है।

**चिकित्सा करनेके निमित्त आम पच्यमान और निराम ज्वरके लक्षण कहते हैं ।
छालाप्रसेकहृष्टासहृदयाशुद्धचरोचकाः ॥ तंद्रालस्याविपाका-**

स्यवैरस्यं गुरुगत्रता ॥ ६७ ॥ क्षुब्राशो बहुषूत्रत्वं स्तव्यता
बलवान्ज्वरः ॥ आमज्वरस्य लिगानि न द्यात्र भेषजम्
॥ ६८ ॥ भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो जनयति ज्वरम् ॥
शोधनं शमनीयं च करोति विषमज्वरम् ॥ ६९ ॥

भाषा-लारका गिरना, खाली ओकारिका आना, हृदयमें जडत्व, अरुचि, तन्द्रा, आलसक, अन्नका परिपाक न होना, मुखका स्वाद जाता रहे, देह भारी, भूखका नाश, वारंवार मूतना, देहका जकडना, देहमें बलवान् ज्वर हो ये अपक ज्वरके लक्षण जानने । इस ज्वरमें औषधि बैद्य न देय । अपक ज्वरमें औषधि देनेसे ज्वरकी वृद्धि होय है । और शोधन तथा शमन औषध देनेसे विषमज्वरको करे है ॥

ज्वरके दश उपद्रव ।

श्वासो मूर्च्छा रुचिस्तृष्णा छर्यतीसारविड्युत्रहाः ॥

हिक्का श्वासोऽगदाहश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥ ६० ॥

भाषा-श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, प्यास, वमन, अतिसार, मलका रुकना, हिक्की, खांसी, देहमें दाह ये दश ज्वरके उपद्रव हैं ॥

पच्यमानज्वरके लक्षण ।

ज्वरवेगोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः ॥

मल्प्रवृत्तिरुत्केशः पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ६१ ॥

भाषा-ज्वरका वेग, अधिक प्यास, प्रलाप, श्वस, भ्रम, मलकी प्रवृत्ति, उपस्थित वमनसी मालूम होय ये पच्यमानज्वरके लक्षण हैं ॥

पञ्चज्वर किंत्रा निरामज्वरके लक्षण ।

शुत्क्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमादृवम् ॥

दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम् ॥ ६२ ॥

भाषा-भूखका लगना, देहका कृश होना, अंगोंका हल्कापना, मन्दज्वरका आना, अधोवायुकी प्रवृत्ति होना, मनमें उत्साहका होना ये निरामज्वरके लक्षण जानने ॥

जीर्णज्वरके लक्षण ।

त्रिसत्ताहे व्यतीतेषु ज्वरो यस्तनुतां गतः ॥

प्लीढाम्बिसादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते ॥ ६३ ॥

भाषा-२१ दिन व्यतीत होनेपर जो ज्वर बारीक होकर देहमें रहे जिससे प्लीढ़ अर्थात् तापविल्ली रोग और मंदाम्बि होवे उसको जीर्णज्वर कहते हैं ॥

साध्यज्वरके लक्षण ।

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ॥

भाषा—बलवान् पुरुषके थोड़े दोषयुक्त और श्वास आदि उपद्रव करके रहित जो ज्वर हो वह साध्य जानना ॥

असाध्यज्वरके लक्षण ।

हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः ॥

ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिद्रियनाशनः ॥ ६४ ॥

भाषा—जो ज्वर बहुत प्रबल कारणोंसे उत्पन्न भया हो और जिसमें सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों वह ज्वर प्राणोंका हरण करनेवाला जानना और जो ज्वर प्रगट होतेही चिकित्सा करते २ इन्द्रियोंकी जाकिं नष्ट कर दे अर्थात् अंधा वहिरा इत्यादि हो वहमी ज्वर असाध्य जानना ॥

दूसरे असाध्यज्वरके लक्षण ।

ज्वरः क्षीणस्य शूनस्य गंभीरो दैर्घ्यरात्रिकः ॥

असाध्यो बलवान् यथ केशसीमंतवृज्ज्वरः ॥ ६५ ॥

भाषा—जो पुरुष ज्वरसे क्षीण पड़ गया हो अथवा सूजन जिसके देहमें आ गई हो वे ज्वर असाध्य हैं और जिसके ज्वर धातुके भीतर हो अथवा अंतर्वेगज्वर अथवा जिसमें वातादि दोषोंका निश्चय न हो सके और बहुत दिनतक रहनेवाला ज्वर असाध्य होय है और ज्वर बलवान् हो तथा जिसमें रोगी अपने हाथसे केशों (बालों) की सीमंत आदि रचना करे वह ज्वर असाध्य है ॥

गंभीरज्वरके लक्षण ।

गंभीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यांतर्दाहेन तृष्णया ॥

आनद्धत्वेन चात्यर्थं श्वासकासोद्दमेन च ॥ ६६ ॥

भाषा—अंतर्दाह प्यास दोष अर्थात् विरुद्ध दोषके वटनेसे मलके रुकनेसे तथा श्वास खांसीसे उत्पन्न होनेसे गंभीर ज्वर जानना ॥

दूसरे असाध्यज्वरके लक्षण ।

आरंभाद्विषमो यस्य यस्य वा दैर्घ्यरात्रिकः ॥

क्षीणस्य चातिरूक्षस्य गंभीरो हांति मानवम् ॥ ६७ ॥

विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपत्तितोऽपि वा ॥

शीतार्दितोऽतरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥ ६८ ॥

भाषा—जो ज्वर प्रगट होते ही विषम पड़ जाय और जो ज्वर बहुत दिन से आया करे और क्षीण तथा अतिरुक्ष देहवाले पुरुष के जो गम्भीर ज्वर होय वह मृत्युकारक होता है और जो बेहोश होकर मोहको प्राप्त हो तथा गिरकर जिससे उठा न जाय पड़ा ही रहे अथवा बाहरी शीत लगे और देह के भीतर दाह हो ऐसे ज्वर-बाला पुरुष मर जावे ॥

और असाध्य लक्षण ।

यो हष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान् ॥ वक्रेण चैवो-
च्छसति तं ज्वरो हंति मानवम् ॥ ६५ ॥ हिङ्गा श्वासतृष्णा-
युक्तं मूढं विप्रांतलोचनम् ॥ संततोच्छासिनं क्षीणं नरं क्षप-
यति ज्वरः ॥ ७० ॥ हतप्रभेन्द्रियं क्षाममरोचकनिर्णीडि-
तम् ॥ गंभीरतीक्ष्णवेगात्तं ज्वरितं परिवर्जयेत् ॥ ७१ ॥

भाषा—जिसके देह में रोमांच खड़े रहे, लाल नेत्र हों, हृदय में गांठ होने से जैसी पीड़ा हो तैसी हो। और संघात इस पदका यह अर्थ करते हैं कि नाना प्रकार का शूल हो, मुख के द्वारा श्वास ले, वह ज्वर रोगी मनुष्य को मार डाले। हिंचकी श्वास प्यास इनकरके व्याप्त हो, मोहयुक्त हो, चलाय मान नेत्र हो, निरंतर श्वास लेय ऐसे लक्षण युक्त मनुष्य को ज्वर मार डालता है। इन्द्रियों की शक्ति नष्ट होने से और शरीर की काति निस्तेज होने से अथवा नाक कान नेत्र ये नष्ट हो जावे देह कृश हो जावे असुचिसे अत्यंत पीड़ित हो। “अरोचकनिर्णीडितं” इस जगह जय्यटने दो पाठ लिखे हैं एक तौ “दुरात्मानमुपद्धुतं” इसका अर्थ यह है कि दुष्ट अंतःकरण होवे और उपद्रवयुक्त होवे। दूसरा पाठान्तर यह है कि “दुरात्म-भिरुपद्धुतं” अर्थात् राक्षसादिकरके युक्त हो तथा अतिघोर अंतर्वेग करके परि-पीडित हो पेसे ज्वरवान् पुरुष को वैद्य छोड़ देवे। इसी जगह कोई टीकाकारोंने जो असाध्य लक्षण लिखे हैं सो आतंकदर्पण तथा मधुकोश टीकासे लिखे हैं। वे सब वाग्मट और हारीतके कालज्ञान देखने से निश्चय हो जायगे सो देख लेवे। इस जगह हम ग्रंथ बढ़ने के भय से नहीं लिखते ॥

ज्वरमुक्तिके पूर्वरूप ।

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कंपो विङ्गभिदसंज्ञिता ॥
कूजनं चातिवैगंध्यमाकृतिज्वरमोक्षणे ॥ ७२ ॥

भाषा—दाह, पसीना, भ्रम, प्यास, कंप, मलका पतला होना, संज्ञाका नाश होना, गूंजे, देह में अत्यंत दुर्गंध आवे ये लक्षण जब ज्वर छोड़ता है तब होते हैं ॥

शंका-क्योंजी ! दोष (बात, पित्त, कफ) नाशके बिना रोगकी निवृत्ति होय नहीं और जब दोष क्षीण हो गये तो उक्त दाहादिलक्षण कैसे करते हैं ? उत्तर-इसका कारण यह है कि कोई एक वस्तुका ऐसा स्वभाव है कि क्षीण होनेके समयमें अपनी शक्तिको दिखाती है जैसे दीपकमें तेल नहीं रहे और बुझानेको होय है तब एकसंग पहिली अपेक्षा अत्यंत बलने लगे हैं और थोड़ी देर बलकर शात हो जाता है । ऐसेही जब दोष शांत होनेको होते हैं तब अपनी शक्ति दाहादि-कोंको दिखाते हैं अथवा दूसरा उत्तर-यह है कि जैसे बंदर वृक्षकी ढालीको हिलायकर दूसरे स्थानपर चला जाता है परंतु वह वृक्षकी ढाली बहुत देरपर्यंत हिला-करती है इसी प्रकार ज्वर गयेपरभी उसके असरसे दाहादिक रहते हैं ॥

त्रिदोषजे ज्वरे ह्येतदन्तर्वेगे च धातुजे ॥

लक्षणं मोक्षकाले स्यादन्यस्मिन्स्वेददर्शनम् ॥ ७३ ॥

भाषा-ये दाहसे आदि ले लक्षण त्रिदोष ज्वरके शांत होनेके समय होते हैं और सब ज्वरोंमें नहीं होते और ज्वरके केवल पसीनाही आता है यह भालुकी आचार्यका मत है ॥

ज्वरमुक्तिके लक्षण ।

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कंडूः पाको मुखस्य च ॥

क्षवथुश्वान्नकांक्षा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ७४ ॥

भाषा-पसीना आवे, देह हल्का हो, मस्तकमें खुजली चले, मुखका पाक अर्थात् होठोंमें पपड़ी परि जाय, छीक आवे, मोजन करनेकी इच्छा होय ये लक्षण ज्वरमुक्तके हैं ॥

प्रसंगवशाज्ज्वरमुक्तलक्षणं ग्रन्थांतरे ।

**देहो लघुवृद्धिपगतद्व्युत्तमोहतापः पाको मुखे करणसौषवसव्य-
थत्वम् ॥ स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगिमनोऽन्नलिप्ता कंडूश्च मूर्धिं
विगतज्वरलक्षणानि ॥ १ ॥**

ज्ञाति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्भतमाधवभावार्थदीपिकामाथुरीभाषार्थिकायां
ज्वरनिदान समाप्तम् ।

इंग्रेजी मतानुसार ज्वरनिदान ।

ज्वरको इंग्रेजीमें (Fever) फीवर कहते हैं उसकी उत्पत्ति ।
१ सरदी ।

सरदी पड़नेसे मनुष्यका सब देह रोमांचबद्ध हो जावे तब पसीनेका निकलना रुक जाय इस हेतुसे देहका जो अवगुण सो देहके बाहर नहीं निकले इसीसे देह हल्का नहीं होय और वही देहका अवगुण ज्वररोगको प्रगट करता है इस ज्वरको सामान्य ज्वर कहते हैं । अथवा देह अतिगरमीसे पीडित होय उस समय किसी कारणसे शीतल करे तो सरदी होती है अथवा किसी अतिपरिश्रम करनेसे मनुष्यके देहसे पसीने निकलें उस समय हवामें बैठे अथवा हवामें शयन करनेसे सरदी होती है अथवा रातमें मैदानमें सोनेसे अथवा रातमें शीतलपवनके लगनेसे पसीना नहीं निकले इस हेतुसे सरदी होय अथवा गीला कपड़ा ओढ़कर बैठनेसे वा सोनेसे सरदी होय है इन कारणोंसे सरदी होय । वह सरदी अनेक प्रकारके ज्वरोंकी उत्पत्ति करे है ॥

२ मन्दवायु ।

जिस समय पृथ्वीमें वर्षाका अथवा और प्रकार जल सूखे उसमें घास पत्ता सड़ जावे तब इनसे मन्द वायु अथवा बाष्प उत्पन्न होय तिसके द्वारा अनेक प्रकारके ज्वर प्रगट होय । विशेषकरके आमज्वरकी अधिक उत्पत्ति होय इसीसे जलाशय-स्थान तालाब आदि और झील खाल इन स्थानोंमें मन्दवायु अधिक होय है इससे नाना प्रकारके ज्वर प्रगट होय । यह हवा सोतेके जलसे उत्पन्न नहीं होय है किंतु जिस जगह थोड़ा जल होय जैसे तलैया आदि । उसमें घाम लगनेसे जल पक्क होकर गन्धवायुको अधिक उत्पन्न करे है । यह वायु दिनमें सूर्यकी किरणसे चहुत इलकी होकर ऊपरको उठे इसीसे यह बड़ा नुकसान करनेवाली होती है और संध्या तथा रात्रिमें यह वायु शीतल होनेसे नीचे उत्तर सर्व साधारण मनुष्योंको नुकसान करनेवाली होती है और हवाओंसे यह हवा अधिक भारी होती है । घरके किंवाड़ लगानेसे यह हवा घरके भीतर कम जाती है इसीसे घरके किंवाड़ देकर मसैरी जिसको पूर्वके लोग बहुधा रखते हैं । यह कपड़ेकी बनी हुई होती है इसमें सोना चाहिये ॥

३ गरिष्ठभोजन ।

जो मनुष्य भारी द्रव्य भोजन करे तब उसके वह पचे नहीं और पेटमें पीड़ा करे उस पीड़के होनेसे ज्वर उत्पन्न होय । विशेषकरके यह ज्वर बालकोंके होय है ॥

४ अनेक प्रकारके ज्वरोंके लक्षण ।

नाड़ी और श्वास जलदी चले, मस्तकमे पीड़ा होय, त्वचा शुष्क और गरम होय, प्रलाप होय अथवा न होय, पेशाब लाल उतरे, जीभ मलीन होय, शरीरमें सदा ज्वर रहा करे, कभी कम हो जाय कभी ज्यादा होय जाय ॥

५ कुंकुमज्वरके लक्षण ।

श्वास लेते समय मंद मंद पीड़ा होय, खासी होय, कफ कुछ नीला रंगका गिरे, ज्वर अलग होय, वक्षस्थलमें पीड़ा होय, खांसते समय श्वास जलदी चले, नाड़ी कुछ कुछ थोड़ी और शीघ्र चले, त्वचा सैदैव थोड़ी गरम रहे, जिस समय रोगकी वृद्धि होय श्वासके चलनेसे पीड़ा होय उससे अधिक पीड़ा होय, उस रोगके आरम्भमें कफ नहीं निकले किन्तु दो तीन दिनके बाद कफ श्वेत निकल पड़े, उस रोगिका हल्दीके सभान पीला वर्ण होय, कभी कभी जलके सदृश वर्ण होय, इस रोगकी विशेषता होनेसे कफ पतला हो जाय । यह रोग अत्यंत बढ़कर पचनेको होय तब कफका शाकके समान रंग हो अथवा काले रंगका और दुर्घटयुक्त होय, बहुत सरदी पड़नेसे इसकी उत्पत्ति होती है ॥

६ यकृत् वा कलेजज्वरके लक्षण ।

दहने पासूमें पीड़ा होय, जीभ शरीरमें थोड़ा ज्वर होय तथा आहारमें अरुकि होय, जीभ मलीन, नेत्र पीले होय, मल मट्टीके रंगका अथवा सफेद तथा काला होय और काठिन, पेशाब लाल होय ॥

इति इंग्रेजीमतानुसार ज्वरनिदान ।

अथ अतिसारनिदानम् ।



- पित्तज्वरमें अतिसार होता है तथा ज्वरको और अतिसारको अन्योन्य उपद्रव होनेसे ज्वरके अनन्तर अतिसाररोगको कहते हैं ।

अतिसारादिकोंका कारण ।

गुर्वतिस्मिग्धतीक्ष्णोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः ॥ विरुद्धाध्यश-
नाजीर्णविषमेश्वातिभोजनैः ॥ १ ॥ स्तेहाद्यैरतिषुक्तैश्च मि-
थ्यायुक्तोर्विषैर्भयैः ॥ शोकदुष्टाम्बुमद्यातिपानैः सात्म्यर्तु-
पर्ययैः ॥ २ ॥ जलाभिरमणैर्वैगविषातैः कृमिदोषतः ॥ नृणां
भवत्यतिसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥ १ -

भाषा-प्रमाणसे आधिक भोजन करे अथवा स्वभावसे जड पदार्थ जैसे उडद आदिके खानेसे आविचिकनी, आतिशीखी, आतिगरम, अत्यंत पतली और अत्यंत स्थूल अर्थात् जिसके अवयव कठिन हो जैसे लड्डू, घेवर, गूँझा इत्यादि अत्यंत शीतल स्पर्शसे तथा बीर्यसे विरुद्ध जैसे क्षीर मत्स्य इत्यादिक अध्यंशन कहिये धूर्वदिनका भोजन परिपाक नहीं होय और उसपर भोजन करना बिना पका अन्न नित्य भोजनके समयको त्याग कर और समय थोड़ा वा बहुत भोजन करनेसे, स्नेह स्वेद आदि पंचकर्मके अत्यंत योगके करनेसे, वा योडे योग करनेसे, स्थावरादिक धूषीविषके खानेसे, मयसे, शोच करनेसे, अतिदुष्ट जलके पीनेसे तथा अति मद्यके पीनेसे, सातम्य और क्रुतुके पलटनेसे, जलमें अतिक्रीडा करनेसे, मल मूत्र आदि वेगोंके रोकनेसे, कृमिरोगके उपद्रवसे अथवा कृमिजनित वातादिकके कोपसे अतिसार रोग होता है । इन लक्षणोंसे यह निदान वातादि द्रोषोंका यथासम्मव जानना । आगे अतिसारके लक्षण कहे हैं ॥

अतिसाररोगकी संप्राप्ति ।

संशम्यापां धातुरार्थं प्रवृद्धो वचोमिश्रो वायुनाधःप्रणुनः ॥

सायेतातीवातिसारं तमाहुव्यार्थं घोरं षष्ठिधं तं वदंति ॥

एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ठु आमेन चोक्तः ॥४॥

भाषा-पूर्वोक्त कहे कुपथ्यसे अत्यंत दुष्ट भये शरीरमें रस, जल, मूत्र, स्वेद, कफ, पित्त, रुधिर इत्यादि जलरूप धातु सो अधिको मन्द कर और वही जल मल-मिश्रित हो पवनका प्रेरित गुदाके मार्गसे वारंवार नीचेको बहुत उत्तरे तिसको अतिसार कहते हैं । यह भयंकर अतिसाररोग व प्रकारका है । १ वातका, २ पित्तका, ३ कफका, ४ सन्त्रिपातका, ५ शोकका और व प्रकारका आतिसार है । द्रंद्रज अतिसार व्याधिस्वभावकरके नहीं होते । सुश्रुतने आमातिसार नहीं कहा । भय और शोकसे दो कहकर संख्या पूरी करी है और आमातिसारको सन्त्रिपातातिसारके अन्तर्गत कहा है । यहां माधवाचार्यने भयातिसारकी वातज अतिसारमें गणना करी है ॥

अतिसारके पूर्वलूप ।

हृष्वाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः ॥

विद्वसंग आध्मानपथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसुराणि ॥५॥

भाषा-हृदय, नाभि, गुदा, पेट, कूख इनमें पीडा हो, शरीरमें फूटनी हो,

१ तदुक्तं चरके—“ मुक्ते पूर्वाह्नशेषे तु पुनरध्यजनं मतम् । ”

गुदाका पवन रुक जाय, मलका अवरोध हो, अफरा हो और अच पचे नहीं य
लक्षण आतिसारोगके पूर्व होते हैं ॥

वातातिसारके लक्षण ।

अरुणं केनिलं रुक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः ॥

शकृदामं स्रुकशब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥ ६ ॥

भाषा—कुछ ललाईको लिये, ज्ञाग मिला तथा रुखा, थोड़ा थोड़ा, बरंबार,
आम मिला हुआ दस्त उतरे और शूल चले तथा मल उतरते समय शब्द होवे तौ
वातातिसार जानना ॥

पित्तातिसारके लक्षण ।

पित्तात्पीतं नीलमालोहितं वा तृष्णामूर्च्छादाहपाकोपपन्नम् ॥

भाषा—पित्तसे पीला, काला, धूसरे रंगका मल उतरे तथा तृष्णा, मूर्च्छा, दाह,
गुदा पक जाय ये लक्षण पित्तातिसारके हैं ॥

कफातिसारके लक्षण ।

शुकुं सांद्रं सकफं श्लेष्मयुक्तं विसं शीतं हृष्टरोमा मनुष्यः ॥ ७ ॥

भाषा—कफातिसारावाले पुरुषका मल सफेद, गाढ़ा, चिकना, कफमिश्रित, दुर्गंध-
युक्त और शीतल उतरे तथा रोमांच खड़े होंय ये लक्षण कफातिसारके जानने ॥

सञ्चिपातके अतिसारके लक्षण ।

वाराहस्तेहमांसांबुसदृशं सर्वद्विष्णिम् ॥

कृच्छ्रमाध्यमतीसारं विद्याहोषत्रयोद्भवम् ॥ ८ ॥

भाषा—सूकरकी चरबीसदृश अथवा मांसके धोये हुए पानीके सदृश और
वातादि त्रिदोषोंके जो लक्षण कहे हैं उन लक्षणसंयुक्त हो ऐसा यह त्रिदोषजनित
अतिसार कष्टसाध्य जानना ॥

शोकातिसारके लक्षण ।

तैस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य बाषपोष्मा वै वह्निमाविश्य

जंतोः ॥ ९ ॥ कोष्ठं गत्वा क्षोभयेतस्य रक्तं तच्चाधस्तात्का-

कणंती प्रकाशम् ॥ निर्गच्छेद्वै विद्विमिश्रं ह्यविद्ववा निर्गंधं वा

गंधवद्वातिसारः ॥ १० ॥

भाषा—जिस पुरुषके पुत्र, मित्र, स्त्री, धन इनका नाश हो जावे वह उसी उसी
वस्तुका शोच करे इसीसे क्षुधा मन्द होनेसे धातुक्षय होय, ऐसे प्राणीके बाष्प

(नेत्र, नासा, गले आदि से जो शोकद्वारा जल गिरे सो) और उष्मा कहिये शोकजन्य देहतेज ये दोनों बाष्पोष्मा कोठमें प्राप्त हो अग्निको मन्द कर रुधिरको कुपित करें तब यह रुधिर चिरमिटीके रंगसंदृश गुदाके मार्ग होकर मलयुक्त अथवा मलरहित निकले तथा गंधयुक्त अथवा गंधरहित दस्त उतरे उसको शोकातिसार कहते हैं । इसी प्रकार भयातिसारभी जान लेना ॥

शोकातिसारके कृच्छ्रसाध्यत्वलक्षण ।

शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं रोगो वैद्यैः कष्ट एषः प्रादृष्टः ॥

भाषा—शोकसे उत्पन्न भया जो अतिसार सो चिकित्सा करनेमें बहुत कठिन है । कारण शोकशांति भये बिना केवल औषधोंसे शांति नहीं होवे इससे वैद्योंने यह कष्टसाध्य कहा है ॥

आमातिसारके लक्षण ।

अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयंतः कोष्ठं दोषा धातुसंघान्मलांश्च ॥

नानावर्णं नैकशः सारथंते शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥ ११ ॥

भाषा—अन्नके न पचनेसे दोष (बात, पित्त, कफ) स्वमार्गको छोड़कर कोठमें आप हो कोठको दूषित कर रक्तादि धातु और पुरीषादि मलको वरंदार गुदाके मार्गसे बाहर निकाले और इसका रंग अनेक प्रकारका होय तथा शूलयुक्त दस्त उत्तरे इसको छठा आमातिसार वैद्य कहते हैं । शंका—प्रथम कह आये कि अतिसार रोग छः प्रकारका होता है पुनः ‘ षष्ठमेनं वदन्ति ’ यह पद क्यों धरा ? उत्तर—यह पद नियमके अर्थ माधवाचार्यने धरा है अर्थात् भय स्नेह अजीर्ण विषुचिका बवासीर आदि निमित्तकरके और अतिसार नहीं है क्योंकि भयादि अतिसारोंका बात पित्त कफ अतिसारोंके अंतर्गतत्व है ॥

आमके लक्षण ।

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदाति ॥

पुरीषं भृशदुर्गंधि पिञ्चिछलं चामसंज्ञितम् ॥ १२ ॥

भाषा—पूर्व कहे जो बातादिक अतिसारोंके मिले हुए लक्षणसंयुक्त जो नल सो जलमें गिरनेसे हूब जाय है क्योंकि आम जड़ है और उसमें बहुत दुर्गंध आवे तथा अत्यंत गाढ़ी हो उसको आमसंज्ञा है ॥

पक्लक्षण ।

एतान्येव तु लिंगानि विपरीतानि यस्य वै ॥

लाघवं च विशेषण तस्य पक्लं विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

भाषा—और ऊपरके श्लोकसे विपरीत लक्षण होंय अर्थात् शरीर हल्का होय तथा मल जलमें छूबे नहीं और दुर्गधिरहित हो बबूलारहित होय उस रोगीका मल पक्क भया जाने ॥

असाध्य लक्षण ।

पक्कं जांबवसंकाशं यकृत्पिण्डनिर्भं तनु ॥ घृततैलवस्त्रामज्जावेस-
वारपयोदाधि ॥ १४ ॥ मांसधोवनतोयाभं कृष्णं नीलारुणप्रभ-
म् ॥ मेचकं कर्बुरं स्त्रिघं चन्द्रांकोपगतं घनम् ॥ १५ ॥ कुण्ठं
मातुर्लिंगाभं दुर्गंघं कुथितं बहु ॥ तृष्णादाहारुचिश्वासाहिक्षापा-
श्वास्थिशूलिनम् ॥ १६ ॥ संमूर्च्छीरतिसंमोहयुक्तं पक्कवलीगु-
दम् ॥ प्रलापयुक्तं च भिषणवर्जयेदौतिसारिणम् ॥ १७ ॥

भाषा—पक्के जामनके रंगसद्वश काला और चिकना, मेचक तथा काला और लोहित रंग, पतला घृत तेल चरबी मज्जा वेस्वार दूध दही और मांसके धोनेसे जैसे जल निकले हैं ऐसा रंग होय, काजलके रंगसमान अथवा नीलमिश्रित अरुण रंग अर्थात् पौया पक्षीके पंखके रंगसमान अथवा खंजन पक्षीके वर्णसद्वश तथा अनेक रंगका चिकना, मौरकी चांद्रिकाके सद्वश रंग, ढढ, मुरदाकीसी दुर्गधयुक्त, मस्तककी मज्जाकी समान गंधयुक्त भुरी दुर्गंघके समान, प्यास दाह अरुचि श्वास हिचकी पस-
चाड़ोंके हाड़ोंमें पीड़ा मनको मोह और इंद्रियको मोह अरति ये लक्षण होंय तथा गुदाके आंठेनका पक्ना, अनर्थ भाषण करे ऐसे आतिसारी रोगीको वैद्य छोड़ देवे ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

असंवृते गुदं क्षीणं दुराध्मानमुपद्वुतम् ॥

गुदे पक्के गतोष्माणमतिसारिणमुत्सृजेत् ॥ १८ ॥

भाषा—जिसकी गुदाका दस्तके पिछाड़ी संकोचन होवे, क्षीण पुरुष, अत्यंत अफ-
रायुक्त अथवा “ दुरात्मानं ” ऐसाभी पाठान्तर है अर्थात् जिसकी इंद्रिय वश
न होवे तथा आतिसारके शोधादिक उपद्रवकरके युक्त और गुदाके स्थानमें पाक-
कर्ता अर्थात् पक्कनेवाला पित्त विद्यमान होते और जिसकी देहमें गरमीसी नहीं
दीखे अर्थात् देह शीतल हो अथवा जिसकी अभि नष्ट हो जावे ऐसे आतिसारी
रोगीको वैद्य त्याग देवे ॥

१ मेचक काला लाल पीला मिला जैसा रंग होय ऐसा मेचकरग हाय है । २ वेस-
वार नाम मांसमेंसे हड्डी निकाल और कूटकर दही दूध काली मिरच ढालकर जो
पदार्थ बनाते हैं तत्सद्वश रंग होय ।

आतिसारके उपद्रव ।

शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासकासमरोचकम् ॥

छाँदि॑ मूच्छर्णा॒ च हिक्का॑ च दृष्टातीसारिणं त्यजेत् ॥ १९ ॥

भाषा—सूजन, शूल, ज्वर, तृष्णा, श्वास, खांसी, अरुचि, बमन, मूच्छर्णा, हिचकी ऐसे लक्षण जिस रोगीमें होंय उसको वैद्य छोड़ देवे ॥

असाध्य लक्षण ।

श्वासशूलपिपासात्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् ॥

विशेषेण नरं वृद्धमतिसारो विनाशयेत् ॥ २० ॥

भाषा—श्वास, शूल, प्यास इनसे पीडित, क्षीण ज्वरसे पीडित और वृद्ध मनुष्यके ये लक्षण होंय तो यह आतिसाररोग मनुष्यका विनाश करे ॥

रक्तातिसारलक्षण ।

पित्तकृन्ति यदात्यर्थे द्रव्याण्यश्वाति पैतिके ॥

तदोपजायतेऽभीक्षणं रक्तातीसार उल्बणः ॥ २१ ॥

भाषा—पित्तातिसारवाला पुरुष अथवा पित्तातिसार होनेवाला पुरुष जब अत्यंत पित्त करनेवाली वस्तु भोजन करे तब भयंकर रक्तातिसार प्रगट होता है। इसके लाल, काले, पीले आदि रंग वातादि दोषोंके दूषित होनेसे होते हैं। यहभी पित्तातिसारका भेद है ॥

प्रवाहिकाकी सम्प्राप्ति ।

वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्तादृहिताशनस्य ॥

प्रवाहितोल्पं बहुशो मलाकं प्रवाहिकां तां प्रवर्द्धति तज्ज्ञाः ॥ २२ ॥

भाषा—अपर्यय सेवन करनेवाले पुरुषके कुपित हुइ जो वात सो संचित हुए कफको मलसंयुक्त करके बारंबार गुदाके मार्गसे बाहर निकाले और मरोडाके साथ योडा २ मल निकले इसको प्रवाहिका कहते हैं। प्रवाहिका और आतिसार इन दोनोंका एक साधर्म्य है इसीसे आतिसाररोगमें प्रवाहिका कही है। परंतु आतिसारमें अनेक प्रकारके द्रवधातु निकल हैं और प्रवाहिकामें केवल कफ निकले हैं इतना भेद है। इसमें “निचितं बलासं” यह जो पद कहा अर्थात् कफसे मिलकर सो यह केवल कफका तो उपलक्षण है अर्थात् कफके कहनेसे पित्त और रुधिरभी जानना। भोजने इस रोगका नाम विवसी कहा है। पराशरऋषिने इसको अंतर्ग्रस्थी कहा है। हारीत ऋषिने निश्चारक कहा है। कोई आचार्य निर्वाहिका कहते हैं ॥

प्रवाहिकाके वातादि भेदकरके लक्षण ।

प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च ॥

सशोणिता शोणितसंभवा च ताः स्नेहस्ख्यप्रभवा मतास्तु ॥

तासामतीसारवदादिशेच्च लिंगं क्रमं चामविपक्तां च ॥ २३ ॥

भाषा—वातकी प्रवाहिकामे शूल होता है, पित्तकी दाहयुक्त, कफकी कफयुक्त और रक्तसे रक्तयुक्त होती है। यह चिकने और रुखे पदार्थ मोजन करनेसे होती है अर्थात् चिकने पदार्थसे कफकी, रुखे पदार्थसे वातकी। तुशब्दकरके तीक्ष्ण और खट्टे पदार्थसे क्रमसे पित्तकी और रुधिरकी होती है ऐसा जानना। इस प्रवाहिकाके लक्षण क्रम, आम और पकावस्था ये अतिसारानदानके सदृश जानने ॥

अतिसार चला गया हो उसके लक्षण ।

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति ॥

दीताश्वेल्युकोषस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥२४ ॥

भाषा—जिस मनुष्यको मूत्र करते समय दस्त न होय और अपानवायु जिसकी शुद्ध निकले और अग्नि देवीप्यमान होवे, कोठा हल्का होवे उस मनुष्यको अतिसार गया जानिये ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाशुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाशुरीभाषाधीकायां
अतिसाररोगनिदान समाप्तम् ।

अथ ग्रहणीनिदानम् ।



ग्रहणीकी सम्प्राप्ति ।

अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाय्येरहितादिनः ॥

भूयः संदूषितो वह्निर्यद्वणीमभिदूषयेत् ॥ १ ॥

भाषा—यहले मनुष्यके अतिसाररोग होकर जाता रहा होय फिर उस मनुष्यके कुपथ्य करनेसे मन्द हुई जो अग्नि सो पुरुषके उदरमें रहनेवाली जा पित्तधरा नामक छठी कला जिसको ग्रहणी कहते हैं उसको बिगाढ़े। अपिशब्दकरके अतिसार न मया होय तौमी अपने कारणकरके पूर्वोक्त ग्रहणीको बिगाढ़कर संग्रहणी रोगको प्रगट करे यह सूचना करी। कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि अतिसार न गया होय तौमी बीमरेही ग्रहणीरोग होता है “मन्दाय्ये:” इस पदकरके यह सूचना करी

कि जिस पुरुषकी आगे तीक्ष्ण है वह कुपथ्यमी करे तथापि कुछ अवगुण नहीं होय अन्नको ग्रहण करे है इससे इसको ग्रहणी कहे है। इससे ग्रहणीके विगड़नेसे अन्नका परिपाक अच्छे प्रकार नहीं होय अर्थात् वारंवार आममिश्रित मल गुदाके मार्गसे गिरता है॥

ग्रहणीरोगके सम्प्राप्तिपूर्वक सामान्य लक्षण ।

**एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्धितैः ॥ सा दुष्टा बहुशो
भुक्तमाममेव विमुचति ॥ २ ॥ पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्वद्धं
मुहुर्द्रवम् ॥ ग्रहणीरोगमादुरुतमायुर्वेदविदो जनाः ॥ ३ ॥**

भाषा—पूर्वरूप कुपित हुए पृथक् २ दोष (वात, पित्त, कफ) और सर्व दोष मिलकर ग्रहणीको दुष्ट करे, सो ग्रहणी दुष्ट होकर कच्चे अथवा पक्वे अन्नको गुदाके मार्ग होकर निकाले और पीड़ा होय तथा उस मलमें दुर्गंधि आवे, वादीसे पतला मल और पित्तसे गाढ़ा दस्त वारंवार होवे और कभी कफसे पानीसरीखा अधोवा-युयुक्त निकाले इसको आयुर्वेदके जाननेवाले वैद्य संग्रहणीरोग कहते हैं॥

पूर्वरूप ।

पूर्वरूपं तु तस्येदं तृष्णालस्यं बलक्षयः ॥

विदाहोऽन्नस्य पाकश्च चिरात्कायस्य गौरवम् ॥ ४ ॥

भाषा—प्यास, आलक्स, बलनाश, अन्नका दाह (पाकके समय अशिसी जले) और अन्नका पाक देरमें होय, देह भारी होय यह ग्रहणीरोगका पूर्वरूप है॥

वातज ग्रहणीका निदान ।

कटुतिक्कषायातिरुक्षसंदुष्टभोजनैः ॥

प्रामितानशनात्यध्वेगनियहमैथुनैः ॥

मारुतः कुपितो वर्हिं संघात्य कुरुते गदान् ॥ ५ ॥

भाषा—कड़ुआ, तीखा, कषैला, अतिरुखा और संयोगविरुद्ध ऐसे भोजनसे तथा थोड़े भोजनसे, उपवाससे, बहुत चलनेसे, मलमूत्रादि वैरोग्यके रोकनेसे, अत्यंत मैथुनसे कुपित भया जो वात सो अभिको दूषित कर रोगोंको प्रगट करे है॥

वातज संग्रहणीका रूप ।

तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुक्तपाकं खरांगता ॥ ६ ॥ कंठास्यशोषः

शुचृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः ॥ पाश्वोरुवंशणयीवारुगभीक्षणं

विष्वाचिका ॥ ७ ॥ हृतपीडाकाङ्गदौर्बल्यं वैरस्यं परिकार्त्तिका ॥

गृद्धिः सुर्वरसात्मा च मनसः स्पृहनं तथा ॥ ८ ॥ जीर्णे जीर्यति
चाभ्मानं भुक्ते स्वास्थ्यमुपैति च ॥ स वातगुल्महृद्रोगमुहाहा-
शंकी च मानवः ॥ ९ ॥ **चिरार्द्धुः खं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफे-**
नवत् ॥ पुनः पुनः सृजेद्वर्चः कासथासार्दितोऽनिलात् ॥ १० ॥

भाषा—उस वातग्रहणीवालेका अन्न दुःखसे पचे, अन्नका पाक खट्टा होय, अंगमें कर्कशता (यह वायुको त्वचाके चिकनापेन सोखनेसे होता है,), कठ मुखका सूखना, भूख प्यास लगे, मन्द दीखे, कानोंमें शब्द हो, पंसवाडे जांघ पेड़ और कंधामें पीड़ा होवे, विषूचिका हो अर्थात् दोनों द्वारोंसे कष्ट अन्नकी प्रवृत्ति होवे, हृदय दुखे देह हुबला हो जाय, जीभका स्वाद जाता रहे, गुदामें कवरनीकीसी पीड़ा हो, मीठेसे आदि ले सर्व रसोंके खानेकी इच्छा, मनमें झलानि, अन्न पचने उपरांत पेटका फूलना, भोजन करनेसे स्वस्थता, पेटमें गोला, हृद्रोग, तापतिळी-कीसी शंका, वातके योगसे खांसी, श्वाससे पीड़ित, बहुत दरमें बडे कष्टसे कभी घतला, कभी गाढ़ा, थोड़ा शब्द और ज्ञाग मिला वारंवार दस्त होय ॥

पित्तसंग्रहणीके लक्षण ।

कद्गजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्बणम् ॥ आप्लावयेष्वंत्यनलं
जलं तत्समिवानलम् ॥ ११ ॥ सोऽजीर्णे नीलपीताभं पीताभः
सार्यते द्रवम् ॥ सधूमोद्वारहृत्कंठदाहारुचित्रुडर्दितः ॥ १२ ॥

भाषा—जो पुरुष कठ, अजीर्ण, मिरच आदि तीखी, दाहकारक (वंश, करीलकी कोंपल) आदि, खट्टी, खारी (औंगा आदिका खार), आदेशब्दसे नोनका गरम पदार्थ इन कारणसे कुपित हुआ जो पित्त सो जठराशिको बुझाय दे । जैसे तत्त्वा जल अशिको शांत कर दे और कच्छाही नीले पीले रंगको पतले मलको निकाले तथा धूमयुक्त डकार आवे, हृदय और कंठमें दाह होवे, अरुचि और प्यासकरके पीड़ित होवे यह पित्तकी संग्रहणीके लक्षण है ॥

कफसंग्रहणीकी उत्पत्ति ।

गुर्वतिस्तिंगधशीतादिभोजनादातिभोजनात् ॥ भुक्तमात्रस्य च
स्वप्नाद्वंत्यर्थं कुपितः कफः ॥ १३ ॥ तस्यान्नं पच्यते दुःखं
हृष्टासच्छर्योचकाः ॥ आरुयोपदेहमाधुर्यकासष्टीकनपीतसाः
॥ १४ ॥ हृदये मन्त्रयते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरुः ॥ दुष्टो मधुर

उद्भारः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम् ॥ १६ ॥ भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चः

प्रवर्तनम् ॥ अकृशास्यापि दौर्बल्यमालस्यं च कफात्मके ॥ १६ ॥

भाषा—भारी अत्यंत चिकना शीतल आदि पदार्थके खानेसे, अति भोजनसे तथा भोजन करके सोनेसे इन कारणोंसे कुपित हुआ कफ जठराशिको शांत करे तब इसके खाया अच्छ कष्टसे पचे, हृदयमें पीड़ा होय, वमन, अरुचि, मुखको कफसे लिपासा तथा मुखका मीठा रहना, खांसी, कफ थूके, सरेकमा होय, हृदय पानीसे भरा सदृश होय, पेट भारी और जड हो, हुष्ट और मीठी डकार आवे, आप्ति शांत हो, स्त्रीरमणमें अरुचि, पतला आम, कफ मिला और भारी ऐसा मल निकले बल बिना शरीर पुष्ट दीखे, आलस्य बहुत आवे ये कफकी संग्रहणीके लक्षण हैं ॥

त्रिदोषकी संग्रहणीके लक्षण ।

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिंगसमागमे ॥

त्रिदोषं लक्षयेदेवं तेषां वक्ष्यामि भेषजम् ॥ १७ ॥

भाषा—वातादि तीनों दोषोंके जो लक्षण कह आये हैं वे सब जिसमें मिलते हैं उसको त्रिदोषकी संग्रहणी जानिये । “तेषां वक्ष्यामि भेषजम्” यह पद केवल यादपूरणार्थ लिखा है ॥

डाकटरीमतके अनुसार परीक्षा ।

आमसे मिला मल उतरे, दस्त होते समय युदा शब्द करे ऐसे एक महीना अथवा अधिक दिवस पर्यंत पीड़ा होय ॥

कारण ।

भारी द्रव्यके खानेसे अथवा देहके दुर्बल होनेसे मनुष्यके संग्रहणी रोग होय है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तरामभाथुरनिर्भितमाधवार्थदीपिकाभाथुरीभाषाटीकायां

ग्रहणीरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथाशोरोगनिदानम् ।

अतिसार, ग्रहणी और अर्द्ध इनका परस्पर सम्बन्ध है इससे ग्रहणीरोगके पीछे अर्द्धरोग कहते हैं ।

संख्यारूप सम्प्राप्ति ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च ॥

अशांसि षट्प्रकाराणि विद्याद्वद्वलित्रये ॥ १ ॥

भाषा-पृथक् पृथक् दोषसे ३, समस्त दोष मिलकर १, रुधिरसे १ और सहज १ एस छः प्रकारका अशं (बवासीर) रोग है । यह रोग गुदाको तीन बेंडीके मोतर होय है । गुदामें प्रवाहिणी, सर्जनी, ग्राहिणी यह तीन विधियां (आंटे) हैं ॥

सम्प्राप्तिपूर्वक अर्शका रूप ।

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदृष्ट्य विविधाकृतीन् ॥

मांसांकुरानपानादौ कुर्वत्यशांसि ताञ्जगुः ॥ २ ॥

भाषा-वातादि दोष त्वचा, मांस और मेदा इनको और उस ठिकानेके रुधिरको दूषित कर अपान (गुदा) में अनेक प्रकारकी आकृतिके मांसके अंकुर उत्पन्न करें अर्थात् मस्से प्रगट करें उनको बवासीर कहते हैं । आदिशब्दसे नाक, नेत्र, नाभिमेंभी जानना यह मत सुश्रुतका है । कायचिकित्सक तो गुदामें जो होय है उसीको बवासीर कहते हैं । जो नासिका आंटमें होय उसको अधिमांस कहते हैं क्योंकि नासिका आंटमें जो बवासीर होता है उसमें पूर्वरूपके लक्षण नहीं मिलते हैं ॥

वातकी बवासीरके कारण ।

**कषायकटुतिकानि रुक्षशीतलघूनि च ॥ प्रमिताल्पाशनं
तीक्ष्णं मद्यं मैथुनसेवनम् ॥ ३ ॥ लंघनं देशकालौ च शीतौ
व्यायामकर्म च ॥ शोको वातातपस्पर्शे हेतुवातार्शसां मतः ॥४॥**

भाषा-कषेला, कडुवा, तीखा, खखा, शीतल और अति लघु ऐसे पदार्थके खानेसे तथा अति थोड़ा खानेसे, भोजनकालके उल्लंघन करनेसे, तीव्र मद्यके पान करनेसे, अत्यंत मैथुन (स्त्रीसंग) करनेसे, उपवास, शीतदेश और शीतकाल (हेमंतादि ऋतु), दंड कसरतसे, शोकसे, हवा, घाममें डोलनेसे ये वातकी बवासीर होनेके कारण हैं ॥

पित्तके बवासीरके कारण ।

**कटूम्ललवणोष्णानि व्यायामाद्यातपश्रमाः ॥ देशकालावशि-
शिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम् ॥ ५ ॥ विदाहि तीक्ष्णमुष्णं च सर्वे
पानान्नभेषजम् ॥ पित्तोल्वणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुर्शसाम् ॥६॥**

भाषा-कडुवा, खट्टा, लवणका, गरम ऐसे पदार्थसे, दंड कसरतसे, अग्निके समीप

१ मनुष्यकी गुदामें तीन आंटे हैं । एक ऊपर, एक नीचे, एक बीचमें । ऊपरके आंटेका नाम प्रवाहिणी है सो मल पवन आदिको बाहर काढे । बीचका आंट मलपवनको बाहर पटक दे इसका नाम सर्जनी है । तीसरा नीचेका मलपवन निकले पीछे ज्योंका त्यों गुदाको कर दे तिसका नाम ग्राहिणी है ।

तथा घाममें रहनेसे, श्रम, गरम देश (मारवाड आदिदेश) और उष्णकाल अर्थात् श्रीष्मऋतु, क्रोध, मद्यपान, परद्रव्य देखकर जलना, दाहकारक तीखी गरम वस्तुका पीना, अचका और गरम औषधिक सेवन ये सब पित्ताधिक बासीरके कारण हैं ॥

कफकी बासीरका कारण ।

**मधुरसिंघशीतानि लवणाम्लगुरुणि च ॥ अव्यायामदिवा-
स्वप्रशश्यासनसुखे रतिः ॥ ७ ॥ प्राण्वातसेवा शीतौ च देश-
कालावच्चितनम् ॥ शेषमोलवणानामुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥ ८ ॥**

भाषा—मीठा, चिकना, शीतल, खारी, खट्टा, भारी ऐसे भोजनसे, व्यायामके न करनेसे, दिनमें सोनेसे, सेज गही इनके सेवन करनेसे, पूर्वकी हवा खानेसे, शीतल देश, शीतकाल, चिंताराहित होनेसे ये कफकी बासीर होनेके हेतु हैं ॥

द्वंज बासीरके कारण ।

हेतुलक्षणतंसर्गाद्विद्याद्वंद्वोलवणानि च ॥

भाषा—दो दो दोषोंके कारण और लक्षण मिलें तो द्वंज बासीर भई है ऐसा जाने।
त्रिदोषकी बासीरके कारण ।

सर्वो हेतुलिदोषाणां लक्षणं सहजैः समम् ॥ ९ ॥

भाषा—पृथक् वातादि बासीरके जो कारण कहे हैं वे सर्व त्रिदोषकी बासीरके कारण हैं। जो सहज अर्शके अर्थात् सहज बासीरके लक्षण सोभी इसके लक्षण जानने ॥

वातकी बासीरके लक्षण ।

**गुदांकुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः ॥ म्लानाः
इयावारुणाः स्तंब्धा विश्वादाः पद्मिष्ठा खराः ॥ १० ॥ मिथो
विसद्वशां वकाल्तीक्ष्णा विस्फुरिताननाः ॥ विविक्कंधुखर्जूर-
कार्पासीफलसंनिभाः ॥ ११ ॥ केचित्कदंशपुष्पाभाः केचि-
त्सद्धार्थकोपमाः ॥ शिरःपार्श्वासकटचूरुक्षणाभ्यधिकव्य-
था ॥ १२ ॥ क्षवथूद्धरविष्टभृहद्यहारोचकप्रदाः ॥ कास-
श्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः ॥ १३ ॥ तैरात्तो ग्रथितं
स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् ॥ रुक्फेनपिच्छानुगतं विवद्धमुप-**

वेश्यते ॥ १४ ॥ कृष्णत्वङ्गनखविषमूत्रनेत्रवलक्ष्म जायते ॥
गुल्मपुष्टीहोदराष्ट्रीलासंभवस्तत एव च ॥ १५ ॥

भाषा—वाताधिक्यसे गुदाके अंकुर सूखे (सावराहित), चिमचिम पीडायुक्त, सुरक्षाये हुए, काले, लाल, टेढे, विशद, कर्कश, खरदरे, एकसे न होय, बांके, तीखे, फटे मुखके, कंदूरी, वेर, खजूर, कपासके फलसदृश होय, कोई कदंबके फूलसमान हों, कोई सरसोंके सदृश हों, शिर, पसवाडे, कन्धा, कमर, जांघ, पेड़ इनमें आधिक पीडा हो, छींक, डकार, दस्तका न होना, हृदय पकडासा मालूम हो, अरुचि, खांसी, श्वास, आग्रिका विषम होना सर्थात् कभी अन्न पचे कभी नहीं पचे, कानोंमें शब्द होय, भ्रम होय, उस बवासीरकरके पीडित मनुष्यके पत्थरके समान थोड़ा शब्दयुत और वातकी प्रवाहिकाके लक्षणसंयुक्त शूल ज्ञाग चिकटा इन लक्षणसंयुक्त हौले हौले दस्त होय, उस मनुष्यकी त्वचाका रंग तथा नख, विष्ठा, मूत्र, मुख ये काले होय, गोला, तापातिष्ठी, उदररोग, अष्टीला (वातकी गाठ) ये रोगोंके उप-द्रव इस वातकी बवासीरमें होते हैं ॥

पित्तकी बवासीरके लक्षण ।

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीता श्वितप्रभाः ॥ तन्वस्त्रस्त्राविणो
विस्त्रास्तनवो मृदवः श्वथाः ॥ १६ ॥ शुकजिह्वयकृत्खंडज-
लौकावक्तसन्निभाः ॥ दाहपाकज्वरस्वेदतृष्ण्छर्षारुचिमोहदाः
॥ १७ ॥ सोष्माणो द्रवनीलोष्पीतरक्तामवर्चसः ॥ यवमध्या
हरितपीतहारिद्रत्वङ्गनखादयः ॥ १८ ॥

भाषा—मस्सोंका मुख नीला, लाल, पीला और सुपेदाई लिये होवे, उन मस्सोंमें से महीन धारसे रुधिर चुचाय और रुधिरकी वास आवे, महीन और कोमल तथा शिथिल और उनका आकार तोतेकी जीभ कलेजा और जोंकके मुखके समान हो, देहमें दाह हो, गुदाका पकना, ज्वर, पसीना, प्यास, मूर्छा, अरुचि और मोह ये होवें और हाथके स्पर्श करनेसे गरम मालूम होवे और जिसके मलका द्रव नीला, पीला, लाल, गरम, आमसंयुक्त होय, जबके समान बीचमें मोटे हों और जिसके त्वचा, नख, नेत्रादिक हरे पीले हरतालके समान और हल्दीके समान होवें ये लक्षण पित्ताधिक बवासीरके हैं ॥

कफकी बवासीरके लक्षण ।

श्लेष्मोल्पणा महामूलां घना मन्दरुजः सिताः ॥ उत्सन्नोपचिताः

१ “ सामान्यतो बवासीरा रीही खूनी द्विधा भवेत् । खूनी जपि च वातस्य विना नेपं न संभवेत् ॥ ” इति यवनशास्त्रे ।

स्तिंग्धाः स्तव्या वृत्तगुरुस्थिराः ॥ १९ ॥ पिच्छिलाः स्तिमि-
ताः शुक्षणाः कंड्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः ॥ करारपनसास्थयाभा-
स्तथा गोस्तनसन्निभाः ॥ २० ॥ वंक्षणानाहिनः पायुवस्तिना-
भिविकर्षिणः ॥ सश्वासकासहल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ॥ २१ ॥
मेहकूच्छशिरोजाङ्घशिरञ्जवरकारिणः ॥ क्लैब्यायिमादवच्छद्दिं-
रामप्रायविकारदाः ॥ २२ ॥ वसाभाः सक्षफप्रायपुरीषाः सप्र-
वाहिकाः ॥ न स्वर्वंति न भिद्यन्ते पाण्डुस्तिंगधत्वगादयः ॥ २३ ॥

भाषा-कफकी बवासीरके लक्षण ये हैं जैसे कि गुदाके मस्से महामूल (द्वूर्धातुके प्रति जानेवाले), कठिन, मन्द पीड़के करनेवाले, सपेद, लंबे, मोटे, चिक्ने, करडे, गोल, भारी, स्थिर, गाढ़े, कफसे लिपटे, मणिके समान स्वच्छ, खुजली बहुत होय और प्यारी लगे, करील कटहर इनके कांटेके समान होय, गायके थनके सद्वश होय, पेड़में अफरा करनेवाले, गुदा मूत्रस्थान और नाभि इनमें पीड़ा करनेवाले, श्वास, खांसी, ओकारी, लारका टपकना, अरुचि, पीनस इनको करनेवाले, प्रमेह, मूत्रकुच्छ, मस्तकका भारी होना, शीतज्वर, नपुंसकपना, आयिका मन्द होना, वमन और आम जिनमें बहुत ऐसे अतिसार, संग्रहणी आदि रोग करनेवाले, वसा (चर्वी) और कफ मिला दस्त होवे, प्रवाहिका उत्पन्न करनेवाले और मस्सोंमेंसे रुधिर न निकले, गाढ़ा मल होनेसेभी मस्से न फूटे और शरीरका रंग पीला और चिकना होय ये कफकी बवासीरके लक्षण हैं ।

सन्निपात और सहज बवासीरके लक्षण ।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च ॥

भाषा-जो पूर्व बातादि तीनों दोषोंकी बवासीरके लक्षण कहे वे सब लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातकी बवासीर जानना और येही लक्षण सहज बवासीरके हैं ॥

रक्तार्दिके लक्षण ।

रक्तोल्बणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ॥ २४ ॥ वट-
प्ररोहसदृशा गुंजाविदुमसन्निभाः ॥ तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्टं च
गाढविट्कपर्पीडिताः ॥ २५ ॥ स्वर्वंति सहसा रक्तं तस्य चा-
तिप्रवृत्तितः ॥ भेकाभः पीछ्यते दुःखैः शोणितक्षयसंभवैः
॥ २६ ॥ हीनवर्णबलोत्साहो इतौजाः कलुषेन्द्रियः ॥ विट-
इयावं कठिनं रुक्षमधोवायुर्गच्छति ॥ २७ ॥

भाषा—गुदाके मस्सोंका रंग चिरमिटीके समान होवे अथवा बटके बंकुरसे हों और पित्तकी बवासीरके लक्षण जिसमें मिलत हाँ, मूँगेके सदृश हों और दस्त कठिन उतरनेसे मस्से दबें तब उन मस्सोंमेंसे दुष्ट और गरमागरम रुधिर पड़े और रुधिरके बहुत पड़नेसे वर्षाक्रिह्यके मेंडकके समान पीला रंग हो जाय । रुधिरके निकलनेसे (जो ग्राट त्वचाका कठोरपना, नाड़ीका शिथिलपना और खट्टी वस्तु तथा शीतकी इच्छा इत्यादि दुःख तिनसे पीड़ित होय), हीनवर्ण, बल, उत्साह पराक्रमका नाश होय, सम्पूर्ण इन्द्रियोंका व्याकुल होना, उसका काला, कठिन और रुख ऐसा मल होय, अपानवायु सरे नहीं ये लक्षण रुधिरकी बवासीरके जानने चाहिये ॥

अब इसी रक्तार्शनिदानके बातादिभेदकरके लक्षण ।

ततु चासृणवर्णं च फेनिलं चासृगर्शसाम् ॥

कटचरुगुदशूलं च दौर्बल्यं यदि चाधिकम् ॥

तत्रानुबंधो वातस्य हेतुर्यादि च रुक्षणम् ॥ २८ ॥

भाषा—बवासीरमेंसे रुधिर थोड़ा, असृणवर्ण और ज्ञागसंयुक्त निकले और कमर जांघ और गुदा इनमें दर्द होवे । यदि दुर्बलता विशेष हो जावे और उसमें कोई रूप हेतु पहुँचा होवे तौ इस रक्तार्शके बातको सम्बन्ध है ऐसा जानना ॥

कफसंबंधके लक्षण ।

शिथिलं श्वेतपीतं च विद्विश्विधं गुरु शीतलम् ॥ यद्यर्शसां घनं

चासृकंतुमत्पाङ्कु पिच्छलम् ॥ २९ ॥ गुरुं सपिच्छं स्तिमित्तं गुरु

श्विधं च कारणम् ॥ क्षेष्मानुबंधो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधेः ३०

भाषा—जिसमेंसे शिथिल, सफेद, पीला, चिकना, भारी और शीतल ऐसा दस्त होवे और जिसका रुधिर गाढ़ा, तंतुयुक्त, पीला तथा बछलेयुक्त निकले और गुदा बबलेयुक्त गीली होवे और भारी चिकनी ऐसे कोई कारण होवे तौ उस रक्तार्शको कफका सम्बन्ध जानना । शंका—क्योंजी ! पित्तके अनुबन्धकी बवासीर क्यों नहीं कही ? उत्तर—रक्तके और पित्तके प्रायःकरके समान लक्षण होनेसे नहीं कहे । क्योंकि पहले २४ के क्षेत्रमें कह आये हैं कि “ पित्ताकृतिसमन्विताः ” इति ॥

बवासीरका पूर्वरूप ।

विष्टंभोऽन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोपे एव च ॥ कार्यमुद्गारवाहुल्यं

सविथसादोऽल्पविद्कता ॥ ३१ ॥ ग्रहणीदोषपांदृतैराशंका-

चोदूरस्य च ॥ पूर्वरूपाणि निर्देष्टान्यर्शसामाभिवृद्धये ॥ ३२ ॥

भाषा-अन्नका परिपाक अच्छी तरह होय नहीं, अब कूखमें रहे, देहमें दुर्बलता हो, कूखमें अफरा हो, अग्र मंद हो जावे, ढकार बहुत आर्वे, जंघामें पीड़ा, थौड़ा दस्त उतरे, संग्रहणी और पांडुरोगकी भ्रांति होना, क्योंकि इनके लक्षण मिलते हैं और उदरोगकी शंका होना यह लक्षण होवें तब जानना कि इस पुरुषके बवासीर रोग होवेगा ॥

शंका-केवल गुदामें दोषोंके कोपसे बवासीर रोग होय है फिर सब देहमें कृशत्व और काला हो जाना कैसे होता है ?

उत्तर ।

पंचात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलिङ्गंये ॥ सर्वं एव प्रकुप्यंति
गुदजानां समुद्धवे ॥ ३३ तस्मादशांसि दुःखानि बहुव्याधिक-
राणि च ॥ सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च ॥ ३४ ॥

भाषा-प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान इन पांच प्रकारकी वायुके हृदय, गुदा, नाभि, कंठ और सर्व देह ये क्रमसे स्थान हैं तथा आलोचक, रंजक, साधक, पाचक, भ्राजक इन भेदोंसे पित्त पांच प्रकारका है। इनके स्थान आलोचक नेत्रोंमें, रंजक यकूत् और प्लीहामें साधक हृदयमें, पाचक पक्षाशय और आमाशयमें, भ्राजक त्वचामें रहता है ऐसेही कफभी अवलुंपक, क्लेदक, वोधक, तर्पक और श्लेषक इन पाच भेदके क्रमकरके हृदय, आमाशय, जीभ, मस्तक और सन्धि इन पांच स्थानोंमें रहता है। इस प्रकार सर्व दोष अपने अपने पांच पांच स्वरूपसे कुपित होते हैं, इससे यह रोग (बवासीर) बहुत दुःखकारक और अनेक प्रकारकी व्याधि (उदर और आग्निमांद्य इत्यादि उपद्रव) कर्ता सर्व देहको क्लेशदायक और विशेषकरके कृच्छ्रसाध्य तथा असाध्य जानना ॥

सुखसाध्यके लक्षण ।

बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्बणानि च ॥

अशांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥ ३५ ॥

भाषा-बाहरके आटोंमें भई हो, एक दोषोल्बण होय और जिसको एक वष व्यतीत न भया हो ऐसी बवासीर सुखसाध्य है ॥

कृच्छ्रसाध्यके लक्षण ।

द्वंद्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च ॥

कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥ ३६ ॥

१ गुदाके तीन आटोंमें बवासीरके मस्से प्रगट होनेसे पांच प्रकारकी वायु, पांच प्रकारका पित्त, पांच प्रकारका कफ ये सब दोष कुपित होते हैं ।

भाषा—दो दोषोंसे प्रगट भई हो और दूसरी वलि (आंटे) में होय और जिसको एक वर्ष व्यर्तीत हो गया हो ऐसी बवासीरके मरसे कृच्छ्रसाध्य होय हैं और जो बाहरकी वलिमें द्विदोषोल्वण होय और एक दोषोल्वण दूसरी वलि (दूसरे आंटे) में होवे तौ यहभी कृच्छ्रसाध्य जानना ॥

असाध्यके लक्षण ।

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरावालिम् ॥

जायंते इश्वासि संश्रित्य तान्यसाध्याति निर्दिशेत् ॥ ३७ ॥

भाषा—सहज कहिये जन्म होनेके समयसे जो होय अथवा तीन दोषोंसे प्रगट भई हो और जो तीसरा अंतका आंटा है उसमें भई हो सो बवासीर असाध्य जानना ॥

याप्यलक्षण ।

शेषत्वादायुषस्तानि चतुःपादुसमन्विते ॥

याप्यंते दीप्तकायामौ प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ॥ ३८ ॥

यदि असाध्य बवासीर होय और उस रोगीकी आयुष्य वाकी होय और चतुःपाद सम्पत्ति (वैद्य, औषध, परिचारक और रोगी ये जैसे चाहिये ऐसे) होवे तौ और रोगीकी जठराग्नि प्रदीप होवे तौ रोगी याप्य जानना और इससे विपरीत होवे तौ रोगीको वैद्य छोड देवे ॥

रोगी, वैद्य, औषध, सेवक इनके लक्षण ।

वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषजं परिचारकः ॥

एते पादाश्चिकित्सायाः कर्मसाधनहेतवः ॥ ३९ ॥

भाषा—वैद्य, रोगी, औषध और सेवक ये कर्मसाधनहेतु चिकित्साके पाद हैं ॥

तत्रादौ वैद्यलक्षण ।

तत्त्वाधिगंतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयं कृती ॥ लघुहस्तः शचिः

शूरः सज्जोपस्कृतभेषजः ॥ ४० ॥ प्रत्युत्पन्नमतिष्ठीमान्य-

वसायी प्रियंवदः ॥ सत्यधर्मपरो यश्च वैद्य ईद्वप्रशस्यते ॥ ४१ ॥

भाषा—गुरुसे मछे प्रकार शावको पढ़ा हो और दूसरे वृद्ध वैद्यकी चिकित्सा अर्थात् इलाज जिसने देखा होय और आप चिकित्सा करनेमें चतुर होय तथा सिद्धहस्त अर्थात् जिस रोगीका इलाज करे सो शीघ्र बच्छा हो जावे, पवित्र रहे, शूर हो, श्रेष्ठ औषधि, चन्द्रोदय आदि रसादि सामग्री जिसके समीप रहा करे, तत्काल जिसकी बुद्धि स्फुरणवाली होय, बुद्धिमान् संसारके व्यवहारको जाननेवाला

होय, प्रियवचन बोलनेवाला, सत्य और धर्मका आचरण करनेवाला ऐसा वैद्य प्रशसाके योग्य होता है ॥

निषिद्धवैद्यके लक्षण ।

कुचैलः कर्कशः स्तब्धः कुग्रामी स्वयमागतः ॥

पंच वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरिसमा आपि ॥ ४२ ॥

भाषा—मैले वस्त्रवाला, बुरा बोलनेवाला, अभिमानी, व्यवहारमें न समझे और जो चिना बुलाये आवे ये पांच वैद्य श्रीधन्वंतरिके समानभी हों तौभी पूजने योग्य नहीं हैं ॥

रोगीके लक्षण ।

आयुष्मान्सत्ववान्साध्यो द्रव्यवानात्मवानपि ॥

उच्यते व्याधितः पादो वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ ४३ ॥

भाषा—आयुवाला, बलयुक्त, साध्य, द्रव्यवान्, ज्ञानी, वैद्यका आज्ञाकारी और आस्तिक ऐसा रोगी होना चाहिये ॥

उत्तम औषधके लक्षण ।

प्रशस्तदेशसंभूतं प्रशस्तेऽहनि चोद्धतम् ॥

अल्पमात्रं बहुगुणं गंधवर्णरसान्वितम् ॥ ४४ ॥

भाषा—उत्तम स्थानमें प्रगट भई होय और शुभ दिनमें उसको उखाड़ी होय, योड़ी मात्रा देनेसे बहुत गुण करे, दुर्गंधरहित, उत्तम स्वरूप और रसयुक्त होय सो औषध उत्तम है ॥

दुष्ट औषधके लक्षण ।

वल्मीककुत्सितान्नपङ्गमशानोषरमार्गजाः ॥

जंतुवह्निहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसाधिकाः ॥ ४५ ॥

भाषा—इतने स्थानकी औषध कार्यकर्ता नहीं होती हैं। वांवी, खोटी धरतीकी, जलके समीपकी, इमशानकी, ऊसरकी, जहां रह चूना निकलता होय वहांकी और रास्तेकी, कीड़ोंकी खाई, आग्निसे जरी भई, जाडेकी मारी ऐसी औषध कार्य करनेवाली नहा होती है ॥

दूतके लक्षण ।

स्त्रिगधोऽज्ञुगुप्सुर्वलवान्युक्तो व्याधितरक्षणे ॥

वैद्यवाक्यकृदश्रांतः पादः परिचरः स्मृतः ॥ ४६ ॥

भाषा—नवीन अवस्थाका, बलवान्, रोगीकी, रक्षा करनेमें तत्पर होय, वैद्यके

वचनका करनेवाला होवे, आलस्यरहित ऐसा परिचारक अर्थात् दूत होय । इन पूर्वोक्तको चतुष्पाद सम्पत्ति कहते हैं सो यह आयुःशेषके बिना नहीं मिलते ॥

उपद्रवसे असाध्यत्व कहते हैं ॥

हस्ते पादे गुदे नाभ्यां मुखे वृषणयोस्तथा ॥

शोथो हृत्पार्श्वशूलं च तस्यासाध्योऽर्शसो हि सः ॥ ४७ ॥

भाषा—जिसके हाथ पैर गुदा नाभि मुख और अंडकोश इनमें सूजन हो, हृदय और पसवाडे दूर्खे वह रोगी असाध्य जानना ॥

हृत्पार्श्वशूलं संमोहश्छिरंगस्य रुग्ज्वरः ॥

तृष्णा गुदस्य पाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम् ॥ ४८ ॥

भाषा—हृदय और पसवाडोंमें दर्द होय, इन्द्रिय और मन इनमें मोह होय, वमन, अंगोंमें पीड़ा होय, ज्वर, प्यास, गुदाका पक्ना अर्थात् गुदाके ऊपर पीले फोड़ा ये लक्षण होनेसे बवासीरवाला रोगी असाध्य जानना ॥

तृष्णारोचकशूलात्तमतिप्रसृतशोणितम् ॥

शोथातिसारसंयुक्तमशांसि क्षपयन्ति हि ॥ ४९ ॥

भाषा—प्यास अरुचि शूल इनसे पीडित व जिसके अत्यन्त रुधिर वहे और सूजन अतिसार ये होंय उस रोगीको बवासीर नाश कर देती है ॥

मेद्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजान्यपि ॥

गङ्गूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि सृदूनि च ॥ ५० ॥

भाषा—मेद्र कहिये लिंग, आदि शब्द करके नाक कान इत्यादि स्थानोंमें दोषमेद्र करके बवासीर होती है सो आगे कहेंगे । उसी प्रकार नाभिस्थानमें भी अर्शरोग होता है वह केंचुएके मुखके समान गाढ़ा और नरम होता है ॥

चर्मकीलकी संप्राप्ति ।

व्यानो गृहीत्वा श्वेषमाणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः ॥

कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तद्विदुः ॥ ५१ ॥

भाषा—ध्यान वायु कफको लेकर त्वचामें कीलके सदृश स्थिर और खरदरी ऐसी बवासीरको करे उसको चर्मकील कहते हैं । “त्वचो बहिः” इसके कहनेसे गुद्धां होठका त्याग कहा है ॥

वातादि भेदकरके उसके लक्षण ।
वातेन तोदपारुष्ये पित्तादुतिसरक्तता ॥
श्लेषणा स्त्रियधता चास्य ग्रथितत्वं सर्वर्णता ॥ ६२ ॥

भाषा—वातसे सुईके त्रुमानेसे जैसी पीड़ा होय ऐसी पीड़ा हो पित्तसे कठोरता, कफसे काला और कुछ लाल तथा चिकनी गांठके समान, देहके वर्णके समान वर्ण होवे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषादीकार्यां
अर्शरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथाग्निमार्द्यनिदानम् ।

अर्शरोगसे मन्दाग्नि होती है इसीसे मन्दाग्निरोगको कहते हैं ।
मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्वेति चतुर्विंधः ॥
कफपित्तानिलाधिक्यात्तसाम्याज्ञाठरोऽनलः ॥ १ ॥

भाषा—मनुष्यके कफकी प्रकृतिसे मंदाग्नि, पित्तकीसे तीक्ष्णाग्नि, वातकी प्रकृतिसे विषमाग्नि तथा वात, पित्त, कफ इनके समान होनेसे समाग्नि होती है । ऐसे आग्नि चार प्रकारकी है । इसमें मन्दाग्निका दुर्जय होनेसे प्रथम कही और जाठर शब्द कहा नेसे धातुकी आग्निका त्याग जानना ॥

अजीर्णरोग ।

विषमो वातजान्तरोगस्तीक्ष्णः पित्तानीमेत्तजान् ॥

क्ररोत्यग्निस्तथा मन्दो विकारान्कफसंभवान् ॥ २ ॥

भाषा—विषमाग्नि वातजन्य ८० रोगोंमेंसे किसी रोगको प्रगट करे और सामान्य ज्वरातिसारादिको प्रगट करे । तीक्ष्णाग्नि पित्तके ४० रोगोंमेंसे किसी रोगको प्रगट करे । उसी प्रकार मन्दाग्नि कफजन्य २० रोगोंमेंसे किसी रोगको पैदा करे और आलस्यादिको उत्पन्न करे ॥

समाध्यादिकोंके लक्षण ।

**समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते ॥ स्वल्पापि नैव
 मन्दाग्नेर्विषमाग्नेरस्तु दोहिनः ॥ ३ ॥ कदाचित्पच्यते सम्यक्क-
 दाचिन्न विपच्यते ॥ मात्रातिमात्राप्यशिता सुखं यस्य विप-
 च्यते ॥ तीक्ष्णाग्निरिति तं विद्यात्समाग्निः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ४ ॥**

भाषा-समाग्रिवाले पुरुषके यथोचित आहार भले प्रकार पचन होता है और मन्दाग्रिवाले पुरुषके थोड़ाभी आहार यथार्थ नहीं पचता और विषमाग्रिवाले मनुष्यका कभी अच्छी तरहसे अन्न पचे और कभी नहीं पचे और बहुत भोजन करामी जिसके सुखपूर्वक पच जावे उसको तीक्षण अग्रि कहते हैं । इन चारों प्रकारकी अग्रिमे समाग्रि उत्तम है । तीक्षणाग्रिके कहनेसे भस्मकका ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि अत्यन्त तीक्षणाग्रिको भस्मक कहते हैं उसके लक्षण चरकर्म कहे हैं ॥

यथा ।

**नरे क्षीणकक्षे पित्तं कुपितं मारुतानुगम् ॥ ६ ॥ सोष्मणा
पाचकस्थाने बलमग्रे: प्रयच्छति ॥ तदा लब्धवलो देहं
रूक्षयेत्सानिलोऽनलः ॥ ६ ॥ अभिभूय पयत्यन्नं तैक्षण्या-
दाशु मुहुर्मुहुः ॥ पक्त्वान्नं स ततो धातुच्छोणितादीन्पच-
त्यपि ॥ ७ ॥ ततो दौर्बल्यमातंकं मृत्युं चोपानयेत्परम् ॥
भुक्तेऽन्ने लभते शांतिं जीर्णमात्रे प्रताम्यति ॥ तृट्कासदा-
हमोहाः स्युव्याधयोऽत्ययिसंभवाः ॥ ८ ॥**

भाषा-क्षीण कफवाले पुरुषका कफ कुपित हो वायुसे मिलकर ऊष्माके साथ पाचकस्थानमें जाकर अग्रिको बल देवे तब जठराग्रि वातकी सहायता पाकर प्रबल होकर देहको रुक्खा कर देवे और उसके जोरसे वारंवार अन्नको पचावे । अन्नको पचाय पीछे रुधिर आदि धातुर्बोको पचावे । रुधिर आदिके पचनेसे देहमे दुर्बलताका रोग और मृत्युको मनुष्य प्राप्त होवे । जब अन्नको खावे तब तौ शांति हो जाय और जब अन्न पच जाय तब मूर्च्छित होय । प्यास, खांसी, दाह, मोह अर्थात् कुछ सुध न रहे ये रोग अत्यन्त अग्रिसे होते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममायुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषार्टीकायां
अग्रिमांद्यनिदानं समाप्तम् ।

अथाजीर्णनिदानम् ।

अग्रिमांद्य और अजीर्ण इनका परस्पर कारण है इसीसे अग्रिमांद्यके पीछे अजीर्णनिदानको कहते हैं ।

आमं विद्वधं विष्टव्धं कफपित्तानिलैखिभिः ॥ अजीर्णं कोचि-

**दिच्छंति चतुर्थे रसशेषतः ॥ १ ॥ अजीर्णं पंचमं केचिन्निर्दोषं
दिनपाकि च ॥ वदंति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम् ॥ २ ॥**

भाषा—मनुष्यके कफसे आम, पित्तसे विदग्ध, वातसे विषष्ठ ऐसे तीन प्रकारका अजीर्णरोग होता है और जो भोजन करा सो पक होय नहीं, रस शेष रहे सो रसशेषसे चतुर्थ अजीर्ण होय है और रात्रि दिनमें जो आहार पचे और जिसमें अफरा इडफूटन कुछ न होय ये पांचवां अजीर्ण किसीके मतसे है और जो नित्यही स्वाभाविक अजीर्ण रहे (विकृतिजन्य न होय) उसको छठा अजीर्ण कहते हैं इस अजीर्णके पचानेके अर्थ मुश्तुतमें वामपार्श्वशयनादिक उपाय कहे हैं सो करने चाहिये ॥

**भुक्त्वा शतपदं गच्छेद्वामपाइवैन संविशेत् ॥ शब्दद्वपरस्स्पर्शगं-
धांश्च मनसः प्रियान् ॥ भुक्त्वानुपसेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ॥ ३ ॥**

भाषा—भोजन करे पीछे सौ पैंड डोलना, वाई करवट शयन करना, अपने मनको प्रिय शब्द, रूप, रस, स्पर्श, सुगन्ध इनको सेवन करना इस प्रकार करनेसे अन्न भले प्रकार पचता है ॥

अजीर्णके कारण ।

**अत्यंबुपानाद्विषमाशानच्च संधारणात्स्वप्रविपर्याच्च ॥
कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ ४ ॥
ईर्ष्याभयकोधपरीक्षितेन लुब्धेन शुग्दैन्यनिपीडितेन ॥
प्रदेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक्परिपाकमेति ॥ ५ ॥**

भाषा—बहुत जल पीनेसे, भोजनके समयको छोड पीछे भोजन करनेसे, मल मूत्र आदिके बेगोंको रोकनेसे, दिनमें सोनेसे, रातमें जागनेसे, इन कारणोंसे भोजनके समय यदि लघु और शीतल पदार्थ खाय तो अच अच्छी रीतिसे नहीं पचे ये देहके कारण कहे । अब अजीर्णके कारण जो मनसे सम्बन्ध रखते हैं उनको कहते हैं । ईर्ष्या कहिये परद्रव्यको न देख सकना, डरना, क्रोध करना इन कारणोंसे तथा लोभ शोक दीनता इन कारणोंसे और मत्सरता करना इन कारणोंसे मनुष्यका भोजन करा भया अच भले प्रकार पचता नहीं है ॥

आमादिक अजीर्णोंके लक्षण ।

**तत्रामे गुरुतोत्क्लेदः शोथो गंडाक्षिकूटगः ॥
शुद्धारथ्य यथा भुक्तमविदग्धः प्रवर्तते ॥ ६ ॥**

भाषा—उन चारों अजीर्णोंमें प्रथम आमाजीर्णके लक्षण कहते हैं । वेद और अंग भारी होय, वमनका आना ऐसा प्रतीत हो, कपोल और नेत्रोंमें सूजन होवे और इसी अजीर्णके प्रभावसे जैसा भोजन करा होय मीठा आदि उसी प्रकारकी डकार आवे ॥

विद्युध्याजीर्णके लक्षण ।

विद्युधे भ्रमतृष्णमूच्छाः पित्ताच्च विविधा रुजः ॥

उद्धारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च यायते ॥ ७ ॥

भाषा—विद्युध अजीर्णमें भ्रम, प्यास और मूच्छाये लक्षण होते हैं और पित्तके अनेक रोग प्रगट हों तथा धूंएके साथ खट्टी डकार आवे, वेद पसीना आवे और दाह होय ॥

विष्टब्ध अजीर्णके लक्षण ।

विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः ॥

मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तंभो मोहोऽगपीडनम् ॥ ८ ॥

भाषा—विष्टब्ध अजीर्णके ये लक्षण हैं । शूल, अफरा, अनेक वातकी पीड़ा, मल और अधोवायुका रुक जाना, देह जकड़ जाय, मोह और देहमें पीड़ा हो ॥

रसशेष अजीर्णके लक्षण ।

रसशेषऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे ॥

भाषा—रसशेष अजीर्णके ये लक्षण हैं । अन्नमें असूचि, हृदयमें शुद्धि न होय और देह भारी होय ॥

अजीर्णके उपद्रव ।

मूच्छां प्रलापो वमयुः प्रसेकः सदूनं भ्रमः ॥

उपद्रवा भवत्येते मरणं चाप्यजीर्णतः ॥ ९ ॥

भाषा—मूच्छां, बडवड, ओकारी अर्थात् वमन, लारका गिरना, गलाने, भ्रम ये अजीर्णके उपद्रव हैं और बहुत बड़ा अजीर्ण मनुष्यको मारभी डालता है ॥

बहुत भोजनही अजीर्णका हेतु है उसीको कहते हैं ।

अनात्मवंतः पशुवद्दुंजते येऽप्रमाणतः ॥

रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवंति हि ॥ १० ॥

भाषा—जिन मनुष्यकी इन्द्रियें स्वाधीन नहीं हैं वे पशुके समान अप्रमाण भोजन करते हैं उन्होंके अनेक रोगोंका कारण अजीर्णरोग प्रगट होता है ॥

अजीर्णरोगसे विषूचिकारोगकी उत्पत्ति होय है इससे अजीर्णके अनंतर विषूचिकाको कहते हैं ।

अजीर्णमामं विष्टव्यं विदग्धं च यदीरितम् ॥

विषूच्यलसकौ तस्माद्वेच्चापि विलंबिका ॥ ११ ॥

भाषा-आम, विष्टव्य और विदग्ध ये जो अजीर्ण कहे हैं उनसे विषूचिका (हैजा), अलस और विलंबिका पैदा होय है। इनसे चौथा रसशेष अजीर्णको विषूच्यादिक उत्पादक नहीं लिखा है। इसका कारण यह है कि उस रसाजीर्णको अपरिणाममात्रत्वकरके विषूचिका आदिके आरंभत्व स्वभावादिकोपमतके कहनेसे आम, विदग्ध और विष्टव्य इनसे क्रमपूर्वक विषूचिका, अलस, विलंबिका ये प्रगट होते हैं। ऐसा कार्यक्रम कुण्ड आचार्य कहता है सो असत्य है क्योंकि विदग्ध-जीर्णको विलंबिकाका प्रगट करना असम्भव है क्योंकि उस विलंबिकाको आगे कफवातसे प्रगट कर्हेंगे और विदग्धभावको पित्तजन्यता है इससे यह मत मन्तव्य नहीं है। इसी कारण तीनों अजीर्ण मिलकर विषूचिका आदिको प्रगट करते हैं यह बकुल आचार्यका मत है ॥

विषूचिकाकी निरुक्ति कहते हैं ।

सूचीभिरिव ग्रात्राणि तुदन् संतिष्ठतेऽनिलः ॥

यत्राजीर्णे च सा वैद्यैर्विषूचीति निगद्यते ॥ १२ ॥

भाषा-जिस अजीर्णमें वादी देहको सुईके सद्वश पीड़ा देय अर्थात् सुईसी तुम्हे उसको वैद्य विषूचिका कहते हैं ॥

न तां परिमिताहारा लभते विदितागमाः ॥

शूदास्तामजितात्मनो लभते�शनलोलुपाः ॥ १३ ॥

भाषा-जिनका आहार परिमाणका है और जो वैद्यविद्याके कहनेपर चलते हैं उनके कदाचित् विषूचिकारोग नहीं दोय और जो अज्ञानी तथा जितकी इन्द्रिय वशमें नहीं और जो भोजनके लालची हैं ऐसे मनुष्योंको यह विषूचिकारोग अवश्य होय है ॥

विषूचिकाके लक्षण ।

मूर्च्छातिसारो वमथुः पिपासा शूलभ्रमोद्देष्टनजृभदाहाः ॥

वैवर्ण्यकंपौ हृदये रुजश्च भवति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥ १४ ॥

भाषा-मूर्च्छा, अतिसार, वमन, प्यास, शूल, भ्रम, जांघोंमें पीड़ा, जंभाई, दाह, देहका विवरण, कम्प, हृदयमें पीड़ा और मस्तकमें पीड़ा ये लक्षण हैं उसको विषूचिका कहते हैं। इसीको महामारी अथवा हैजा कहते हैं ॥

अलसके लक्षण ।

कुक्षेरानहृतेऽत्यर्थं प्रताभ्येत्परिकृजति ॥ निरुद्धो मारुतश्वेवं
कुक्षाभ्युपरि धावति ॥ १५ ॥ वातवच्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं
भवेदपि ॥ तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्ग्राहौ तु यस्य च ॥ १६ ॥

भाषा—कूखमें और पेटमें अफरा हो, मोह होय, पीड़ासे उकारे, पवन चलनेसे
झक्कर कूखमें और कंठादिस्थानोंमें फिरे, मल मूत्र और गुदाकी पवन रुके, प्यास
बहुत लगे, डकार आवे ये लक्षण जिसमें होय उसको अलसक रोग कहते हैं ॥

विलंबिकाके लक्षण ।

दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्तते नोर्वमधश्च यस्याम् ॥

विलंबिकां तां भृशदुश्चिकित्स्याभाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः ॥ १७ ॥

भाषा—जिस मनुष्यका भोजन करा भया अन्न कफवातकरके दूषित होय ऊपर
नीचे नहीं जाय अर्थात् वमन, विरेचन न होय उसको वैद्यविद्याके जाननेवाले जिसकी
चिकित्सा नहीं ऐसा विलंबिकारोग कहते हैं । कोई शंका करे कि अलसक और
विलंबिका इन दोनोंको वातकफके प्रवल होनेसे ऊपर नीचे प्रवृत्ति होती है इन दोनोंमें
भेद क्या है सो कहो । उत्तर—अलसकमें शूल आदिकी घोर पीड़ा होती है और विलं-
बिकामें नहीं हो इतनाही भेद है ॥

अजीर्णसं प्रगट विषूच्यादिको कहकर अजीर्णजन्य
आमके दूसरे कार्यात्मक कहते हैं ।

यत्रस्थमामं विरुज्जेतमेव देशं विशेषेण विकारजातैः ॥

दोषेण येनावततं शारीरं तल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च ॥ १८ ॥

भाषा—जिस ठिकानेपर आम रहता है उस ठिकानेपर जिस ढोपसे वह स्थान
न्यास हो उसके लक्षणभरके (पीड़ा, दाह, गौरव आदि) और आमजन्य विकार
करके (आमवादादिक) विशेष पीड़ा होती है । इससे जाना गया कि और ठिकानेपर
थोड़ी पीड़ा होती है और “ यत्र ” इस सर्वनाम शब्दसे कुपित भये वातादिकोंके
सदृश आमका कोई स्थान नहीं है यह दिखाया ॥

अव विषूचिका और अलसक इनके असाध्य लक्षण ।

यः इयावद्वतोष्टुनखोऽल्पसंज्ञो वम्यद्वितोऽभ्यंतरयातनेत्रः ॥

क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसंधिर्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाय ॥ १९ ॥

भाषा—जिस रोगीके दांत, नख, होंठ काले पड़ जावें और संज्ञा जाती रहे, वमनसे पीड़ित होवे और नेत्र भीतरको बैठ जाय, मन्दस्वर हो तथा हाथ पैरकी सान्धि ढीली पड़ जाय वह मनुष्य वचे नहीं । विलम्बिका स्वरूपसेही असाध्य है यह जर्यट आचार्यका मत है ॥

**निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञिता ॥ अमी उपद्रवा
घोरा विषूच्यां पञ्च दारुणाः ॥ २० ॥ प्रायेणाहारवैषम्यादृजीर्णे
जायते नृणाम् ॥ तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति ॥ २१ ॥**

भाषा—निद्राका नाश, मनका न लगना, कम्प, मूत्रका रुकना, संज्ञाका नाश ये विषूचिकाके घोर पांच उपद्रव हैं । वहुधा भोजनकी विषमतासे अजीर्णरोग मनुष्योंके होता है वही अजीर्ण सब रोगोंका कारण है उस अजीर्णरोगके नाश होनेसे सब रोगोंका नाश होता है । ये दोनों श्लोक क्षेपक हैं ॥

अजीर्ण जाता रहा उसके लक्षण ।

उद्धारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः ॥

लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ २२ ॥

भाषा—शुद्ध डकार आवे, शरीर मनका प्रसन्न होना, जैसा भोजन करा हो उसके सदृश मलमूत्रकी भले प्रश्नार प्रवृत्ति होना, शरोर हलका होय परन्तु कोष विशेष हलका हो, भूख और प्यास लगे, भोजन पचनेके उत्तर ये लक्षण होते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाथुरिमाधवार्थविधिनिर्दिकायामनीर्ण-
रोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ कृमिरोगनिदानम् ।



अजीर्णरोगसे कृमिरोग प्रगट होय है इसीसे अजीर्णरोगके अनन्तर कृमिरोग कहते हैं ।

कृमयस्तु द्विधा प्रोत्का वाह्याऽभ्यन्तरभेदतः ॥

बहिर्मलकफासृग्विद्वज्ञमभेदाच्चतुर्विधाः ॥ १ ॥

भाषा—कृमिरोग दो प्रकारका है । एक वाहरका, दूसरा भीतरका । तहाँ वाहरके मल (पसीना आदि) और कफ, रुधिर, विषा इन कारणोंसे वहिः कृमिरोग चार प्रकारका है ॥

बाह्यकृमिके नाम ।

**नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्धवाः ॥ तिलप्रमाणसंस्था-
नवर्णाः केशांवराश्रयाः ॥ २ ॥ बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च युकालि-
क्षादिनामतः ॥ द्विधा ते कुष्ठपिटिकाकंडूगंडान्प्रकुर्वते ॥ ३ ॥**

भाषा—वह कृमिरोगके वीस नामसे वीस भेद हैं । तहाँ बाहरके मलसे प्रगट कृमि तिलके प्रमाण, घेत, काली, केश और वक्षमें रहनेवाली होती है तथा बहुत पैरकी और छोटी जूँ लीब नामसे प्रसिद्ध दो प्रकारकी हैं । ये कृमि कोढ, पीडिका, खाज, गांठ इत्यादि रोग प्रगट करती हैं ॥

कृमिरोगका कारण ।

अजीर्णभोजीमधुरस्त्वानित्यो द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता ॥

व्यायामवर्जी च दिवाशयानो विरुद्धसुक्संलभते कृमर्स्तु ॥ ४ ॥

भाषा—अजीर्णमें भोजन करे, प्रतिदिन मीठा खट्टा खावे तथा पतला पदार्थ (जैसे कढी, रायता आदि) खावे, पीसा अच मैदा आदि और गुडके पदार्थ खावे और भोजन करके परिश्रम न करे, दिनमें सोवे, विरुद्ध भोजन जैसे दूध मछली आदिको खावे ऐसे पुरुषके कृमिरोग प्रगट होता है ॥

कौन कारणसे कौनसी कृमि प्रगट होती है ।

माषपिष्टान्नलवणगुडशाकैः पुरीषजाः ॥

मांसमाषगुडक्षीरदधिशूक्तैः कफोद्धवाः ॥

विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवंति हि ॥ ५ ॥

भाषा—उड्ड, पीसा अच (लड्डू, धेवर, गूँजा आदि), नोनके गुडके तथा शाक आदि ऐसे पदार्थ खानेसे मलकी कृमि प्रगट होती है । मांस उड्ड, गुड, दूध, दही, कांजी ऐसे पदार्थ खानेसे कफकी कृमि पैदा होती है । विरुद्ध पदार्थ जैसे दूध मछली और आधा कच्चा आधा पक्का शाक जैसे हरा चनेका आदि ऐसे भोजनसे रुधिरजन्य कृमि पैदा होती है ॥

पेटमें कृमि पड गई हों उसके लक्षण ।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ॥

भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजातकृमिलक्षणम् ॥ ६ ॥

भाषा—ज्वर हो, शरीरका रंग औरही प्रकारका हो जावे, शूल, हृदय दूखे, वमन—

कीसी इच्छा हो, भ्रम, भोजन बुरा लगे, दस्त होय ये लक्षण जिसके पेटमें गिंडोहा आदि कृमि पड़ जाते हैं उसको होते हैं ॥

कफकी कृमिके लक्षण ।

**कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पित सर्वतः ॥ पृथुब्रधनिभाः के-
चित्केचिद्दंडपदोपमाः ॥ ७ ॥ रुठधान्यांकुराकारास्तत्तु दीर्घ-
स्तथाणवः ॥ श्वेतास्ताप्रावभासाश्च मानतः सप्तधा तु ते ॥ ८ ॥
अंत्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महारुजः ॥ चुरवो दर्भकुसुमाः सु-
गंधास्ते च कुर्वते ॥ ९ ॥ हल्लासमास्यस्त्रवणभविपाकमरोच-
कम् ॥ मूर्च्छा च्छर्दिस्तृष्णानाहकाइर्यश्वयथुपीनसाक् ॥ १० ॥**

माषा—कफसे आमाशयमें प्रगट हुई कृमि जब बढ़ जाती है तब चारों तरफ डोलती है, कोई चामके सदृश, कोई गिंडोहेके आकार, कोई धान्यके अंकुरके समान होती है, कितनीही छोटी, बड़ी, चौड़ी होती है और किसीका वर्ण श्वेत, किसीका तामेके समान होय है, उन्होंके सात नाम हैं । सो इस प्रकार १ अंत्राद, २ उदरावेष्ट, ३ हृदयाद, ४ महारुज, ५ चुरु, ६ दर्भकुसुम और ७ सुगंध ये नाम कोई सार्थक हैं और कोई निरर्थक हैं । व्यवहारके निमित्त पहले आचार्योंने कहे हैं । इन कृमियोंसे वमनकी इच्छा होय, मुखसे पानी गिरे, अन्नका पाक न होना, अस्थि, मूर्च्छा, वमन, प्यास, अफरा, शरीर कृश होवे, सूजन और पीनस इतने विकार होते हैं ॥

रुधिरकी कृमिके लक्षण ।

**रक्तवाहिशिरास्थाना रक्तजा जंतवोऽणवः ॥ अपादा वृत्तताप्राश्च
सौक्ष्म्यात्केचिद्दर्शनाः ॥ ११ ॥ केशादा रोमविघ्वंसा रोम-
द्वीपा उदुंबराः ॥ षट् ते कुष्ठैक्कर्माणः सह सौरममातरः ॥ १२ ॥**

माषा—रुधिरकी बहनेवाली नाडियोंमें रुधिरसे प्रगट कृमि बारीक, पादरहित, गोल, तामेके रंगके होते हैं । कोई बहुत बारीक होते हैं वे देखनेसेभी नहीं दीखे । ये कृमि छः प्रकारकी हैं उनके नाम ये हैं । १ केशाद, २ रोमविघ्वंस, ३ रोमद्वीप, ४ उदुंबर, ५ सौरम और ६ मातर ये कुष्ठको पैदा करती हैं ॥

**पक्वाशये पुरीषोत्था जायंतेऽधो विसर्पिणः ॥ प्रवृद्धाः स्युर्भवे-
युश्च ते यदाऽमाशयोन्मुखाः ॥ १३ ॥ तदास्योद्गारनिःश्वासा
विङ्गंधानुविधायिनः ॥ पृथुवृत्ततनुस्थूलाः इयावपीतसिता-**

सिताः ॥ १४ ॥ ते पंच नाम्ना कृमयः कक्षेरुक्मकेरुक्माः ॥
सौसुरादा मलूनाश्च लेलिहा जनयंति च ॥ १५ ॥ विद्भेद-
शूलविष्टभकाश्यपारुष्यपांडुताः ॥ रोमहर्षाग्निसद्नगुदकंडू-
र्विमार्गंगाः ॥ १६ ॥

माषा-पक्षाशयमें विष्टसे प्रगट कृमि गुदाके मार्ग होकर बाहर निकसती हैं जब ये बढ़ जाती हैं तब आमाशयमें प्राप्त होकर डकार और श्वाससे विष्टाकीसी वास आने लगती है। ये कृमि बड़ी, छोटी, गोल, मोटी, रंगमें काली, पीली, सफेद, नीली होती हैं इनके पांच नाम हैं। १ कक्षेरुक, २ मकेरुक, ३ सौसुराद, ४ मलून, ५ लेलिह। जब ये कृमि मार्गको छोड़ अन्य मार्गमें जाते हैं तब इतने रोग प्रगट करे हैं। दस्तका पतला होना, शूल, अफरा, देहमें कृशता तथा देहमें कठोरता, पांडुरोग, रोमांच, मंदाग्नि और गुदामें खुजलीका होना ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाध्वार्थबोधिनीभाषाटीकाया कृमिरोगनिदान समाप्तम्।

अथ पाण्डुरोगनिदानम् ।

पांडुरोगाः स्मृताः पंच वातपित्तकफैख्यः ॥

चतुर्थः सञ्चिपातेन पंचमो भक्षणान्मृदः ॥ १ ॥

भाषा-मलसे प्रगट कृमिरोग पांडु (पीलिया) रोगको प्रगट करे है इसी कारण कृमिरोगके अनन्तर पांडुरोगका निदान कहते हैं। तदां प्रथम पांडुरोगकी संरूप्याल्प सम्प्राप्ति कहते हैं। १ वातका, २ पित्तका, ३ कफका, ४ सञ्चिपातका और ५ माटीके खानेसे। ऐसे पांडुरोग पांच प्रकारका कहा है।

पांडुरोगके कारण और सम्प्राप्तिके लक्षण ।

व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम् ॥

निषेव्यमाणस्य विदूष्य रक्तं दोषास्त्वचं पांडुरतां नयंति ॥ २ ॥

भाषा-आति मैथुन, खट्टे पदार्थका, भोजन, नोनका पदार्थ खानेसे, बहुत मद्य पीनेसे, मिट्टी खानेसे, दिनमें सोनेसे, अत्यंत तीखा पदार्थ खानेसे इन कारणोंसे तीनो दोष रुधिरको विगांड़ देहकी त्वचाको पीले रंगकी कर देते हैं। इस जगह रुधिरका तौ उपलक्षणमात्र है। रक्तके कहनेसे त्वचा, मांस इनको दूषित करते हैं। द्वारीतने रसको दूष्य कहा है दोष नाम वातादिक और दूष्य कहिये। रसरक्तादि ॥

पूर्वलिपि ।

त्वक्स्फोटनष्टीवनगात्रसादमृद्धक्षणप्रेशणकूटशोथाः ॥

विष्णुत्रयीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ३ ॥

भाषा—त्वचाका फटना, मुखसे वारंवार थूकला, अंगोंका जकड़ना, माटी खानेकी इच्छा, नेत्रोंपर सूजन, मल मूत्र पीले हों, अन्नका परिपाक न हो ये लक्षण पांडुरोग प्रगट होनवाला होय है तब होते हैं ॥

वातपांडुरोगके लक्षण ।

त्वद्भूत्रनयनादीनां रुक्षकृष्णारुणात्मता ॥

वातपांडामये कंपतोदानाहभ्रमादयः ॥ ४ ॥

भाषा—वातके पांडुरोगमें त्वचा, मूत्र, नेत्र इनमें रुक्षापना, कालापना और लाली होय है तथा कंप, सुई छेदनेकासा चुभना, अफरा, भ्रम, आदिशब्दसे मेद और शूलादिकभी होते हैं ॥

पित्तपांडुरोगके लक्षण ।

पीतमूत्रशक्त्वेत्रो दाहतृष्णाज्वरान्वितः ॥

भिन्नविद्यकोऽतिपीताभः पित्तपांडामयी नरः ॥ ५ ॥

भाषा—पित्तपांडुरोगके ये लक्षण होते हैं । मल मूत्र और नेत्र पीले हों, दाह, प्यास, ज्वर इनसे पीड़ित हों, मल पतला हो और उस रोगीके देहकी कांति अत्यंत पीली होती है ॥

कफपांडुरोगके लक्षण ।

कफप्रसेकश्यथुतन्द्रालस्यातिगौरवैः ॥

पांडुरोगी कफाच्छुक्तैस्त्वद्भूत्रनयनाननेः ॥ ६ ॥

भाषा—मुखसे कफका गिरना, सूजन, तन्द्रा, आलक्स, शरीरका भारी होना, त्वचा, मूत्र, नेत्र, मुख इनका सफेद होना इन लक्षणोंसे कफका पांडुरोग जानना । जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातका पांडुरोग जानना ॥

संन्निपातयुक्त पांडुरोगके असाध्य लक्षण ।

ज्वरारोचकहलासच्छादीतृष्णाकुमान्वितः ॥

पांडुरोगी त्रिभिर्दौषैस्त्याज्यः क्षीणो हत्तेद्रियः ॥ ७ ॥

भाषा—ज्वर, अरुचि, ओकारी, प्यास और कुम तथा बमन इतने उपद्रवयुक्त,

... त्रिदोषजन्य पांडुरोगी और क्षीण हो गया हो और जिस रोगीके इन्द्रियोंकी अपना अपना विषय ग्रहण करनेकी शक्ति जाती रही हो ऐसे रोगीको वैद्य त्याग दे ॥

मिट्ठी खानेसे प्रगट पांडुरोगके लक्षण ।

**मृत्तिकादनशीलस्य कुप्प्यत्यन्यतमो मलः ॥ कषाया मारुतं
पित्तमूषरा मधुरा कफम् ॥ ८ ॥ कोपयेन्मृद्रसादीर्थं रौक्षा-
दुक्तं च रूक्षयेत् ॥ पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्वयपि
॥ ९ ॥ इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजोवीर्यैंजसी तथा ॥ पांडुरोगं
करोत्याशु बलवर्णाश्रिनाशनम् ॥ १० ॥**

भाषा-मिट्ठी खानेका जिस मनुष्यको अभ्यास पड़ जाय उसके वातादिक दोष कुपित होवे, कैली माटीसे वात कुपित होय, खारी माटीसे पित्त और मीठी माटीसे कफ कुपित होवे । फिर वही मिट्ठी पेटमें जाकर रसादिक धातुओंको रुखा करे । जब रौक्ष्य गुण प्रगट हो जाय तब जो अन्न खाय सो रुखा हो जाय । फिर वही मिट्ठी पेटमें बिना पके रसको रस बहनेवाली नसोंमें प्राप्त करे । उनके मार्गको रोक दे । इसके बहनेवाली नसोंका मार्ग जब रुक जाय तब इन्द्रियोंका बल अर्थात् अपने अपने विषय ग्रहण करनेकी शक्ति नष्ट होय । शरीरकी कांति, तेज और ओज कहिये सब धातुओंका सार (हृदयमें रहता है सो) क्षीण होकर पांडुरोग प्रगट कर उसमें बल, वर्ण और अग्नि इनका नाश होता है ॥

विशेष लक्षण ।

शूनाक्षिकूटगंडभूः शूनपञ्चाभिमेहनः ॥

कूमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं चासृक्फान्वितम् ॥ ११ ॥

भाषा-नेत्र, कपोल, भृकुटी, पैर, नाभि और लिंग इनमें सूजन हो और कोठमें कूमि पड़ जाय तथा रुधिर और कफ मिला दस्त उतरे । सब पांडुरोगोंमें जब पेटमें कूमि पड़ जाय हैं तब ये पूर्वोक्त लक्षण होते हैं यह जग्यट आचार्यका मत है और कोई कहता है ये मृत्तिकाजन्य पांडुरोगके लक्षण हैं क्योंकि मृत्तिकाजन्य पांडुरोगके लक्षण अनंतर लिखे हैं परंतु विदेहने तो ये मृत्तिकाजन्य पांडुरोगके लक्षण स्पष्ट कहे हैं ॥

असाध्य लक्षण ।

पांडुरोगविरोत्पन्नः खरीभूतो न सिद्धयाति ॥ कालप्रकर्षा-

च्छूनांगो यो वा पीतानि पश्यति ॥ १२ ॥ बद्धाल्पविद् सहारे-
तं सकफं योऽतिसार्यते ॥ दीनः श्वेतातिदिग्धांगच्छार्द्दमूर्च्छां-
तृष्णान्वितः ॥ १३ ॥ स नास्त्यसृक्षश्याद्यस्तु पांडुः श्वेतत्वमा-
मुयात् ॥ पांडुदृनतखो यस्तु पांडुनेत्रश्च यो भवेत् ॥ १४ ॥
पांडुसंघातदर्शी च पांडुरोगी विनश्यति ॥ अंतेषु शूनं
परिहीनमध्यं म्लानं तथा तेषु च मध्यशूनम् ॥ १५ ॥ गुदे च
शेफस्यथ मुष्कयोश्च शूनं प्रताम्यं तगसंज्ञकल्पम् ॥ विवर्जये-
त्पांडुकिनं यशोर्धीं तथातिसारज्वरपीडितं च ॥ १६ ॥

माचा—बहुत दिनका पांडुरोग काल बहुत बीतनेसे पुराना हो जाय है सो अच्छा नहीं होय । अथवा सब देहमें सूजन आ गई होवे और उसको पदार्थ पीले दीखें सोभी असाध्य है । अथवा जिस मनुष्यका बंधा हुआ मल थोड़ा हरे रंगका कफ-मिश्रित उतरे सोभी असाध्य है । अथवा जो पुरुष दीन कहिये गुणियुक्त हो और जिसकी देहका श्वेत वर्ण हो और वमन, मूर्च्छा, प्यास इनसे पीडित होवे सो पांडु-रोगी नष्ट होवे । अथवा जो रुधिरक्षय होनेसे पांडुरोग उत्पन्न होय सोभी असाध्य है । जिसके दांत, नख और नेत्र पीले होय वह रोगी असाध्य है । जिसको सब पदार्थ पीलेही पीले दीखें वह रोगी मरे । हाथ, पैर, शिर इनमें सूजन हो और जिसका मध्य पतला होय ऐसा पांडुरोगी असाध्य है इससे विपरीत साध्य है । जिस रोगीके देहके मध्यमें सूजन हो और हाथ, पैर, शिर ये सूख जांय तथा गुदा, लिंग इनमें सूजन होय तथा मरेके समान हो गया होय ऐसे पांडुरोगीको जिस वैद्यको यशकी इच्छा हो सो त्याग दे । उसी प्रकार अतिसार और ज्वर इनसे पीडित रोगीको वैद्य त्याग देवे । परंतु इस अंतके क्षोकमें जो ‘पांडुकिनं’ यह पाठ है इस जगह “पानकिनं” ऐसा पाठ कोई आचार्य मानते हैं सो ठीक है । क्योंकि ऐसा पढ़नेसे पांडुरोगकी अवस्था अर्थात् पांडुरोगका भेद जो पानकी है उसकेभी लक्षण इस पाठसे आ गये । सो सुश्रूतमें लिखाभी है इसीका आशय लेकर किसीने लिखा है ॥

अंते शूनः कृशो मध्ये त्वथवा गुदशेफसि ॥
शूनो ज्वरातिसाराद्यैर्मृतकल्पस्तु पानकी ॥ १७ ॥

माषा-जिस मनुष्यके हाथ पैरपर सूजन होय और देहका मध्य कृश हो गया होय अथवा गुदा लिंगपर सूजन हो तथा ज्वर अतिसार करके मुर्दाके समान होय यह लक्षण पानकी रोगके हैं । पांडुरोगका भेद कामला है ॥

अय कामलाके लक्षण ।

**पांडुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते ॥ तस्य पित्तमसृ-
द्धमांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥ १८ ॥ हारिद्रनेत्रः स भृशो
हारिद्रत्वद्धनखाननः ॥ रक्तपित्तशक्त्वात्मौ भेक्खवर्णो हते-
द्रियः ॥ १९ ॥ दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः ॥
कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता ॥ २० ॥**

'भाषा-जो पाण्डुरोगी अत्यन्त पित्तशारक वस्तुओंका सेवन करे उसका पित्त रुधिर गांसको जलाय (दुष्ट कर) कामलारूप रोग प्रगट करनेको समर्थ होय । उस मनुष्यके नेत्र अत्यन्त पीले होंय, त्वचा, नख और मुख ये पीले होंय, मल मूत्र काले होंय अथवा पीले होंय वह मनुष्य वर्षाक्रित्तुके मेंडकके समान पीला होवे । इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट होय, दाह हो, अन्न पचे नहीं, दुर्बलता, अंगशुगानि, अन्नमें असुचि इनसे पीड़ित होय जिसमें पित्त प्रबल ऐसी यह कामला एक कोष्ठश्रय और दूसरी शाखा (रक्तादि धातु) आन्त्रित है । उसी प्रकार कामला स्वर्तंत्र होय है ॥ अब कहते हैं कि पांडुरोगकी उपेक्षा करनेसे ही कामलादिक होते हैं, उसीकी दूसरी अवस्था कुम्भकामला है ।

अय कुम्भकामलाके लक्षण ।

काञ्छांतरात्करीभूता कृच्छ्रात्स्यात्कुंभकामला ॥

माषा-वहुत कालसे पुरानी पड़नेसे जो कुम्भकामला होवे सो कृच्छ्रसाध्य होती है । कुम्भ कहिये कोष्ठ तद्दत जो कामला वर्यात् कोष्ठश्रय कामला ॥

असाध्य लक्षण ।

कृष्णपीतशक्त्वात्मौ भृशं शूनश्च मानवः ॥

संरक्षाक्षिमुखच्छार्दिविष्मूत्रो यश्च ताम्यति ॥ २१ ॥

माषा-जिस मनुष्यका मल काला और मूत्र पीला हो और शरीरपर सूजन विशेष होवे और नेत्र, मुख, वमन, मल और मूत्र ये अत्यंत लाल होंय, मोह होय वह कामलावान् रोगी बचे नहीं ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

दाहारुचितृडानाहतंद्रामोहसमन्वितः ॥

नष्टाग्रिसंज्ञः क्षिप्रं च कामलावान्विपद्यते ॥ २२ ॥

भाषा-दाह, अरुचि, प्यास, अफरा, तन्द्रा, मोह इन लक्षणयुक्त तथा मन्दाग्रि और विस्मृतिवान् कामलावाला रोगी तत्काल मरे ॥

कुंभकामलाके असाध्य लक्षण ।

छर्वरोचकहृष्णासज्वरकुमनिषीडितः ॥

नश्यति श्वासकासातों विट्भेदी कुंभकामली ॥ २३ ॥

भाषा-वमन, अरुचि, ओकारीका आना, ज्वर, अनायासश्रम इनसे पीडित तथा श्वास, खांसी इनसे जर्जरित और अतिसारयुक्त ऐसा कुम्भकामलावाला रींगी मर जावे ॥

पांडुरोगसे हलीमक रोग प्रगट होता है सो कहते हैं ।

यदा तु पांडुवर्णः स्याद्वरितः इयावपीतकः ॥

बलोत्साहक्यस्तन्द्रामंदाग्रित्वं मृदुज्वरः ॥ २४ ॥

स्त्रीष्वहृष्णोऽगमर्दश्च दाहस्तृष्णासुचित्र्यमः ॥

हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः ॥ २५ ॥

भाषा-जिस समय पांडुरोगीका वर्ण हरा, काला, पीला होय और चल व उत्साह इनका नाश, तन्द्रा, मन्दाग्रि, महीन ज्वर, स्त्रीसंभोगकी इच्छाका नाश, अंगोंका द्रूटना, दाह, प्यास, अन्नमें अप्रीति और भ्रम ये उपद्रव वातपित्तते प्रगट हलीमक रोगके हैं ॥

पानकीलक्षण ।

सन्तापे भिन्नवर्चस्त्वं बहिरन्तश्च पीतता ॥

पांडुता नेत्रयोर्यस्य पानकीलक्षणं भवेत् ॥ २६ ॥

भाषा-सन्ताप कहिये इन्द्रिय मन इनका ताप, मलका पतला होना, भीतर बाहर पीला हो जावे और नेत्रोंका पीला होना ये पानकी रोगके लक्षण हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषादीकार्या
पांडुकामलाहलीमकनिदानं समाप्तम् ।

अथ रक्तपित्तनिदानम् ।

पांडुरोगके सद्वशा रक्तपित्तकोमी पित्तजन्य होनेसे तदन्तर
रक्तपित्तनिदानको कहते हैं ।

धर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसोवितैः ॥ तीक्ष्णोष्णक्षार
वणैरम्लेः कटुभिरेव च ॥ १ ॥ पित्तं विदुर्गं खगुणैर्विदुर्ह-
त्याशु शोणितम् ॥ ततः प्रवर्तते रक्तमूर्ध्वं वाघो द्विधापि
वा ॥ २ ॥ ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णस्यैर्मेद्रयोनिगुदैरधः ॥ कुपितं
रोमकूपैश्च समस्तैरुत्प्रवर्तते ॥ ३ ॥

भाषा—धूपमें बहुत डोलनेसे, अति परिश्रम करनेसे, शोकसे, बहुत माग चलनेसे, अति मैथुन करनेसे, मिरच आदि तीखी वस्तु खानेसे, आश्विके तापनेसे, जवाखार आदि खारे पदार्थ, नोनसे आदि ले लवणके पदार्थ, खट्टी, कटुवी ऐसी वस्तुके खानेसे कोपको प्राप्त भया जो पित्त सो अपने तीक्ष्ण द्रव पूति इत्यादि गुणोंसे रुधिरको विगडे तब रुधिर ऊपरके अथवा नीचेके अथवा दोनों मार्ग होकर प्रवृत्त हो निकले । ऊपरके मार्ग नाक, कान, नेत्र, मुख इनके द्वारा निकले और अधोमार्ग कहिये लिंग, गुदा और योनी इनके रास्ते होकर निकले और जब रुधिर अत्यंत कुपित होय तब दोनों मार्ग और सब रोमाचोंसे निकले हैं ॥

पूर्वरूप ।

सदनं शीतकामित्वं कृष्णठधूमायनं वामिः ॥

लोहगंधिश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन्भविष्यति ॥ ४ ॥

भाषा—गलानि, शीतकी इच्छा, कठसे धुआं निकलना, वमन और तपाये मये लोहेपर जळ गेरनेसे जैसी गंध आवे ऐसी श्वास लेनेसे गंधका आना जिस मनुष्यमें इतने लक्षण मिलते होंय उसके जानना कि इसके रक्तपित्त प्रगट होवेगा ॥

कफयुक्त रक्तपित्तके लक्षण ।

सांद्रं सपांडु सस्नेहं पिच्छिलं च कफान्वितम् ॥

भाषा—सघन, कुछ पीला और कुछ चिकना तथा गाढ़ा ऐसा रक्तपित्त कफमिश्रित जानना ॥

वातिक रक्तपित्तके लक्षण ।

इयावारुणं सफेनं च ततु रुक्षं च वातकम् ॥ ५ ॥

भाषा—नीलबर्ण, लालबर्ण, कुछ झागयुक्त, पतला और खसा ऐसा रक्तपित्त वातका जानना ॥

पैतिक रक्तपित्तके लक्षण ।

रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसंनिभम् ॥

मेचकागरधूमाभमंजनाभं च पैतिकम् ॥ ६ ॥

भाषा—जो रक्तपित्त काढ़के रंगसमान हो, काली गौके मूत्रसमान हो अथवा मोरकी चन्द्रिकाके समान नीलबर्ण होय अर्थात् वैजनी रंगके सदृश होय, घरके घूँआंके सुर्माके समान होय ये पैतिक रक्तपित्तके लक्षण हैं । शंका—क्योंजी ! केवल पैतिक रक्तपित्त नहीं हो सके है कारण इसका यह है कि जैसे कफके रक्तपित्तका मार्ग कहा है इस प्रकार पैतिक रक्तपित्तका नहीं कहा । उत्तर—तुमने कहा सो ठीक है परंतु यह मार्ग जो कहा है सो वातकफके लक्षण प्रति नहीं कहा है ॥

द्विदोषजादि लक्षण ।

संसृष्टिंगं संसर्गात्त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥

ऊर्ध्वंगं कफसंसृष्टमधोगं मारुतान्वितम् ॥

द्विमार्गकफवाताभ्यासुभाभ्यासद्वर्त्तते ॥ ७ ॥

भाषा—दो दोषोंके मिलनेसे जो रक्तपित्त होय है उसमें दोनों दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्विदोषज जानना और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातका रक्तपित्त जानना । ऊपरके मार्गसे कफका और नीचेके मार्ग होका वातका और दोनों मार्गोंसे जो रक्तपित्त निकले सो वात और पित्त इन दोषोंसे प्रगट भया जानना ॥

ऊर्ध्वगादिकोंका साध्यासाध्य विचार ।

ऊर्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपदृतम् ॥ ८ ॥

भाषा—ऊपरके मार्गसे लोही निकले सो साध्य है क्योंकि कफसे प्रगट है सो कफसे रक्तपित्तमें काथ तीखे रस कफ पित्तके हरणकर्त्ता होते हैं और नीचेके मार्गसे जिसमें सुधिर गिरे सो याप्य (साध्यासाध्य) है । इसका कारण यह है कि पित्तके हरणमें विरेचन मुख्य है और इसपर वात पित्त शमन करनेवाला मधुर रस प्रधान है । वमन देनेसे विरुद्धमार्गी होय है अर्थात् वेगमात्रका अवरोधक है परंतु पित्तका हरण करनेवाला नहीं है और दोनों मार्गोंसे गिरनेवाला रक्तपित्त असाध्य है, कारण इसपर विरुद्ध विकिसा वरनी पड़ती है ॥

साध्य होनेके कारण ।

एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम् ॥

रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यात्प्रिरुपद्रवम् ॥ ९ ॥

भाषा—बलवान् पुरुषके एक मार्ग अर्थात् ऊपरके मार्गसे जाता होय, अतिवेग नहीं होवे, नवीन प्रगट मया होय और हेमन्त शिंशिर कालमें प्रगट मया हो और दुर्बलता आदि उपद्रवराहित होय ऐसा रक्तपित्त साध्य होय है ॥

दोषमेदसे साध्यासाध्य लक्षण ।

एकदोषानुर्गं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते ॥

त्रिदोषजमसाध्यं स्यान्मेदाश्चरतिवेगितम् ॥ १० ॥

व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्थानश्चतश्च यत् ॥ ११ ॥

भाषा—एक दोषका रक्तपित्त साध्य है, द्विदोषका याप्य है और तीनों दोषका असाध्य है । मन्दाभि अतिवेगसे होय. रोगसे क्षीण देहवालेका, बुढ़े मनुष्यका और जिसका आहार थक गया होय ऐसे मनुष्यका रक्तपित्त असाध्य होय है ॥

रक्तपित्तके उपद्रव ।

दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमथुमदाः पांडुता दाहमूर्छा

भुक्ते घोरो विदाइस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा ॥

तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठोवन्तव्यं

भक्तदेशाविपाकौ विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गाः ॥ १२ ॥

भाषा—अशक्तता, श्वास, खांसी, ज्वर, वमन, धतुरेके फल खानेसे जैसी अवस्था होय ऐसी अवस्था, शरीरका पीलावर्ण हो जावे, दाह, मूर्छा, अच्छ खानेसे अत्यंत दाह होय, अधीरजपना, सर्वकाल हृदयमें विलक्षण पीडा, प्यास, कोष्ठभेद अर्थात् मल पतला होय, मस्तकमें पीडा, हुर्गधयुक्त थूकना, अन्नमें अरुचि, आहारका परिपाक न होना ये रक्तपित्तके उपद्रव हैं और उसी प्रकार उस रक्तपित्तकी विकृतिभी होय है सो आगे “मासप्रक्षालनाभं” इत्यादि श्लोककरके कहते हैं ॥

असाध्य लक्षण ।

मांसप्रक्षालनाभं कथितमिव च यत्कर्दमांभोनिभं वा

मेदःपूयास्तकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजम्बूफलाभम् ॥

यत्कृष्णं यज्ञ नीलं भृशमतिकुण्पं यत्र चोक्ता विकारा-

स्तद्वज्यं रक्तपित्तं सुरपतिघनुषा यज्ञ तुल्यं विभाति ॥ १३ ॥

भाषा—जो रक्तपित्त मांस धोये हुए जलके समान हो अथवा सडे पानीके समान अथवा कीचके समान अथवा जलके समान, उसी प्रकार मेद राध रुधिर इनके समान, अथवा कलेजेके टुकड़ेके समान अथवा पकी जामनके समान किंवा काले रंगका किंवा नील कहिये पैपैया पक्षीके पंखके समान अथवा जिसमें मरे खटमल-कीसी वास आवे और जिसमें पूर्वोक्त कहे श्वासकासादि विकार युक्त हों ऐसा रक्तपित्त बर्जित है और जो रक्तपित्त इन्द्रधनुषके वर्णसमान रंगका हो सोभी त्यज्य है अर्थात् ऐसे रक्तपित्तकी वैद्य चिकित्सा न करे ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

यन चोपहृतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः ॥

पश्येद्दृश्यं वियज्ञापि तज्ञासाध्यमसंशयम् ॥ १४ ॥

भाषा—जिस रक्तपित्तने मनुष्यको ग्रस लिया होय वह दृश्य कहिये घटपटादि और अदृश्य कहिये आकाश इनको रक्तवर्णका देखे वह रोगी निःसन्देह असाध्य जानना ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

लोहितं छर्द्येद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः ॥

लोहितोद्भारदर्शी च म्रियते रक्तपैत्तिळः ॥ १५ ॥

भाषा—जो वारंवार रुधिरकी वमन करे और जिसके लाल नेत्र होंय तथा डकारमी लाल आवे सो रक्तपित्तवाला रोगी मर जावे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्भितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषार्थिकाया
रक्तपित्तनिदानं समाप्तम् ।

अथ राजयक्षमनिदानम् ।

वेगरोधात्क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात् ॥

त्रिदोषो जायते यक्षमा गदो हेतुचतुष्प्रयात् ॥ १ ॥

भाषा—वात, सूत्र, पुरीष आदि वेगोंके रोकनेसे, अतिमैथुन, उपवास, ईर्ष्या, खेद इत्यादिक धातुक्षयके कारणोंसे, बलवानसे वैर करनेसे, विषमाशन कहिये कुस-मय योड़ा अथवा बहुत भोजन करनेसे इन चार करणोंसे तीनों दोषोंके कोपसे मनुष्यके राजयक्षमारोग होय है । वेगका रोकनाही वातकोपका कारण है । यह सत्य है तथापि वातकोपसे अग्नि दुष्ट होकर कफपित्तका कोप होय है । इन चार हेतुओंमें

असंख्य हेतुओंका अन्तर्भव होता है । रसादि धातुओंके शोषण (मुखाने) से इस रोगको शोष कहते हैं । तथा शरीरमें पाचनादि सर्व क्रियाओंको क्षय करे है इसीसे इस रोगको क्षय कहते हैं । और राजा (चन्द्र) इस रोगसे अति पीडित भया इसीसे इसको राजयक्षमा कहते हैं । यह सुश्रुतका आशय है और वाग्मटने इसको सर्व रोगोंका राजा कहा है इसीसे इसको राजयक्षमा नाम कहा है । इस श्लोकमें जो कहा है कि त्रिदोषका एकही यक्षमारोग प्रगट होता है उसका तात्पर्य यह है कि तीनों दोषोंके कारणमेंदसे अनेक प्रकारका नहीं है सो सुश्रुतमें कहामी है और इस श्लोकमें “ वेगरोधात् ” इस पदसे केवल वात, मूत्र, मल इनकाही ग्रहण करना चाहिये । ऋगादिक सर्वोंका ग्रहण नहीं है सो चरकमें लिखा है इति ॥

राजयक्षमाकी विशिष्टसंप्राप्ति ।

कफप्रधानैदोषैस्तु रुद्धेषु रसवत्मसु ॥

आतिव्यवाधिनो वापि क्षीणे रेतस्यनन्तराः ॥

क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः क्षुष्यति मानवः ॥ २ ॥

भाषा—कफ है प्रधान जिनमें ऐसे वातादिक दोष तिनकरके रसके बहनेवाली नाडियोंके मार्ग रुक जानेसे (इससे यह सूचना करी कि रसमार्ग बंद होनेसे) हृदयमें स्थित जो रस उसको विगाढ और उसी स्थानमें विकृति कहिये और प्रकारका स्वरूप करके खांसीके वेगसे मुखमार्ग होकर निकाले । सो चरकमें लिखामी है इससे अनुलोमक्षय दिखाया । अब प्रतिलोम क्षय कैसा होता है उसको कहते हैं । अथवा अति मैथुन करनेसे मनुष्यका वीर्य क्षीण होता है । जब शुक्र क्षीण हो जाय तब समीपकी धातु क्षीण होय तब पुरुष सूखने लगे । जैसे शुक्र क्षीणके अनन्तर मज्जा क्षीण होय, मज्जा क्षीणके अनन्तर हड्डी क्षीण होय ऐसे, पूर्व पूर्व धातु क्षीण होय जाय । शंका—क्योंजी ! रस, रुधिर, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा, शुक्र इनमें क्रमसे प्रत्येकके क्षीण होनेसे शुक्रका क्षय होना उचित है परंतु कार्यभूत शुक्रका क्षय होनेसे कारणभूत धातुओंका नाश कैसे होय है ? उत्तर—जब शुक्रका क्षय होय है तब वात कुपित होता है सो तंत्रान्तरोंमें लिखा है अर्थात् धातुके नष्ट

१ “ सशोषणादसादीनां शोष इत्यभिधीयते । क्रियाक्षयकरत्वाच्च क्षय इत्युच्यते पुनः ॥
राजश्वेद्रमसो यस्माद्भूदेषः किलामयः । तस्माच्च राजयक्षमेति केचिदाहुर्मनोषिणः ॥ १
इति । २ “ एक एव मतः शोषः सन्निपातात्मको यतः । उद्रेकात्तव लिंगानि दोषाणां निर्मितानि हि ॥ ” इति । ३ “ ह्यमित्वाद्वा धृणित्वाद्वा भयाद्वा वेगमागतम् । वातसूत्र-
युरीषाणा निगृह्णाति यदा नरः ॥ ” इत्यादि । ४ रससे रुधिर, रुधिरसे मास इसी रीतिसे
शुक्रपर्यंत धातुओंका क्षय होय सो । ५ प्रतिलोम कहिये शुक्रसे रसपर्यंत धातुओंका शोष ।

होनेसे पवनको वहनेवाली नाडियोंका मार्ग बन्द होकर वायुको कुपित करे तब वही पवन समीपकी मज्जा धातुको सुखावे; तदनंतर हँडी और उसके पश्चात् मेदा इसी रीतिसे रसपर्यंत धातुओंको सुखावे है । इस जगहपर छष्टांत है जैसे अश्रिमें तपाया भया लोहका गोला गीली पृथ्वीमें धरनेसे प्रथम समीपकी पृथ्वीके आर्द्धपेनेको शोषण करे पीछे दूरका गीलापना शोषण करे उसी रीतिसे यहां जानना चाहिये ॥

पूर्वरूप ।

श्वासांगसादकफतंश्ववत्तालुशोषवम्यश्विसादमदपीनसक्षासनिद्राः ॥
शोषे भावेष्यति भवन्ति स चापि जंतुः शुचेभ्यो भवति मांस-
परो रिंसुः ॥ ३ ॥ ख्वप्रेषु काकशुकश्चलक्ष्मीलक्ष्मठगृध्रास्तथैव
क्षपयः कृक्लासकाश्च ॥ तं वाहयन्ति स नदीर्विजलाश्च पश्येच्छु-
ष्कांस्तस्तस्त्वन्पवनधूमदवाहितांश्च ॥ ४ ॥

भाषा—श्वास, हाथ पैरका गलना, कफका थूकना, तालुका सूखना, घमन, मन्दाग्नि, उन्मत्तता, पीनस, खांसी और निद्रा ये लक्षण धातुशोष होनेवालेके होते हैं और उस मनुष्यके नेत्र सफेद होते हैं और उस मनुष्यकी मांस खानेपर तथा ऊंसंग करनेपर इच्छा होती है और स्वप्नमें कौआ, तोता, सेह, नीलकंठ, गीध, बन्दर, करकटा इनपर अपनेको बैठा देखे और जलदीन नदीको देखे तथा पवन धूर और धूंआ इनके पीडित ऐसे वृक्ष देखे । चकारसे तृण, वेश आदिका गिरना ये होते हैं । ये सब स्वप्न क्षईगोग होनेके पहले दीखते हैं सो चरकमें लिखा है । शंका-क्योंजी ! शुक्रका तो क्षय हो जाय है फिर “ रिंसुः ” यह पद क्यों धरा ? उत्तर—यह केवल व्याधिके बढ़नेसे मनके दोषसे जानना चाहिये ॥

त्रिरूपक्षयके लक्षण ।

अंसपाश्रीभितापञ्च संतापः क्षरपादयोः ॥

ज्वरः सर्वैर्गमश्चैव लक्षणं राजयक्षमजः ॥ ५ ॥

भाषा—कन्धा और पसवांडोंमें पीड़ा, हाथ पैरमें जलन और सर्व अंगोंमें ज्वर ये राजयक्षमाके तीन लक्षण अवश्य होते हैं ऐसा चरकने कहा है ॥

१ “ पूर्वरूप प्रातश्यायो दार्वल्य दोषदर्शनम् । अदोषेष्वाप भावेषु काये बीमत्सदर्शनम् ॥ धृणित्वमश्तश्वापि वलमांसपरिक्षयः । छीमद्यमासप्रियता प्रियता चावगुण्ठने ॥ मक्षिकाधूणेश्वादित्वानां पतनानि च । प्रायोन्नपाने केशाना नखानां चाभिवर्द्धनम् ॥ पतत्रिभिः पतगैव श्वापदैश्वापि वर्षणम् । स्वप्ने केशास्थिराशीना भस्मनश्वापिरोहणम् ॥ जलाशयाना शैलानां बनानां ज्योतिषामपि । शुष्कतां क्षीयमाणानां, पततां चापि दर्शनम् ॥ प्रायूर्पं बहुरूपस्य तज्ज्ञेन राजयक्षमजः । इति । अत्र श्वापदा व्याघ्रादयः ।

एकादशरूपं पद्मरूपं और त्रिरूप शोषके लक्षण कहते हैं ।

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचश्चांसपार्थ्ययोः ॥ ज्वरो दाहोऽति-
सारश्च पित्ताद्क्रस्य चागमः ॥ ६ ॥ शिरसः परिपूर्णत्वमभक्त-
च्छंदु एव च ॥ कासः कंठस्य चोद्धंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥ ७ ॥
एकादशभिरंतैर्वा पद्मभिर्वापि समान्वितम् ॥ कासात्सारपा-
श्चार्तिंस्वरभेदाश्चचिज्वरैः ॥ ८ ॥ त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैऽज्वर-
कासासृगमयैः ॥ जह्याच्छोषादितं नंतुमिच्छन्त्सुविषुलं यशः ॥ ९ ॥

माषा—राजयक्षमा इस त्रिदोषसे उत्पन्न है इसमें दोषोंके न्यारे न्यारे मिलाकर सब ग्यारह रूप हैं । ये व्याधिके प्रभावसे होते हैं । सञ्चिपातज्वरके सदृश सर्व लक्षण सब दोषोंसे नहीं होते पृथक् पृथक् होते हैं सो दिखाते हैं । वादीके प्रभावसे स्वर-भेद, कन्धा और पसवाडे इनमें संकोच और पीड़ा होय, पित्तसे ज्वर, दाह, अति-सार और मुखसे रुधिरका गिरना और कफके कोपसे मस्तकका भारीपना, अन्नसे द्वेष, खांसी, स्वरभेद ये लक्षण होते हैं । इसमें तीन तो बातसे और चार लक्षण पित्तसे तथा चारही लक्षण कफसे ऐसे सब ग्यारह लक्षणसे अथवा खांसी, अति-सार, पसवाडोंमें पीड़ा, स्वरभेद, अरुचि और ज्वर इन छः लक्षणोंसे अथवा ज्वर, खांसी और रुधिरविकार इन तीन लक्षणोंसे पीडित क्षईरोगदाले मनुष्यको तथा जिसका बलमांस क्षीण हो गया होय ऐसे रोगीको यशेच्छु वैद्य त्याग देय, ऐसा रोगी असाध्य है ॥

साध्यासाध्यविचार ।

सर्वैरद्धौस्त्रिभिर्वापि लिङ्गैर्वापि वलक्षये ॥

युक्तो वज्याश्चकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥ १० ॥

माषा—स्वरभेदादिक जो ग्यारह लक्षण कहे उन सब लक्षणोंकरके अथवा उनमेंसे आधे अर्थात् छः लक्षणोंसे अथवा तीन लक्षण कहे इनसे युक्त जो क्षईरोगी बल मांस क्षीण होनेपर त्याज्य है । यदि बल, मांस जिसका क्षीण न भया हो परंतु सर्वलक्षणयुक्तमी है तथापि त्याज्य नहीं है । उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥

असाध्यलक्षण ।

महाशिनं क्षीयमाणमतिसारनिपीडितम् ॥

शूनमुष्कोदरं चैव यक्षिमणं परिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

माषा—जो बहुत भोजन करे परंतु दिन दिन प्रति क्षीण होता जाय यह असाध्य

रोगी है । अतिसारकरके अत्यंत पीडित होय सो रोगीभी असाध्य होय है, क्यों कि क्षईरोगवालेका जीना मलके आधीन है । जैसे लिखा है “ मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं तु जीवितम् । तस्मायत्तेन संरक्षेयद्विष्मणो मलोतसी ॥ ” इति । और जिसके अंडकोश और उदर ये सूज गये हों ऐसा रोगी असाध्य है, क्योंकि शोथ-वाला दस्तके करनेसे अच्छा होय है सो इसपर दस्त करना वर्जित है । इसीसे ऐसे रोगीको वैद्य त्याग देय ॥

कौनसे रोगीको औषध देना योग्य है सो कहते हैं ।

ज्वरानुबंधरहितं बलवत्तं क्रियासहम् ॥

उपक्रमेदात्मवंतं दीप्ताश्रिमकृशं नरम् ॥ १२ ॥

भाषा—जिस क्षईरोगवाले मनुष्यको ज्वरका सम्बन्ध होय नहीं, बलवान् औषधादि उपचारका सहनेवाला और जिसकी इन्द्रियमें बल होय तथा जठराश्चि जिसकी दोस्र होय और कृश न होय ऐसे रोगीकी चिकित्सा (उपचार) करना चाहिये इस श्लोकमें “ अकृशं ” इस पदके धरनेका यह प्रयोगन है कि पुष्ट देहवालाभी इस क्षईरोगसे हजार दिन बच सके हैं । सो ग्रन्थान्तरमें लिखा है ॥

असाध्यलक्षण ।

शुक्राक्षमन्नद्वेषारम्भ्वश्वासनिपीडितम् ॥

कृच्छ्रेण बहुमेहंतं यक्षमा हंतीह मानवम् ॥ १३ ॥

भाषा—सपेद नेत्र जिसके हो गये होंय, अत्र जिसको बुरा लगे, ऊर्ध्वश्वाससे पीडित और कष्टसे बहुत मूतनेवाला अर्थात् मल सुखसे उतरे इससे यह दिखाया ॥ जो आदार खाय सो मल हो जाय जब आदारका मल हो गया तब उसके मांस, रुधिर इनका क्षय होय इसीसे यह असाध्य है शुक्राक्षादिक ये प्रत्येक अलग अलगभी असाध्य है । अब कहते हैं कि अति मैथुनादि करनेसे धातुका क्षय होय है इसीसे क्षईरोग प्रगट होय है ऐसा नहीं किंतु औरभी कारणसे होय है उसको कहते हैं ॥

व्यवायशोकवार्धक्यव्यायामाध्वप्रशोपिणः ॥

त्रणोरःक्षतसंज्ञौ च शोषिणो लक्षणं शृणु ॥ १४ ॥

भाषा—अति मैथुनका शोषी, शोकशोषी, वार्धक्यशोषी, व्यायामशोषी, मार्ग-शोषी, त्रणशोषी और उरःक्षतशोषी इनके न्यारे न्यारे लक्षण कहता हूँ ॥

१ “ पर दिनसहस्र तु अदि जीवति मानवः । सुभिषग्मरूपक्रांतस्तरुणः शोषपी-डितः ॥ ” इति ।

व्यवायशोषीके लक्षण ।

व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिङ्गं शपद्गुतः ॥

पांडुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ॥ १६ ॥

भाषा—व्यवायशोषी (अति मैथुनसे क्षीण भया) सुश्रुतके कहे अनुमान शुक्र-क्षयलक्षणोंसे (शुक्र क्षय होनेसे लिंग और अंडकोशमें पीड़ा होय मैथुन करनेमें अशक्ति और बलसे मैथुन करे तौ वहुत देरमें शुक्रका स्राव होय और वह नाव वहुत अल्प होय अथवा रुधिरका स्राव होय) पीडित होय उनके देहका वर्ण पीला हो जाय और शुक्रसे मजा, मजासे हड्डी ऐसे उलटे धातु क्षीण होते जाते हैं ॥
शोकशोषीके लक्षण ।

प्रध्मानशीलः स्त्रस्ताङ्गः शोकशोष्यपि तादृशः ॥

भाषा—शोकशोषी अर्थात् शोचसे जिसको क्षय हो वह चिंता करे और हाथ, पैर गलने लगे तथा शुक्रक्षयव्यतिरिक्त शोषवान् हो और पांडु देह हाँय ऐसा शोचसे क्षयवाला पुरुष होता है ॥

जराशोषीके लक्षण ।

**जराशोषी कृशो मंदवीर्यशुद्धिवलेन्द्रियः ॥ कंधनोऽरुचिमान्भिन्न-
कांस्यपात्रहतस्वरः ॥ १६ ॥ ष्ठीवाति श्लेषणा हीनं गौरवारुचि-
पीडितः ॥ संप्रसुतास्यनास्त्राशः शुष्करूपश्मलच्छविः ॥ १७ ॥**

भाषा—जरा (बुढापा) शोषी मनुष्य कृश होय है, उसके वीर्य, बुद्धि, बल और इन्द्रिय ये मन्द हो जाय, कंप होय, अन्नमें अरुचि, फूटे कांसेके वासनको लकड़ीसे बजानेसे जैसा शब्द होय ऐसा शब्द होय, कफरहित वारंवार थूके अर्थात् कफके निकालनेके वास्ते यत्न करे तथापि कफ नहीं निकले, शरीर भारी रहे, अरुचिस पीडित (पुनः अरुचि ग्रहणविशेषताद्योतकके वास्ते कही है), मुख, नाक और नेत्र इनसे स्राव होय, मल शुष्क उतरे और देहकी काति निस्तेज होय ॥

अध्वप्रशोषीके लक्षण ।

अध्वप्रशोषी स्त्रस्ताङ्गः संभृष्टपूषच्छविः ॥

प्रसुतगात्रावयवः शुष्कक्षुमगलाननः ॥ १८ ॥

भाषा—अध्वप्रशोषी (अति भार्ग चलनेसे क्षीण हुए) मनुष्यके हाथ, पैर शिथियेल हो जावे, उसके देहका वर्ण भूंजे पदार्थके सदृश और खरदरा होय है, सर्व देहमें प्रसुतता, हृदयमें प्यासका स्थान है सो, गला और मुख इनका स्वरना । शंका—क्योंजी ! जराशोषीके अनन्तर व्यायामशोषीके लक्षण कहने चाहिये । अध्व-

(मार्ग) शोषीके लक्षण कहने चाहिये फिर माधवचार्यने अध्वशोषीके लक्षण क्यों कहे ? उत्तर-अध्वशोषीके लक्षण इसवास्ते पहले कहे कि व्यायामशोषीमें इसके सब लक्षण मिलते हैं । शंका-अच्छा आप ऐसे कहागे तो व्यायामशोषीमें अध्वशोषीके कौनसे लक्षण नहीं मिलते ? उत्तर-तुमने कहा सो ठीक है परंतु अध्वशोषीमें उरःक्षत आदि चिह्न नहीं हैं इससे पूर्व अध्वशोषीके लक्षण कहे ॥

व्यायामशोषीके लक्षण ।

व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समान्वितः ॥

लिङ्गैरुरक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना ॥ १९ ॥

भाषा-व्यायामशोषी (अत्यंत दंड कसरत आदि श्रमसे क्षीण) मनुष्य विशेष करके अध्वशोषी लक्षण स्तस्तांगतादियुक्त होय है अर्थात् जो लक्षण अध्वशोषीमें थोड़े थोड़े होते हैं वे व्यायामशोषीमें अधिक होते हैं और उस मनुष्यके घावके विनाही उरःक्षतके लक्षण मिलते हैं । उरःक्षतके लक्षण सुश्रुतमें लिखे हैं ॥

तीन कारणोंसे ब्रणशोष होय है सो कहते हैं ।

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयंत्रणात् ॥

व्राणिनश्च भवेच्छोषः स चासाध्यतमो मतः ॥ २० ॥

भाषा-रुधिरके क्षयसे, फोड़ोंकी पीड़ासे तैसेही आहारके घटनेसे ब्रणी पुरुषके जो शोष होय सो अत्यंत असाध्य जानना ॥

उरःक्षतसे धातुशोष होनेका सम्बन्ध है अत एव शोषप्रकरणमें निदान- सहित उरःक्षतरोग कहते हैं ।

**घनुषा यस्यतोऽत्यर्थं भारमुद्रहतो गुरुम् ॥ युध्यमानस्य
बालिभिः पततो विषमोच्चतः ॥ २१ ॥ वृषं हयं वा धावतं दम्यं
चान्यं निगृह्णतः ॥ शिलाकाष्ठाश्मानेषीतान् क्षिपतो निश्चितः
परान् ॥ २२ ॥ अधियानस्य वाऽत्युच्छैर्दूरं वाव्रजतो द्रुतम् ॥
महानदीर्वा तरतो हैर्वा सह धावतः ॥ २३ ॥ सहस्रोत्पततो
दूरात्मूर्णं वातिप्रनृत्यतः ॥ तथान्यैः कर्माभिः क्लौर्भूर्ज्ञमभ्याद-
तस्य च ॥ २४ ॥ ताडिते वक्षसि व्याधिर्बलवान्समुदीर्यते ॥
स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रुक्षाल्पप्रामिताशिनः ॥ २५ ॥**

१ “ तस्योरसि क्षते रक्तं भूयः श्लेष्मा च गच्छति । कासमानश्छद्येच्च पीतरक्तासि-
तारुणम् ॥ संतसवक्षसोऽत्यर्थं वमनात्परिताम्यति । दुर्गधोव्वासत्वदनो भिन्नवर्णस्वरो
नरः ॥ ” इति ।

भाषा—बहुत तीरंदाजी करनेसे, बहुत भारी वस्तु उठानेसे, बलवान् पुरुषके साथ मुख्य करनेसे, ऊचे स्थानसे गिरनेसे, बैल घोडा हाथी ऊंट इत्यादिक दौड़ते हुओंको थमानेसे, मारी, शिला लकड़ी पत्थरनिर्धार्त (अख्खाविशेष) इनके फेंकनेसे, शत्रुको मारनेवाला, जोरसे बेदादिक शास्त्रको पढ़नेसे अथवा दूर दिशावार शीघ्र चलकर जानेसे, गंगा यमुनादि महानदीको तरनेवाला अथवा घोड़ेके साथ दौड़नेवाला, अकस्मात् कला खानेवाला, जलदी जलदी बहुत नाचनेसे इस प्रकार दूसरे मल्लयुद्धादि क्रूर कर्म करनेसे उर (छाती) फट जाती है । ऐसे पुरुषकी छाती दूखनेसे बलवान् उरःक्षत-रूप व्याधि उत्पन्न होय है और बहुत मैथुन करे तथा रुखा थोड़ा कुसमय तथा छातीमें चोट लगनेसे अत्यंत खीरमण करनेसे और रुखा रुखा थोड़ा और अनुमानका मोजन करनेवालेके ॥

उरो विरुद्ध्यतेऽत्यर्थं भिद्यतेऽथ विरुद्ध्यते ॥ प्रथीद्यते तथा पार्थै शुष्यत्यङ्गं प्रवेषते ॥ २६ ॥ क्रमाद्वीर्यं बलं वर्णो रुचि-राग्निश्च हीयते ॥ ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विङ्ग्भेदोऽशिवधादपि ॥ २७ ॥ दुष्टः इयावः सुदुर्गंधिः पीतो विश्रितिं बहुः ॥ क्वासमानस्य चाभीक्षणं कफः सास्तः प्रवर्त्तते ॥ सक्षतः क्षीय-तेऽत्यर्थं तथा शुक्रोजसो क्षयात् ॥ २८ ॥

भाषा—पूर्वोक्त लक्षणयुक्त ऐसे पुरुषका हृदय फटेके सदग मालूम हो अथवा हृदयके दो टूक कर डाले ऐसा मालूम होय और हृदयमें अत्यंत पीड़ा हो और उसके पत्थराढ़ोंमें अत्यंत पीड़ा होय, अंग सब सूखने लगे तथा थारथर काँपने लगे और शक्ति मांस वर्ण रुचि और अग्नि ये सब क्रमसे घटने लगे, ज्वर रहे, व्यथा होय, मनमें सन्ताप, दीन हो जाय, अग्नि मन्द होनेसे दस्त होने लगे और बारंवार खालते खांसते दुष्ट काला अत्यन्त दुर्गंधयुक्त पीला गाठके समान बहुत और रुधिर मिला ऐसा कफ गिरे इस प्रकार क्षतरोगी अत्यंत क्षीण होय सो केवल क्षतसेही क्षीण हो जाय ऐसा नहीं किन्तु खीसेवन करनेसे शुक्र और ओज (सब धातुओंका तेज) इनका क्षय होनेसे यह मनुष्य क्षीण होय है ॥

पूर्वरूप ।

अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ २९ ॥

भाषा—उस उरःक्षतके अप्रगट लक्षणोंको पूर्वरूप कहते हैं ॥

क्षतक्षीणके असाध्य लक्षण ।

उरोरुकछोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः कफे ॥

श्रीणे सरत्तमूत्रत्वं पार्थपृष्ठकाट्यिहः ॥ ३० ॥

भाषा—सतक्षीण रोगीके हृदयमें पीड़ा होय, रुधिरकी उलटी करे और विशेष कास अर्थात् कहे जो दुष्क्षासादि लक्षण उन्होंसे युक्त होय और रुधिरयुक्त मूत्रका उत्तरना, पसवाडे, पीठ और कमर इनमें पीड़ा होय ॥

अथ साध्यलक्षण ।

अल्पलिङ्गस्य दीप्ताग्रेः साध्यो बलवतो नवः ॥

परिसंबत्सरो याप्यः सर्वलिंगं विवर्जयेत् ॥ ३१ ॥

भाषा—जिसमें थोड़े लक्षण मिलते हों और जिसका अग्री दीप्त होय, बलवान् पुरुषके होय तथा रोग नवा हो तो वह साध्य है और रोगको भये एक वर्ष व्यतीत हो गया होय सो याप्य (साध्यासाध्य) है और जिसमें सर्व लक्षण मिलते होय सो असाध्य है उसको वैद्य त्याग देय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थवोधिनीभाषादीकायां
राजयक्षमरोगनिदानं समाप्तम् ।

कासनिदानम् ।

अथ कारण सम्प्राप्ति और निरुक्ति ।

धूमोपघाताद्वजस्त्वथैव व्यायामस्त्रक्षान्ननिषेवणाच्च ॥

विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात्क्षवथोस्त्वथैव ॥ १ ॥

प्राणो ह्युदानादुग्रतः प्रदुष्टः संभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः ॥

निरेति वक्तात्सहसा सदोषो मनीषिभिः कास इति प्रादिष्टः ॥ २ ॥

भाषा—नाक मुखमें धूर वा धूंआ जानेसे, दंड कसरत, रुक्षान्न इनका नित्य सेवन करनेसे, भोजनके कुपथ्यसे, मलमूत्रके रोकनेसे, उसी प्रकार छिका अर्थात् (छींक) आती हुईके रोकनेसे प्राणवायु अत्यंत दुष्ट होकर और दुष्ट उदानवायुसे मिलकर कफ-पित्तयुक्त अकस्मात् मुखसे बाहर निकले उसका शब्द फूटे कांस्यपात्रके समान होय उसको विद्वान्लोग कास (खांसी) कहते हैं ॥

पांच कासाः स्मृता वातपित्तश्वेष्मक्षतक्षयैः ॥

क्षयायोपेक्षिताः सर्वै बलिनश्वोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥

भाषा—वात, पित्त, कफ, क्षत और क्षय ऐसे पांच प्रकारकी खांसी होती है ।

इनकी औषध न करे तो सर्वका क्षयरूप हो जाय है ये उत्तरोत्तर बलवान् जानने ।
जैसे वातसे पित्तकी, पित्तसे कफकी, कफसे क्षतकी, क्षतसे क्षयकी खांसी प्रबल है ॥
पूर्वरूप ।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूक्लपूर्णगलास्थता ॥

कंठे कंडूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥ ४ ॥

भाषा-मुख और गलेमें कांटेसे पड़ जाय तथा कंठमें खुजली चले, भोजन करा
न जाय ये खांसी होनेहोरेके लक्षण हैं ॥

वातकी खासीके लक्षण ।

हृच्छेखमूर्धौदृपार्थशूली क्षामाननः क्षीणवल्लस्वरौजाः ॥

प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन भिन्नस्वरः कासाति शुष्कमेव ॥ ५ ॥

भाषा-हृदय, कनपटी, मस्तक, उदर, पसवाड़ा इनमें शूल चले, भूह उतर जाय,
स्वर, स्वर, पराक्रम ये क्षीण पड़ जाय, वारंवार खांसीका उठना, स्वरमेद और
सूखी खांसी उठे ये वातकी खासीके लक्षण हैं ॥

पित्तकी खासीके लक्षण ।

उरोविदाहज्वरवक्षोषैरभ्यर्दितस्तिक्षुखस्तृष्टातः ॥

पित्तेन पीतानि वसेत्कटूनि कासेन पांडुः परिद्वयमानः ॥ ६ ॥

भाषा-पित्तकी खांसीसे हृदयमें दाह, ज्वर, मुखका सुखना इनसे पीड़ित हो;
मुख कड़आ रहे, प्यास लगे, पीले रंगकी और कड़वी ऐसी पित्तके प्रभावसे वमन
होय, रोगीका पीला वर्ण हो जाय और सब देहमें दाह होय ॥

कफकी खासीके लक्षण ।

प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदाञ्छिरोरुजाऽर्त्तः कफपूर्णदेहः ॥

अभक्तरुग्गैरवकंडुयुक्तः कासेष्टृशं सांद्रकफः कफेन ॥ ७ ॥

भाषा-कफकी खांसीसे मुख कफसे लिपटा रहे, मथवाय और सब देह कफसे
परिपूर्ण रहे, अन्नमें अरुचि, शरीर भारी रहे, कंठमें खुजली और रोगी वारंवार
खांसे, कफकी गाठ थूकनेसे सुख मालूम होय ॥

क्षतकासलक्षण ।

अतिव्यवायभाराद्वयुद्धाध्यगजनियहैः ॥ रुक्षस्त्योरःक्षतं वा-

**युर्गृहीत्वा काशमावहेत् ॥ ८ ॥ स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्टीवे-
त्सशोणितम् ॥ कंठेन रुजताऽन्त्यर्थं विहृणेव चोरसा ॥ ९ ॥**

सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ॥ दुःखस्पृशैन
शूछेन भेदपीडाभितापिना ॥ १० ॥ पर्वभेदज्ज्वरश्वासतृष्णावै-
स्वर्यपीडितः ॥ पारावत इवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥ ११ ॥

भाषा—बहुत स्थिसंग बरनेसे, भारके उठानेसे, बहुत मार्ग चलनेसे, मल्लयुद्ध (कुस्ती) करनेसे, हाथी घोड़ा दौड़नेको रोकनेके इन कारणोंसे रुक्ष पुरुषका हृदय फूटकर वायुकोप होकर खांसीको प्रगट करे । सो पुरुष प्रथम सूखा खांसे, पीछे रुधिर मिला थूके, कंठ अत्यंत दूखे, हृदय फूटे सदृश मालूम होय और तीखी सुईकेसे चभका चले और उसको हृदयका स्पर्श सुहाय नहीं, दोनों पसवाड़ोंमें शूल होय यह वाग्मटका मत है । तथा दाह हो, उस रोगीके गांठ गांठमें पीड़ा होय, ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरभेद इनसे पीडित होय, क्षतजन्य खांसीके वेगसे रोगी कबूतरकी तरह धूं धूं शब्द करे ॥

क्षयकी खांसीके लक्षण ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनियहात् ॥ धृषिनां शोच-
तां नृणां व्यपन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः ॥ १२ ॥ कुपिताः क्षयजं
कासं कुर्युद्देहक्षयप्रदम् ॥ स गात्रशूलज्ज्वरदाहमोहान्प्राणक्षयं
चापि लभेत कासी ॥ १३ ॥ शुष्यान्विनिष्ठीविति दुर्युलस्तु
प्रक्षीणमांसो रुचिरं सपूर्यम् ॥ तं सर्वलिंगं भृशदुश्चिकित्सयं
चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदंति ॥ १४ ॥

भाषा—कुपथ्य और विषमाशनके करनेसे, आति मैथुन मलमूत्रादिक वेगधारण इनसे, आति दया बरनेसे, आति शोक करनेसे, आग्नि मन्द होय अर्थात् आहार यक्कर वायु कुपित हो आग्निको नष्ट करे, तब तीनों दोष कोपको प्रास हो क्षयजन्य देहका नाशक ऐसी खांसीको प्रगट करे तब वह खांसी देहको क्षीण करे । शूल, ज्वर, दाह और मोह ये होंय तब यह प्राणका नाश करे । सूखी खांसी, रुधिर मांस, शरीरका स्रुत जाना, रुधिर और राध थूके । ये सर्व लक्षणयुक्त और चिकित्सा करनेमें अति कठिन ऐसे इस खांसीको वैद्य क्षयज कहते हैं ॥

साध्यासाध्यविचार ।

इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः ॥ साध्यो बलवतां वा
स्याद्याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः ॥ १५ ॥ नवौ कदाचित्सिद्ध्येतामपि

**पादगुणान्वितौ ॥ स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः प्रकीर्तिः
॥ १६ ॥ त्रीन्पूर्वान्साधयेत्साध्यान्पथ्यैर्याप्यास्तु यापयेत् ॥ १७ ॥**

भाषा—इस प्रकार यह क्षयजकास (खांसी) क्षीण पुरुषकी घातक होय है । बलवान् पुरुषके असाध्य अथवा याप्य (साध्यासाध्य) होय है । क्षतज खांसीमी इसी प्रकारकी होती है । यदि वैद्यादि प दच्चतुष्ट्यसंपत्ति हो और ये दोनों प्रकारकी खांसी नवीन होय तो कदाचित् साध्य होय और दूढ़े पुरुषके जराकास अर्थात् धातु-क्षीण होनेसे भई जो खांसी सो सब प्रकारकी याप्य है । सो सब इन्द्रियोंके अंतर्गत जाननी । अब कहते हैं कि वात, पित्त, कफ ये तीन खांसी साध्य हैं और वाकी तीन याप्य हैं । वे पथ्य सेवन करनेसे नाश होती हैं और अवज्ञा करनेसे असाध्य हो जाती हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिमित्तमाधवार्थबोधिनीमाथुरोभाषादीकायाँ
कासरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ हिक्कानिदानम् ।

**विदाहिगुहविष्टभिष्ठक्षाभिष्ठंदिभोजनैः ॥ शीतपानाशनस्त्रा-
नरजोधूमातपानिलैः ॥ १ ॥ व्यायामकर्मभारध्ववेगघाताप-
तर्पणैः ॥ हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ २ ॥**

भाषा—दाहकारक, भारी, अफराकारक, रुखी, अभिष्ठंदी ऐसे भोजन करनेसे, शीतल जल पीनेसे, शीतल चन्द्र खानेसे, शीत जल करके स्नान करनेसे, रज और धूएके मुख नाकमें जानेसे, गरमी हवामें डोलनेसे, दंडकसरतके करनेसे, भारके उठानेसे, बहुत मार्गके चलनेसे, मलादिक वेगके रोकनेसे और उपवासके करनेसे मनुष्यके हिक्का (हिचकी), श्वास, दमा और कास (खासी) ये रोग उत्पन्न होते हैं ॥

हिक्काका स्वरूप और निरुक्ति ।

मुद्दुर्मुहुर्वायुरुदोति सस्वनो यज्ञत्प्रिहांत्राणि मुखादि वा क्षिपन् ॥

स घोषवानाशु हिनस्त्यसून्यतस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते वुधैः ३ ॥

भाषा—उदानबायु प्राणवायुके साथ मिलकर जब निकले तब मनुष्य हिंग ऐसा शब्द करे और कलेजा छीह इनको मुखपर्यंत खींच लावे (इस स्थानमें मुख

१ “ पूयाभमरणं श्याव हरित पीतनीलकम् । निष्ठिवेच्छासकासातो न जीवाति हत-
स्वरः ॥ कासश्वासक्षयच्छर्दिंस्वरभेदादयो गदाः । भवत्युपेक्षयाऽसाध्यास्तस्मात्तांस्त्वरया
नयेत् ॥ ” इति ।

शब्दकरके प्राण, जल अन्न इनके वहनेवाले मार्ग जानने) और मुखमें आनकर बड़ा शब्द निकले उसको वैद्यवर हिक्का (हिचकी) रोग कहते हैं । यह शीघ्र प्राणों का हर्ता होय है ॥

हिक्काके भेद और संप्राप्ति ।

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गंभीरां महतीं तथा ॥

वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि ॥ ४ ॥

भाषा—वात कफसे मिलकर १ अन्नजा, २ यमला, ३ क्षुद्रा, ४ गंभीरा और ५ महती ऐसे पांच प्रकारकी हिचकी रोगको प्रगट करे ॥

पूर्वरूप ।

कंठोरसोर्घुरुत्वं च वदनस्य कषायता ॥

हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटेप एव च ॥ ५ ॥

भाषा—कंठ और हृदय भारी रहे और वादीसे मुख कषैला रहे, कूखमें अफरा रहे यह हिचकीका पूर्वरूप जानना ॥

अन्नजाके लक्षण ।

पानान्नैरातिसंभुक्तेः सहसा पीडितोऽनलः ॥

हिक्कयत्युर्ध्वंगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥ ६ ॥

भाषा—अन्न और पानीके बहुत सेवन करनेसे वात अकस्मात् कुपित हो ऊर्ध्वगामी होकर मनुष्यके अन्नजा हिचकी प्रगट करे ॥

यमलाके लक्षण ।

चिरेण यमलैर्वैर्या हिक्का संप्रवर्तते ॥

कंपयन्ती शिरोश्रीवां यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥

भाषा—ठहर ठहरके दो दो हिचकी चलें, शिरकंधाको कंपावे उसको यमला हिचकी जानना ॥

क्षुद्राके लक्षण ।

प्रकृष्टकालैर्या वैर्गमन्दैः समभिवर्तते ॥

क्षुद्रिकानाम सा हिक्का जतु मूलात्रधावति ॥ ८ ॥

भाषा—जो हिचकी बहुत देरमें कंठ हृदयकी संधिसे मंद मंद चले उसको क्षुद्रा नाम हिचकी कहते हैं ॥

१ उक्तं च—“ प्राणोदकान्नशाहीनि स्नोतासि विकृतोऽनिलः । हिक्काः करोति संबध्य तासा लिंगं पृथक् शृणु ॥ ” इति ।

गंभीरके लक्षण ।

नाभिप्रवृत्ता हिक्का या घोरा गंभीरनादिनी ॥

अनेकोपद्रववती गंभीरा नाम सा स्मृता ॥ ९ ॥

भाषा—जो हिचकी नाभिके पाससे उठ घोर गंभीर शब्द करे और जिसमें प्यास ज्वरादि अनेक उपद्रव हों उसको गंभीरा हिचकी कहते हैं ॥

महती हिचकीके लक्षण ।

मर्माण्युत्पीडयंतीव सततं या प्रवर्तते ॥

महाहिक्काति सा इया सर्वगात्रप्रकंपिनी ॥ १० ॥

भाषा—जो हिचकी मर्मस्थानमें पीड़ा करती हुई और सर्व गात्रको कँपावती हुई सर्वकाल प्रवृत्त होय उसको महाहिक्का कहते हैं ॥

असाध्य लक्षण ।

आयम्यते हिक्कतो यस्य देहो हृष्टश्चोर्ध्वं ताम्यते यस्य नित्यम् ॥

क्षीणोऽन्नाद्विद्वक्षौति याश्चातिमात्रं तौ द्वौ चांत्यौ वर्जयेद्विक्कमानौ ॥ ११ ॥

भाषा—जिसका हिचकीसे देह तन जावे, ऊँची हृष्ट हो जावे और मोह होय, क्षीण पड़ जाय, भोजनमें असुख होय और छोंक बहुत आवे ये दोनों हिचकीवाले रोगी अर्थात् जिसको गंभीरा और महतीहिचकी होय वह वैद्यकों त्याज्य है ॥

असाध्य लक्षण ।

अतिसंचितदोषस्य भक्तच्छेदकृशस्य च ॥

व्याधिभिर्जीर्णदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥

आसां या सा समुत्पन्ना हिक्का हंत्याशु जीवितम् ॥ १२ ॥

भाषा—जिसके अत्यन्त दोषोंका संचय हो गया हो और जिसका अन्न छूट गया हो, जो कृश हो गया हो, जिसका अनेक व्याधिसे देह क्षीण हो गया होय और जो वृद्ध है, अति मैथुन करनेवाला हो ऐसे पुरुषके ये दोनों हिचकी उत्पन्न होय तौ तत्क्षण उस रोगीके प्राणनाश करे ॥

यमिकाके असाध्य लक्षण ।

यमिका च प्रलापार्तिमोहतृष्णासमन्विता ॥ १३ ॥

भाषा—बकवाद करे, पीड़ा होय, मोह प्यास इन लक्षणोंसे युक्त जो यमिका-नामकी हिचकी सों तत्काल प्राणहर्ता जाननी ॥

यमिकाके साध्यलक्षण ।

अक्षीणश्वाप्यदीनश्च स्थिरधात्विद्वियच्च यः ॥

तस्य साधयितुं शक्या यमिका हृत्यतोऽन्यथा ॥ १४ ॥

भाषा-बलवान्, प्रसन्न मन, जिसकी धातु इन्द्रिय स्थिर होंय ऐसे पुरुषकी यमिका हिचकी साध्य है और इससे विपरीत अर्थात् क्षीण, दीन इत्यादि पुरुषको तत्कालही नाश करे । अनजा, क्षुद्रा ये दोनों साध्यही हैं । दो बार आनेसे यमिका कहाती है । चरकोक्त यमला इस जगह नहीं ग्रहण करनी चाहिये ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमापवार्यवोधिनीमाथुरीभाषाटीकाया
हिक्कारोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ श्वासनिदानम् ।

—*—*—*

महोर्ध्वाच्छ्वतमक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा ॥

भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ १ ॥

भाषा-हिक्का श्वासका एक हेतु होनेसे हिक्काके अनन्तर श्वासरोगको कहते हैं । अहाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमक्ष्वास और क्षुद्रश्वास और इन भेदोंसे श्वास-रोग पांच प्रकारका है ॥

श्वासके पूर्वरूपके लक्षण ।

प्रायूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्यानमेव च ॥

आनाहो वक्षवैस्यं शांचिनिस्तोद्ध एव च ॥ २ ॥

भाषा-हृदय दूखे, शूल होय, अफरा होय, पेट तनासा होय, क्लपटी दूखे, शुखमें-रसका स्वाद आवे नहीं यह श्वासरोगका पूर्वरूप है ।

श्वासरोगकी सम्प्राप्ति ।

यदा स्रोतांसे संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः ॥

विष्वग्रजाति संरुद्धस्तदा श्वासान्करोति सः ॥ ३ ॥

भाषा-सर्व देहमें विचरनेवाला पवन जब कफसे मिलकर प्राण अन्न उदक बहनेवाली सब नसोंके मार्गको रोक देवे तब पवन फिरनेसे रुककर श्वास-रोगको प्रगट करे ॥

महाश्वासके लक्षण ।

उद्धृयमानवातो यः शब्दवहुःखितो नरः ॥ उच्चैः श्वसिति
संरुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥ १४ ॥ प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा
विभ्रांतलोचनः ॥ विष्टव्याक्षाननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक्
॥ ५ ॥ दीनः प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम् ॥ महा-
श्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते ॥ ६ ॥

भाषा—जिसका वायु ऊपरको जाथके प्राप्त हो ऐसा मनुष्य दुःखित होकर
मुखसे शब्दयुक्त श्वासको निकाले, ऊचे स्वरसे अथवा जैसे मतवाला बैल शब्द
करे इस प्रकार रात्रिदिन श्वाससे पीडित होय, उसका ज्ञान विज्ञान जाता रहे,
नेत्र चंचल होय और जिसके श्वास लेतेमें नेत्र और मुख फट जाय, मल मूत्र
चन्द हो जाय, बोला जाय नहीं अथवा बोले तो मन्द बोले, मन विच्छ होय
और जिसका श्वास दूरसे सुनाई देय यह महाश्वास जिस पुरुषको होय वह तत्काल
मरणको प्राप्त होय ॥

ऊर्ध्वश्वासके लक्षण ।

ऊर्ध्वं श्वसिति यो दीर्घं न च प्रत्याहृत्यधः ॥ श्वेष्मावृतमुख-
स्तोताः कुद्धर्गं धवहार्दितः ॥ ७ ॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यश्च विभ्रांताक्ष
इतस्ततः ॥ प्रमुद्धान्वेदनार्तश्च शुष्कास्योऽरतिपीडितः ॥ ८ ॥

भाषा—बहुत देरपर्यंत ऊचा श्वास लेय नीचे आवे नहीं, कफसे मुख मर जाय
तथा सब नाडियोके मार्ग कफसे बन्द हो जाय, कुपित वायुसे पीडित होय,
ऊपरको नेत्र कर चंचल दृष्टिसे चारों ओर देखे, मूर्छाकी पीडित अत्यंत पीडित
होय, मुख सूखे तथा बेहोश होय ये ऊर्ध्वश्वासके लक्षण हैं ॥

ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधः श्वासो निरुद्ध्यते ॥

मुहृतस्ताम्यतंश्वोर्ध्वं श्वासस्तस्यैव देत्यसून् ॥ ९ ॥

भाषा—ऊपरका श्वास कुपित होनेसे नीचेका श्वास बन्द होय अर्थात् हृदयमें
रुक जाय अथवा श्वास कहिये वायु सो नीचे नहीं उतरे तब मनुष्यको मौह होय
गलानि होय । ऐसे पुरुषके ऊर्ध्वश्वास प्राणका हरण करे ॥

छिन्न श्वासके लक्षण ।

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः ॥ न वा श्वसिति

दुःखातो मर्मच्छेदसुगर्दितः ॥ १० ॥ आनाहस्वेदमूर्च्छातों
दद्यमानेन वस्तिना ॥ विष्णुताक्षः परिक्षीणः श्वसन्त्रैकल्पे-
चनः ॥ ११ ॥ विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः ॥
छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥ १२ ॥

भाषा—जो पुरुष ठहर ठहरकर जितनी शक्ति उतनी शक्तिसे श्वासको त्याग करे अथवा क्लेशको प्राप्त हो, श्वासको नहीं छोडे और मर्म कहिये हृदय बस्ति (मूत्रस्थान) और नाडियोंको मानो कोई छेदन करे ऐसी पीड़ा होय, पेटका फूलना, पसीना और मूर्च्छा इनसे पीडित होय, वस्ति (मूत्रस्थान) में जलन होय, नेत्र चलायमान होय अथवा नेत्र आंसुओंसे भरे होय, श्वास लेते लेते यक जाय तथा श्वास लेते लेते एक नेत्र लाल हो जाय (यह व्याधिके प्रभावसे होय है दोषके प्रभावसे होय तौ दोनों हो जाय), उद्दिश्य चित्त हो जाय, मुख सूखे, देहका वर्ण पलट जाय, बकवाद करे, संधिके सब बंध शिथिल हो जाय इस छिन्नश्वासक-रके मनुष्य शीघ्र प्राणका त्याग करे ॥

तमकश्वासके लक्षण ।

प्रतिलोभं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते ॥ श्रीवाँ शिरश्च
संगृह्य श्वेषमाणं समुदीर्य च ॥ १३ ॥ करोति पीनसं तेन रुद्धो
घुर्घुरकं तथा ॥ अतीव तीव्रवेगेन श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ १४ ॥
प्रताम्यति स वेगेन त्रस्यते सन्निरुद्धयते ॥ प्रमोहं कासमा-
नश्च स गच्छति सुद्धुमुहुः ॥ १५ ॥ श्वेषमाणा मुच्यमानेन भृशं
भवति दुःखितः ॥ तस्यैव च विमोक्षांते सुहूतै लभते सुखम्
॥ १६ ॥ तथास्योद्धंसते कंठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम् ॥
न चापि निद्रा लभते शयानः इवासपीडितः ॥ १७ ॥ पाञ्चै
तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः ॥ आसीनो लभते सौख्य-
मुष्णं चैवाभिनन्दति ॥ १८ ॥ बच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्व-
द्यता भृशमार्तिमान् ॥ विशुष्कास्यो मुहुः इवासो मुहुश्वैवाव-
धम्यते ॥ १९ ॥ मेषांबुशीतप्राग्वातैः श्वेषमलैश्च विवद्धते ॥
स याप्यस्तमकश्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ २० ॥

माषा—जिस कालमें शरीरका पवन उलटो गतिसे नाडियोंके छिद्रमें प्राप्त होकर मस्तक तथा कंठका आश्रय कर कफसंयुक्त होय तब कफसे रुककर अतिवेगपूर्वक कंठमें घुरघुर शब्द करे और मस्तकमें पीनसरोग करे और अत्यन्त तीव्र वेगसे हृदयको पीड़ा करनेवाले श्वासको उत्पन्न करे । उस श्वासके वेगसे मूर्च्छित होय त्रासको प्राप्त होय, चेष्टारहित होय और खांसीके उठनेसे बड़े मोहको वारंवार प्राप्त होय और जब कफ छूटे तब दुःख होय और कफ छूटनेके बाद दो घडीपर्यन्त मुख पावे । कंठमें खुजली चले, बड़े कष्टसे बोले, श्वासकी पांडासे नीद न आवे, सावे तौ वायुसे पसवाड़ोंमें पीड़ा होय, बैठेही चैन पड़े और गरमीके पदार्थसे खुश होय, नेत्रोंमें सूजन होय, ललाटमें पसीना आवे, अत्यन्त पीड़ा होय, मुख सूखे, वारंवार श्वास और हाथीपर बैठनेके सहश सर्व देह चलायमान होवे । यह श्वास मेघके वर्धनेसे, शीतसे, पूर्वकी पवनसे और कफजारक पदार्थ इनके सेवन करनेसे बढ़े हैं । यह तमकश्वास याप्त है । यदि नया प्रगट भया होय तौ साध्य होय है ॥

पित्तका अनुवन्ध होकर ज्वरादिकोंका योग होनेसे
प्रतमक होय है उसको कहते हैं ।

ज्वरमूर्च्छापरीतस्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् ॥

माषा—इस तमकश्वासमें ज्वर और मूर्च्छा ये दोनो लक्षण होनेते इसको प्रतम कश्वास कहते हैं ॥

प्रतमकके दूसरे लक्षण और कारण कहते हैं ।

उदावर्त्तरजोजीर्णक्षिन्नकायनिरोधजः ॥ २१ ॥

तमसा वर्धते इत्यर्थं शीतैश्वासु प्रशाम्याति ॥

मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् ॥ २२ ॥

माषा—उदावर्त्त, धूल, आमादि अजीर्ण, विदग्धान्न, मलमूत्रादि वेगके रोकनेसे अथवा क्षिन्नकाय कहिये बृद्ध मनुष्य और निरोध कहिये वेगरोध इन कारणोंसे प्रगट भई जो श्वास सो अंधकारसे अथवा तमोगुणसे अत्यन्त बढ़े और शीतल उपचारसे शीघ्र शात हो जाय, इस श्वासके योगसे रोगीको अन्धकारमें बूढ़ास-दृश मालूम होय इसको प्रतमकश्वास ऐसा कहते हैं ॥

क्षुद्रश्वासके लक्षण ।

**रुक्षायासोद्धवः कोष्ठे क्षुद्रो वातमुदीरयेत् ॥ क्षुद्रश्वासो न सोऽ-
त्यर्थं दुःखेनांगप्रबाधकः ॥ २३ ॥ द्विनस्ति न स गात्राणि न च**

दुःखो यथेतरे ॥ न च भोजनपानानां निरुणद्वयचितां गतिम् ॥ २४ ॥
नेन्द्रियाणां व्यथा चापि कांचिदापादयेदुजम् ॥ स साध्य उक्तः—

भाषा—खले पदार्थ खानेसे, श्रमके करनेसे प्रगट भई जो क्षुद्रश्वास सो पवनको ऊपर ले जाय । यह क्षुद्रश्वास अत्यन्त दुःखदायक नहीं है तथा अंगोंको कुछ विकार नहीं करे । जैसे ऊर्ध्वश्वासादिक दुःखदायक है ऐसा यह नहीं है और भोजन-पानादिकोंकी उचित गतिको बन्द नहीं करे और इन्द्रियोंकोभी पीड़ा नहीं करे और कोई रोगकोभी नहीं प्रगट करे । यह क्षुद्रश्वास साध्य कहा है ॥

साध्यासाध्यविचार ।

बलिनः सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः ॥ २५ ॥

क्षुद्रः साध्यतमस्तेषां तमकः क्षुद्र उच्यते ॥

त्रयः श्वासा न सिद्धचंति तमको दुर्वलस्य च ॥ २६ ॥

भाषा—बलवान् पुरुषके सब महाश्वासादिकोंके लक्षण प्रगट न होय तौ साध्य ह । तिनमेंमी क्षुद्रश्वास अत्यंत साध्य है और तमको क्षुद्र कहते हैं । अथवा “ तमकः क्षुद्र उच्यते ” इस जगह “ तमकः कृच्छ्र उच्यते ” ऐसाभी पाठ कोई कहते हैं । उसका अर्थ यह है कि तमक कृच्छ्रसाध्य है । महान्, ऊर्ध्व और छिन्न ये तीन श्वास सम्पूर्ण लक्षणयुक्त साध्य नहीं है । और निर्बल पुरुषके तमकश्वासभी साध्य नहीं होय ॥

कामं प्राणहरा रोगा वहवो न तु ते तथा ॥

यथा श्वासश्च हिङ्का च हरतः प्राणमाशु वै ॥ २७ ॥

भाषा—प्राण हरण करनेवाले ऐसे सञ्चिपात ज्वरादिक रोग वहतसे हैं वे ठीक हैं परंतु श्वास और हिंकारी ये जैसे जलदी प्राण हरण करते हैं ऐसे और ज्वरादिक नहीं करते ॥

**इति श्रीपैष्ठितदत्तराममाथुरनिर्भितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषार्थीकार्या
 श्वासनिदान समाप्तम् ।**

अथ स्वरभेदनिदानम् ।

अत्युच्चभाषणविष्णाध्ययनाभिघातसंदूषणैः प्रकुपिताः पवना-
नादयस्तु ॥ स्रोतःसु ते स्वरखेषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं
भवति चापि हि षड्ब्रिधः सुः ॥ १ ॥

भाषा—बहुत जोरसे बोलनेसे, विषके खानेसे, ऊंचे स्वरसे पाठ करनेसे अर्थात् वेदादि पाठ करनेसे, कंठमें लकड़ी काष्ठ आदिकी चोट लगनेसे कोपको प्राप्त हुए जो बात, कफ, पित्त सो कंठमें स्वरके बहनेवाली चार नसें हैं उनमें प्राप्त हो अथवा उनमें वृद्धिको प्राप्त स्वरको नष्ट करे । यह स्वरभेदरोग बात, पित्त, कफ, सन्निपात, क्षय और मेद इन भेदोंसे छः प्रकारका है ॥

वातज स्वरभेदके लक्षण ।

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं स्वरं वदति गर्दुभवत्स्वरं च ॥

भाषा—वायुसे स्वरमंग होय तो रोगीके नेत्र मुख मूत्र और विषा ये काले होय, वह पुरुष दूटा हुआ शब्द बोले अथवा गधेके स्वरप्रमाण कर्कश बोले ॥

पित्तज स्वरभेदके लक्षण ।

पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा ब्रूयाद्गृहेन स च दाहसमन्वितेन ॥ २ ॥

भाषा—पित्तस्वरभेदवाले मनुष्यके नेत्र मुख मूत्र और विषा ये पीले होते हैं और बोलते समय गलेसे दाह होय है ॥

कफके स्वरभेदके लक्षण ।

ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकंठः स्वर्लपं शर्नैर्वदति चापे दिवा
विशेषात् ॥

भाषा—कफके स्वरभेदसे कंठ कफसे रुक्खा रहे और मंद मंद तथा थोड़ा बोले, दैनन्दिनमें बहुत बोले ॥

सन्निपातके स्वरभेदके लक्षण ।

सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपत्तं चाप्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाद्वः ३

भाषा—सन्निपातके स्वरभेदमें तीनों दोषोंके लक्षण होय हैं । यह स्वरभेद असाध्य है ऐसा ऋषि कहते हैं ॥

१ “विषाध्ययनाभिघातैः” अत्र स्थाने “विषाध्यशनाभिघातैः” इति पाठः साधुः ।
२ अदुक्तं सुश्रुते—“द्वाभ्या भाषते द्वाभ्या धोय करोति, भाषणधोषणयोरत्तमहत्त्वाभ्यां
भेदः ।” इति ।

क्षयजन्य स्वरभेदके लक्षण ।

धूम्येत वाक्षयकृते क्षयमामुयाच्च वागेष चापि हतवाक्परिवर्जनीयः ॥

भाषा—क्षयो स्वरभेदवाले पुरुषके बोलते समय मुखले धूआंसा निकले और वाणी क्षय हो जाय अर्थात् यथार्थ स्वर नहीं निकले । इस स्वरभेदमें जिस समय वाणी हत हो जाय अर्थात् ओजका क्षय होनेसे बोलनेकी सामर्थ्य नहीं हो तब यह असाध्य होय है और ओजका क्षय (नाश) नहीं होय तो साध्य है ॥

भेदके स्वरभेदका लक्षण ।

अन्तर्गतं स्वरमलक्ष्यपदं चिरेण मेदोन्वयोद्दृतिं दिग्धगलस्तृपात्तः ॥४॥

भाषा—भेदके सम्बन्धसे कफ अथवा मेद इनसे गला लिप्त होय अथवा भेदसे स्वरका मार्ग रुक जानेसे प्यास बहुत लगे, गलेके भीतर बोले और मंद बोले ॥

असाध्य लक्षण ।

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यस्य सहोपजातः ॥

मेदस्विनः सर्वसमुद्धवश्च स्वरामयो यो न स खिद्धिमेति ॥५॥

भाषा—क्षीण पुरुषके, वृद्धके, कृशके, बहुत दिनका, जन्मके संगही प्रगट भया, मेटे पुरुषके और सन्निपातोद्धव ऐसा स्वरभेदरोग साध्य नहीं होय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाशुरविरचितमाधवभावार्थवोधिन्यां मायुरीभापार्वीकार्यां
स्वरभेदनिदानं समाप्तम् ।

अथारोचकनिदानम् ।



वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोद्वाशनरूपगंधैः ॥

अरोचकाः स्युः परिहृष्टदंतकपायवक्रस्य मतोऽनिश्चेन ॥ १ ॥

भाषा—पृथक् वातादि दोष करके ३, सन्निपातसे १, शोकसे १, भयसे १, अति लोभसे १ तथा अतिक्रोधसे १, ऐसा ८ प्रकारका अरोचक (अरुचि) रोग है । वह मनको क्लेश देनेवाले अन्न, रूप और गंध इन कारणोंसे प्रगट होय है । परंतु सुश्रूत और अन्य ग्रन्थोंके मतसे पांचही प्रकार मुख्य माने हैं । भय, लोभ, क्रोधकी अरुचिको शोककीही अरुचिके अन्तर्गत मानते हैं । वादीकी अरुचिसे दांत खड़े हो और मुख क्षैतिला हो ॥

१ “ अरोचते भवेद्दोषरेको हृदयसंश्रये । तस्मिपातेन मनसः सन्तापेन च पञ्चमः ॥ ” इति ।

पित्तजादि अरुचियोंके लक्षण ।

कट्टमलमुष्णं विरसं च पूति पित्तेन विद्याल्लवणं च वक्रम् ॥

माधुयं पैच्छित्यगुरुत्वशैत्यविकद्वसंबंधयुतं कफेन ॥ २ ॥

भाषा—पित्तकी अरुचिसे कड़आ, खट्टा, गरम, विरस, हुर्गधयुक्त ऐसा मुख होय । कफकी अरुचिसे खारा, मीठा, पिच्छड़, भारी, शीतल मुख होय हैं और मुख बंधा सरीखा अर्थात् खाय नहीं और आत कफसे लिप्त हो ॥

शोकादि अरुचिके लक्षण ।

अरोचके शोकभयातिलोभकोधाद्यहृद्याऽशुचिंघजे स्यात् ॥

स्वाभाविकं चारुथमथारुचिश्च त्रिदोषजे नेकरसं भवेतु ॥ ३ ॥

भाषा—शोक, भय, अतिलोभ, कोध, अहृद्य अर्थात् मनको तुरी लगे ऐसी चख्तु, अपवित्र वास इनमें प्रगट हुई अरुचिमें मुख स्वाभाविक रहे अर्थात् वातजादिकोके सदृश कषेला, खट्टा आदि नहीं होय, सन्त्रिपातकी अरुचिमें अन्तसे अरुचितथा मुखमें अनेक रस मालूम हों ॥

वातजादि भेदकरके मुखकी विकृतिको कहकर अन्य ठिकानेपर

जो विकृति होय है उसे कहते हैं ।

हृच्छूलपीडितयुतं पवनेन पित्तान्तङ्गदाहशोषचहुलं सकफप्रसेकम् ॥

श्लेषमात्मं वहुरुजं वहुभिश्च विद्याऽद्वृगुण्यमोहजडताभिरथापरं च ॥४॥

भाषा—वातकी अरुचिसे हृदयमें शूल और वेदना होती है । पित्तसे प्यास दाह और चूसनेके सदृश पीड़ा ये लक्षण होते हैं । कफकी अरुचिमें मुखसे कफ गिरे । सन्त्रिपातकी अरुचिमें पीड़ा अर्थात् होय । वैगुण्य कहिये मनकी व्याकुलता, मोह, जडत्व इन लक्षणोंसे अपर कहिये आंगन्तुक अरोचक जाने । भूख होय परंतु खानेकी सामर्थ्य न होना इसको अरुचि कहते हैं । आपको भियमी अन्न किसीने दिया होय परंतु खाय नहीं उसको अन्नाभिनन्दन कहते हैं । अन्नका स्मरण, श्रवण, दर्शन और वास इनसे जिसको त्रास होय उसको भक्तद्वेष कहते हैं । इस प्रकार यह रोग तीन प्रकारका है । इसीवास्ते चरक सुश्रुतने अरोचक शब्दकरके संग्रह करा है ॥

इति श्रीपणिडितदत्तराममायुरनिर्भितमाधवार्थबोधिनीमायुरीभाषार्दीकार्या

अरोचकनिदानं समाप्तम् ।

१ उक्त हि वृद्धभोजन—“ प्राक्षिप्त यन्मुखे चान्न जतोस्तत्स्वदते मुहुः । अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमयो शृणु ॥ चित्यित्वा तु मनसा द्विष्टा श्रुत्वा च भौजनम् । द्वेषमायाति यो नन्तुर्मत्तद्वेषः स उच्यते ॥ कुपितस्य भयार्त्तस्य अभिचाराभिभूतये । यस्यान्ने न भवेत् श्रद्धा स भक्तद्वेष उच्यते ॥ ” इति ।

अथ छर्दिनिदानम् ।

—————*—————

छर्दिके कारण और निश्चिति ।

**दुष्टदौषिः पृथक्सर्वबीभत्सालोकनादिभिः ॥ छर्दयः पंच विज्ञे-
यास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ १ ॥ अतिद्रवैरातिस्थिरहृद्यैर्ल-
वणैरपि ॥ अकाले चातिमात्रैश्च तयादुसात्म्यैश्च भोजनैः ॥ २ ॥
श्रमाद्यादथाद्वेगादर्जीर्णात्कृमिदोषतः ॥ नार्यश्चापन्नसत्त्वा-
यास्तथातिद्रुतमश्रतः ॥ ३ ॥ वीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यद्रुतमुत्क्षे-
शितो बलात् ॥ छादयन्नानन वेगैर्दयन्नभञ्जनैः ॥ निश्चयते
छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावति ॥ ४ ॥**

भाषा—दुष्ट हुए पृथक् और सब दोषोंकरके तथा दुष्ट वस्तुके देखनेसे आदि शब्दकरके दुष्ट गंधके संघनेसे पांच प्रकारकी छर्दि जाननी अर्थात् जिसको रह, वमन, उलटी कहते हैं उसके लक्षण आगे कहते हैं। अत्यन्त पतले अथवा विकने, अहृद्य (अप्रिय) वस्तु, खारके पदार्थ इनके सेवन करनेसे, कुसमय भोजन करनेसे अथवा अत्यन्त भोजन करनेसे अथवा जो न पचे ऐसा भोजन करनेसे श्रम, भय, उद्वेग, अर्जीर्ण, कृमिदोष इन कारणोंसे, गर्भिणी स्त्रीके गर्भकी पीडासे तथा जलदी जलदी भोजन करनेसे और वीभत्स (खोटे) कारणोंसे जैसे विषा, राध आदिका देखना इनसे तीनों दोष कुपित हो वलसे मुखको आच्छादन करे और अंगोंको पीडा कर मुखद्वारा भोजन हुआ सब निकाल देय इसको छर्दि (उलटी) ऐसा मनुष्य कहते हैं। इस जगह उदान वायु वमन कराती है ॥

छर्दिका पूर्वरूप ।

हल्लासोद्वारसंरोधो प्रसेको लक्षणस्तनुः ॥

द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ ५ ॥

भाषा—हृदयमें खारा, खट्टा प्रथमही निकले अथवा सूखी रह होय, डकार आवेनहीं, लार गिरे, खारी मुख हो जाय, अन्न और पानीसे अत्यन्त अरुचि होय यह छर्दि (छाट) का पूर्वरूप है ॥

वातकी छर्दिके लक्षण ।

हृत्पार्श्वपीडा मुखशोषशीर्षनाभ्यर्तिकासस्वरभेदतोदैः ॥

उद्भारशब्दं प्रवलं सफेनं विच्छन्नकृष्णं ततुकं कषायम् ॥

कृच्छ्रेण चालपं महता च वेगेनातोऽनिलाच्छर्दयतीह दुःखम् ॥६॥

भाषा—हृदय और पसवाड़ा इनमें पीड़ा होय, मुखशोष, मस्तक और नाभि इनमें शूल होय, खासी, स्वरमेद, सुई तुमनेकीसी पीड़ा होय, डकारका शब्द प्रबल होय, वमनमें ज्ञाग आवे, ठहर ठहरकर वमन होय तथा थोड़ी होय, वमनका रंग काला होय, पतली और कैली होय, वमनका वेग बहुत होय परंतु वमन योड़ा होय और वेगके प्रभावसे दुःख बहुत होय ये लक्षण वायुकी छार्दिके हैं ॥

पित्तकी छार्दिके लक्षण ।

मूच्छां पिपासा मुखशोषशीर्षताल्वक्षिसंतापतमोभ्रमार्तः ॥

पीतं भृशोषणं हरितं सतिकं धूप्रं च पित्तेन वमेत्सदाहम् ॥ ७ ॥

भाषा—मूच्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक, तालुआ, नेत्र इनमें सन्ताप अर्थात् तपायमान रहे, अंधेरा आवे, चक्कर आवे, रोगी पीला, गरम, हरा, कुलुआ, धूपके रंगका और दाहयुक्त ऐसे पित्तको वमन करे यह पित्तकी छार्दिका लक्षण है ॥

कफकी छार्दिके लक्षण ।

तंद्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकं संतोषनिद्राऽरुचिगैरवार्तः ॥

स्तिंघं घनं स्वादु कफाद्विशुर्द्धं सरोमहसौऽल्परुजं वमेतु ॥ ८ ॥

भाषा—तन्द्रा, मुखमें मिठास, कफका पडना, संतोष (अन्नमें अरुचि), निद्रा, अरुचि, मारीपना इनसे पिछित हो, चिकना, गाढ़ा, मीठा, सफेद ऐसे कफको वमन करे, जब रद्द करे तब पीड़ा थोड़ी होय, रोमांच होय, ये कफकी छार्दिके लक्षण हैं ॥

त्रिदोपकी छार्दिके लक्षण ।

शूलाविपाकाऽरुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबलाप्रसक्तम् ॥

छार्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलसांद्रोषणरक्तं वमतां नृणां स्थात् ॥ ९ ॥

भाषा—शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह इन लक्षणोंसे प्रबल भई जो वमन सो सञ्चिपातसे होय है । रद्द करनेवालेकी वमन खारी, खट्टी, नीली, संघट जिसको देशावरी मनुष्य जाड़ी कहे हैं, गरम, लाल ऐसी होय है ॥

असाध्य छार्दिके लक्षण ।

विद्स्वेदमूत्रांबुवहानि वायुः स्रोतांसि संरुद्ध्य यदोर्ध्वमोति ॥

१ यदुक्तं सुश्रुते—“ शुच्छ हिमं साद्रकफ कफेन ” इति ।

उत्सन्नदोषस्य समाचितं तं दोषं समुद्भय नरस्य कोष्टात् ॥ १० ॥
विष्णुत्रयोस्तत्समगन्धवर्णं तृदशासकासार्तियुतं प्रसक्तम् ॥
प्रच्छ्रद्येहुष्टमिहातिवेगात्यार्दितश्चाशु विनाशमोति ॥ ११ ॥

भाषा—जिस समय यह वायु पुरीष, पसीना, पूत्र और जल इनके बहनेवाली नाडियोंके मार्गको रोककर ऊपर आवे तब ऊपर आनेवाला दोष (मलमूत्रादि) कोठेसे बाहर निकाल बमन करावे, उस बमनमें मलमूत्रकीसी दुर्गंध आवे तथा वर्णभी मलमूत्रके सहश होय, प्यास, श्वास, खांसी और शूल ये होय और यह बमन वारंवार बड़े बेगसे होय है इस बमनसे पीडित मनुष्य योडे कालमें नाशको प्राप्त हो । यहभी सन्निपातकी है ऐसा कोई आचार्य कहते हैं और अन्य आचार्य कहते हैं कि सब छार्दि प्रबल हैं परंतु ऐसी छार्दि असाध्य है ॥

आगंतुक छार्दिके लक्षण ।

कीभत्सजा दोहदजाऽमजा द याऽसात्म्यजा वा कृमिजा च याहि ॥
सा पञ्चमो तां च विभावयेत्तु दोषोच्छ्येषैव यथोक्तमादौ ॥ १२ ॥

भाषा—कीभत्स पदार्थ कीदिये मल, राध, रुधिर आदि अपवित्र बस्तुके देखनेसे; गंधसे, स्वादसे, खीके गर्भ रहनेसे, आमसे, असमान भोजनसे अथवा कृमिरोगसे इन कारणोंसे प्रगट भई आगंतुज पांचवीं छार्दि होय है । उसमें पूर्वोक्त लक्षणोंमेंसे जिस दोषके अधिक लक्षण मिलें उसी दोषको प्रबल जाने ॥

कृमिकी छार्दिके लक्षण ।

शूलहृष्टासच्छुला कृमिजा च विशेषतः ॥

कृमिहृष्टेगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ १३ ॥

भाषा—कृमिकी छार्दिमें शूल, खाली रख ये विशेष होते हैं और बहुधा कृमि और हृष्टयरोग इनके लक्षण सहश लक्षण जानने । जैसे पिछाड़ी कह आये हैं—“ उत्क्षेदः
ष्टीविनं तोदः शूलं हृष्टासकस्त्मः । अहचिः इयावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ ”

साध्यासाध्य लक्षण ।

क्षीणस्य या छार्दिरतिप्रसक्ता सोपद्रवा शोणितपूर्ययुक्ता ॥

सचंद्रिकां तां प्रवदेदसाध्यां साध्यां चिकित्सेन्निरुपद्रवां च ॥ १४ ॥

भाषा—क्षीण पुरुषकी अथवा वारंवार एकसी होनेवाली और कासादि उपद्रव-युक्त और रुधिर राध मिली, मोरचंद्रिकाके समान ऐसी छार्दी असाध्य है और जो उपद्रवराहित हो उसको साध्य समझकर उपाय करें ॥

उपद्रव ।

कासश्वासौ ज्वरो हिक्का तृष्णा वैचित्यमेव च ॥
हृदोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्द्देहुपद्रवाः ॥ १६ ॥

भाषा—खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, प्यास, बेचेत, हृदयरोग, अंधेरा आना ये छार्द्देहोगके उपद्रव हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्भितमाधवार्थवोधिनीमाथुरीभाषाधिकाया
छर्दिनिदान समाप्तम् ।

अथ तृष्णानिदानम् ।

तृष्णाकी सम्प्राप्ति ।

भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वाप्युर्ध्वं चितं पित्तविर्घनैश्च ॥

पित्तं सवातं कुपितं वराणां तालुप्रपञ्चं जनयेत्पिपासाम् ॥ १ ॥

भाषा—भयसे, श्रमसे, बलके भयसे और पित्तके बढ़ानेवाले क्रोध उपवासादिकोंसे अग्ने स्थानमें संचित हुआ जो पित्त और वात ये कुपित होकर ऊपर तालुए (पिपासास्थान) में जाय तृष्णा (प्यास) को उत्पन्न करें । इस जगह तालुका तो उपलक्षणमात्र है । तालुके कहनेसे होमस्थान (हृदयमें जो प्यासका स्थान है) उसकाभी ग्रहण है क्योंकि वहभी प्यासका स्थान है सो चर्कमें लिखा है ॥

अन्नजादिक तृष्णाकी संप्राप्ति ।

स्रोतःस्वपां वाहिषु दूषितेषु दोषैश्च तृष्णा भवतीह जंतोः ॥

तित्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथा ह्यामसमुद्धवा च ॥

भक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां निषोध लिंगान्यनुपूर्वशङ्खश्च ॥ २ ॥

भाषा—जलके बहनेवाली नसके दूषित होनेसे दोष (अन्न, कफ और आम) से तृष्णारोग होय है वह तीन प्रकारका है और चौथी क्षतज तृष्णा (जो व्रणवाले पुरुषके होती है), पांचवीं क्षयसे होती है, छठी आमसे होती है, सातवीं अन्नसे होय । उन्होंके लक्षण क्रमसे कहता हूँ । इनमें पाहिली चार तृष्णा सुखसाध्य हैं और बाकीकी तीन कष्टसाध्य हैं । शंका—क्योंजी ! इस श्लोकमें “ स्रोतःसु ” यह बहुवचन क्यों धरा ? यह विरुद्ध है क्योंकि सुश्वेतमें तौ जलके बहनेवाली दोही

^१ “ रसवाहिनी च धमनी जिह्वामूलगतालुक्तोऽनः । सशोष्य नृणां देहे कुस्तस्तृष्णा-मतिप्रबलौ ॥ ” इति । ^२ “ द्वे उद्कवहे ” इति ।

नाडी मानी हैं । उत्तर-अन्न कफ आमको हुष्ट करनेसे तथा रोगोंका सम्बन्ध होनेसे अन्न, आम, कफको दोषत्व ग्रहण है यह गयदासका मत है । अथवा दोषके कहनेसे वात, पित्त, कफकाही ग्रहण करना चाहिये ॥

वातकी तृष्णाके लक्षण ।

क्षामास्थता मारुतसंभवायां तोदस्तथा शंखशिरःसु चापि ॥

स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्रं शीताभिरद्विश्व विवृद्धिमोति ॥ ३ ॥

भाषा-चातकी तृष्णा (प्यास) से मुख उतर जाय अथवा दीन होय, कनपटी और मस्तक इन ठिकाने नोचनेके समान पीड़ा होय, रस और जल बहनेवाली नाडियोंका मार्ग रुक जाय, मुखसे स्वाद जाता रहे और शोतल जलके पीनेसे प्यास बढ़े ये अनुपश्यके लक्षण हैं । चकारसे निद्राका नाश होय ।

पित्तकी तृष्णाके लक्षण ।

मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाहा रकेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः ॥

शीताभिनंदा मुखतित्तता च पित्तास्मिकायां परिदूयनं च ॥ ४ ॥

भाषा-पित्तकी तृष्णामें मूर्च्छा, अन्नमें अरुचि, बडबड, दाह, नेत्रोंमें लाली, अत्यंत शोष, शीत पदार्थकी इच्छा, मुखमें कहुआट और सन्ताप ये लक्षण होते हैं ।

कफकी तृष्णाके लक्षण ।

बाषपावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णाबलासेन भवेत्तथा तु ॥

निद्रा गुरुत्वं मधुरास्थता च तृष्णादितः शुष्प्यति चातिमात्रम् ॥ ५ ॥

भाषा-अपने कारणसे कुपित कफकरके जठराग्नि आच्छादित होय तब अग्रिकी गरमी अधोगत जलके बहनेवाली नाडियोंको सुखाय कफकी तृष्णाको प्रगट करे । केवल कफसे तृष्णाका प्रगट होना असंभव है । केवल कफ बढ़े भयेका द्रवीभूत धर्म पतला होनेसे प्यासकर्तृत्व असंभव है और वात पित्तको तृष्णा करनेवाले होनेसे होय है सो ग्रन्थात्मरमें लिखामी है इसीसे चरकाचार्यने कफकी तृष्णा नहीं कही । मुश्शुते चिकित्सामें भेद होनेसे कही है और हारीतनेमी सपित्त कफकी तृष्णा मानी है, केवल कफकी नहीं मानी । इस तृष्णामें निद्रा, भारीपना, मुखमें मिठास ये लक्षण होते हैं । इस तृष्णासे पीडित पुरुष अत्यन्त सूख जाता है ।

क्षतज तृष्णाके लक्षण ।

क्षतस्य रुक्ष शोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु ॥

१ यद्युक्तम्—“ पित्त सवातं कुपित नराणा ॥ ” इत्यादि । चरकेऽप्युक्तम् “ मदस्याश्रेविना हि तृष्णापघनाद्वाती हि शोषणे हेतुः ॥ ” इति । सुश्रुतेऽप्युक्तम् । “ मदस्याश्रेवायव्याप्तौ गुणावंडवहानि च । स्रोतांसि शोषयेद्यस्मात्तुतस्तृष्णा प्रवर्तते ॥ ” इति । ।

भाषा—शक्षादिक्के लगनेसे वाच होय तब उस पुरुषके पीड़ा और रुधिरका साथ होनेसे जो तृष्णा होय यह चौथी क्षतज तृष्णा जानेनी ॥

क्षतज तृष्णाके लक्षण ।

रसक्षयाद्या क्षयसंभवा सा तयाभिभूतस्तु निशादिनेषु ॥ ६ ॥

पेपीयतेऽभः स सुखं न याति तां सञ्चिपातादिति केचिदाहुः ॥

रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषग्वयवस्थेत् ॥ ७ ॥

भाषा—रसक्षयसे जो तृष्णा होय उसमें जो लक्षण होय हैं सो सब क्षयज तृष्णामें होते हैं तिससे पीडित पुरुष रात्रि दिन वारंवार पानी पीवे परंतु संतोष नहीं होय । कोई आचार्य इसको सञ्चिपातसे प्रगट कहते हैं । रसक्षयके जो लक्षण कहे वे सब होते हैं सो वैद्योंको जानने चाहिये । रसक्षयलक्षण सुश्रूतमें कहे हैं वे इस प्रकार होते हैं । रसक्षय होनेसे हृदयमें पीड़ा, कंप, शोष, बधिरता (बहरापना) और प्यास होय है ॥

आमज तृष्णाके लक्षण ।

त्रिदोषलिंगाऽमसमुद्धवा तु ह्लच्छुलनिष्ठीवनसादुक्त्री ॥ ८ ॥

भाषा—आमज कहिये अजीर्णसे जो तृष्णा होय उसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं सो सुश्रूतमें लिखाभी है और हृदयमें दूल, लारका गिरना, ग्लानि ये सब होते हैं ॥

अन्नज तृष्णाके लक्षण ।

सिग्धं तथाम्लं लवणं च भुक्तं गुर्वन्नमेवाश्च तृष्णं करोति ॥

भाषा—चिकना, खट्टा, खारा, चकारसे कड़वा, कैषला आदि जानना, ऐसे मोजनसे तथा मात्राधिक और भारी ऐसा अन्न खानेसे अवश्यही शीघ्र प्यासको प्रगट करे । दृढवल आचार्यने पांचही मकारकी तृष्णा कही है । वातकी, दित्तकी, क्षयकी, आमकी, उपसर्गकी । तहां कफकी और आमकी तृष्णाके अंतर्गत कही हैं और क्षतजा वातकी तृष्णाके अंतर्गत जाननी और अन्नजाभी वातकी तृष्णाके अंतर्गत कही है क्योंकि भोजनसे वातका कोप होय है । शंका—क्योंजी ! सुश्रूतने मद्यके प्रकरणमें मद्यकी तृष्णा कही है फिर माधवाचार्यने सातही तृष्णा कैसे कही है ? उत्तर—दृढवलाचार्यके मतसे मद्यकी तृष्णाको वातकी तृष्णाके अन्तर्गत होनेसे माधवाचार्यने सातही कही है ॥

१ तदुक्त हारीतेन—“ स्वाद्वस्तुलवणाजीर्णः कुद्रः श्लेष्मा सहोष्मणा । प्रपद्याम्बुद्धह-
स्त्रोतस्तृष्णा सजनयेवृष्णाम् ॥ शिरसो गौरव तद्रा माधुर्य वदनस्य च । भक्तद्वेषः प्रसेकश्च
निद्राधिष्य तथैव च ॥ लिङ्गरैत्विनार्नीयात्तृष्णां कफसमुद्धवाम् इति । २ “ रसक्षये
हस्पीडा कपशोषवधिरता तृष्णा च ॥ ” इति । ३ “ अजीर्णत्पवनादीर्नां विभ्रमो
बलवान् भवेत् । ” इति । “ सतत यः पिवेत्तोय न तृष्णिमधिगच्छति । पुनः कांक्षति
तोय च त तृष्णादित्वादिशेत् ॥ ” इति ।

उपसर्गज तृष्णके लक्षण ।

दीनस्वरः प्रताम्यन्दीनाननशुष्कहृदयगलतालुः ॥
भवति खलु सोपसर्गा तृष्णा सा शोषिणी कष्टा ॥ ३ ॥
ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ॥ १० ॥

भाषा—हीनस्वर, मोह, मनमें गुनि होय, सुख दीन हो जाय; हृदय, गला और तालु सूख जाय ये लक्षण तृष्णके उपद्रवसे होते हैं। यह मनुष्यको सुखाय डाले और व्याधिसे शरीर कृश होनेसे यह कष्टसाध्य हो जाय है। इसके उपद्रव ये हैं। ज्वर, मोह, क्षय, खांसी, श्वास आदिशब्दसे अतिसारादिकोंका प्रहण है। ये रोग जिसके इंजिसके होंय उसकी तृष्णा कष्टसाध्य जाननी ॥

असाध्य तृष्णके लक्षण ।

सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम् ॥
घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णा मरणाय विज्ञेयाः ॥ ११ ॥

भाषा—वातजादि सब प्रकारकी तृष्णा अत्यन्त बढ़ी हुई अथवा रोगसे कृश भये ऐसे पुरुषको जो तृष्णा होती है सो अथवा छर्दिसे प्रगट भई जो तृष्णा और जो भयंकर उपद्रवकरके युक्त ऐसी तृष्णा मारनेका कारण होय है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममायुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमायुरोभापार्यकायां
तृष्णारोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ मूच्छानिदानम् ।

—६८—

तृष्णामें मोह होय है इसीसे तृष्णाके अनन्तर मूच्छाको कहते हैं ।

निदान और संप्राप्ति ।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसोविनः ॥ वेगाघातादभी-
घाताद्वीनश्चत्वस्य वा पुनः ॥ १ ॥ करणायतनेषु वा बाह्य-
व्याभ्यन्तरेषु च ॥ निविश्नते यदा दोषास्तदा मूच्छति
मानवाः ॥ २ ॥ संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः ॥
ततोऽभ्युपौति सहस्रा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ३ ॥ सुखदुःख-
व्यपोहकृत् नरः पतति काष्ठवत् ॥ मोहो मूच्छति तामादुः
षड्बिधा सा प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥

**वातादीभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च ॥ पटस्वप्येतासु
पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ ६ ॥**

भाषा—क्षीण पुरुषके दोषोंका संचय होनेसे, विरुद्ध आहार क्षीर मत्स्यादि-
कका सेवन करनेसे, मलमूत्रादि वेगको धारण करनेसे, लकडी आदिकी चोट लग-
नेसे अथवा जिस पुरुषका सतोगुण क्षीण हो गया होय ऐसे पुरुषकी वाहरकी
और भीतरकी मनके वहनेवाली नाडियोंमें दोष प्रवेश करे तब मनुष्यको मूर्च्छा
आती है । अर्थात् संज्ञाके वहनेवाली नाडियोंमें वातादि दोषोंकरके आच्छादित
होनेसे सुखदुःखका ज्ञान नष्ट होय तब मनुष्य पृथ्वीपर काष्ठकीसी तरह गिरे । इस
रोगको मूर्च्छा अथवा मोह ऐसा कहते हैं । अथवा वाहरकी इन्द्रियें नेत्र, कान
आदि कर्मेंद्रिये और बुद्धिनिद्रिये इनमें बलवान् दोष (वात, पित्त, कफ) प्रवेश
कर संज्ञाकी वहनेवाली जो नाडी तिसको वह वात, पित्त, कफ रोग अंधकारके
प्रगट करे तब मनुष्य काष्ठकी भाँति पृथ्वीपर गिरे उसको मूर्च्छा कहते हैं अथवा
मोह कहते हैं । वह मूर्च्छा छः प्रकारकी है । वात, पित्त, कफसे तीन प्रकारकी और
रुधिर, विष और मद्य इन भेदोंसे तीन प्रकारकी । इन तीनों मूर्च्छाओंमें पित्त है
सो मुख्य प्रधान है अथवा व्यापक है ॥

मूर्च्छाका पूर्वरूप ।

हृत्पीडा जूँभणं ग्लानिः संज्ञादौर्बल्यमेव च ॥

सर्वासां पूर्वरूपाणि यथारुवं ता विभावयेत् ॥ ६ ॥

भाषा—हृदयमें पीडा, जंभाई, ग्लानि, भ्रांति ये मूर्च्छाके पूर्वरूप हैं । उस
मूर्च्छाके वातादि भेद जानने । यह प्रगट अवस्थाके पूर्वरूप अवस्थाको भेद नहीं
यह जर्यटाचार्यका मत है ॥

वातकी मूर्च्छाके लक्षण ।

**नोलं वा यादि वा कृष्णमाकाशमथ वाऽरुणम् ॥ पश्यस्तमः प्रवि-
शति शीघ्रं च प्रातिबुद्ध्यते ॥ ७ ॥ वेपथुश्चांगमर्दश्च प्रपीडा
हृदयस्य च ॥ काइर्यं इयावारुणा च्छाया मूर्च्छा ये वातसंभवे ॥ ८ ॥**

भाषा—जो मनुष्य नीले रंगका अथवा काले रंगका तथा लाल रंगका आकाशको
देखे पीछे मूर्च्छाको प्राप्त होय और जल्दी होश हो जाय, देहमें कंप, अंगका
टूटना, हृदयमें पीडा होय, शरीर कृश हो जाय, शरीरका रंग काला लाल पड़
जाय उसको वातकी मूर्च्छा जाननी ॥

१ उक्त चाभिधानातरे—“ सज्जोपधात मूर्च्छो यां मूर्च्छा स्यान्मूर्च्छन तथा । कृमलं
प्रलयो मोहः सन्धासन्तु मूर्तोपमः ॥ ” इति ।

पित्तकी मूर्च्छाके लक्षण ।

रत्नं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा ॥ पृथ्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदश्च प्रबुद्धयते ॥ ९ ॥ सपिपासः ससंतापो रत्नपीताकुलेक्षणः ॥ संभिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छा चेतिपत्तसंभवा ॥ १० ॥

भाषा—जिसको आकाश लाल, हरा, पीला दीखे पीछे मूर्च्छा आवे और साधान होते समय पसीना आवे, प्यास होय, संताप होय, नेत्र लाल पीले होंय, मल पतला होय, देहका वर्ण पीला होय ये लक्षण पित्तकी मूर्च्छाके हैं ॥

कफकी मूर्च्छाके लक्षण ।

मेघसंकाशमाकाशमावृतं वा तमो घनैः ॥ पृथ्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुद्धयते ॥ ११ ॥ गुरुभिः प्रावृत्तैर्गैर्यथैवाद्रेण चर्मणा ॥ सप्रसेकः सहृद्धासो मूर्च्छा ये कफसंभवे ॥ १२ ॥

भाषा—कफकी मूर्च्छामें आकाशको मेघके समान अथवा अंधकारके समान अथवा बहल इनसे व्यास देखकर मूर्च्छागत होय, देरमें सावधान होय, भारी बोहासा देहपर भार मालूम होय अथवा गीला चमडा धारण करासा मालूम होय, मुखसे पानी गिरे, रह होयगी ऐसा मालूम होय ॥

सन्निपातकी मूर्च्छाके लक्षण ।

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवापरः ॥

स जंतुं पातयत्याशु विना वीभत्सचेष्टितैः ॥ १३ ॥

भाषा—सन्निपातकी मूर्च्छामें सब दोषोंके लक्षण होते हैं । यह रोग दूसरा अस्मार (मृगी) जानना चाहिये । परन्तु अपस्मारमें दाँतोंका चबाना, मुखसे झागका गेरना, नेत्रोंका हाल औही प्रकारका हो जाना इत्यादिक लक्षण होते हैं सो इस रोगमें नहीं होते; इदनाही भेद हैं । शंका-क्योंजी ! पूर्व तो छः प्रकारकी मूर्च्छा कह आये फिर सन्निपातकी मूर्च्छा कैसे कही ? उत्तर-चरेककी अष्टोत्तरी-याध्यायमें लिखा है, जैसे अपस्मार चार प्रकारका है । वातका, पित्तका, कफका, सन्निपातका । उसी प्रकार मूर्च्छारोगभी चार प्रकारका है । इसी मतको ग्रहण कर माधवाचार्यने सन्निपातकी मूर्च्छा कही है ॥

रत्नकी मूर्च्छाके लक्षण ।

पृथिव्यापस्तमोरुपं रत्नं गंधस्तदन्वयः ॥

१ चतुर्थो मूर्च्छा अपस्मारे व्याख्याताः । यथा चत्वारोऽपस्माराः वातेन, पित्तेन, श्वेषमणा, सन्निपातेन तद्व्याप्तिः ।

तस्माद्गतस्य गंधेन मूर्च्छीति भुवि मानवाः ॥

द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्टा यदभिमुह्यति ॥ १४ ॥

माषा-पृथ्वी और जल ये दोनों तमोगुणविशिष्ट हैं सो सुश्रुतमें लिखा है । और रुधिरकी गंधभी उन दोनोंसे अर्थात् पृथ्वी और जलसे प्रगट है तो रुधिरकी गंधभी तमोगुणविशिष्ट हुई इसीसे जो तामसी पुरुष हैं वे रुधिरकी गंधीसे मूर्च्छित होते हैं । जो राजसी, सात्त्विकी पुरुष हैं वे मूर्च्छित नहीं होते । शंका-वर्योंजी ! चंपक (चम्पा) पुष्पकी गंधसेभी मूर्च्छी होनी चाहिये क्योंकि उसमेंभी पार्थिव अर्थात् तामसगुणविशिष्ट गंध है । उत्तर-इसवास्ते कहते हैं “ द्रव्यस्वभाव-भित्येके ” अर्थात् कोई आचार्य कहते हैं कि यह द्रव्यकाही स्वभाव है अर्थात् रुधिरका यही स्वभाव है कि जिसकी गंधसेही मनुष्य मूर्च्छित होय है । अब प्रभावको औरभी दृढ़ करते हैं । “ दृष्टा यदभिमुह्यति ” अर्थात् रक्तके देखनेसेभी मूर्च्छित होय है सो लिखामी है ॥

विष और मद्यसे उत्पन्न मूर्च्छाको कहते हैं ।

गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः ॥

त एव तस्मादाभ्यां तु मोहौ स्यातां यथेरितौ ॥ १५ ॥

मापा-तैलादिकोमे जो दश गुण हैं वेही गुण विष और मद्यमें अत्यंत तीव्रतासे रहते हैं । इसीसे विष और मद्यके सेवन करनेसे मोह होय है इसमेंभी मद्यमें तीव्र रहे और विषमें तीव्रतर रहे इसीसे विषका मोह स्वयं शांत नहीं होय । क्योंकि विष अपाकी है और मद्यका मोह मद्यकी नसा उत्तरेपर शांत हो जाय है । यह भेद विष और मद्यमें रहता है ॥

रक्तजादि तीन मूर्च्छाओंके लक्षण ।

स्तब्धांगदृष्ट्वसृजा मूढोच्छासश्च मूर्च्छितः ॥ १६ ॥ मद्येन
विलपञ्चेते नष्टविभ्रांतमानसः ॥ गात्राणि विक्षिपन्भूमौ जरा
यावन्न याति तत ॥ १७ ॥ वेपथुस्वप्रतृष्णाः स्युस्तमश्च विष-
मूर्च्छिते ॥ वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ॥ १८ ॥

माषा-रुधिरकी मूर्च्छामें अंग और नेत्र निश्चल हो जाय और श्वास अच्छे ग्राकार आवे नहीं । बहुत मद्यके पीनेसे जो मूर्च्छी हो उसके ये लक्षण हैं । बहुत

१ “ तमोबहुला पृथ्वी तमोबहुला आपः ॥” इति । २ यदुक्तम्—“ भेदस्तब्धांगदृष्ट्व
गूढोच्छासस्त्वैव च । दर्शनादमृजनस्तस्माद्गूढाच्चैव प्रमुह्यति॥” इति । ३ यदुक्त दृढ़वलेन-
“ लघु रुक्षमाशु विशद् व्यवायि तीक्ष्ण विकाशि च । उष्ममनिर्देश्यरस दशगुणमुक्तं
विषं तन्ष्टः ॥-” इति ।

बके, सो जाय, संज्ञा जाती रहे, भ्रमयुक्त होय और जवतक मध्य न पचे तवतक पृथ्वीमें हाथ पैर पटके । विषजन्यं मूर्च्छामें कांपे, सोबे, प्यास लगे और अंधेरा आवे । एवं मूल, पत्र, दूध इनके भेदकर जो विषभक्षणसे लक्षण होते हैं सो सब लक्षण होते हैं ॥

मूर्च्छा, भ्रम, तन्द्रा और निद्रा इनके भेद कहते हैं ।

मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद् भ्रमः ॥

तमोदातकफा तन्द्रा निद्रा श्वेषमतमोभवा ॥ १९ ॥

भाषा—मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिक रहते हैं । रजोगुण, पित्त और वायु इनसे भ्रम होय है तमोगुण, वायु और कफ इनसे तन्द्रा और कफ तथा तमोगुण इनसे निद्रा उत्पन्न होती है ॥

तन्द्राके लक्षण ।

इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिगौरवं जृंभणं कुमः ॥

निद्रार्लस्येव यस्यैते तस्य तन्द्रा विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

भाषा—इन्द्रियें अपने अपने विषयको ग्रहण न करें, देह भारी हो जाय अथोत् सुस्त हो जाय, जंभाई और कुम होय ये लक्षण निद्रार्ते पुरुषके सदृश जिसके हाँय उसको तन्द्रा कहते हैं । इसमें आधे नेत्र खुले रहते हैं । निद्रामें इन्द्रियें और मनको मोह होय है । तन्द्रामें केवल इन्द्रियोंकोही मोह होय है । निद्रा और भ्रम ये दोनों अतिप्रसिद्ध होनेसे माधवाचार्यने नहीं कहे, परंतु चरकमें कहे हैं । सो इस प्रकार, जिस समय मन और इन्द्रिय खेदको प्राप्त होय और अपने अपने विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) त्याग देय, तब यह मनुष्यको निंद्रा आती है ॥

संन्यासके भेदको कहते हैं ।

दोषेषु मदमूर्च्छाद्यागतवेगेषु देहिनाम् ॥

स्वयमेवोपशाम्याति संन्यासो नौषधेविना ॥ २१ ॥

भाषा—दोषोंका वेग नष्ट होनेसे मदमूर्च्छादिक अपने आप शांत हो जाते हैं परंतु संन्यास यह औषधके बिना शांत नहीं होता है ॥

— १ “ ये विषस्य गुणाः प्रोक्ताः सञ्चिपातप्रकोपनः । त एव मद्ये दृष्ट्यते विषे तु बलवत्तराः ॥ ” इति । २ “ तत्र भ्रमः स्थाणौ पुरुषज्ञानं पुरुषे विपरीतसत्त्वज्ञानादिकम् । अन्ये चक्रस्थितस्येव सभ्रभवस्तुदर्शनम् ॥ ” इति । ३ “ यदा तु मनानि क्लान्ते कर्मात्मानः कुमान्विताः । विषयेभ्यो निवर्जते तदा स्वपिति मानवः ॥ ” इति । ४ “ येनायासश्रमो देहे प्रष्टः श्वासवर्जितः । कुमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रवाधकः ॥ ” इति ।

संन्यासके लक्षण ।

वाग्देहमनसां चेष्टा आक्षिप्यातिवला मलाः ॥

संन्यस्यंत्यबलं जंतुं प्राणायतनमाश्रिताः ॥ २२ ॥

स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठोभूतो मृतोपमः ॥

प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यःफलां क्रियाम् ॥ २३ ॥

भाषा—अत्यंत बलिष्ठ भयं जो दोष सो वाणी, देह और मन इनके व्यापारको बंद कर हृदयमें प्राप्त हो निर्वल मनुष्यको मूर्च्छित करे, वह संन्याससे पीडित मनुष्य काष्ठकी भाँति पृथ्वीपर गिरे । उसकी सद्यःफल चिकित्सा अर्थात् सुईसे छेदना, तीखे अंजनका लगाना, अनामिकाको पीडित करना, कौचकी फली लगाना, दाह देना, नास देना इत्यादिक क्रिया न करे तौ वह रोगी प्राणवियुक्त कहिये मरणको प्राप्त हो अन्यथा बचे है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तरामाशुरप्रणितमाधवार्थबोधिनीमाशुरीभाषादीकाया
मूर्च्छीरोगनिदान समाप्तम् ।

अथ मदात्ययनिदानम् ।

ये विषस्य गुणः प्रोक्तास्तेऽपि मद्ये प्रतिष्ठिताः ॥ तेन मिथ्योपशु-
क्तेन भवत्युग्रो मदात्ययः ॥ १ ॥ किं तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं
तथा स्मृतम् ॥ अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽसृतम् ॥ २ ॥

भाषा—विषके जो गुण कहे हैं सोईं गुण मद्यमें हैं अर्थात् यही मद्य अविधिसे सेवन करा भया घोर भयंकर मदात्ययरोग प्रगट करे है । कोई ऐसे शंका करे कि विषके गुण मद्यमें हैं इससे विषके समान मद्यको सेवन न करे । इस विषयमें कहते है मद्य यह स्वभावसेही जैसे अन्न देहधारक है ऐसाही है, परंतु वह मद्य अविधिसे पीवे तो रोगकारक होय है और विधि से सेवन करे तौ असृतके समान गुण करे ॥

१ विधिश्वाय तद्यथा—“कुसुमितलतोपगूडः प्रकटनिरतनवाकुरनिकरं रोमाचैः मधुकर-
मधुरचीत्कारशीत्कारमुक्त्तकठकलकठकुजितेद्वक्षिणसमीरणोद्विजितसमुद्दसितपछवकरप्रचा-
रैस्तरुणतरुभिः उपक्राततललताभिरतिशोभनेषु वनोपत्रनेषु तुषारकिण रजितप्रदोषेषु
जृंगारसमुचितालकृतिकमनीयकामिनीसमर्पित ललितललतोपनीयमान सुरानिरुचिरूप-
रसोपदशक मानपरिमितपरार्द्धमयुपान क न सुखयति । चरकेग तु विस्तरेणेन्टक विद्धि ।

विधिसे मद्य पीनेका फल ।

विधिना मात्रया काले हितैस्त्रैर्यथावलम् ॥ प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं
तस्य स्यादमृतं यथा ॥ ३ ॥ स्त्रिग्नैः सदन्नेमांसैश्च भक्ष्यैश्च
सह सेवितम् ॥ भवेदायुःप्रकर्षाय वलायोपचयाय च ॥ ४ ॥

भाषा—विधिपूर्वक, प्रमाणके संग, यांग्य कालमें, चिकने आदि अच्छे अन्नके संग, बलाबलके अनुसार, अत्यंत इर्षके साथ जो मद्यपान करे उसको अमृतके तुल्य गुण करे । इसके पीनेकी विधि मदात्ययके दूसरे श्लोककी टिप्पणीमें लिख आये हैं । तथा और ग्रन्थान्तरोमें विधि तथा मात्रा कालका नियम लिखा है अर्थात् शुद्ध शरीर होकर प्रातःकाल सोपदंश अर्थात् मद्यपान करनेके बाद जो चटनी आदि पदार्थ खाये जांय हैं सो इनकरके सहित सो दो पल पीवे, मध्याह्नको चार पल पीवे तदनंतर चिकना पदार्थ भोजन करे और साथंकालको आठ पल पीवे । इस जगह पल नाम जैपुरसाई १ टका पक्को कहते हैं । अथवा चिकने अन्नके साथ, मांसके साथ अथवा और भक्ष्य है उनके साथ मद्यको सेवन करे तौ मनुष्यकी आयुष्य बढ़े, बल बढ़े तथा देह पुष्ट होय इस श्लोकमें “स्त्रिग्नैः सदन्नैः” यह जो पद धरा सो स्त्रिग्नैका एक उपलक्षणमात्र है अर्थात् जो मद्यसे विपरीत गुण रखते हैं । जैसे तीक्ष्णादि दश गुण हैं उनसे विपरीत होय उसके साथ मद्य पीना चाहिये । सो तीक्ष्णादि दश गुण ग्रन्थान्तरोमें लिखे हैं और विशेष देखना होय तो भावप्रकाशमें देख लेवे । इस स्थलमें ग्रन्थविस्तारभयसे इमने त्याग दिये हैं ॥

विधिसे मद्य पीनेके दूसरे गुण ।

काम्यता मनस्तुष्टिस्तेजो विक्रम एव च ॥

विधिवत्सेव्यमाने तु मद्ये संति हिता गुणाः ॥ ५ ॥

भाषा—मद्यको विधिपूर्वक पीनेसे सुन्दर स्वरूप, मनको संतोष, उत्साह, दूसरेको जीतनेकी सामर्थ्य इत्यादि हितकारक गुण होते हैं । कही हुई विधिसे विशद

१ “ शुद्धकायः पिबेत्प्रातः सोपेदशपलद्वयम् । मध्याह्ने हिगुणं तत्र स्त्रिग्नाहारेण पाचयेत् ॥ प्रदोषेऽष्टपल तद्वन्मात्रामद्ये रक्षायनम् । आरोग्य धातुसाम्यं च कांतिपुष्टिवल-प्रदम् ॥ अनेन विधिना सेव्य मद्ये नित्यमतद्रितैः । अन्येषुद्धचादयो यावदुल्लसांति निर-त्ययाः ॥ मात्रेय विहिता मद्ये पाने रोगाय चापरा ॥ ” काल हिति । तत्र कालो हिविधिः । नित्यकः आवश्यकश्च । तत्र नित्यकः ऋतुसंबन्धी । यथा ग्रीष्मे शीतमधुरं माघीकादि शीते उष्ण तीक्ष्ण गौडिकपिष्ठकादि । तथा आवश्यके काले वाते स्त्रिग्नापि एवं वयस्यु-दाहार्यम् । २ “ द्वयस्तीक्ष्णो ह्यसूक्ष्माग्नो व्यवायागुगमेव च । ऋक्षं विकाशि विशद् मद्ये दश गुणाः रूपताः ॥ ” तथा च सुश्रुते—“ मद्य शस्तं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्मं विशदमेव च । ऋक्षमाशुकरं चैव व्यवाये च विकाशि च ॥ ” हिति । अत्र अम्लरसत्वं वास्थोङ्गुत-रसत्वेनोक्तम् । यदुक्तमन्यत्र—“ सर्वेषाम्लजातीना मद्यं मूर्ध्नि वपवस्थितम् । ” हिति ।

१ मद्यपानानन्तर भक्षणीयद्रव्यविशेषः ।

मध्यपान करनेसे मदात्यय रोग होय है सो मदात्यय तीन प्रकारका है । पूर्वमद, मध्यम और अंत्यमद ॥

पूर्वमदके लक्षण ।

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिबंधनश्च ॥

संपाठगीतस्वरवर्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि ॥ ६ ॥

भाषा—बुद्धि, स्मरण और प्रीति इनको करे, सुख करे, पान (पीना), अन्न, निद्रा और रति इनको बढ़ावे, सुन्दर पाठ और गीत (गाने) को बढ़ावे ऐसा प्रथम मद आति रमणीय कहा है । शंका—भ्योंजी ! मद तौ मनमें विकार उत्पन्न करे हैं फिर आप इसको रमणीय कैसे कहते हो ? उत्तर—आपने कहा सो ठीक है परंतु दुखको दूर करनेसे इसको रमणीयता है इसी कारण शुश्रूतने इष्टको मनके विकारोंमें कहा है ॥

द्वितीय मदके लक्षण ।

अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टाः सोन्मत्तर्लीलाकृतिरपशांतः ॥

आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च मध्येन मत्तः पुरुषो मदेन ॥ ७ ॥

भाषा—मध्यम मदसे मत्तवाले पुरुषकी बुद्धि, स्मरण और वाणी यथार्थ नहीं होय । विरुद्ध चेष्टा करे और वालेकीसी चेष्टा करे, प्रचंड हो जाय, वारंवार आल-कस और निद्रासे पीड़ित हो जाय ॥

तृतीय मदके लक्षण ।

गच्छेदगम्यां न गुह्यंश्च पश्येत्खादेदमह्याणि च नष्टसंज्ञः ॥

ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदि स्थितानि मदे तृतीये पुरुषोऽस्वतंत्रः ॥ ८ ॥

भाषा—तीसरे मदसे पुरुष मदके स्वाधीन होकर अगम्या (गुरुकी त्री बादि) से गमन करे, बड़ोंका तिरस्कार करे, जो बस्तु खानेके योग्य नहीं है उसको खाय, न-ज्ञा जाती रहे और जो युस बात हृदयमें है उनको कहने लगे ॥

चतुर्थ मदके लक्षण ।

चतुर्थे तु मदे मूढो भग्नदार्थिव निष्क्रियः ॥ कार्याकार्यविभागज्ञो

मृतादप्यपरो मृतः ॥ ९ ॥ को मदं तादृशं गच्छेदुन्मादमिव

चापरम् ॥ बहुदोषमिवारूढः कांतारं स्ववशः कृती ॥ १० ॥

भाषा—चतुर्थ मदसे मनुष्य मूढ होकर दूटे बृक्षके समान क्रियाराहित होय, कार्य (करने योग्य) अकार्य (नहीं करने योग्य) इनको न समझे, वह पुरुष मरेसेभी

अधिक मरा मया है । कौन ऐसा स्ववश अथवा सुकृती पुरुष ऐसे निवमद् (अमल) का सहनशील होय है किंतु कोई नहीं होय । जैसे सिंह व्याघ्रादि हिंसक पशु जिस वनमें बहुत हैं ऐसे निर्जन वनमें मार्गमें कौन चतुर मनुष्य जायगा । शंका-चरक, विदेह, वामट आदि आचार्योंने तो चतुर्थमद् कहाही नहीं है और सुश्रुतने कहा है । इनमें विरोध क्यों है ? उत्तर-चरकमें जो दूसरे और तीसरेमें अन्तर कहा है सोई सुश्रुतने तृतीयमद्को मानकर उसके लक्षण कहे हैं और जो चरकमें तृतीय मद्के लक्षण कहे हैं सो सुश्रुतने चतुर्थ मद्के लक्षण कहे हैं; ऐसा विरोध नहीं है वास्तवमें तीनही मद हैं । शंका-क्यांजी ! एक मदसे ३ प्रकारके मद होय है इसमें क्या कारण है ? उत्तर-मद्य यह अग्निके समान है, जैसे अग्निमें सुर्वर्ण (सोना) तपानेसे उत्तम, मध्यम, अधमकी परीक्षा होय है ऐसेही मद्यभी सतोगुण, रजोगुण, तमोगुणवाले पुरुषोंकी प्रकृतिसूचक हैं । अर्थात् सतोगुणवाले पुरुषको प्रथम मद, रजोगुणवाले पुरुषको दूसरा मद, तमोगुणवाले पुरुषको तीसरा मद ग्रास होय है सो चरकमें लिखा है ॥

विधिहीन मद सेवनसे और विकार होते हैं उनको कहते हैं ।

निर्भक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेद्यमाणं मनुजेन नित्यम् ॥

आपादयेत्क्षष्टुतमान्विकारानापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ ११ ॥

भाषा-जिस पुरुषने अन्नरहित निरंतर मद्यपान नित्य करा होय, वह अत्यंत दुःख-दायक विकार (पानात्ययादिक) उत्पन्न करे है और शरीरका विनाश करे है ॥

अन्नके साथ मद्य सेवन करा भयाभी कुद्धत्वादि कारणोंसे विकारफर्ती होय है सो कहते हैं ।

कुद्देन भातेन पिपासितेन शोकाभितसेन दुष्कृतितेन ॥

व्यायामभाराध्वर्परक्षतेन वेगवरोधाभिहतेन चापि ॥ १२ ॥

अत्यम्तुभक्ष्यावततादरेण साजीर्णभुक्तेन तथाऽमलेन ॥

उष्णाभितसेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान्विकारान् ॥ १३ ॥

भाषा-कोधयुक्त, भयसे पीडित, प्यसा, शोकवान, क्षुधायुक्त, दंड कसरत और भारसे जो क्षीण हो गया होय, मलमूत्र आदि वेगसे पीडित हो, अत्यंत अम्लरस खानेसे जिसका पेट भर रहा होय, अजीर्णमें भोजन करनेवाले पुरुषके, निर्बल पुरुषके, गरमोंसे तपायमान ऐसे मनुष्यके मद्य सेवन करनेसे अनेक विकार उत्पन्न होते हैं ॥

१ “ प्रधानावरमध्याना रक्माणा व्यक्तिदूर्धकः । यथाग्निरेव सत्त्वाना मद्यं प्रकृतिदूर्धकम् ॥ ” इति ।

उन विकारोंको कहते हैं ।

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा ॥

पानविभ्रमसुग्रं च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १४ ॥

भाषा—पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम इत्यादिक भयंकर विकार होते हैं । उनके लक्षण कहता हूँ ॥

वातमदात्ययके लक्षण ।

हिक्काथासाशिरःकंपपार्थगूलप्रजागरैः ॥

विद्याद्वहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम् ॥ १५ ॥

भाषा—हिचकी, खास, मस्तकका कंप, पसवाड़ोंमें पीड़ा, निद्राका नाश और अत्यंत बक्साद ये लक्षण जिसमें होय उसको वातप्रधान मदात्यय जानना ॥

पित्तमदात्ययके लक्षण ।

तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः ॥

विद्याद्वरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम् ॥ १६ ॥

भाषा—प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम (कुछ कुछ ज्ञान होय), देहका वर्ण हरा हो इन लक्षणोंसे पित्तप्रधान मदात्यय जानना ॥

कफमदात्ययके लक्षण ।

घर्द्यरोचकहृष्टासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः ॥

विद्याच्छ्रीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम् ॥ १७ ॥

भाषा—बमन (रह), अब्दमें अरुचि, खाली रह (ओकारी), तन्द्रा, देह गीली भारी और शीत लगे इन लक्षणोंसे कफप्रधान मदात्यय जानना ॥

सर्विपातमदात्ययके लक्षण ।

ज्वेयस्त्रिदोषजश्चापि सर्वालिङ्गमदात्ययः ॥ १८ ॥

भाषा—जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सर्विपातप्रधान मदात्यय जानना ॥

परमदके लक्षण ।

श्रेष्ठमोच्छ्रयोऽगगुरुता मधुरास्यता च विष्मूत्रसक्तिरथ तंद्रि-

रसोचकश्च ॥ लिंगं परस्य तु मदस्य वदंति तज्जास्तृष्णा

रुजा शिरसि संधिषु चातिभेदः ॥ १९ ॥

भाषा-कफका कोप (यह नासाक्षावादिक जानना), देहका जड होना, मुखमें मिठास, मलमूत्रका अवरोध, तन्द्रा, अरुचि, प्यास, मस्तकमें पीड़ा और संधियोंमें कुठारीसे तोडनेसरीखी पीड़ा होय ये परमदके लक्षण जानने ॥

पानाजीर्णके लक्षण ।

आध्मानमुग्रमथ वोद्ग्रिरणं विदाहः

पाने त्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि ॥

भाषा-बत्यंत पेटका फूलना, बमन अथवा डकारका आना, जलन होना ये लक्षण जब मद्याजीर्ण होय है तब होते हैं ॥

पानविभ्रमके लक्षण ।

त्वद्वात्रतोदकफसंसवकंठधूममूर्च्छावमिज्वरशिरोरुजनप्रदेहाः ॥

द्वेषः सुराविकृतेष्वपि तेषु तेषु पानेन विभ्रममुशंत्यखिलेनधीरा: २०

भाषा-हृदय और गात्र इनमें सुई चुम्हानेकीसी पीड़ा होय, कफका साव होय, कंठसे धूआंसा निकलनेकीसी पीड़ा, मूर्च्छा, बमन, ज्वर, शिरमें पीड़ा, मुख कफसे लिहसासा होय । अनेक प्रकारकी मैरेय पैष्ठिक इत्यादिक सुराविकृति और लड्डू पेड़ा आदि अन्नविकृति इनमें द्वेष होय, इन सर्वलक्षणोंसे इस रोगको पानविभ्रम ऐसा कहते हैं । ये परमदादिक तीनों सन्निपातके अंतर्गत होनेसे चरकने नहीं कहे और पूर्वोक्त मदात्ययके लक्षणोंसे विलक्षण होनेसे मुश्तुतमें उक्त त्रिदोषज मदात्ययको पृथक कहा है ॥

असाध्य लक्षण ।

हीनोत्तरौष्टमतिशीतममन्ददाहं तैलप्रभास्यमतिपानहतं त्यजेत् ॥

जिह्वौष्टदंतमसितं त्वथवापि नीलं पीते च यस्य नयने रुधिरप्रभे वा २१

भाषा-ऊपरके होठसे नीचेका होठ कुछ लम्बा होय, देहके बाहर आति शीत लगे और भीतर अत्यन्त दाह होय, तेलसे लिस सहश मुख हों; जीभ, होठ, दांत ये काले अथवा नीले हो जाय; नेत्र पीले अथवा रुधिरके समान लाल होंय ऐसा अतिपानसे अर्थात् अतिमद्य पीनेसे नष्ट मनुष्यको वैद्य त्याग देय । चरकमें ध्वंसक और विक्षेपक दो मद्यविकार और कहे हैं ॥

१ “ विच्छिन्नमद्यः सहसा योऽतिमद्यं निषेवते । ध्वंसो विक्षेपकश्चैव रोगस्तस्योपजायते ॥ श्लेष्माप्रस्तेकः कण्ठास्यशोषः सर्वासहिष्णुता । निद्रातन्द्रातियोगश्च ज्ञेयं ध्वंसकलक्षणम् ॥ हस्तकठरोगसंमोहछर्दिंरंगरुजा ज्वरः । वृष्णाकासशिरःशूलमेतद्विक्षेपलक्षणम् ॥ ” इति ।

उपद्रव कहते हैं ।
दिक्काञ्चरौ वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः
कासभ्रमावपि च पानहृतं त्यजेत्तम् ॥ २२ ॥

भाषा—हिचकी, ज्वर, वमन, कम्प, पसवाड़ोंमें पीड़ा होय, घांसी, भ्रम ये उपद्रव जिसके होंय उसको वैद्य त्याग दे । परन्तु जय्यट आचार्य कहते हैं कि असाध्य लक्षणसे पृथक् पाठ होनेसे और यह लक्षण होनेसे रोगी कृच्छ्रसाध्य जानना, असाध्य न जानना ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममायुरनिर्मितमाधवार्थबोधितीमाथुरीभाषाठीकायां
 मदात्ययरोगनिदान समाप्तम् ।

अथ दाहनिदानम् ।

—६८—

त्वचं प्राप्तः समानोष्मा पित्तरक्ताभिसूर्द्धितः ॥
 दाहं प्रकुरुते धोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ १ ॥

भाषा—दाहरोग सात प्रकारका है । तिसमें प्रथम मद्यजन्य दाहके लक्षण कहते हैं । मद्यपान करनेसे कुपित भया जो पित्त उस पित्तकी उष्णता पित्तरक्तको बढाय मयंकर दाहरोग उत्पन्न करे । इसमें पित्तके समान औषध करे ॥

रक्तज और पित्तज दाहके लक्षण ।

कृत्सदेहानुगं रक्तमुद्दिक्तं दृहति ध्रुवम् ॥ समुष्पते तृप्यते च
 ताम्राभस्ताम्रलोचनः ॥ २ ॥ लोहगंधांगवदनो वह्निवावकीर्यते ॥
 पित्तज्वरसमः पित्तात्स चाप्यस्य विधिः स्मृतः ॥ ३ ॥

भाषा—सर्व देहका रुधिर कुपित होकर अत्यन्त दाह करे और वह रोगी अग्निके समीप रहनेसे जैसा तपे है ऐसा तपे, प्यासयुक्त, ताम्रके रंगसदृश देहका रंग होय और नेत्रभी लाल होंय तथा मुखसे और देहसे तस लोहपर जल डालनेकीसी गंध आवे और अंगोंमें मानो किसीने अग्नि लगाय दीनी ऐसी वेदना होय । पित्तसे जो दाह होय उसमें पित्तज्वरकेसे लक्षण होते हैं । उसपर पित्तज्वरकी चिकित्सा करनी चाहिये । पित्तज्वरमें और पित्तके दाहमें इतना अन्तर है कि पित्तज्वरमें अग्नि और आमाशय दुष्ट होता है और पित्तके दाहमें नहीं होय और सब लक्षण होते हैं ॥

प्यास रोकनेके दाहके लक्षण ।

तृष्णा॑निरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुद्धतम् ॥

स बाह्याभ्यंतरं देहं प्रदुहेन्मन्दुचेतसः ॥

संशुष्कगलताल्पोष्टो जिह्वां निष्कृष्य वेपते ॥ ४ ॥

भाषा—प्यासके रोकनेसे जलरूप धातु क्षीण होकर तेज कहिये पित्तकी गरमीको बढ़ावे तब वह गरमी देहके बाहर और भीतर दाह करे इस दाहसे रोगी बेसुध होय और गला, तालु, होठ ये अत्यंत सूखें और जीमको बाहर काढ दे, कॉपे ॥
शस्त्रधातक दाहके लक्षण ।

असृजः पूर्णकोष्ठस्य दाहोऽन्यः स्यात्सुदुःसहः ॥ ५ ॥

भाषा—शस्त्र कहिये तलवार आदिके लगनेसे प्रगट रुधिर उस रुधिरसे कोष्ठ कहिये हृदय भर जाय तब दाह अत्यन्त दुःसह प्रगट होय ॥
धातुक्षयजन्य दाहके लक्षण ।

धातुक्षयोत्थो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृष्णान्वितः ॥

क्षमस्वरः क्रियाहीनः स सीदृशपीडितः ॥ ६ ॥

भाषा—धातुका क्षय होनेसे जो दाह होय उससे रोगी मूर्च्छा प्यास इनसे युक्त होय, स्वरमंग और चेष्टाहीन होय और इस दाहसे पीडित होकर यदि चिकित्सा न करावे तो वह रोगी मरणको प्राप्त होय ॥

क्षतज दाहके लक्षण ।

क्षतजोऽनश्वतश्वन्यः शोचतो वाप्यनेकधा ॥

तेनांतर्दृश्यते त्यर्थं तृष्णामूर्च्छाप्रलापवान् ॥ ७ ॥

भाषा—क्षत (घाव) के होनेसे जो दाह हो उससे आहार थोड़ा रह जावे और अनेक प्रकारके शोककर दाह होय और इस दाहकरके आभ्यन्तर दाह होय तथा प्यास, मूर्च्छा और प्रलाप (बकवाद) ये लक्षण होंय ॥

मर्माभिघातज दाहके लक्षण ।

मर्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सतमो मतः ॥

भाषा—मर्मस्थान (हृदय, शिर, बस्ति) में चोट लगनेसे जो दाह होय सो सातवाँ असाध्य अर्थात् और जो छः प्रकारके दाह हैं वे साध्य हैं ॥

सर्व एव च वज्याः स्युः शीतगात्रस्य देहिनः ॥ ८ ॥

भाषा—सब दाहोंमें शीतल देहवाला रोगी त्याज्य है ॥

इति श्रीप० माधवभावार्थबोधिन्यां माथुरीमाधवीकार्यां दाहनिदानं समाप्तम् ।

अथ उन्मादनिदानम् ।

मदयंत्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः ॥
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्त्यते ॥ १ ॥

भाषा—दोष (वात, पित्त, कफ) बढ़कर अपने २ मार्गको छोड अन्य मार्ग अर्थात् मनोवह धमनियोंमें प्राप्त होकर मनको उन्मत्त करे और यह व्याधि मानसी है अत एव इसको उन्माद ऐसा कहत है ॥

एकैकशः सर्वशः दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ॥ मानसेन च दुःखेन
स पञ्चविध उच्यते ॥ २ ॥ विषाङ्गवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र
भेषजम् ॥ स चापवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां विभर्ति च ॥ ३ ॥

भाषा—अत्यन्त कुपित भये पृथक् २ दोषोंसे ३, सन्निपात और मानसिक दुःखसे यह रोग पांच प्रकारका है और विष खानेसे छठा । इनमें दोषानुसार जौषध देनी चाहिये । जबतक यह रोग बढ़े नहीं और जबतक तरुण रहे तबतक इस रोगको मद ऐसा कहते हैं ॥

उन्मादके सामान्य कारण और सम्प्राप्ति ।

विरुद्धदुष्टाऽग्नुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम् ॥
उन्मादहेतुर्भयहृष्पूर्वो मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः ॥ ४ ॥
तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा द्वुद्वेनिवासं हृदये प्रदूष्य ॥
स्रोतांस्यधिष्टाय मनोवहानि प्रमोहयंत्याशु नरस्य चेतः ॥ ५ ॥

भाषा—विरुद्ध दुष्ट कहिये जहर मिला अन्न आदि अशुचि चाडलादिसे स्पर्श करा ऐसा भोजन, देवता, गुरु, ब्राह्मण इनका तिरस्कार करनेसे, भय और हृषके होनेसे, मनका बिगड़ा, सब चेष्टा विपरीत करे अर्थात् टेढ़ा तिरछा चले, बलवान्से वैर करे, वकने लगे इस श्लोकमें पूर्वशब्द करणका है और चकारसे काम क्रोध लोभादिकभी उन्माद रोगके कारण हैं यह जट्यटका मत है ॥

इनमें कहे जो कारणोंसे अल्प (थोड़ा) मल गुण पुरुषके वातादिक दोष कुपित होकर द्वुद्विके निवासस्थान (रहनेके ठिकाने) को हृदय कहिये मन उसको बिगड मनके वहनेवाली नसोंमें प्राप्त हो मनुष्यके अंतःकरणको मोहित करे ॥

उन्मादका स्वरूप ।

धीविभ्रमः सत्त्वपरिपूवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च ॥

अबद्धवाक्त्वं हृदयं च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य चिह्नम् ॥ ६ ॥

भाषा—बुद्धिमें भ्रम, मनका चश्वल होना, दृष्टिका सर्वत्र चलना, अधीरजपना (डरपना), कुछका कुछ बोलना, हृदय शून्य हो जाय अर्थात् विचारशक्तिका नाश होना ये उन्माद रोगके सामान्य लक्षण हैं ॥

विशेष लक्षण ।

रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ॥

चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य बुद्धि स्मृतिं चापि निहंति शीघ्रम् ॥ ७ ॥

अस्थानहासस्मितनृत्यगीतवागंगविक्षेपणरोदनानि ॥

पारुष्यकाइर्याहृणवर्णता च जीर्णे बलं चानिलजस्वरूपम् ॥ ८ ॥

भाषा—रूखा, योडा और शीतल ऐसा अन्न, विरेके इस शब्दसे इस जगह दस्त और वमन जानना, धातुक्षय और उपवास इन कारणोंसे अत्यन्त बढ़ी जो वायु सो चिन्ता शोकादि करके युक्त होकर हृदय (मन) को अत्यन्त दुष्ट कर बुद्धि और स्मरण इनका शीघ्र नाश करे और हँसनेके कारण बिना हँसे, मंद मुसकान करे, नाचे, बिना प्रसंगके गीत और बोलना करे, हाथोंको सर्वत्र चलावे, रोवे, शरीर रुखा, कृश और लाल हो जाय और आहारका परिपाक भयेपर ज्यादा जोर होय ये बातज उन्मादके लक्षण हैं ॥

पित्तज उन्मादके कारण और लक्षण ।

अजीर्णकद्म्लविदाह्यशीतैभौज्यैश्चित्तं पित्तमुदीर्णवेगम् ॥

उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदि स्थितं पूर्ववदाश्च कुर्यात् ॥ ९ ॥

अमर्षसंरभविनग्रभावाः संतर्जनाभिद्रवणोष्णरोषाः ॥

प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषाः पीतास्यता पित्तकृतस्य लिंगम् ॥ १० ॥

भाषा—अधकज्वा, कहुवा, खट्टा, दाह करनेवाला और गरम ऐसा भोजन करनेसे संचित भया जो पित्त सो तीव्रवेग होकर अजिर्णेद्रिय पुरुषके हृदयमें प्रवेश कर पूर्ववत् अति उग्र उन्माद तत्काल उत्पन्न करे है । इस उन्मादसे असहनशील, हाथ पैरोंको पटकना, नग्न हो जाय, डरपे, भागने लगे, देह गरम हो जाय, क्रोध करे, छायामें रहे, शीतल अन्न और शीतल जल इनकी इच्छा, पीला मुख हो जाय ये लक्षण पित्तज उन्मादके हैं ॥

कफज उन्मादके कारण और लक्षण ।

सम्पूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य सोष्मा कफो मर्मणि संप्रवृत्तः ॥

बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति चित्तं प्रमोहयन्संजनयेद्विकारम् ॥ ११ ॥

वाक्चेष्टिं मन्दमरोचकश्च नारी-विविक्तप्रियसाऽतिनिद्रा ॥

छर्दिंश्च लाला च बलं च भुक्ते नखादिशौकल्यं च कफाधिके स्यात् ॥ १२ ॥

भाषा-मंद सूखमे पेटभर भोजन कर कुछ परीश्रम न करे ऐसे पुरुषका पित्त-युक्त कफ हृदयमें अत्यन्त बढ़कर बुद्धि, स्मरण और चित्त इनकी शक्तिका नाश करे और मोहित कर उन्मादरूप विकारको उत्पन्न करे। उस विकारसे वाणीका व्यापार कहिये बोलना इत्यादि मन्द होय, असुचि होय, खी प्यारी लगे, एकांत वास करे, निद्रा अत्यंत आवे, वमन होय, मुखसे लार वहे, भोजन करे पिछाड़ी इस रोगका जोर हो, नख आदिशब्दसे त्वचा, मूत्र, नेत्रादिक ये सफेद होय। ये लक्षण कफके उन्मादके हैं ॥

सन्निपातके उन्मादके लक्षण ।

यः सन्निपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैः समस्तैरपि हेतुभिः स्यात् ॥

सर्वाणि रूपाणि विभर्ति ताहक्ष विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥ १३ ॥

भाषा-जो उन्माद वातादिक दोषकरके अथवा तीनों दोषोंके कारणकरके होय वह सन्निपातजन्य उन्माद बहुत भयंकर होता है। उसमें सब दोषोंके लक्षण होते हैं। इसमें विरुद्ध औधी विधि वर्जित है। यह उन्माद वैद्योकरके त्याज्य है, कारण यह किं असाध्य है ॥

ओकज उन्मादके लक्षण ।

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्य धनबाधवसं-

क्षयाद्वा ॥ गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायेत चोत्क-

टतरो मनसो विकारः ॥ चित्रं ब्रवीति च मनोनुगतं विसंज्ञो

गायत्यथो इसाति रोदिति चातिमूढः ॥ १४ ॥

भाषा-चोरोंने राजाके मनुष्योंने अथवा शत्रुओंने, उसी प्रकार तिह, व्याघ्र, हाथी आदि किसीने त्रास दिया होय अथवा धन, बंधुके नाश होनेसे, ऐसे पुरुषका अन्तःकरण अत्यन्त दूखे अथवा प्यारी खीसे संभेग करनेकी इच्छावाले पुरुषके मनमें भयंकर विकार उत्पन्न होय वह पुरुष गुप्त बातकोभी कहने लगे और अनेक प्रकारका बोले, विपरीत ज्ञान होय, गावे, हँसे और रोवे तथा मूर्ख होजाय ॥

विषजन्य उन्मादके लक्षण ।

**रक्तेक्षणो हतवलेद्रियभाः सुदीनः इयावाननो विषकृतेन
भवेद्विसंज्ञः ॥ १५ ॥**

भाषा-विषसे प्रगट उन्मादमें नेत्र लाल होय, बल, इन्द्रिय और शरीरकी कान्ति नष्ट हो जाय, अति दीन हो जाय, उसके मुखपर कालेंच आ जाय और संज्ञा जाती रहे ॥

असाध्य लक्षण ।

अवाङ्मुखस्तून्मुखो वा क्षीणमांसबलो नरः ॥

जागरूको ह्यसन्देहमुन्मादेन विनश्यति ॥ १६ ॥

भाषा-जिसका मुख नीचेको होय अथवा ऊपरको होय और जिसका मांत और बल क्षीण हो गया होय तथा जिसकी निद्रा जाती रही हो ऐसा मनुष्य निश्चय इस उन्मादसे नाशको प्राप्त हो ॥

भूतज उन्मादके लक्षण ।

अमर्त्यवाग्विकमवीर्यचेष्टा ज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः ॥

उन्मादकालो नियतश्च यस्य भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥ १७ ॥

भाषा-वाणी, पराक्रम, शक्ति, देहका व्यापार, तच्छान, शिल्पादि ज्ञान अथवा ज्ञान कीहिये शास्त्रज्ञान और विज्ञान नाम तदर्थ निश्चय आदिशब्दसे स्मृत्यादिक ये जिसकी मनुष्यकीसी न होय और जिसका उन्मत्त होनेका काल निश्चय होय ऐसे उन्मादको भूतोन्माद कहते हैं । भूतशब्दसे यहां आगे कहेगे सो सब देवता जानने ॥

देवग्रहके लक्षण ।

**सन्तुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगंधो निस्तंद्रिस्त्ववित्थसं-
स्कृतप्रभाषी ॥ तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो**

भवति नरः स देवजुषः ॥ १८ ॥

भाषा-सदा संतोषयुक्त रहे, पवित्र रहे, देहमें दिव्यपुष्पके समान सुगंध, नेत्रोंके पलक लगे नहीं, सत्य और संस्कृतका बोलनेवाला हो, तेजस्वी, स्थिरहृषि, वरका देनेवाला (तेरा कल्याण हो । ऐसा वर देय), ब्राह्मणसे श्रीति राखे, ऐसा मनुष्य देवग्रहपीडित जानना । देवशब्दसे गणमात्रकादि ग्राह हैं सो विदेहने कहामी है ॥

१ “ क्रोधनस्तव्यसर्वांगो लालोफेनाविलाननः । निद्रालुः कम्पता मूको गणमात्र-
भिरादृतः ॥ ” इति ।

अमुरपीडितके लक्षण ।

संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवत्ता जिह्वाक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः ॥
संतुष्टो न भवति चात्रपानजात्मेद्वृष्टात्मा भवति स देवशत्रजुषः ॥९

भाषा—पक्षीनायुक्त देह, ब्राह्मण, गुरु और देव इनमें दोषरोपण करनेवाला, टेढ़ी दृष्टिसे देखनेवाला, निर्भय, वेदविरुद्ध मार्गका चलनेवाला और बहुत अन्न जलसेमी जिसको संतोष न होय और दुष्टबुद्धि ऐसा मनुष्य दैत्यग्रहपीडित जानना ॥

गंधर्वग्रहके लक्षण ।

दुष्टात्मा पुलिनवनांतरोपसेवी स्वाचारः प्रियपारिगीतगंधमाल्यः ॥
नृत्यन्वै प्रहसति चारु चालपशब्दं गंधर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥२०

भाषा—गंधर्वग्रहसे पीडित मनुष्य ग्रसन्नचित्त, पुलिन और बग बगीचामें रहनेवाला, अनिंदित आचारका करनेवाला, गान सुगंध और पुष्प ये जिसको प्यारे लोग वह पुरुष नाचे, हँसे, सुन्दर बोले, थोड़ा बोले ॥

यक्षग्रहके लक्षण ।

तात्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक्
सहिष्णुः ॥ तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै यो यक्षग्रह-
परिपीडितो मनुष्यः ॥ २१ ॥

भाषा—यक्षग्रहसे पीडित मनुष्यके नेत्र लाल हों, सुंदर बारीक ऐसे रक्त वस्त्रका धारण करनेवाला गंभीर, बुद्धिवान्, जलदी चलनेवाला, प्रमाणका चोलनेवाला, सहनशील, तेजस्वी, किसको क्या देखें ऐसा चोलनेवाला ऐसा होय ॥

पितृग्रहके लक्षण ।

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिंडान्त्रांतात्मा जलमपि चाप-
सव्यहस्तः ॥ मांसेष्मुस्तिलगुडपायसाभिकामस्तद्वत्तो भवति
पितृग्रहाभिजुषः ॥ २२ ॥

भाषा—कुशाके ऊपर प्रेतों (पितरों) को पिंड देय, चित्तमें भ्रांति रहे और उच्चरीय वस्त्र अपसव्य करके तर्पणमी करे, मांस खानेकी इच्छा होय तथा तिल, गुड, खोर इनपर मन चले । (इसके कहनेका प्रयोजन यह है कि जिसकी जिसे पदार्थपर इच्छा होय उसको उसी पदार्थकी वली देनेसे उस ग्रहकी शांति होती है - ऐसेही सर्वत्र जानना) यह डल्लनका मत है और वह मनुष्य पितरोंकी भक्ति करे । ये लक्षण पितृग्रहपीडित मनुष्यके हैं ॥

सर्पग्रहयुक्तके लक्षण ।

यस्तूव्याँ प्रसरति सर्पवत्कदाचित्सृक्षिण्यो विलिङ्गति जिह्वया
तथैव ॥ क्रोधालुर्मधुगुडदूधपायसेषुर्विज्ञेयो भवति भुजंगमेन
जुषः ॥ २३ ॥

भाषा—जो मनुष्य सर्पके समान पृथग्वीमें लोटा करे अर्थात् आतीके बल चले तथा सर्पके समान अपने ओष्ठप्रांत (होठों) को चाटा करे, सदा क्रोधी रहे, सहत, गुड, दूध और खीरकी इच्छा रहे वह सर्पग्रहग्रस्त जानना ॥

राक्षसग्रहपीडितके लक्षण ।

मांसासृग्विधसुराविकारलिप्सुर्निर्झो भृशमतिनिष्ठुरोऽ-
तिशूरः ॥ क्रोधालुर्विष्पुलबलो निशाविहारी शौचाद्विद् भवति
च राक्षसैर्गृहीतः ॥ २४ ॥

भाषा—जो मनुष्य मांस, रुधिर, नाना प्रकारके मद्य पीनेकी इच्छा करे और निर्लज्ज, अतिनिष्ठुर, अत्यन्त शूर, क्रोधी, बड़ा बली, रात्रिमें ढोलनेवाला, अपवित्र ऐसा होय वह राक्षसकरके ग्रस्त जानना ॥

पिशाचजुषके लक्षण ।

उद्धस्तः कृशपहवश्चिरप्रलापी दुर्गंधो भृशमशुचिस्तथाऽ-
तिलोलः ॥ बह्वाशी विजनवनांतरोपसेवी व्याचेष्टन्नभ्रमति
रुदत्पिशाचजुषः ॥ २५ ॥

भाषा—जो अपने हाथ ऊपरको करे । “ उद्धस्त ” ऐसाभी पाठ है उस जगह उद्धव नाम नंगा हो जाय, तेजरहित, बहुत देरपर्यंत बक्कनेवाला, जिसके देहमें हुर्गंध आवे, अपवित्रता तथा आति चंचल कहिये सब अन्नपानमें इच्छा करनेवाला, खानेको मिले तो बहुत भोजन करे, एकांत वनांतरोंमें रहनेवाला, विरुद्ध चेष्टा करनेवाला, रुदन करता ढोलनेवाला ऐसा मनुष्य पिशाचग्रस्त जानना । प्रसंगवशसे ब्रह्मराक्षस और भूतोन्मादके लक्षण ग्रंथान्तरोंसे लिखते हैं ॥

देवविप्रगुरुद्रेषी वेदवेदांगविच्छाविः ॥

आशु पीडाकरोऽहिंसो ब्रह्मराक्षससेवितः ॥ २६ ॥

भाषा—देव आज्ञण, गुरुसे देषक्तर्ता, वेद और वेदके अंग (शिक्षा, कल्प, व्याक-रणादि) का पढ़ा मया, शीघ्र पीडाका कर्ता, हिंसा करे नहीं ये लक्षण ब्रह्मराक्ष-ससेवी मनुष्यके हैं ॥

भूतोन्मादके लक्षण ।

महापराक्रमो यस्य दिव्यं ज्ञानं च भाषते ॥

उन्मादकालो नैश्चित्यो भूतोन्मादी स उच्यते ॥ २७ ॥

भाषा—महापराक्रमी, जिसके श्रेष्ठ ज्ञानको कहे और जो उन्मादकालका निश्चय न होय, उसको भूतोन्मादी कहते हैं । अब कहते हैं कि देवादिक ग्रह इस मनुष्य-को तीन कार्यके बास्ते ग्रहण करते हैं । हिसा अर्थात् मारनेके निमित्त और पूजाके निमित्त तथा विहारके निमित्त । इसमें हिंसाके निमित्त ग्रस्त मनुष्य साध्य (अच्छा) नहीं होय उसके लक्षण आगे कहते हैं ॥

स्थूलाक्षो द्रुतमटनः सफेनलेही निद्रालुः पतति च कंपते च

योऽति ॥ यश्चाद्विद्विरुद्धनगादिविच्युतः स्यात्सोऽसाध्यो

भवति तथा त्रयोदशोऽब्दे ॥ २८ ॥

भाषा—नेत्र भयानक हो जाय, शीघ्र चले, सुखमें जो ज्ञाग है उसको चाटनेवाला और जिसको निद्रा बहुत ओवे तथा गिर पड़े, कांपे और जो पर्वत, हाथी अथवा नग नाम वृक्ष, आदिशब्दसे भीत, मन्दिर आदि जानने इनसे गिरकर ग्रहग्रस्त होय वह असाध्य है । तैसेही तेरहवें वर्षमें सर्व देवादि उन्मादी असाध्य जानने । विदेहने विशेष लक्षण कहे हैं सो ग्रन्थान्तरोंसे जान लेने ॥

देवादियोंका आवश्यकता ।

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः संधयोरपि ॥ गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां
यक्षाश्वं प्रतिपद्यथ ॥ २९ ॥ पितृग्रहास्तथा दशैः पञ्चम्यामपि
चोरगाः ॥ रक्षांसि रात्रौ पैशाचाश्वतुर्दद्यां विशंति हि ॥ ३० ॥

भाषा—देवग्रह पूर्णमासीको प्रवेश करते हैं, असुरग्रह सायंकालमें, अपिशब्दसे पूर्णमासीकोभी प्रवेश करते हैं, गंधर्वग्रह वहूधा अष्टमीको, प्रायशब्दसे संध्याकोभी गंधर्व ग्रह प्रवेश करते हैं, यक्ष ग्रह पाढ़वाको, पितृग्रह अमावास्याको, सर्पग्रह पञ्चमीको, अपिशब्दसे अमावास्याकोभी प्रवेश करते हैं, राक्षस रात्रिमें और पिशाच चतुर्दशीको मनुष्यके देहमें प्रवेश करते हैं । तिथि कहनेका यह प्रयोजन है कि जिस २ तिथियोंको जो जो ग्रह मनुष्यको ग्रस्त करे उसको उसी उसी तिथिमें शांतिके निमित्त बलिदानादिक कराने चाहिये । शंका—क्योंजी ! जब ग्रहग्रस्त मनुष्योंको उन्माद

१ “ संध्या त्रिनाडीप्रभिताऽर्कं त्रिनावद्दोषितास्त्वादध ऊर्ध्वमन्त्र । ” इति । २ “ ग्रहा गृहनिति ये येषु तेषां तेषु विशेषतः । दिनेषु विष्णुहोमाद्वान्प्रयुंजीत विकिसकः ॥ ” इति

होता है तौ वह ग्रह मनुष्यकी देहमें प्रवेश करते क्यों नहीं दीखते हैं इसवास्ते कहते हैं ॥

दर्पणादीन्यथा च्छाया जीतोर्ज्ञं प्राणिनो यथा ॥

स्वमणिं भास्करांशुश्च यथा देहं च देहधृक् ॥

विश्वांति न च दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरणाम् ॥ ३१ ॥

भाषा—जैसे दर्पणमें मनुष्यका प्रतिविंश पड़े हैं; आदिशब्द इस जगह प्रकार-
वाची है अर्थात् जल, तल आदिमें जैसे छाया पड़ती है और सरदी, गरमी जैसे
मनुष्योंको लगती है अथवा जैसे सूर्यकिरण सूर्यज्ञान्तमणि (आतसीकाच) में
प्रवेश करते हैं अथवा जैसे जीव देहमें प्रवेश करता है, इसी प्रकार सब ग्रह मनुष्यके
शरीरमें प्रवेश करते हैं परंतु दीखते नहीं हैं। इस श्लोकके पोषक दृष्टांत जययट
आचार्यने बहुत दिये हैं परंतु हयने ग्रन्थ बढ़नेके भयसे नहीं लिखे हैं ॥

इस उन्मादरोगमें सर्वत्र देवशब्दकरके देवताओंसे आचारणवाले देवताओंके
अनुचर (दास) जानने चाहिये, क्योंकि देवताओंका मनुष्यके अपवित्र देहमें
प्रवेश होना असंभव है सो सुश्रुतमें लिखा है ॥

न ते मनुष्यैः सह संविशान्ति न वा मनुष्यांकचिदाविशान्ति ॥

ये त्वा॒विशान्तीति वदान्ति मोऽपाते भूतविद्याविषयादपोऽप्याः ३२ ॥

तेषां ग्रहाणां परिचारिका ये कोटीसहस्रायुतपद्मसंख्याः ॥

असृग्वसामांसभुजः सुभीमा निशाविहाराश्च तथा विश्वांति ॥ ३३ ॥

भाषा—जो देवादिक मनुष्यके साथ मिलते नहीं हैं न वे मनुष्योंकी देहमें प्रवेश
करते हैं और प्रवेश करते हैं ऐसे जो वैद्य कहते हैं, वे अज्ञानसे कहते हैं। ऐसा
वैद्य भूतविद्यावाला जानकर त्याज्य है। तौ कौन प्रवेश करते हैं इसवास्ते कहते हैं।
“तेषामिति” अर्थात् उन देवताओंके परिचारक (नोकर) जो करोड़ों, हजारों,
पद्मसंख्याक, रुधिर, वसा, मांसके भौजन करनेवाले, भयंकर, रात्रिमें विचरनेवाले हैं
वे प्रवेश करते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थवोधिनोमाथुरीभाषादीकायां
उन्मादरोगनिदान समाप्तम् ।

अथापस्मारनिदानम् ।

प्रथम सुश्रुतोक्त इस रोगकी निरुक्ति लिखते हैं ।

स्मृतिभूतार्थविज्ञानमपस्तत्परिवर्जने ॥

अपस्मार इति प्रोक्तस्ततोऽयं व्याधिरंतकृत् ॥ १ ॥

भाषा—स्मृतिशब्द प्राणियोंके अर्थज्ञानको कहते हैं और अपशब्द उसका नाशहूँ है इसीसे स्मृति और अप इन दोनों शब्दोंसे अपस्मार यह शब्द सिद्ध हुआ । इसी पूर्वोक्त हेतुके नाशसे यह रोग जलादिकके विषे प्रवेश होनेसे प्राणांतकारक है । अपस्मारकी निदानपूर्वक सम्प्राप्ति ।

चिंताशोकादिभिदौषाः कुद्धा हृत्खोतसि स्थिताः ॥

कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥ २ ॥

भाषा—चिंता, शोक, आदिशब्दसे क्रोध, लोभ, मोहादिसे कुपित भये जो दोह (वात, पित्त, कफ) सो हृदयमें स्थित जो मनके वहनेवाली नाड़ी उनमें प्राप्त हो स्मरण (ज्ञान) का नाश कर अपस्माररोगको प्रगट करे है ॥

वाग्भटके मतसे निदान ।

**मिथ्यायोगेद्वियार्थानां कर्मणामतिसेवनात् ॥ विरुद्धमलिनां
कर्मविहारकुपितैर्मलैः ॥ ३ ॥ वेगनियहृशीलानामहिताशुचि-
भोजिनाम् ॥ रजस्तमोभिभूतानां गच्छतां वा रजस्वलाम्
॥ ४ ॥ तथा कामभयोद्देगक्रोधशोकादिभिर्भृशम् ॥ चेतसो-
ऽभिभवैः पुंसामपस्मारोऽभिजायते ॥ ५ ॥**

भाषा—इन्द्रियोंके अर्थ कहिये विषय और कर्म उनका मिथ्यायोग, अतियोद्ध और अयोगके सेवन करनेसे तथा विरुद्ध और मलिन भोजन और विहारसे कुपित भये जो दोष उनसे तथा मलमूत्रादिवेगोंके धारण करनेवालोंके, आहित और अद्वित्र भोजन करनेसे, रजोगुण, तमोगुण मनुष्योंके, रजस्वला खींगमन करनेसे तद्ध काम, मय, उद्देग, क्रोध, शोक इन कारणोंसे; चित्त (मन) के विगडनेसे, मनुष्योंके अपस्माररोग प्रगट होय है । तहाँ श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन, ग्राण ये इन्द्रियोंके अर्थ हैं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये इन्द्रियोंके विषय हैं । इनके अतिसेवनसे । उदाहरण दिखाते हैं । जैसे पुरुषका इष्टनाशादि सुनना मिथ्यायोद्ध है । पटहादि वालोंका सुनना अतियोग है । कुछ न सुनना अयोग है । ऐसेही

अपवित्र आदिको छूना मिथ्यायोग है । अतिशीतल, अति गरम स्नान उबटना आदिका सेवन अतियोग है । किसीको न छूना अयोग है । छोटी बस्तुका देखना मिथ्यायोग है । बड़ी बस्तुका देखना अतियोग और किसीको न देखना अयोग है । रसोंका आतिसेवन अतियोग है । थोड़ा सेवन मिथ्यायोग है । असेवन अयोग है । दुर्गंधका सूखना मिथ्यायोग है । अतितीक्षण गंधका सूखना अतियोग है । किसीको न सूखना अयोग है । तहाँ कायिक, वाचिक, मानसिक तीन प्रकारका कर्म कहा है । तहाँ कायिक कर्म जैसे कुसमयमें दंड कसरतका करना मिथ्यायोग, बहुत करना अतियोग, कुछ न करना अयोग है । खोटा और छूंठा बोलना वाणीका मिथ्यायोग है, बहुत बोलना अतियोग, चुप हो जाना अयोग है । मानसकर्म जैसे शोकादि चिंतवन मानसिक मिथ्यायोग है, अत्यंत चिंता करना अतियोग और किसीकी चिंता न करना अयोग है । अगे श्लोक सब माधवके हैं ॥

अपस्मारके सामान्य लक्षण ।

तमःप्रवेशः संरभो दोषोद्रेकहृतस्मृतिः ॥

अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः ॥ १ ॥

भाषा—अन्धकारमें प्रवेश करनेके समान ज्ञानका नाश होना, नेत्र टेढ़े बांके फिरें, दोषोंके बढ़नेसे ज्ञानका नष्ट होना ये लक्षण जिस रोगमें होय ऐसा यह भयंकर अपस्मार रोग चार प्रकारका है इसको लौकिकमें मिरगी ऐसा कहते हैं ॥

पूर्वरूप ।

हृतकंपः ज्ञून्यता स्वेदो ध्यानं मूच्छा प्रमूढता ॥

निद्रानाशश्च तर्स्मिमस्तु अविष्यति भवत्यथ ॥ २ ॥

भाषा—जब अपस्मार होनेवाला होय है तब ये लक्षण होते हैं । हृदय कांपे और ज्ञून्य पड़ जाय, कुछ सूझे नहीं, चिंता, मूच्छा, पसीने आवे, ध्यान लग जाय, मूच्छा कहिये मनका योह और प्रमूढता कहिये इन्द्रियोंका मोह होय, निद्रा जाती रहे ॥

वातज अपस्मारके लक्षण ।

कंपते प्रदुशेहंतान्फेनोद्वाभी श्वसत्यपि ॥

पुरुषारुणकृष्णानि पृश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥ ३ ॥

भाषा—वातके अपस्मारसे रोगी कांपे, दांतोंको चबावे, मुखसे झाग गिरे और श्वास मरे तथा मुद्रुष्योंका कर्कश, अरुणवर्ण और काला वर्ण दीखे अर्थात् कोई

नीलवर्णका मनुष्य मेरे पास दौड़ा आता है, इसी प्रकार पित्तसे पीले वर्णका पुरुष दौड़ा आता है और कफसे सफेद रंगका पुरुष मेरे सामने दौड़ा आता है ऐसा जानना ॥

पित्तकी मृगीके लक्षण ।

पीतफेनांगवक्ताक्षः पीतासृथूपदर्शनः ॥

सतृष्णोष्णाऽनलव्याप्तलोकदशीं च पैतिकः ॥ ४ ॥

भाषा-पित्तकी मिरगीबालेके ज्ञाग, देह, मुख और नेत्र ये पीले होते हैं और वह पीले रुधिरके रंगकीसी सब वस्तु देखे । प्यासयुक्त और गरमीके साथ आप्तिसे व्याप्त भया ऐसा सब जगत्को देखे ॥

कफकी मृगीके लक्षण ।

शुक्लफेनांगवक्ताक्षः शीतदृष्टांगजो गुरुः ॥

पद्यञ्जुङ्गानि रूपाणि मुच्यते श्वेस्मकश्विरात् ॥ ५ ॥

भाषा-कफकी मृगीबालेके ज्ञाग, अंग, मुख और नेत्र सफेद होय, देह शीतल होय तथा देहके रोमांच खड़े रहें, भारी होय और सब पदार्थ सफेद दीर्घे यह अपस्मार (मिरगी) रोग दरमे छोड़े । इससे यह सूचना करी कि वातपित्तकी मृगी जलदी रोगीको छोड़ देती है ॥

सचिपातकी मृगीके लक्षण ।

सर्वैरतैः समस्तैश्च लिंगैङ्गेयास्त्रिदोषजः ॥

अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्याऽनवश्यः ॥ ६ ॥

भाषा-जिसमें तीनों देवेंके लक्षण मिलते हों वह त्रिदोषज अपस्मार जानना यह असाध्य है और जो क्षीण पुरुषके होय वहमी असाध्य है । तथा पुराना पठ गया होय वहमी अपस्मार (मिरगी) रोग असाध्य है ॥

मिरगीके असाध्य लक्षण ।

प्रतिस्फुरन्तं बहुशः क्षीणं प्रचलित्तभुवम् ॥

नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ ७ ॥

भाषा-वारंवार क्षेपयुक्त होय, क्षीण हो गया हो, भुक्टी (भौंह) का चला-नेवाला और नेत्र टेढ़े बांके करनेवाला ऐसा अपस्मारी रोगी जीवे नहीं ॥

मिरगीरोगकी पाली ।

पक्षाद्वा द्वादशाद्वाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः ॥

अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किंचिदथोत्तरम् ॥ ८ ॥

भाषा—कोषको प्राप्त भये जो दोष वे पंद्रहवें दिन अथवा बारहवें दिन अथवा महीनेमरमें मिरगीरोग प्रगट करे । तिनमें पैतिक १५ दिन, वातिक १२ दिन और श्लैष्मिक ३० दिनमें आती है । इस जगह बारहवें दिनके पिछाड़ी पक्ष कहना! ठीक या । फिर पहिले पक्ष धरनेका यह प्रयोजन है कि अधिक कालकरकेही दोष वेग करते हैं यह कहा । “ किंचिद्दशोत्तरम् ” इस पदसे यह सूचना करी है कि जिस जिस दोषका जो जो काल है उससे पहिलेभी दोषोंके तारतम्यसे मिरगीरोग होता है ऐसा जानना । शंका—वेग उत्पन्न करके अपस्मारके प्रगटकर्ता दोष देहमें सदा रहते हैं फिर वे सर्वकालमें वेग क्यों नहीं करते ? द्वादशादि दिनमें क्यों करते हैं ? इस विषयमें वृष्टांतरूप समाधान कहते हैं ॥

देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ वीजानि कानिचित् ॥
शरदि प्रतिरोद्दन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्यः ॥ ९ ॥

भाषा—जैसे चातुर्मासमें इन्द्र वर्षेभी है परन्तु कोई जव, गेहूं, चना आदि वीज शरद्वत्तुमेंही ऊगते हैं तैसेही सर्व रोगके वीजरूप वातादिक दोष कदाचित् किसी अपस्मारादिक व्याधिविशेषके निदानादिकका संगम होनेसे उस रोगको प्रगट करते हैं । अथवा इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि वीजके अंकुर फूटनेमें तेज, वायु, पृथ्वी, जल ये सहायकभी हैं परन्तु वे सब कालविशेषकी प्रतीक्षा (इच्छा) करते हैं । अंकुर आनेको कालहीका सहाय चाहिये अर्थात् जिस कालमें जिस अंकुरका वीज आता है वह उसी कालमें आवेगा वीचमें कभी नहीं आवेगा यही न्याय चाहुर्थीक ज्वरादिकोंमेंभी जानना ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषार्थीकाया-
मपस्माररोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ वातव्याधिनिदानम् ।



रुक्षशीतालपल्घव्यव्यवायांतिप्रजागरैः ॥ विषमादुपचाराच्च दो-
षासृक्ष्वावप्यादृपि ॥ १ ॥ लंघनपुवनात्यध्वव्यायामातिविचेष्टनैः ॥
धातूनां संक्षयाच्चिन्ताशोकरोगार्त्तिकर्षणात् ॥ २ ॥ वेगसंधार-
णादामादभियातादभोजनात् ॥ मर्मवाधाद्वजोश्रावशशीत्रयाना-

**दिसेवनात् ॥ ३ ॥ देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो
बली ॥ करोति विविधान्व्याधीन्सर्वैर्गैकांगसंश्रयान् ॥ ४ ॥**

भाषा—खसा, शीतल, घोड़ा और हल्का ऐसे अन्न खानेसे, अतिमैथुनके करनेसे, बहुत जागनेसे, विषम उपचार करनेसे दोष (कफ, पित्त, मल, मूत्र इत्यादि) और रुधिर इनके निकलनेसे अर्थात् वमन विरचनेसे, लंघन अर्थात् अवाडे आदिमे कला खेलनेसे, नदी आदिमे तैरनेसे, बहुत, चलनेसे, अति दंड कसरत आदि श्रमके करनेसे, अत्यंत विरुद्ध चेष्टा करनेसे, रस रुधिर आदि धातुओंके क्षय होनेसे, चिन्ता शोक और रोगद्वारा कृश होनेसे, मल मूत्रादिकोंका वेग रोकनेसे, आगेसे लकड़ी आदिकी चोट लगनेसे, उपवास (व्रत) के करनेसे आदि ले सब मर्मस्थानोंमेंके लगनेसे, हाथी ऊंट घोड़ा इत्यादि जलदी चलनेवाली सवारीपर बैठनेसे कोपको प्राप्त भई जो बलवान् वायु सो देहमें खाली जो नसें हैं उनमें प्राप्त हो सर्वांग अथवा एक अंगमें व्याप्त होनेवाली ऐसी अनेक प्रकारकी वातव्याधि उत्पन्न करे ॥

पूर्वरूप ।

अव्यक्तं लक्षणं तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥

आत्मरूपं तु तद्वक्तमपायो लघुता पुनः ॥ ५ ॥

भाषा—उस वक्ष्यमाण वातव्याधिके जो अग्रगत लक्षण उसको पूर्वरूप ऐसा कहते हैं । ज्वरादिकोंके सदृश विशिष्ट नहीं हैं और जो रूप प्रगट होय अर्थात् दोषादि भेदकरके यथार्थ दीखे उसको उस व्याधिका लक्षण जानना । अपानवायुको चंचल होनेसे स्तंभ संकोच कंपादिकका कदाचित् अभाव होय है और लघुता (शरीरकी उस वायुकरके धातुशोषण करनेसे) अथवा अपायलघुता कहिये सब वातविकारोंका अपाय कहिये अभाव होय और वातविकारोंकी लघुता कहिये अल्पत्वकरके जो स्थिति है सो निःशेष निवृत्त नहीं होय । अब नाना प्रकारकी व्याधि करे हैं यह जो कह आये हैं उसको आगेके श्लोकमें कहते हैं ॥

**संकोचः पर्वणां स्तंभो भंगोऽस्थां पर्वणामपि ॥ लोहमर्षः प्रला-
पश्च पाणिपृष्ठशिरोग्रहः ॥ ६ ॥ खांज्यपांगुल्यकुञ्जत्वं शोथोऽ-
गानामनिद्रता ॥ गर्भद्वाकरजनेशः स्यंदुनं गात्रसुसत्ता ॥ ७ ॥
शिरोनासाक्षिजवूणां ग्रीवायाश्वापि हुंडनम् ॥ भेदस्तोदोऽतिरा-
क्षेपो मोहश्वायास एव च ॥ ८ ॥ एवंविधानि रूपाणि करोति-
कुपितोऽनिलः ॥ हेतुस्थानविशेषात् भवेद्रोगविशेषकृत् ॥ ९ ॥**

भाषा—संधियोंका संकोच और स्तंभ, हङ्गियों और संधियोंमें फूटनेकीसी पीड़ा, रोमांच, वाहियात बक्कना, हाथ पैर और मुख इनका जकड़ जाना, खंजत्व, पांगुण होना, कुबड़ापना, अंगोंका सूजना, निद्राका नाश, गर्भका न रहना, शुक्र और रज (स्त्रीका आर्त्तव) इनका नाश, कंप, अंगोंमें शून्यता, मस्तक, नाक, मुख, ज़त्र और नाड़ इनका भीतर जाना, अथवा टेहे हो जांय. भेदसहश पीड़ा, नोचनेकीसी पीड़ा, शूल, आक्षेपरोग जो आगे कहेंगे, मोह, श्रम, कुपित भई जो वायु इस प्रकार लक्षण करे है । वह वायु हेतु और स्थान इन भेदोंसे विशिष्ट रोग उत्पन्न करनेवाली होती है । जैसे कफावृत होनेसे मन्यास्तंभरोग करे । यदि पक्षाशयमें वात स्थित होय तौ अंतोंका गूँजना इत्यादि रोग करे है ॥

कोष्ठाश्रित वायुके कार्य ।

तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः ॥

वर्ध्महद्वोगगुल्मार्णः पार्थशूलं च मारुते ॥ १० ॥

भाषा—कोठेमें स्थित वायु दुष्ट होनेसे मलमूत्रका अवरोध होय, वदरोग, हृदयरोग, गोला, वगासीर और पसवाड़ोंमें पीड़ा इतने रोग उत्पन्न करे ॥

सर्वांगकुपित वायुके कार्य ।

सर्वांगकुपिते वाते गात्रस्फुरणजृभणम् ॥

वेदनाभिः परीतस्य स्फुटत्वीवास्य संधयः ॥ ११ ॥

भाषा—सब अंगकी वायु कुपित होनेसे अंगोंका फरकना, जंभाई और संधि वेदनायुक्त हों, फूटनेकीसी पीड़ा होय ॥

गुदामें स्थित वायुके कार्य ।

यहो विष्मूत्रवातानां शूलाध्मानाऽमशकराः ॥

जंघोरुत्रिकहृत्पृष्ठरोगशोफो गुदास्थिते ॥ १२ ॥

भाषा—वायु गुदामें स्थित होनेसे मल मूत्र और वायुका रुकना, शूल, अफरा, पथरी, जंघा, ऊरु, त्रिकस्थान, हृदय, पीठ इनमें पीड़ा और सूजन ये रोग होते हैं ॥

आमाशयस्थित वायुके कार्य ।

रुक्षपार्थीदरहन्नभेस्तृष्णोद्वारविषूचिकाः ॥

कासाः कंठास्यशोषश्च श्वासश्वामाशये स्थिते ॥ १३ ॥

१ इस जगह गुदाशब्दकरके उत्तरगुदा अर्थात् पक्षाशय जानना । गुदा नहीं जानना । क्योंकि गुदामें कहे तो उसको अश्मरी (पथरी) कर्तृत्व नहीं हो सके ।

भाषा—वायु आमाशयमें स्थित होनेसे पसवाड़ा, उदर, हृदय और नाभि इनमें पीड़ा होय, प्यास, डकार और हैजा (मुख और गुदाके द्वारा अन्की प्रवृत्ति), खांसी, कंठ मुखका सूखना, श्वास ये लक्षण होते हैं ॥

पक्षाशयस्थ वायुके कार्य ।

पक्षाशयस्थोऽत्रकूर्जं शूलाटोपौ करोति च ॥

मन्त्रकूच्छ्वपुरीषत्वमानाहं त्रिक्लबेदनाम् ॥ १४ ॥

भाषा—वायु पक्षाशयमें होय तौ आंतोंका गूंजना, शूल, आटोप (गुडगुड शब्द), मल मूत्र कष्टसे निकले, बफरा, त्रिक्लस्थानमें पीड़ा इन लक्षणोंको करे ॥
इन्द्रियोंमें स्थित वायुके कार्य ।

श्रोत्रादिर्षिद्वियवधं कुर्यात्कुद्धसमीरणः ॥

भाषा—कानसे आदि जो और इन्द्रियें हैं उनमें कुपित वायु यदि स्थित होय तो इन्द्रियोंका नाश करे ॥

रसधातुगत वायुके लक्षण ।

त्वगूक्षा रुफुटिता सुसा कृशा कृष्णा च तुद्यते ॥

आतन्यत सरागा च मर्मरुक्त्वगतेऽनिले ॥ १५ ॥

भाषा—वायु त्वगगत अर्थात् धातुरूप त्वचामें प्राप्त होनेसे त्वचा रुक्षी और फटी, शून्य, कर्कश और काली हो जाय और उसमें चमका चले तथा तन जाय, कुछ तांबेके समान लाल रंग हो जाय और हृदयादि मर्मोंमें पीड़ा होय ॥

रक्तगत वायुके लक्षण ।

रुजस्तव्रिाः ससंतापा वैवर्ण्यं कृशताश्चिः ॥

गात्रे चारुंषि भुक्तस्य स्तंभश्चासृगतेऽनिले ॥ १६ ॥

भाषा—वायु रुधिरमिश्रित होनेसे सन्तापयुक्त तीव्र वेदना होय, देहका विवर्ण होय, कृशता, अरुचि और देहमें फोड़ा तथा भोजन करनेके उपरांत देहका जकड़ जाना ये लक्षण होते हैं ॥

मांसमेदोगत वायुके लक्षण ।

गुर्वं तुद्यते स्तवधं दंडमुष्टिहृतं यथा ॥

सरुक् श्रमितमत्यर्थं मांसमेदोगतेऽनिले ॥ १७ ॥

भाषा—मांस और मेदमें वायुके पहुँचनेसे अंग भारी हो जाय, चोटेके समान पीड़ा होय अथवा निश्चल हो जाय अथवा मुक्का मारनेकीसी तथा लकड़ी मारनेकीसी पीड़ा होय ॥

मज्जास्थिगत वायुके लक्षण ।

मेदोऽस्थिपर्वणां सान्धिशूलं मांसबलक्षयः ॥

अस्वप्नं सतता रुक्षं च मज्जास्थिकुपितेऽनिले ॥ १८ ॥

माषा-मज्जा और हड्डी इन ठिकानेपर वायुका कोप होनेसे हड्डूटनी हो, संधि संधियों पीड़ा होय, मांस और बल ये क्षीण हो जाय, निद्रा आवे नहीं और निरंकृत वीड़ा होय । इस जगह सुश्वतने कुछ विशेष लिखा है ॥

शुक्रगत वायुके लक्षण ।

क्षिप्रं सुचाति बध्राति शुक्रं गर्भमथापि वा ॥

विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥ १९ ॥

माषा-शुक्रस्थानकी वायुका कोप होनेसे वह वायु शुक्रको जलदी पतन करे । और बंधन करे अथवा गर्भको जलदी छोडे और बंधन करे और गर्भका अथवा शुक्रका विकार प्रगट करे ॥

शिरागत वायुके लक्षण ।

कुर्याच्छिरागतः शुलं शिराकुरुचनपूरणम् ॥

स वाह्याभ्यन्तरायामं खल्दीं कुञ्जत्वमेव च ॥ २० ॥

माषा-वायुके शिरा (नाडी) गत होनेसे शूल, नाडीका संकोच और स्थूलत्व ज्ञे और वाह्यायाम, आभ्यन्तरायाम, खल्दी और कुबड़ापना इन रोगोंको उत्पन्न करे ॥

स्नायुगत और संधिगत वायुके लक्षण ।

सर्वोग्गकांगरोगांश्च कुर्यात्स्नायुगतोऽनिलः ॥

हंति संधिगतः संधीञ्छूलशोथौ करोति च ॥ २१ ॥

माषा-वायु स्नायुगत होनेसे सर्वोग और एकांग रोगोंको करे । संधिगत होनेसे संधिका विश्लेष (जुदा जुदा होना) और संधियोंका जकड़ जाना तथा शूल और सूजन इन रोगोंको प्रगट करे ॥

पित्त और कफ इनसे आवृत हुए प्राणादिक वायुके आधे आधे श्लोकोंमें लक्षण कहते हैं ।

प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्वैवोपजायते ॥ दौर्वल्यं सदनं तंद्रा वैर-

स्यं च कफावृते ॥ २२ ॥ उदाने पित्तयुक्ते तु दाहो मूच्छो भ्रमः

कुमः । अस्वेदहृष्टौ मन्दाश्चिः शीतता च कफावृते ॥ २३ ॥

स्वेददाहौष्ण्यमूच्छोः स्युः समाने पित्तसंयुते ॥ कफेन संगे

विषमूत्रे गात्रहर्षश्च जायते ॥ २४ ॥ अपाने पित्तयुक्ते तु
दाहौष्ण्यं रक्तमूत्रता ॥ अधःकाये गुरुत्वं च शीतता च
कफावृते ॥ २५ ॥ व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं
कुमः ॥ स्तंभनो दंडकश्चापि शोथशूलौ कफावृते ॥ २६ ॥

भाषा-प्राणवायु पित्तसंयुक्त होनेसे बमन और दाह उत्पन्न होय और कफसंयुक्त
होनेसे दुर्बलपना, श्वानि, तंद्रा और मुखमे विरसता ये होय । उदानवायु पित्तयुक्त
होनेसे दाह, मूच्छा, भ्रम, अनायास श्रम ये होय और कफयुक्त होय तौ पसीना
नहीं आवे, रोमांच, अग्नि मंद होय और शीत लगे । समानवायु पित्तयुक्त होनेसे
पसीना, दाह, गरमी और मूच्छा ये होते हैं । पित्तकफयुक्त होनेसे मलमूत्रका रुकना
और रोमांच होय । अपानवायु पित्तयुक्त होनेसे कमरके नीचेके भागमे भारीपना
और सरदीका लगना । व्यानवायु पित्तयुक्त होनेसे दाह, गात्रोंका विक्षेप अर्थात्
इधर उधरको फेरना और श्रम होय । कफयुक्त होनेसे शरीर लकड़ीके समान स्तंभ
होय, स्फुजन और शूल होय । इस जगह प्राणादि पंच वायुओंके परस्पर मिलनेसे
वीस प्रकारके आवरण चरकोत्त जान लेने और वाग्भटके मतसे आवरण वाईस
प्रकारके हैं । हमने ग्रंथके विस्तारभयसे छोड़ दिये हैं ॥

आक्षेपकके सामान्य लक्षण ।

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः ॥

तदा शिपत्याशु मुहुर्मुहुर्दैहं मुहुश्वरः ॥

मुहुर्मुहुर्स्तदाक्षेपादाक्षेपक इति स्मृतः ॥ २७ ॥

भाषा-जित कालमें वायु कुपित होकर सब धमनी नाडियोंमे जाकर प्राप्त होय
तंब उस जगह वह वारंवार संचार करके देहको वारंवार आक्षिप करती है अर्थात्
हाथीपर बैठनेवाले पुरुषके समान सब देहको चढ़ायमान करे उस देहको वारंवार
चलानेको आक्षेपक रोग कहते हैं ॥

आक्षेपकके अपतंत्र और अपतानक ऐसे दो अवस्थाविशेषको कहते हैं ।

कुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रवर्तते ॥ पीडयन्हृदयं
गत्वा शिरःशङ्खौ च पीडयेत ॥ २८ ॥ धनुर्बन्नामयेद्वात्राण्या-
क्षिपेन्मोहयेत्था ॥ स कूच्छ्वदुच्छ्वसेच्चापि स्तब्धाक्षोऽथ निमी-
लकः ॥ २९ ॥ कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽपतंत्रकः ॥
द्वाष्टि संस्तम्य संज्ञां च हत्वा कंठेन कूजति ॥ ३० ॥ हृदि

**मुक्ते नर स्वास्थ्यं याति मोहं वृते पुनः ॥ वायुना दारुणं
प्राहुरेके तमष्टानकम् ॥ ३१ ॥**

भाषा—रुक्षादि स्वकारणोंसे कोपको प्राप्त महे जो वायु वह अपने स्वस्थानको छोड़ ऊपर जाकर प्राप्त हो और हृदयमें जाकर पीड़ा करे, मस्तक और कनपटी इनमें पीड़ा करे और देहको धनुषके समान नवाय देवे और चले तो सूर्खित कर दे वह रोगी बड़े कष्टसे चास लेय; नेत्र भिच जावें अथवा टे ढे हो जाय, कद्गूतरके समान गूंजे तथा बेदोश होय, इस रोगको अपतंत्रक कहते हैं। दृष्टिका स्तंभन हो जाय, संज्ञा जाती रहे, गलेमें घुरघुर शब्द होय, वायु जब हृदयको छोड़े तब रोगीको होश होय और वायु हृदयको व्याप्त करे तब फिर मोह हो जाय, इस भयंकर रोगको कोई अपतानक ऐसा कहते हैं। अब कहते हैं कि दंडापतानक, अंतरायाम, बहिरायाम और अभिघात इन मेंदोंसे आक्षेपकरोग चार प्रकारका हैं। उनके लक्षण लिखते हैं ॥

दंडापतानकके लक्षण ।

कफान्वितो भृशं वायुस्तास्वेव यदि तिष्ठति ॥

स दंडवतस्तंभयति कृच्छ्रो दंडापतानकः ॥ ३२ ॥

भाषा—वायु अत्यंत कफयुक्त होकर सब धमनी नाडियोंमें प्राप्त होय तब सब देहको दंड (लकड़ी) के समान तिरछा कर दे यह दंडापतानक कष्टसाध्य है ।

अब अंतरायाम और बहिरायाम इनके साधारण रूपको कहते हैं ।

धनुस्तुलयं नमेद्यस्तु स धनुःस्तंभसंज्ञितः ॥

भाषा—जो वायु धनुषके समान शरीरको बांका कर दे उसको धनुषस्तंभ संज्ञक कहते हैं ॥

अंतरायामके लक्षण ।

**अंगुलीगुल्फजठरहृद्धक्षोण्टसंश्रितः ॥ स्नायुप्रतानमनिलो
यदा क्षिपति वेगवान् ॥ ३३ ॥ विष्टव्याक्षः स्तव्यहनुर्भग-
पार्श्वः कफं वमन् ॥ अभ्यंतरं धनुरिव यदा नमति मानवः
॥ ३४ ॥ तदा सोऽभ्यन्तरायाम कुरुते मारुतो बली ॥ ३५ ॥**

भाषा—पैरकी उंगली, घोंदू, हृदय, पेट, उरःस्थल और गला इन ठिकानोंमें रहा जो वायु वह वेगवान् होकर जो वही नसोंके जालको सुखाय बाहर निकाल दे उस मनुष्यके नेत्र स्थिर हो जाय, मेडो रह जाय, पसवाडोंमें पीड़ा होय, मुखसे

कफ गिरे और जिस समय मनुष्य धनुषके सद्वश नीचेको नम जाय तब वह बली वायु अंतरायाम रोगको करे ॥

वाह्यायामलक्षण ।

वाह्यः स्थायुप्रतानस्थो वाह्यायामं क्षरोति च ॥

तमसाध्यं दुधाः प्राहुर्वक्षः कटचूरुभंजनम् ॥ ३६ ॥

भाषा—बाहरकी नसोंमें रहनेवाला जो वात सो वाह्यायाम अर्थात् पीठको बाकी कर दे, उरःस्थल, कमर और जांघोंको मोर दे ऐसे इस रोगको पंडित असाध्य कहते हैं ॥

अब पूर्वोक्त आक्षेपकको पित्तकफका अनुवंध होय है उसको कहते हैं ।

कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः ॥

कुर्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥ ३७ ॥

भाषा—कफपित्तयुक्त वायु अथवा केवल वायु आक्षेपक रोगको करे और दूसरा कहिये दंडापतानकादि तीनोंकी अपेक्षा चतुर्थ अभिघातज आक्षेपक रोगको करे । इसके लक्षण “ यदा तु धमनीः सर्वाः ” इत्यादि पूर्वोक्त सामान्य लक्षणोंसे जानने । इस श्लोकका गदाधरने ऐसा अर्थ करा है कि कफपित्तान्वित इत्यादि निमित्तमेद-करके चार प्रकारका आक्षेपकरोग प्रगट होय । एक कफान्वित वायुसे, दूसरा पित्तान्वित वायुसे, तीसरा केवल वायुसे और चौथा दंडादिक चोट लगनेसे कुपित वायुसे । इस पक्षमें गर्भपात और रुधिरका अतिश्वास जो होय है सो केवल वात-जन्य जानना और उस ठिकाने वारंवार आक्षेपक होता है इसका कारण यह है कि ये सब आक्षेपकके भेद हैं ॥

असाध्यत्वको कहते हैं ।

गर्भपातनिमित्तश्च शोणितातिस्ववाच्य यः ॥

अभिघातनिमित्तश्च न सिद्धच्यत्यपतानकः ॥ ३८ ॥

भाषा—गर्भपातके होनेसे अथवा अति रक्तस्रावके होनेसे अथवा अभिघात कहिये दंडादिकोंकी चोट लगनेसे जो प्रगट अपतानकरोग वह असाध्य है ॥

पक्षाघातके लक्षण ।

गृहीत्वार्थं तनोर्वायुः शिरास्थायू विशोष्य च ॥ पक्षमन्यतरं हान्ति

संधिवंधान्विमोक्षयन् ॥ ३९ ॥ कृत्स्नोऽर्द्धकायस्तस्य स्यादुक-

र्मण्यो विचेतनः ॥ एकांगरोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः ॥ ४० ॥

भाषा—वायु आधे शरीरको पकड सब शरीरकी नसोंको सुखाकर दहिने जंगको अर्धनारीश्वरके समान कार्य करनेको असमर्थ कर दे और संधिके बंधनोंको शिथिल कर दे पीछे उस रोगीके सब वा आधे अङ्ग हल्ले चलें नहीं और उसको थोड़ाभी देखनेका स्पर्श आदिका ज्ञान नहीं रहे इसको एकांगरोग कहते हैं । दूसरे पक्षवध कहते हैं, इसीको पक्षाघात कहते हैं ॥

सर्वांगरोगके लक्षण ।

सर्वांगरोगं तं केचित्सर्वकायाश्रितेऽनिले ॥

भाषा—तद्वद् कहिये “ शिरासनायु विशोष्य ” इत्यादि सम्प्राप्तिलक्षण इससे जानने । सर्व शिरा (नाड़) में वायु प्राप्त होनेसे उसको सर्वांगरोग कोई कहते हैं । अब साध्यासाध्यके ज्ञानार्थ और दोषोंका सम्बन्ध कहते हैं ।

दाहसंतापमूच्छाः स्युर्वायौ पित्तसमन्विते ॥ शैत्यशोथगुरु-
त्वानि तस्मिन्नैव कफान्विते ॥ ४१ ॥ शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्र-
साध्यतमं विदुः ॥ साध्यमन्येन संसृष्टमसाध्यं क्षयहेतुकम्
॥ ४२ ॥ गर्भिणीमूत्रिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्षुतौ ॥ पक्षा-
घावं परिहरेद्देवनारहितो यदि ॥ ४३ ॥

भाषा—पक्षवधकी वायु कफपित्तयुक्त होय तौ दाह, संताप और मूच्छा होय । और वही वायु कफयुक्त होय तौ शीत, सूजन, भारीपन ये लक्षण होय और केवल वायुसे प्रगट पक्षाघात अत्यंत कष्टसाध्य होय है और दोषोंसे संसृष्ट होनेसे साध्य होय है । क्षयसे प्रगट भया पक्षाघात असाध्य होय है । गर्भिणी, बालक, वृद्ध और क्षीण इनके भया तथा रुधिरके सावसे प्रगट पक्षाघात पीड़ारहित होय तौ उसको वैद्य त्याग दे अर्थात् असाध्य जानकर चिकित्सा न करे ॥

अर्द्दितरोगके लक्षण ।

उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च ॥ इसतो जृंभमाणस्य
विषमाच्छयनासनात् ॥ ४४ ॥ शिरोनासौषुच्चुबुकल्लाटेक्षणसं-
धिगः ॥ अर्द्यत्यनिलो वक्रमदितं जनयत्यतः ॥ ४५ ॥ वक्री-
भवति वक्राधैष्ठीवा चास्यात्प्रवर्त्तते ॥ शिरश्चलति वाक्स्तंभो
नेत्रादीनां च वैकृतम् ॥ ४६ ॥ ग्रीवाच्चुबुकदंतानां तस्मिन्पार्श्वे
सवेदना ॥ तमदितमिति प्राहुव्याधिं व्याधिविशारदाः ॥ ४७ ॥

माषा—जंचे स्वरसे वेदादिकका पाठ करनेसे अथवा कठिन पदार्थ सुपारी आदिके खानेसे, बहुत हँसनेसे, बहुत जंभाईके लेनेसे, ऊंचे नीचे स्थानमें सोनेसे, विषमाशन (भोजन) के करनेसे कोपको प्राप्त हुई जो वायु मस्तक, नाक हँठ, ठोड़ी, ललाट और नेत्र इनकी सन्धियोंमें प्राप्त हो सुखमें पीड़ा करे अर्थात् आर्द्धत रोगको उत्पन्न करे उस पुरुषका सुख आधा टेढ़ा हो जाय, उसकी नाड़ मुड़े नहीं, मस्तक हिला करे, अच्छी तरह बोला जावे नहीं, नेत्र, भ्रुकुटी, गाल इनकी विकृति कहिये पीड़ा, फरकना, टेढ़ा होना इत्यादि होय और जिस तरफ आर्द्धत रोग होय उस तरफ नार, ठोड़ी और दांत इनमें पीड़ा होय । व्याधि जाननेमें जो कुशल वैद्य है वह इस व्याधिको आर्द्धतरोग ऐसा कहता है । अंका—क्योंजी ! आर्द्धतरोगमें और पक्षाघातमें क्या भेद है ? उत्तर—आर्द्धतसे गर्भमेंभी पीड़ा होय है, कभी नहीं होय है और पक्षाघातमें सदा पीड़ा होती है । आर्द्धतरोग चार प्रकारका है ॥

आर्द्धतरोगके असाध्य लक्षण ।

क्षीणस्याऽनिमिषाक्षस्य प्रसत्ताव्यक्तभाषिणः ॥

न सिद्धच्यत्यार्द्धतं गाढं त्रिवर्षे वेपनस्य च ॥ ४८ ॥

भाषा—क्षीण पुरुषके, पलक नहीं लगे ऐसे पुरुषके, अत्यंत शुद्ध बोले नहीं ऐसे पुरुषके, आर्द्धतरोगको प्रगट भये तीन वर्ष व्यतीत हो गये हों अथवा त्रिवर्ष कहिये सुख, नाक और नेत्र इन तीनोंका स्वाव होय ऐसा और कंपयुक्त पुरुषका आर्द्धतरोग साध्य नहीं होय ॥

अब आक्षेपकसे लेकर आर्द्धतरोगको वेग कहते हैं ।

गते वेमे भवेस्वास्थं सर्वेष्वाक्षेपकादिषु ॥

भाषा—आक्षेपकादि सब वातरोगोंमें वेग शांत होनेसे स्वास्थ्य कहिये पीड़ा कम होय जैसे मस्तकके ऊपरका मार (बोझ) उतारनेसे सुखकी प्राप्ति होती है ॥

इनुग्रहके लक्षण ।

जिह्वानिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः ॥ कुपितोऽहुमूलस्थः संसयित्वाऽनिलोऽहुम् ॥ ४९ ॥ करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम् ॥ हनुग्रहः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्णणभाषणम् ॥ ५० ॥

१ अथवा सब लक्षणयुक्त आर्द्धतरोग है उससे विपरीत अर्धाघातके लक्षण जानने । परंतु स्स्कृतमें सुखमात्रकोही आर्द्धतरोगमें लिखा है और अर्धशरीरको अर्धघातकरके लब्ध होनेसे नहीं लिखा सोई माधवने पाठ लिखा है ।

भाषा-जिह्वाके अतिर्घर्षण करनेसे, चना आदि सूखो वस्तुके खानेसे अथवा किसी प्रकार चोटके लगनेसे, हनुमूल (कपोल) के वर्यात् डाढ़की जड़में रहे जो वायु सो कुपित होकर हनुमूलको नीचे कर मुखको खुलाही रख दे अथवा मुखको बंद कर दे, उसे हनुयत्रहरोग कहते हैं । तब उस मनुष्यको खाना, बोलना कठिनतासे होय ॥

मन्यास्तंभके लक्षण ।

दिवास्वप्नाशनस्नानविकृतोर्ध्वनिरक्षणैः ॥

मन्यास्तंभं प्रकुरुते स एव श्लेषणा युतः ॥ ६१ ॥

भाषा-दिनमें सोनेसे, अन्न, स्नान, ऊंचेको विकृतिपूर्वक देखनेसे इन कारणोंसे कोपको प्राप्त भई जो बात सो कफयुक्त होकर मन्या नाड़ी स्तंभन करे इस रोगका मन्यास्तंभन रोग कहते हैं ॥

जिह्वास्तंभके लक्षण ।

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वा स्तंभयतेऽनिलः ॥

जिह्वास्तंभः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ॥ ६२ ॥

भाषा-वायु वाणीके बहनेवाली नाडियोंमें प्राप्त हो जिह्वाका स्तंभन कर दे उसको जिह्वास्तंभरोग कहते हैं । यह अन्नपानकी तथा बोलनेकी सामर्थ्यका नाश करे ॥

शिराग्रहके लक्षण ।

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्धधराः शिराः ॥

रुक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्थाच्छिराश्रहः ॥ ६३ ॥

भाषा-वायु रुधिरका आश्रय कर मस्तकके धारण करनेवाली नाडियोंको रुखी, पीड़ायुक्त और काली कर दे यह शिराग्रहरोग असाध्य है । शिरोग्रह ऐसाभी पाठ है ॥

गृष्मसीके लक्षण ।

स्फक्षपूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजंघापदं क्रमात् ॥

गृष्मसीस्तंभरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पंदते मुहुः ॥ ६४ ॥

वाताद्वातकफातन्द्रागौरवारोचक्षान्विता ॥ ६५ ॥

भाषा-प्रथम स्फक्ष कहिये कमरके नीचेका माग जिसको कूला कहते हैं उसको स्तंभित कर दे । पीछे क्रमसे कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जंधा और पग इनको

स्तंभित कर दे अर्थात् ये रह जाय । वेदना और तोद् कहिये चोटनेकीसी पीड़ा होय और वारंवार कम्प होय, यह गृष्मसीरोग वादीसे होय है और वातकफ्स से होय तौ तन्द्रा, भरीपना और असुचि ये विशेष होय । इस प्रकार गृष्मसीरोग दो प्रकारका है ॥

विश्वचीके लक्षण ।

तलं प्रत्यंगुणीनां याः कंडरा वाहुषृष्टतः ॥

बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची चेह सोच्यते ॥ ६६ ॥

भाषा—वाहुके पिछाड़ीसे लेकर हाथके ऊपरले मागपर्यंत प्रत्येक उंगलीके नीचे मोटी नसे उसको ढुष्ट कर हाथसे लेना, देना, पसारना, मुट्ठी मारनी इत्यादिक कायोंका नाशकर्ता जो रोग होय उसको विश्वाचीरोग कहते हैं ॥

क्रोष्टुशीर्षके लक्षण ।

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये मद्वारुजः ॥

ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ॥ ६७ ॥

भाषा—वातरक्तसे जानु (धौंट) इन दोनोंकी संधिमें अत्यंत पीड़कारक सूजन हो और स्थारके मस्तकसमान मोटी हो उनको क्रोष्टुशीर्ष ऐसा कहते हैं ॥

खंज और पांगुड़ेके लक्षण ।

वायुः कृत्याश्रितः सक्थनः कंडरामाक्षिपेद्यदा ॥

खंजस्तदा भवेज्जंतुः पंगुः सक्थे द्र्व्योर्वधात् ॥ ६८ ॥

भाषा—कमरमे रहा जो वात सो जंघाकी नसोंको ग्रहण कर एक पगको स्तंभित कर देय उसको खोड़ोगेग कहते हैं और दोनों जंघायोंकी नसोंको पकड़ दोनों पैरोंको स्तंभित कर दे उसको पागुला कहते हैं ॥

कलायखंजके लक्षण ।

प्रकामं वेपते यस्तु खंजन्त्रिव च गच्छाति ॥

कलायखंजं तं विद्वान्मुक्तसंधिप्रवंधनम् ॥ ६९ ॥

भाषा—जो पुरुष चलते समय थरथर कापे और खंज अर्थात् एक पैरसेही न मालूम होय । इस रोगमें संधिके बंधन शिथिल होते हैं इस रोगको कलाय-खंज कहते हैं ॥

वातकंटकके लक्षण ।

रुक्षपादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा ॥

वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकंटकम् ॥ ६० ॥

भाषा—जंची नीची जगहमें पैर पड़नेसे अथवा श्रमके होनेसे वायु कुपित टक. नामें प्राप्त होकर पीड़ा करे तौ इस रोगको वातकंटक ऐसा कहते हैं ॥
पादहर्षके लक्षण ।

पादयोः कुरुते हर्षं पित्तासृक्सहितोऽनिलः ॥

विशेषतश्चक्रवतः पादहर्षं तमादिशेत् ॥ ६१ ॥

भाषा—जिसके पैर हर्षयुक्त कहिये ज्ञनज्ञनाइट पीड़ायुक्त होय और अत्यंत सोय जावे उसको पादहर्षरोग कहते हैं । यह कफवातके कोपसे होय है ॥

अंसशोष और अपबाहुक्कके लक्षण ।

अंसदेशे स्थितो वायुः शोषयेदंस्वंधनम् ॥

शिरश्चाकुञ्च्य तत्रस्थो जनयेदपवाहुक्म् ॥ ६२ ॥

भाषा—कंधेमें रहा जो वायु सो कुपित होकर उसके वंधनको सुखाय दे तक अंसशोषरोग प्रगट होय और कंधेमें रहा जो वायु सो नसोंको संकोच करके अपवाहुकरोग प्रगट करे ॥

मूकादिक तीन रोगोंके लक्षण ।

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः ॥

नरान्करोत्यक्रियकान्मूकमिम्मिणगद्भान् ॥ ६३ ॥

भाषा—कफयुक्त वायु शब्दके बहनेवाली नाडियोंमें प्राप्त होकर मनुष्यका वचन क्रियारहित, मूक, मिम्मिण और गद्भ ऐसा कर दे । मूक कहिये जिससे बोला न जाय, मिम्मिण कहिये गिनगिनायकर नाकसे बोले और गद्भ बोलते समय बीचके पद और व्यंजनोंको न बोले और मंद बोले इन रोगोंके कारण सहश होकर रोगोंके भिन्न भिन्न प्रकार होते हैं । वे दोषोंके उत्कर्षकरके अथवा प्रारब्धवशसे होते हैं ऐसा जानना ॥

तूनीरोगके लक्षण ।

अधो या वेदना याति वचोमूत्राशयोत्थिता ॥

भिन्दन्तीव गुदोपस्थं सा तूनी नाम नामतः ॥ ६४ ॥

भाषा—पक्षाशय और मूत्राशयसे उठी जो पीड़ा सो नीचे जाकर प्राप्त हो और गुदा तथा उपस्थ कहिये स्त्रीपुरुषोंके गुहस्थान इनमें भेद करे अर्थात् पीड़ा करे उसको तूनीरोग कहते हैं ॥

प्रतूनीके लक्षण ।

गुदोपस्थोत्थिता चैव प्रतिलोमं प्रधावति ॥

वेगैः पक्षाशयं याति प्रतूनी चेह सोच्यते ॥ ६५ ॥

भाषा—गुदा और उपस्थ इनसे उठी जो पीड़ा उलटी ऊपर जाकर प्राप्त हो और जोरसे पक्षाशयमें प्राप्त हो और तूनीके समान पीड़ा करे उसको प्रतूनी कहते हैं ॥
आधमानरोगके लक्षण ।

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मानमुदरं भृशम् ॥

आध्मानामिति जानीयाद् घोरं वातनिरोधजम् ॥ ६६ ॥

भाषा—गुडगुड शब्दयुक्त अत्यंत पीडायुक्त ऐसा उदर (पक्षाशय) अत्यंत फूले अर्थात् वादीसे भरकर चामकी थेलीके समान हो जाय इस भयकर रोगको आधमानरोग कहते हैं । यह वातके रुकनेसे होता है ॥

प्रत्याध्मानके लक्षण ।

विमुक्तपार्थ्वहृदयं तद्वेवामाशयोत्थितम् ॥

प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलतानिलम् ॥ ६७ ॥

भाषा—और वही आधमान रोग आमाशयमें उत्पन्न होय तौ उसको प्रत्याध्मान कहते हैं । इसमें पसवाडे और हृदय इनमें पीड़ा नहीं होय और वायुकफ़ करके व्याकुल हो ॥

वाताष्ठीलिके लक्षण ।

नाभेरधस्तात्संजातः संचारी यदि वाऽचलः ॥

अष्ठीलावद् घनो अथिरुद्धर्वमप्युत उन्नतः ॥

वाताष्ठीलां विजानीयाद्वाहिर्मार्गवरोधिनीम् ॥ ६८ ॥

भाषा—नाभीके नीचे उत्पन्न भई और इधर उधर फिरे, अथवा अचल अष्ठीला (गोल पाषाण) के समान कठिन और ऊपरका भाग कुछ लंबा होय और आड़ी कुछ ऊंची होय और वहिर्मार्ग कहिये अधोवायु मल मूत्र इनका अवरोध कहिये (रुकना) हो ऐसी गांठकों वाताष्ठीला कहते हैं ॥

१ “ श्रमात्तुरेण पानीय पीत्वा वेगविधारणम् । धाषतो वा पिवेत्तोऽय सुंजतो वा विदाहि च ॥ तथा पयोऽम्बुपानादा हुर्जरः पल्लेन वा । साष्ठीला नाम विख्याता गुर्वा कुक्षिश्रितापि वा ॥ ” इति आत्रेयः ।

प्रत्यष्ठीलाके लक्षण ।

एतामेव रुजायुक्तां वातविण्मूत्ररोधिनीम् ॥

प्रत्यष्ठीलामिति वदेजठरे तिर्यगुत्थिताम् ॥ ६९ ॥

भाषा—वाताष्ठीला अत्यंतपीडायुक्त वात मूत्र मलके रोध करनेवाली और जातिछी प्रगट मई होय उसको प्रत्यष्ठीला कहते हैं ॥

मूत्रावरोधके लक्षण ।

मारुते विगुणे वस्तौ मूत्रं सम्यकप्रवर्तते ॥

विकारा विविधाश्चापि प्रतिलोमे भवन्ति हि ॥ ७० ॥

भाषा—बस्ति (मूत्रस्थान) में वायु अबुलोमगतिसे गमन करे तौ मूत्र अच्छी रीतिसे उतरे ऐसे प्रतिलोमसे गमन करे तौ अनेक प्रकारके पथरी मूत्रकृच्छ्रादि विकार उत्पन्न होय ॥

कंपवायुके लक्षण ।

सर्वांगकंपः शिरसो वायुर्वेपथुसंज्ञकः ॥ ७१ ॥

भाषा—सब अंगोंको और मस्तकको जो कंपावे उस वायुको वेपथु (कंप) वायु कहते हैं ॥

खलीके लक्षण ।

सल्ली तु पादजंघोरुकरमूलावमोटिनी ॥

भाषा—और जो वायु पैर, जंघा, ऊरु और हाथके मूलमें कंपन करे उसको खली (मूलामना) रोग कहते हैं ॥

ऊर्ध्ववातके लक्षण टीकाकारने लिखे हैं ।

अधः प्रतिहतो वायुः श्लेषमणा मारुतेन च ॥

करोत्युद्धारवाहुल्यमूर्च्चवातं प्रचक्षते ॥ ७२ ॥

भाषा—कफवातकरके पीड़त नीचेकी वायु डकार बहुत लावे उस वातको ऊर्ध्ववात कहते हैं । परंतु टोड़रानंदने कुछ विलक्षण लिखा है ॥

यथा ।

भुक्तेऽप्यसुक्ते सुते वा यस्योद्धारः प्रजायते ॥

सुततं घोषवांशाति ऊर्ध्ववातं तमादिशेत् ॥ ७३ ॥

भाषा—भोजन करनेपर अथवा भोजनके पहिले अथवा सोनेके समय डकार निरन्तर शब्दवान् आवे उसको ऊर्ध्ववात कहते हैं ॥

प्रलापके लक्षण ।

स्वदेहुकुपिताद्वातादसंबद्धनिरर्थकम् ॥

वचनं यन्नरो ब्रूते स प्रलापः प्रकीर्तिः ॥ ७४ ॥

भाषा-अपने हेतुओंसे कुपित मया जो वात सो असंबद्ध (अर्थरहित) वाणी, चोले अर्थात् बकवाद करे अक्ता बडबड शब्द करे उसको प्रलाप कहते हैं ॥
रसाज्ञानके लक्षण ।

भुञ्जानस्य नरस्यान्नं मधुरप्रभृतीत्रसान् ॥

रसज्ञो यन्न जानाति रसाज्ञानं तदुच्यते ॥ ७५ ॥

भाषा-जो मनुष्य भोजन करे उसकी जीमको मधुर (मीठा) खट्टा इत्यादिक रसोंका ज्ञान न होय उस रोगको रसाज्ञान कहते हैं ॥

अनुकू वातरोगसंहारार्थ कहते हैं ॥

स्थाननामानुरूपैश्च लिङौः शोषान्विनिर्दिशेत् ॥

सर्वेष्वेतेषु संसर्गे पित्ताद्यैरुपलक्षयेत् ॥ ७६ ॥

भाषा-स्थान और नाम इनके अनुरूप कहिये तुल्य ऐसे लक्षणोंसे शेष वात-व्याधि जाननी । स्थानानुरूप कहिये जैसे कुक्षिशूल, नरवमेद इत्यादिक । नामानुरूप कहिये जैसे शूलके कहनेसे कीलनिवातवत् पीडा जाननी । उसी प्रकार तोदभे-दादिक करकेमी पीडा विशेष जाननी चाहिये और पित्त, कफ, रुधिर इनके संसर्गसे रद्दिदोषज व्याधि जाननी चाहिये ॥

साध्यासाध्यविचार ।

हनुस्तंभार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः ॥ ७७ ॥

कालेन मद्वता वाता यत्नात्सिध्यन्ति वा न वा ॥

नवान्वलवतस्त्वेतान्साधयेन्निरुपद्रवान् ॥ ७८ ॥

भाषा-हनुस्तंभ, अर्दित, आक्षेप, पक्षाघात, अपतानक ये वातव्याधि बहुत दैनंदिनमें बड़े परिश्रमसे और यत्नसे साध्य होती हैं । अथवा कभी साध्य नहीं होय परंतु बलवान् पुरुषके ये वातव्याधि नई प्रगट भई हो और उपद्रवरहित होय तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥

वातव्याधिके उपद्रव ।

विसर्पदादरुकसंगमूच्छारुच्यग्रिमार्दवैः ॥

शीणमांसबलं वाता ग्रन्ति पक्षवधादयः ॥ ७९ ॥

भाषा-विसर्परोग, दाह, शूल, मलमूत्रका निरोध, मूच्छा, असाचि, मंदाग्नि इन लक्षणयुक्त जो होय और बल क्षीण हो गया होय ऐसे पुरुषोंको पक्षवधादिक विकार मारक अर्थात् प्राणके हरणकर्ता होते हैं ॥

असाध्य लक्षण ।

**शूनं सुप्तत्वचं भग्नं कंपाध्मानानिर्णिडितम् ॥
रुजात्मिंतं च नरं वातव्याधिविनाशयेत् ॥ ८० ॥**

भाषा-सूजनबाला, जिसकी त्वचा सोई गई होय अर्थात् जिसको स्पर्श होनेका ज्ञान न होय, जिसकी हड्डी टूट गई होय, कंप और अफरा इनसे अत्यन्त पीड़ित होय, रुजा और आर्ति कहिये शूलयुक्त ऐसे मनुष्यका यह वातव्याधिरोग नाश करता है ॥

अब पांच प्रकारके प्रकृतिस्थ वायुके लक्षण और कार्य कहते हैं ।

अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः ॥

वायुः स्पात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः समाः शतम् ॥ ८१ ॥

भाषा-जिस पुरुषकी वायु अव्याहतगति और अपने आश्रयसे रहनेवाली और प्रकृतिस्थित कहिये न वृद्ध न क्षीण होय, वह पुरुष निरोगी होकर “ अधिकं समाः शतं ” कहिये एक सौ बीस वर्ष और पांच दिन पर्यन्त जीवे ॥

**इति श्रीपण्डितदत्तराममायुरनिर्मितमाधवार्थवोधिनीमायुरीभाषादीकार्यां
वातव्याधिरोगनिदानं समाप्तम् ।**

अथ वातरक्तनिदानम् ।

शंका-क्योंजी ! सुश्रुतमें तौ वातव्याधिज्यायमेंही वातरक्त कहा है किर माधवने पृथक् क्यों कहा ! उत्तर-तुमने कहा सो ठीक है परंतु क्रियाविशेषज्ञान-पनार्थ माधवने अलग लिखा है और इसी गीतिसे चरकमेंभी वातव्याधिअध्यायके पीछे वातरक्ताध्याय कहा है ॥

लवणाम्लकटुक्षारलिङ्घोषणाजीर्णभोजनैः ॥ छिन्नशुष्कांबु-

जानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ १ ॥ कुलित्यमाषनिष्पावशा-

कादिपललेशुभिः ॥ दध्यारनाल्लसौवीरसूक्ततक्सुरासवैः ॥ २ ॥

विरुद्धाध्यशनक्रोधद्वास्वप्रजागरैः ॥ प्रायशः सुकुमाराणां

मिथ्याहारविहारिणाम् ॥ स्थूलानां सुखिनां चाथ वातरक्तं प्रकुप्यति ॥ ३ ॥

माषा-नोन, खटाई, कडबी, खारी, चिकना, गरम, कज्जा ऐसे भोजनसे; सडे और सूखे ऐसे जलसंचारी जीवोंके और जलके समीप रहनेवाले जीवोंके माससे; पिण्याक (खर), मूली, कुलथी, उडद, निष्पाव (सेम), शाक (तरकारी), पल्ल (तिलकी चटनी), ईख, दही, काँजी, सौंबीर मद्य, सूक्त (सिरका आटे), छाठ, दारू, आसव (मध्यविशेष), विरुद्ध (जैसे दूध, मछली), अघ्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), क्रोध, दिनमें निद्रा, रातमें जागना इन कारणोंसे विशेषकरके सुकुमार पुरुषोंके और मिथ्या आहार करनेवाले पुरुषोंके और जो मोटा होय तथा सूखा होय ऐसे मनुष्योंके वातरक्तरोग होता है ॥

वातरक्तकी सम्प्राप्ति ।

इस्त्यश्वैर्ष्ट्रैर्गच्छतश्वाश्वतश्व विदाह्यन्नं साविदाहाशनस्य ॥ ४ ॥

कृत्स्नं रक्तं विदहत्याशु तच्च स्नस्तं दुष्टं पादयोश्चीयते तु ॥

तत्संपृक्तं वायुनां दूषितेन तत्प्रावल्पादुच्यते वातरक्तम् ॥ ५ ॥

भाषा-हाथी, घोड़ा, ऊंट इनपर बैठकर जानेसे (यह वायुके बढ़नेका और विशेषकरके रुधिरके उत्तरनेका कारण है); विदाहकारी अन्नके खानेवाले पुरुषके (इसीसे दग्धरुधिरकी वृद्धि होती है), गरमागरम अन्नके खानेवाले ऐसे पुरुषके सब शरीरका रुधिर दुष्ट होकर पैरोंमें इकड़ा होय और वह दुष्ट वायुसे दूषित होकर मिले इस रोगमे वायु प्रबल है । इसीसे इस रोगको वातरक्त ऐसा कहते हैं ॥

पूर्वरूप ।

स्वेदोऽत्यर्थं न वा क्षाण्यर्थं स्पर्शाज्ञत्वं क्षतेऽतिरुक्तं ॥

सन्धिशौथिल्यमालस्यं सदनं पिटिकोद्रमः ॥ ६ ॥ जानुजंघो-

रुक्क्वंसहस्रतपादांगसंधिषु ॥ निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं

सुतिरेव च ॥ ७ ॥ कंडूः संधिषु रुक्म्भूत्वा भूत्वा नश्यति

चापकृत् ॥ वैवर्ण्यं मंडलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम् ॥ ८ ॥

माषा-पसीना बहुत आवे व्यथवा नहीं आवे, शरीर काला हो जाय, शरीरमें स्पर्शका ज्ञान जाता रहे और थोड़ीसी चेट लगनेसे पीड़ा अधिक होय, संधि ढीली हो जाय, आलस्य आवे, ग्लानि हो, शरीरमें फुंसी उठें, घोटू, जंधा, ऊरु, कल्पर, कंधा, हाथ, पैर, सन्धि और अंगोंमें सुईके चुभानेकीसी पीड़ा होय, स्फुरण

(फरकना), तोटनेकीसी पीडा, मारीपना, बधिरता ये लक्षण होते हैं । और संधियोंमें खुजली चले और शूल होकर बारंबार नाश हो जाय, शरीरका विवर्ण हो जाय, रुधिरके कङ्कत्ता देहमें पड़ जाय ये वातरक्तके पूर्वरूप होते हैं ॥

अब वातरक्तको अन्य दोषोंका संसर्ग होनेसे उसके लक्षण न्यारे न्यारे लिखते हैं ।

**वाताधिकेऽधिकं तत्र शूलस्फुरणतोदनम् ॥ शोथश्च रौख्यं
कृष्णत्वं इयावता वृद्धिहानयः ॥ ९॥ धमन्यंगुलिसंधीनां संको-
चोऽग्रहोऽतिरुक्तं ॥ शीतद्वेषानुपश्यस्तंभवेपथुसुप्तयः ॥ १० ॥**

भाषा-वाताधिक वातरक्तमें शूल, अंगोंका फरकना, चोटनेकीसी पीडा ये अधिक होते हैं । सूजन, रुखापना, नीलापना अथवा इयामवर्णता एवं वातरक्तके लक्षणोंकी वृद्धि होय और क्षणभरमें ह्रास (कम हो), धमनी और अंगुलियोंकी संधियोंमें संकोच होय, शरीर जकड़वंध होय, अत्यंत पीडा होय, सर्दीं बुरी लगे और शीतके सेवन करनेसे दुःख होय, स्तंभ होय, कंप और शून्यता होय ये लक्षण होते हैं ॥

रक्ताधिकके लक्षण ।

रक्ते शोफोऽतिरुक्तेदस्ताप्राश्चिमचिमायते ॥

स्निग्धसूक्ष्मैः शमं नैति कंदूक्तेदसमन्वितः ॥ ११ ॥

भाषा-रक्ताधिक वातरक्तमें सूजन, अत्यन्त पीडा और उसमेंसे तामेके रंगका क्लेद वहे । उस सूजनमें चिमचिम बेदना होय, स्निग्ध अथवा रुखे पदार्थसे शांति न हो उससे खुजली और पानी निकले ॥

पित्ताधिकके लक्षण ।

पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्च्छा मदः सतृट् ॥

स्पर्शासहत्वं रुग्रागः शोफः पाको भृशोष्णता ॥ १२ ॥

भाषा-पित्ताधिक वातरक्तमें अत्यन्त दाह, इन्द्रियोंको मोह, पसीना, मूर्च्छा, मस्तपना, प्यास, स्पर्श बुरा मालूम हो, पीडा, लाल रंग, सूजन, छोटे छोटे पीड़े कोडे, अत्यन्त गरमी ये लक्षण होते हैं ॥

कफाधिकके लक्षण ।

कफे स्तैमित्यगुरुतासुप्तिस्तिग्धत्वशीतताः ॥

कंदूर्मन्दा च रुग्द्वंद्वे सर्वलिङ्गं च संकरात् ॥ १३ ॥

भाषा-कफाधिक वातरक्तमें स्तैमित्य (गीले कपड़ेसे आच्छादितसमान)

भारीपना, शून्यता, चिकनापना, शीतलता, खुजली और मन्द पीड़ा ये लक्षण होते हैं ॥

दो दोषोंके वातरक्तमें दो दोषोंके लक्षण और तीन दोषोंके वातरक्तमें तीन दोषोंके लक्षण होते हैं । पैरोंमें वातरक्त हुआ होय उसकी अपेक्षा करनेसे हाथोंमें होय है उसको कहते हैं ।

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्रस्तयोरपे ॥

आखोर्विषमिव कुञ्जं तदेहमनुसर्पति ॥ १४ ॥

भाषा—वह वातरक्त पैरोंके मूलमें होकर कदाचित् हाथोंमेंमी होय है सो आखु (मूसे) के विषसद्वश सर्वदेहमें मंद मंद फैला जाय । यह वातरक्त चरकने दो प्रकारका कहा है । एक उच्चान, दूसरा गंभीर । त्वचा और मांस इनमें होय सो उच्चान और गंभीर इसकी अपेक्षा भीतरी होय है ॥

असाध्य लक्षण ।

आजानुस्फुटितं यज्ञं प्राभिन्नं प्रसुतं च यत् ॥

उपद्रवैर्यज्ञं जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः ॥

वातरक्तमसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम् ॥ १५ ॥

भाषा—आजानु (जंघाके नीचेके भाग) पर्यन्त गया भया वातरक्त असाध्य है । जिसकी त्वचा फट गई होय, चिर गया होय और जो सावयुक्त होय ऐसा वातरक्त अप्राण मांसक्षयादि उपद्रवयुक्त होय । आदिशब्दसे जो आगे श्रम, अरोचक श्वास इत्यादिक कहेंगे वेभी लक्षण होय सोभी असाध्य है । वातरक्त प्रगट भये वर्ष दिन व्यतीत हो गया होय तो याप्य होता है । वर्षदिनके पहिले साध्य होता है परन्तु उसमें स्फुटितादि लक्षण न होय तौ साध्य है ।

उपद्रव ।

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः ॥ १६ ॥ संमू-

च्छाऽमन्दरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः ॥ हिक्कापांगुल्यवीसर्प-

पाकतोदभ्रमक्षुमाः ॥ १७ ॥ अंगुलीवक्रतास्फोटदाहमर्म-

ग्रहार्षुदाः ॥ एतैरुपद्रवैर्वज्यं मोहेनैकेन चापि यत् ॥ १८ ॥

भाषा—निद्रानाश, अरुचि, श्वास, मांसका सडना, मस्तकका जकडना, मूर्ढना, अत्यन्त पीड़ा, प्यास, ज्वर, मोह, कंप, हिचकी, पांगुरापना, विसर्पोग, पकना, नोचनेकीसी पीड़ा, भ्रम, अनायासश्रम, उंगली टेढ़ी हो जाय, फोडा, दाइ, मर्म-

स्थानोंमें पीडा, अर्बुद (गांठ) हो इन उपद्रवयुक्त वातरक्तवाला रोगी असाध्य है। अथवा एक मोहयुक्तही होय तौभी असाध्य जानना ॥

साध्यासाध्य विचार ।

अवृत्सोपद्रवं याप्यं साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥

एकदोषानुवं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम् ॥

त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्य च स्युरुपद्रवाः ॥ १३ ॥

माषा—जिस वातरक्तमें सब उपद्रव होय नहीं वह याप्य है और निरुपद्रव साध्य है और जो एक दोषका होय वह साध्य है और द्विदोषज याप्य और त्रिदोषज तथा उपद्रवयुक्त होय तौ वातरक्त असाध्य है। यह क्षेक क्षेपक है माधवका नहीं है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाघवार्थबोधिनीमाथुरीभाषादीकार्या
वातरक्तनिदानं समाप्तम् ।

अथ ऊरुस्तंभनिदानम् ।



शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुह्यस्तिर्धैर्निषेविते: ॥ जीर्णजीर्णतपा-
याससंक्रोधस्त्रव्यजागरैः ॥ १ ॥ सश्वेषममेदःपवनः साममत्य-
र्थसंचितम् ॥ आभिभूयेतरं दोषमूलं चेत्प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
सवथ्यस्थीनि प्रपूर्यातिः श्वेषमणा स्तिमितेन च ॥ तदा स्त-
भ्नाति तेनोद्भुतव्यौ शीतावच्चेतनौ ॥ ३ ॥ परकीयाविव
गुरु रुद्र स्यातामतिभृशव्यथौ ॥ ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतंद्राच्छ-
र्व्यहचिज्वरैः ॥ ४ ॥ संयुतौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुस्तिभिः ॥
तमूरुस्तंभमित्याहुराठ्यवातमथापरे ॥ ५ ॥

भाषा—शीतल, गरम, पतले, शुष्क, भारी, चिकने ऐसे परस्पर विरुद्ध भोजनसे, जीर्ण, अजीर्ण, उसी प्रकार दंड कसरतके करनेसे, पित्तके क्षोभसे, दिनमें सोनेसे, रात्रिमें जागना इन कारणोंसे कफ भेदयुक्त अत्यन्त संचित भया आमयुक्त वात इतर दोषोंको अर्थात् पित्तको आच्छादित कर ऊरुमें आयकर प्राप्त होय और ऊरुके हार्दोंको आर्द्रकफसे परिपूर्ण करे तब उनके ऊरु स्तंभित हों (जैकल)

जांय) और शीतल तथा निर्जीव हो जांय और दूसरे पुरुषके ऊरुके समान उछोके चलना इस विषयमें असमर्थ होय और भारी, अत्यन्त पीड़ायुक्त होय, चिंता, अंगोंका तोड़ना, आद्रता, (गीला), तन्द्रा, बमन, अरुचि और ज्वरसहित मनुष्यके दैरों ऊरु जकड़ जांय, बड़े कष्टसे चले और शून्यता होय इस रोगको ऊरुस्तंभ ऐसा कहते हैं और कोई आद्यवात कहते हैं ॥

पूर्वरूप ।

**प्राग्नृपं तस्य निद्राऽतिध्यानं स्तिमितता ज्वरः ॥
लोमहृषोऽरुचिच्छदीर्जिघोवोः सदनं तथा ॥ ६ ॥**

भाषा-निद्रा बहुत आवे, अत्यन्त चिंता, मंदता, ज्वर, रोमांच, अरुचि, बमन, जंघा और ऊरु इनमें पीड़ा होय ये ऊरुस्तंभके पूर्वरूप होते हैं ॥

ऊरुस्तंभके लक्षण ।

**वातशङ्किभिरज्ञानात्स्य स्यात्सेहनात्पुनः ॥ पादयोः सदनं
सुतिः कूच्छादुद्धरणं तथा ॥ ७ ॥ जंघोरुज्ञानिरत्यर्थे
शथदानाहवेदना ॥ पदं च व्यथतेऽत्यर्थं शीतस्पर्शं न वेत्ति
च ॥ ८ ॥ संस्थाने पीडने गत्यां चालने चाप्यनीश्वरः ॥
अन्यस्थेव हि संभगा ऊरु पादौ च मन्यते ॥ ९ ॥**

भाषा-पैरोंका सोना संकोच होना इत्यादिक वातरोगके समान चिह्न मिलनेसे उस मनुष्यको वातरोगकी झँका होय । तब वह मनुष्य तैलादिक स्नेहन चिकित्सा करे तौ उसके दूना रोम बढ़े, पैरोंमें पीड़ा होय तथा पैर सोय जावें, बड़े कष्टसे पैर उठाया और धरा जाय, जंघा और ऊरु इनमें अधिक पीड़ा होय और निरंतर दाह तथा वेदना होय, पैरोंमें व्यथा होय, शीतल पदार्थका स्पर्श मालूम न हो तथा पैरके उठानेमें रगड़नेमें अथवा चलनेमें अथवा इलनेमें असमर्थ होय, पर और ऊरु टूटेसे तथा अन्य मनुष्यकेसे मालूम होय ये लक्षण ऊरुस्तंभके हैं । व्याधिके स्वभावसे यह ऊरुस्तंभ त्रिदोषका एकही है । वातादि भैरोंसे अनेक प्रकारका नहीं है ॥

असाध्यलक्षण ।

यदा दाहार्तिंतोदातो वेपनः पुरुषो भवेत् ॥

ऊरुस्तंभस्तदा हन्यात्साधयेदन्यथा नवम् ॥ १० ॥

भाषा-जिस समय पुरुष दाह, शूल और तोद (नोचनेकीसी पीड़ा) इनसे

पीडित होकर कंपयुक्त होय उस समय वह ऊरुत्तंभरोग उसका नाश करे है और ये लक्षण न होय और रोग नया होय तो यह साध्य है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तरामभायुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां
ऊरुत्तंभनिदानं समाप्तम् ।

अथामवातनिदानम् ।



विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्रीर्नश्चलस्य च ॥ स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं
व्यायामं कुर्वत्स्तथा ॥ १ ॥ वायुना प्रेरितो ह्यामः श्वेषमस्थानं
प्रधावति ॥ तेनात्यर्थं विद्ग्धोऽसौ धमनीः प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
वातपित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः ॥ स्रोतांस्यभिस्पूदय-
ति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः ॥ ३ ॥ युगपत्कुपितावेतो त्रिकसं-
धिप्रवेशकौ ॥ स्तंबधं च कुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते ॥४॥

भाषा—विरुद्ध आहार (क्षीर मत्स्यादि) और विरुद्ध विहार करनेवाले मनुष्यके मंदाग्रिवालेके, जो दंड कसरत न करे और चिकना अन्न खाकर दंड कसरत करनेवाले ऐसे पुरुषके आमवायुसे प्रेरित होकर कफके आमाशयादि स्थानके प्रति धायकर प्राप्त होय और उस कफसे अत्यन्त दूषित होकर वही आम धमनी नाडियोंमें प्राप्त होकर भीतर वह अन्नका रस (आम) वात और कफपित्तसे दूषित होकरके छिद्रोंमें भर जाय वह अनेक प्रकारके रंगका अतिगाढ़ा होता है । पीछे ये वात कफ एकही कालमें कुपित होकर त्रिकसंधियोंमें जाकर प्रवेश करें तब देह जकड़ीसी हो जाय, इस रोगको आमवात ऐसा कहते हैं ॥

आमवातके सामान्य लक्षण ।

अङ्गमदौऽरुचितृष्णा आलस्यं गौरवं ज्वरः ॥

अपाकः शून्यतांगानामामवातः स उच्यते ॥ ५ ॥

भाषा—बंगोंका टूटना, अरुचि, प्यास, आलक्स, मारीपना, ज्वर, अन्नका न पचना और देहमें शून्यता हो जाय, इस रोगको आमवात कहते हैं ॥

१ “ अविपक्तरस पृक्तं दुर्गंघ बहु पिच्छलम् । सरणं सर्वमात्राणामाम इत्यभिधीयते ॥
अविपक्तरसं केचित्केचित्तं मलसञ्चयम् । प्रथमं दोषदाण्डं वा केचिदामं प्रचक्षते ॥ ” इति ।

अब आमवात अत्यंत बढ़ गया होय उसके लक्षण कहते हैं ।

**स कष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत् ॥ इस्तपादशिरो-
गुल्फात्रिकज्ज्ञानूरुसंधिषु ॥ ६ ॥ करोति स रुजं शोथं यत्र दोषैः
प्रपद्यते ॥ स देशो रुजते इत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥ ७ ॥
जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकाहचिगौरवम् ॥ उत्साहानिवैर-
स्थं दाहं च बहुमूत्रताम् ॥ ८ ॥ कुक्षी कठिनतां शूलं तथा
निद्राविपर्ययम् ॥ तृद्व्यादिभ्रममूर्छाश्च हृद्रहं विद्विविधत्ताम्
॥ ९ ॥ जाडचांत्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥ १० ॥**

भाषा—यह आमवात जिस समय बढ़े उस समय सब रोगोंमें कष्टकर्ता होता है अर्थात् सब रोगोंसे बढ़कर कष्टदायक है । हाथ, पैर, मस्तक, घोंटा, त्रिक्ष्यान, जानु, जंघा इनकी सन्धियोंमें पीड़ायुक्त सूजन करे और जिस २ ठिकाने आम जाय उसी उसी ठिकाने वीक्ष्यके डंक मारनेकीसी पीड़ा करे । यह रोग मंदाग्नि, मुखसे पानीका गिरना, अरुचि, देह मारी, उत्साहका नाश, मुखमें विरसता, दाह, बहुत मूत्रका उत्तरना, कूखमें कठिनता, शूल, दिनमें निद्रा आवे, रातमें जागे, प्यास, वमन, भ्रम, मूर्छा, हृदयमें दुःख, मलका अवरोध, जडता, आंतोंका गूंजना अफरा तथा अत्यंत उपद्रव कहिये वातव्याधिमें कहे कलायखंजादिकोंको करे ॥

विशेष लक्षण ।

पित्तात्सदाहरागं च सशूलं पवनानुगम् ॥

स्तैमित्यं गुरु कंडू च कफजुष्टं तमादिशेत् ॥ ११ ॥

भाषा—पित्तसे जो आमवात होय उसमें दाह और लाल रंग होय है । वादीके आमवातमें शूल होय है । कफसम्बन्धी आमवातमें देहमें आर्द्रता (गीला) और मारीपना तथा खुजली चले हैं ॥

साध्यासाध्य विचार ।

एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ॥

सर्वदेहे चरः शोथः स कृच्छ्रः सात्रिपातिकः ॥ १२ ॥

भाषा—एक दोषका आमवातरोग साध्य है, दो दोषोंका याप्य है और सर्व देहमें विचरनेवाली सूजन अथवा त्रिदोषसे प्रगट आमवातरोग कष्टसाध्य जानना ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाशुरनिर्मितमाधवार्थोधिनीमाथुरीभाषाट्कायां
आमवातनिदानं समाप्तम् ।

अथ शूलनिदानम् ।

**दोषैः पृथक्समस्तामद्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् ॥
सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनं प्रभुः ॥ १ ॥**

भाषा—वात, पित्त, कफ इनसे तीन प्रकारका, एक सन्निपातसे, एक जामसे और तीन द्वंद्वज ऐसे सब मिलकर आठ प्रकारका शूलरोग है। इन सब शूलोंमें वादीका शूल प्रबल है। ज्वरके समान शूलरोगकी प्रथम उत्पत्ति हारीतर्में कही है सो इस प्रकार है। कामदेवके नाश करनेके अर्थं शिवने कोधकरके त्रिशूलको फेंका उस त्रिशूलको अपने सन्मुख आता हुआ देख कामदेव भयमीत होकर विष्णुभगवान्के देहमें प्रवेश कर गया। तदनंतर वह त्रिशूल विष्णुकी हुंकारसे मूर्च्छित होकर गिरा तो पृथ्वीमें शूल इस नामसे प्रसिद्ध भया। तबसे वह शूल पञ्चभूतात्मक देहधारी मनुष्योंको पीड़ा करने लगा। इस प्रकार इसकी उत्पत्ति है। शिवके त्रिशूलसे उत्पन्न भया तथा शूलके घावके समान पीड़ा करे हैं इसीसे इनको शूल ऐसा कहते हैं। वातशूलके कारण और लक्षण।

व्यायामयानादित्मैथुनाच्च प्रजागराच्छ्रीतजलातिपानात् ॥
कलायमुद्वाढकिकोद्गुदोषादत्यर्थसूक्ष्माध्यशनाभिवातात् ॥२॥
काषायातेकादिविष्वट्कान्नविश्वद्वस्त्रकशुष्कशाकात् ॥
विद्शुक्रमूत्रानिलवेगरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाषात् ॥३॥
वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पार्थपृष्ठत्रिकबस्तिदेशो ॥
जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोणं समुपैति गाढम् ॥ ४ ॥
सुहुमुहुश्चोपशमप्रकोपौ विष्मूत्रसंस्तं भनतोदभंदैः ॥
सस्वेदनाभ्यंजनसर्दनाद्यैः सिंघोषणभोज्यैश्च शमं प्रयाति ॥ ५ ॥

भाषा—दंड कसरत, बहुत चलना, अति मैथुन, अत्यत जागना, बहुत शीतल जल पीना, कांगनी, मुंगा, अरहर, कोदों, अत्यन्त रुखे पदार्थके सेवनसे और अध्यशन (मोजनके ऊपर भोजन), लङडी आदिके लगनेसे। कषेली कडवी, भीजा अन्न जिसमें अंकुर निक्स आये हों, विरुद्ध क्षीर मछली आदि, सूखा मांस, सूखा शाक

^१ “ अनंगताशापेहरविशूल मुमोच कोपान्मकरध्वनश्च । तमापत्तं सहसा निराक्ष्य भयादिंतो विष्णुततु प्रविष्टः ॥ स विष्णुहुंकारविमोहितात्मा पपात भूमौ प्रथितश्च शूलः । स पञ्चभूतानुगतः शरीर प्रदूषयत्यस्य हि पूर्वसृष्टिः ॥ ” इति ।

(कचरिया आदि) इनका सेवन करनेसे, मल, मूत्र, शुक्र और अधोवायु इनके बैगङ्को रोगनेसे, शोकसे, उपवास (व्रत) के करनेसे, अत्यन्त इंसनेसे, बहुत बौल-नेसे कोपको प्राप्त भया जो वात सो बढ़कर हृदय, पसवाडा, पीठ, त्रिक्लस्थान, मूत्र-स्थानमें शूलको करे और वह मोजन पचनेके पीछे प्रदोषकालमें, वर्षाकालमें, शीत-कालमें इन दिनोंमें शूल अत्यन्त कोप करे और वारंवार कोप होय, मलमूत्रका अवरोध, पीड़ा और भेद ये लक्षण वातशूलके हैं । तथा स्वेदन और अभ्यंजन तथा मर्दन इत्यादिकसे और चिकने गरम अन्से यह शूल शांत होता है ॥

पित्तशूलके कारण और लक्षण ।

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलित्थयूषैः ॥
कद्वम्लसौवीरसुराविकारैः क्रोधानलायासरविप्रतापैः ॥ ६ ॥
ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकुप्याशु करोति शूलम् ॥
तृण्मोदाहातिंकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छमशोषयुक्तम् ॥ ७ ॥
मध्यंदिने कुप्यति चार्धरात्रे विदाहकाले जलदात्यये च ॥
शीते तु शीतैः समुपैति शार्ति सुस्वादुशीतैरपि भोजनैश्च ॥ ८ ॥

माषा-यवक्षार आदि खार, मरिच आदि तीखी और गरम विदाहकारक बांस और करील आदि, तेल, सिंबी, खल, कुलथीके यूषसे कहुआ, खट्टा, सौवीर (मद्यविशेष), सुराविकार (कांजी इत्यादिक) से क्रोधसे, अभिके समीप रहनेसे, परिश्रमसे, सूर्यकी तीव्र धूपमें डोलनेसे, अतिमैथुन करनेसे, विदाहकारक अन्न आदि इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर नाभिस्थानमें शूल उत्पन्न करे । वह शूल वृषा, मोह, दाह, पीड़ा इनको करे और पसीना, मूर्च्छा, भ्रम, शोष इनको करे । दुपहरके समय, मध्यरा त्रिमें, अन्नके विदाहकालमें, शरतकालमें शूल अधिक होय । शीतकालमें, शीतल पदार्थसे और अत्यन्त मधुर (मीठा) शीतल अन्से यह शूल शांत होय ॥

कफशूलके कारण और लक्षण ।

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैर्मीसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुली-
भिः ॥ अन्यैर्बलास्तजनकैरपि हेतुभिश्च श्वेषमा प्रकोपमुपगम्य
करोति शूलम् ॥ ९ ॥ हृष्टासकाससदनाऽरुचिसंप्रसेकैरामाशये
स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः ॥ भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽति-
मात्रं सूर्योदये च शिशिरे कुसुमागमे च ॥ १० ॥

माषा-जलके समीप रहनेवाले पक्षियोंका मांस, मछली आदिका मांस, दही, घृत, मक्खन आदि दूधके विकार, मांस, ईखका रस, पीसा अच, तिल, पूरी, कचौड़ी आदि और कफकारक पदार्थ खानेसे कफ कुपित होकर आमाशयमें शूलगो-गको प्रगट करे । उसमें सखी रह, खांसी, ग्लानि, असुचि, मुखसे लार गिरे, बद्धकोष्ठता, मस्तक भारी हो ये लक्षण होय । भोजन करते समय पीड़ा होय । दूर्योदयके समय, शिशिरकल्पुमें शूल बहुत होय ॥

आमशूलके लक्षण ।

आटोपहल्ड्यासवमीगुरुत्वस्तैभित्यमानाहकफप्रसैकैः ॥

कफस्थ्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्रवं शूलमुदाहरन्ति ॥ ११ ॥

माषा-पेटमें गुडगुडाइट होय, उबकियोंका आना, रह, देह भारी, मंदता, जफरा, मुखसे कफका साव इन लक्षणोंसे तथा कफशूललक्षणोंके समान ऐसे शूलको आमशूल कहते हैं ॥

द्वंद्ज शूलोंके लक्षण ।

**वस्तौ हृत्कंठपार्श्वेषु स शूलः कफवातिकः ॥ कुक्षौ द्वन्नाभि-
पार्श्वेषु स शूलः कफपैतिकः ॥ १२ ॥ दाहज्वरकरो घोरो
विज्ञेयो वातपैतिकः ॥ एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो
द्विदोषजः ॥ सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ १३ ॥**

माषा-बस्ति (मूत्रस्थान), हृदय, कंठ, पसवाडे इन ठिकाने शूल होय वह कफवातिक जानना । कूख, हृदय, नाभि और पसवाडे इनमें कफपित्तका शूल होय है । दाह, ज्वर करनेवाला ऐसा भयंकर शूल होय वह वातपित्तका जानना । एक दोषका शूलरोग साध्य है, दो दोषोंका कृच्छ्रसाध्य और तीनों दोषोंका भयंकर और बहुत उपद्रवयुक्त होय वह शूल असाध्य जानना ॥

ग्रन्थांतरोक्त शूलके स्थान ।

**वातात्मकं बस्तिगतं वदंति पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम् ॥
हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसन्निविष्टं सर्वेषु देशेषु च सन्निपातात् ॥ १ ॥**

शूलके उपद्रव ।

वेदना च तृषा मूर्छा आनाहो गौरवारुची ॥

कासशासी च दिक्षा च शूलस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ २ ॥

परिणामशूलनिदान

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः सन्निहेतस्तथा ॥
कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्वली ॥ १४ ॥
भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् ॥
तस्य लक्षणमध्येतत्समासेनाभिधीयते ॥ १५ ॥

भाषा—अपने रौक्षादि कारणोंसे वायु कुपित होकर कफपित्तके समीप जाय उसको आवृत कर वली होकर शूलको उत्पन्न करे, आहार पचनके समय जो शूल होय उसको परिणामशूल कहते हैं । उसके लक्षण संक्षेपसे कहता हूँ ।

वातिक परिणामशूलके लक्षण ।

अध्मानाटोपविष्मूत्रनिर्धारतिवेपनैः ॥
त्रिग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्वदेश्चिष्क ॥ १६ ॥

भाषा—पेटका फूलना तथा पेटमें गुडगुड़चब्द, मलमूत्रका अवरोध, अरति (मनका न लगना), कंप ये लक्षण हों और चिकने, गरम पदार्थसे शांत होय ऐसे शूलको वातिक कहते हैं ॥

पैत्तिक परिणामशूलके लक्षण ।

तृष्णादाहारतिस्वेदकदम्लवणोत्तरम् ॥

शूलं शीतशमप्रायं पैत्तिकं लक्षयेद्बुधः ॥ १७ ॥

भाषा—प्यास, दाह, चित्तका न लगना, पसीना ये लक्षण होय । तीसा, खट्ट, नोनका ऐसे पदार्थ खानेसे बढ़नेवाला और शीतपदार्थके सेवनसे शांत होय ऐसा शूल पित्तका जानना ॥

शैषिक परिणामशूलके लक्षण ।

छर्दिंहृष्णाससंमोहं स्वल्पसुगदीर्घसंतातेः ॥

कटुतिकोपशांतं च तच्च ज्ञेयं कफात्मकम् ॥ १८ ॥

भाषा—वमन, अफरा और संमोह (इन्द्रिय और मनको मोह) ये लक्षण जिसमें बहुत होय, पीड़ा थोड़ी होय, शूल बहुत दिन रहे, कड़वे और तीखे पदार्थसे शांत होय उस शूलको कफात्मक जानना ॥

द्विदोषज और त्रिदोषजके लक्षण ।

संसृष्टलक्षणं यच्च द्विदोषं परिकल्पयेत् ॥

त्रिदोषजमसाध्यं तु क्षीणमांसवलानलम् ॥ १९ ॥

भाषा—जिसमें दो दोषोंके लक्षण मिले हों उसको द्वंद्व कहते हैं और तीन दोषोंके लक्षणोंसे त्रिदोषज जानना । मांस, बल और आयु ये जिसके क्षीण हो गये हों ऐसा शूलरोग असाध्य जानना ॥

अन्नके उपद्रवसे प्रगट शूलके लक्षण ।

जोर्णे जीर्यत्यजीर्णे वा यच्छूलमुपजायते ॥ पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन च ॥ न शुमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ २० ॥

भाषा—अन्न पच गया होय अथवा पच रहा हो अथवा अजीर्ण हो अर्थात् सर्वदा शूल प्रगट होय वह पथ्यापथ्यके योगसे अथवा भोजन करनेसे किंवा न भोजन करनेसे नियमसे शांत नहीं होय उसको अन्नद्रवशूल कहते हैं । यह शूल त्रिदोष विकृतिसे एक प्रकारका है परन्तु असाध्य नहीं है । क्योंकि इसकी चिकित्सा कही है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषादीकार्या
शूलनिदानं समाप्तम् ।

अथोदावर्तनिदानम् ।

उदावर्तके लक्षण ।

वातविष्मूत्रजृभास्वक्षवोद्धारवर्मीद्रियैः ॥

शुकृष्णोच्छासनिद्राणां धृत्योदावर्तसंभवः ॥ १ ॥

भाषा—अधोवायु, विषा, मूत्र, जंभाई, अश्वपात, छोंक, डकार, वमन, शुक्र, भूख, प्यास, श्वास और निद्रा इन तेरह वेगोंके रोकनेसे उदावर्तरोग उत्पन्न होता है । तेरहका नियम करनेका यह प्रयोजन है कि क्रोध, लोभ, मन इत्यादि वेगोंके धारण करनेसे रोग उत्पन्न नहीं होय । क्योंकि इनके रोकनेमें तौ स्वस्थता प्राप्त होती है । सब उदावर्तोंमें मुख्य कारण वायु है । उदावर्तकी निहत्ति इस प्रकार है । “ उद्धूतेरह वेगविधारणेन आवृत्तस्य वायोरावर्तनमुदावर्तः । ” ॥

तेरह उदावर्तोंके लक्षण क्रमसे कहते हैं ।

वातमूत्रपुरीषाणां संगाध्मानं कुमो रुजः ॥

जठरे वातजात्यान्ये रोमाः स्युर्वातनियहात् ॥ २ ॥

भाषा—अधोवायुके रोकनेसे अधोवायु, मल, मूत्र ये बन्द हो, जांय, टोट फूल

जावे, अनायास श्रम और पेटमें बादीसे पीड़ा होय तथा और बातकृत (तोद शूलादि) पीड़ा होय ॥

आटोपशूलौ परिकर्तिका च संगः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः ॥

पुरीषमास्यादथ वा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ३ ॥

भाषा—मलका वेग रोकनेसे पेटमें गुडगुडाहट होय, शूल होय, गुदमें कतरनेकीसी पीड़ा होय, मल उतरे नहीं, डकार आवे अथवा मल मुखके द्वारा निकले ॥

बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा ॥

विनामो वंक्षणानादः स्थाँल्गं मूत्रनियहे ॥ ४ ॥

भाषा—मूत्रका वेग रोकनेसे बस्ति (मूत्राशय) और शिश्र इन्द्रिय इनमें पीड़ा होय, मूत्र कष्टसे उतरे, मस्तककी पीड़ासे शरीर सीधा होय नहीं, पेटमें अफरा होय ॥

मन्यागलस्तंभशिरोविकारा जूंभोपरोधात्पवनात्मकाः स्युः ॥

तथाक्षिनासावद्नामयाश्च भवांति तीव्राः सह कर्णरोगैः ॥ ५ ॥

भाषा—आती हुई जंभाईके रोकनेसे मन्या कहिये नाड़के पीछेकी नस और गला इनका और बातजन्य विकार मस्तकमें होय, उसी प्रकार नेत्ररोग, नासारोग, मुखरोग और कर्णरोग ये तीव्र होते हैं ॥

आनन्दजं वाप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्रात्ममुच्चतो हि ॥

शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवांति तीव्राः सह पीनसेन ॥ ६ ॥

भाषा—आनन्दसे अथवा शोकसे प्रगट अशुपातोंको जो मनुष्य नहीं त्याग करे उसके इतने रोग प्रगट होंय । मस्तक भारी रहे नेत्ररोग और पीनस ये प्रबल हों ॥

मन्यास्तंभशिरःशूलमर्दितार्धावभेदकौ ॥

इन्द्रियाणां च दौर्बल्यं क्षवयोः स्याद्विधारणात् ॥ ७ ॥

भाषा—मन्या कहिये नाड़के पिछाईकी नस उसका स्तंभ कहिये जकड जाना शिरमें शूलका चलना, आधा मुख टेढ़ा हो जाय, अर्धांगवात और सब इन्द्रिये दुर्बल हो जाय इतने रोग आती हुई छींकके रोकनेसे होते हैं ॥

कंठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथ वाऽप्रवृत्तिः ॥

उद्गारवेगेऽभिहते भवांति धोरा विकाराः पवनप्रसूताः ॥ ८ ॥

भाषा—आती हुई डकारके वेगको रोकनेसे वातजन्य इतने रोग होते हैं । कंठ और मुख भारीसा मालूम हो, अत्यंत नोचनेकीसी पीड़ा होय, अव्यक्तभाषण अर्थात् जो समझमें न आवे ॥

अधोवायुकी अप्रवृत्ति ।

कंडुकोठारुचिव्यंगो शोफपांद्वामयज्वराः ॥

कुष्टहृल्लासवीसपीश्छर्दिनियहजा गदाः ॥ ९ ॥

भाषा—जो मनुष्य आती हुई वमनके वेगको रोके उसके अंगमें खुजली चले, देहमें चकत्ता हो जाय, अरुचि, मुखपर झाँईसी पड़े, सूजन, पाढ़ोरोग, ज्वर, कुष्ट, खाली रद, विसर्परोग ये होय ॥

मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथोरुजा मूत्रविनियहश्च ॥

शुक्राश्मरी तत्क्षवणं भवेच्च ते ते विकाराभिहृते च शुक्रे ॥ १० ॥

भाषा—भैथुन करते समय वार्य निकलतेको जो मनुष्य रोके अथवा और प्रकारने शुक्रके वेगको रोके उसके मूत्राशयमें सूजन होय तथा गुदामें और अंडकोशामें पीड़ा होय, मूत्र बड़े कष्टसे उतरे, शुक्राश्मरी जो पथरीके निदानमें आगे कहेगे सा होय, शुक्रका स्नाव होय ऐसे अनक प्रकारके रोग होय ॥

तंद्रांगमर्दीवरुचिः श्रमश्च क्षुधाभिघातात्कृशता च दृष्टेः ॥

भाषा—भूखके रोकनेसे तन्द्रा, अंगोंका ठूटना, अरुचि, श्रम और दृष्टिका मन्द होना ये रोग प्रगट होय । चकारसे कृशता और दुर्बलता होय ये अन्य ग्रन्थसे जानने ॥

कंठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तृष्णाभिघाताद्वद्यव्यथा वै ॥ ११ ॥

भाषा—प्यासके रोकनेसे कंठ और मुखका सूखना, कानोंसे मन्द सुनना और हृदयमें पीड़ा ये लक्षण होय ॥

श्रांतस्य निःश्वासविनियहेण हृद्रोगमोहावथ वापि गुल्मः ॥

भाषा—जो मनुष्य हार गया हो और वह श्वासको रोके उसके हृदयरोग, मोह और बायगोला इतने रोग होय ॥

जृंभांगमर्दीक्षिशिरोडतिजाद्यं निद्राभिघातादथ वापि तंद्रा ॥ १२ ॥

भाषा—आती हुई निद्राके रोकनेसे, जंभाई, अंगोंका ठूटना, नेत्र और मस्तककी अत्यंत जडता होना और तन्द्रा होय ॥

अब कहते हैं कि वेग रोकनेसे प्रगट रोगोंको कहकर अब रुक्षादि कारणोसे कुपितवायुसे उत्पन्न होनेवाले उदावर्तरोगोंको कहते हैं ।

वायुः कोष्ठानुगो रुक्षकषायकटुतिक्लैः ॥ भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्त्ते करोति च ॥ १३ ॥ वातमूत्रपुरीषाशुकफंदोव-द्वानि वै ॥ स्नोत्तांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्त्येत् ॥ १४ ॥ ततो हृद्वस्तिशूलात्तो हृल्लासारतिपीडितः ॥ वातमूत्रपुरी-पाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ १५ ॥ श्वासकासप्रतिश्यायदा-हमोहृतृष्णाज्वरान् ॥ वमिहिकाशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ॥ १६ ॥ बहूनन्यांश्च लभते विकारान्वातकोपजान् ॥ १७ ॥

भाषा-रुखा, कषेला, तीखा और कहुआ ऐसे भोजन करनसे कोष्ठगत वायु, मल, सूत्र, अशुपात, कफ और मेद इनके बहनेवाली नाड़ियोंके मार्गको रोक दे और मलको सुखाय दे तब रोगी हृदय मूत्रस्थानमें शूलके होनेसे वे रुल हो, सूखी रह, अस्वस्थपना इनसे पीडित होय, मल मूत्र और वात ये कषेसे उतरें और श्वास खांसी, पीनस, दाह, मोह, प्यास, ज्वर, वमन, हिचकी, मस्तकरोग, मनकी भ्रांति, सन्द सुने तथा वातकोपसे औरभी बहुतसे विकार होय ॥

आनाहरोगनिदान ।

**आमं शकुद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन ॥
प्रवर्त्मानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरंति ॥ १ ॥
तस्मिन्भवत्यामसमुद्देवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः ॥
आमाशये शूलमथो गुहृत्वं हृत्संभ उद्रारविघातनं च ॥ २ ॥
स्तंभः कटिपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलेऽथ मूच्छी शकुतश्च छर्दिः ॥
श्वासश्च पक्षाशयजे भवति तथाऽलसोक्तानि च लक्षणानि ॥ ३ ॥**

भाषा-आम अथवा पुरीष क्रमसे संचित हो विगुण वायुसे वारंवार विबद्ध होकर अपने मार्गसे अच्छी रीतिसे प्रवृत्त नहीं होय इस विकारको आनाह कहते हैं । आमसे प्रगट आनाहरोगसे प्यास, पीनस, मस्तकमें दाह, आमाशयमें शूल, देहमें भारीपना, हृदयका जकड जाना, शूल, मूच्छी, डकार, कमर, पीठ, मल, मूत्र इनका रुक्तना, शूल, मूच्छी और विष्ट्र मिली हुई रह और श्वास यं लक्षण होय । पक्षाशयमें आनाहरोग होनेसे आलसरोगोक्त लक्षण (आधपान वातरोधादिक) होते हैं ॥

असाध्य लक्षण ।

तृष्णार्दितं परिक्षिष्टं क्षीणं शूलैरुपद्गुतम् ॥

शकृद्वयं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ ४ ॥

भाषा—प्याससे पीडित, छेश्युक्त, क्षीण, शूलसे पीडित और मलकी रह करने वाला ऐसे उदावर्त रोगीको वैद्य त्याग दे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्भितमाधवभावार्थबोधिनीमाथुरीभाषादीकार्या
उदावर्तनिदान समाप्तम् ।

अथ गुल्मनिदानम् ।

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः ॥

कुर्वन्तं पञ्चधा गुल्मं कोष्ठातर्याथिरूपिणम् ॥

तस्य पांचविधं स्थानं पार्श्वहन्त्राभिवस्तयः ॥ १ ॥

भाषा—मिथ्या आहार और मिथ्या विहार करनेसे अत्यन्त दुष्ट भये वातादि दोष कोष्ठ (पेट) में ग्रन्थिरूप (गांठ) पांच प्रकारका गुल्मरोग उत्पन्न करते हैं । उस गुल्मरोगके पांच स्थान हैं । दोनों पसवाड़ि, हृदय, नाभि और बस्ति ॥

गुल्मके सामान्यरूप ।

हन्त्राभ्योरन्तरे ग्रन्थिः संचारी यदि वाऽचलः ॥

वृत्तश्चयोपचयवान्स गुल्म इति कीर्तिः ॥ २ ॥

भाषा—हृदय और नाभि तथा बस्ति (मृत्रस्थान) इनमें चलायमान अथवा निश्चल गोला कभी घटे, कभी बढ़े ऐसी ग्रन्थि (गांठ) होय उसको गुल्म (गोलेका रोग) कहते हैं । इस क्षोकमें नाभिशब्दसे वस्तिका ग्रहण करा है ॥

सम्प्राप्ति ।

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रौतैः ॥

पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥ ३ ॥

भाषा—कृपित ये दोषोंसे पृथक् २ और सब दोष मिलकर एक ये चार प्रकारके गुल्म पुरुषोंके होते हैं और बियोंके रक्त (रज) के दोषसे एक प्रकारका गुल्म होता है । परंतु प्रथम जो लिख आये हैं कि गुल्मरोग पांच प्रकारका है

सो इसका निश्चय नहीं है, क्योंकि रक्तगुलम स्थिरोंके होय है पुरुषोंके नहीं होय । धातुरूप रक्तज गुलम जो है सो खी पुरुष दानोंके होय है । यह क्षीरपाणिका मत है । पांच प्रकारका गुलम है इसपर बहुत शास्त्रार्थ और मत मतांतर हैं । जिनको देखनेकी इच्छा हो सो मधुकोश और आतंकदर्पण टीकामें देख लेवे ॥

पूर्वरूप ।

उद्गारबाहुल्यपुरीषवंधतृस्यक्षमत्वांत्रिनिकूजनानि ॥

आटोपमाधमानमपत्किशात्किरासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ४ ॥

माषा—डकार बहुत आवे, मलका अवरोध होय, अन्नमें अरुचि होय, सामर्थ्यका नाश होना, आंत बोले, पेटमें पीड़ा होय और अफरा होय तथा पेटका जकड़ जाना, मंदाग्नि होना ये लक्षण होय तो जानना कि गुलम (गोला) रोग जीव्र मगट होना चाहता है ॥

गुल्मके साधारण लक्षण ।

असूचिः कृच्छ्रविष्यूत्रं वातेनांत्रविकूजनम् ॥

आनाहश्चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्ष्येत् ॥ ५ ॥

माषा—असूचि, मल मूत्र कष्टसे उतरे, वादीसे आंत बोले, पेट फूल आवे, ऊर्ध्ववात होय ये लक्षण सब गुल्मोंमें होते हैं । सब गुल्मरोगोंमें वात कारण है सो चौक और सुश्रुतमें लिखा है ॥

वातगुल्मके कारण और लक्षण ।

रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनियहश्च ॥

शोकाभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुलमहेतुः ॥ ६ ॥

यः स्थानसंस्थानरुजा विकल्पं विद्वातसङ्गं गलवक्षशोषम् ॥

इयावाहणत्वं शिशिरञ्ज्वरं च हृत्कुक्षिपाश्वीसशिरोरुजं च ॥ ७ ॥

करोति जीर्णेऽप्यधिकं च कोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति पश्चात् ॥

वातात्स गुल्मो न च तत्र रूक्षं कषायतिकं कटु चोपशेते ॥ ८ ॥

माषा—रसा, विषम और आतिमात्र ऐसे अन्नपान सेवन करनेसे, बलवान् पुरुषसे छडना, मल मूत्र आदि वेगोंके धारण करनेसे, शोक और आभिघात (लकड़ी

१ “ गुल्मनामनिलशातिरूपायैः सर्वशो विविवदाचरणीया । मारुतेऽत्र विजितेऽन्यमुदीर्जदोषमल्पमपि कर्म निहन्यात् ॥ ”

२ “ कुपिताऽनिलमूलरसात्सचितत्वान्मलस्य च । तुल्यवद्वा विशाळत्वात् गुल्म इत्यमिधीयते ॥ ” इति ।

आदिकी चोट), विरेचन आदिसे, मलका क्षय करना; उपवास ये सब वातगुल्मके कारण हैं । जो गुल्म कभी नाभि, कभी वस्ति, कभी पसवाड़ेमें चला जाय तथा कभी लंबा, कभी मोटा, गोल अथवा छोटा होय तथा उसमें पीड़ा कभी थोड़ी कभी बहुत होय, तोदमेद (झुर्द चुभानेकीसी पीड़ा) होय अथवा अनेक प्रकारकी पीड़ा होय, मलकी और अधोवायुकी अच्छी रीतिसे प्रवृत्ति होय नहीं, गला और मुख सूखे, शरीरका वर्ण नीला अथवा लाल होय, शीतज्वर, हृदय, कूख, पसवाड़े, कंधा और मस्तक इनमें पीड़ा होय और गोला जीर्ण होनेपर अधिक कोप करे और भोजन करनेके पिछाड़ी नरम हो जाय, वह गोला वादीसे प्रगट होता है । उसमें रुखा, कषेला, कहुवा, तीखा पदार्थ खानेसे सुख नहीं होय ॥

पित्तगुल्मके कारण ।

कट्टम्लतीक्ष्णोष्णविदाहि रुक्षं क्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा ॥

आमाभिघातो रुधिरं च दुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुल्म् ॥९॥

ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः शूलं महजीर्णति भोजने च ॥

स्वेदोविदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शास्थहः पैत्तिकगुल्मरूपम् ॥१०॥

भाषा-कटु, सद्गु, तीक्ष्ण रस, दाहकारक (वंश करीलादिक), रुखा ऐसा भोजन करनेसे, क्रोधसे, अति मद्यपान, सूर्यकी धूपमें डोलनेसे, अग्निके समीप रहनेसे, विद्युत अजीर्णसे दुष्ट भया रस उससे, अभिघात कहिये लकड़ी आदि लगनेसे, रुधिरका बिगडना ये पित्तगुल्मके कारण कहे हैं । ज्वर, प्यास, मुख और अंगोंमें लालपना, अन्न पचनेके समय अत्यन्त शूल होय, पसीना आवे जलन होय, कोडेके समान स्पर्श सहा न जाय ये पित्तगुल्मके लक्षण हैं ॥

कफके और सन्निपातके गुल्मके कारण और लक्षण ।

शीतं गुरु मिग्धमचेष्टनं च संपूरणं प्रस्वपनं दिवा च ॥

गुल्मस्य हेतुः कफसंभवस्य सर्वस्तु दुष्टो निचयात्मकस्य ॥११॥

स्तैमित्यशीतज्वरग्रात्रसादहृष्टासकासारुचिगौरवाणि ॥

शैत्यं रुग्लपा कठिनोन्नतत्वं गुल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य ॥१२॥

भाषा-शीतल, मारी, चिकने ऐसे पदार्थके सेवनसे, तृप्तिकी अपेक्षा अधिक भोजन करना, दिनमें सोना यह कफोत्पन्न गुल्म होनेका कारण है और जो वात-जादि तीनों गुल्मोंके कारण कहे हैं, वे सब सन्निपातगुल्मके कारण जानने । देहका गीलापना, शीतज्वर, शरीरकी गलानि, सूखी रद (उबाकी), खांसी,

अरुचि, भारीपना, शीतका लगना, योड़ी पीड़ा होय, गुलम (गोला) कठिन होय और ऊंचा होय इतने ये सब कफात्मक गुलमके लक्षण हैं ॥

द्वंद्ज गुलमके लक्षण ।

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्य गुलमे संसर्गजे दोषबलावलं च ॥

व्यामिश्रलिङ्गानपरांश्च गुलमांश्चिनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥१३॥

भाषा—द्वंद्ज गुलममें कारण, लक्षण और दोषोंका बलावल जानकर चिकित्सा करनेके वास्ते मिश्रलक्षणके और तीन गुलम समझने चाहिये अर्थात् एक दोष बलवान् होय तौं चिकित्सा करनी चाहिये और द्विदोष बलवान् वा त्रिदोष बलवान् होय तौं चिकित्सा न करे ॥

सन्निपातगुलमके लक्षण ।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्वनोन्नतं शीघ्रविदाहदारुणम् ॥

मनःशरीराभिवलापहारिणं त्रिदोषजं गुलममसाध्यमादिशेत् ॥१४॥

भाषा—भारी पीड़ा करनेवाला, दाहकरके व्याप्ति, पत्थरके समान कठिन तथा ऊंचा और शीघ्र दाहकरके भयंकर, मन, शरीर, अग्नि और बल इनका नाश करनेवाला अर्थात् मनको विकस करनेवाला, शरीरको कृश करनेवाला और विवर्ण करनेवाला, अग्निवैषम्यादिकारक, असामर्थ्य करनेवाला ऐसा त्रिदोषज गुलम असाध्य जानना ॥

रक्तगुलमके लक्षण ।

नवप्रसूताऽहितभोजनाया या चामगर्भे विसृजेहतौ वा ॥

वायुहिं तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुलमं सरुजं सदाहम् ॥१५॥

पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं विशेषणं चाप्यवरं निवोध ॥

यः स्पंदते पिंडित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः ॥

सरोधिरः स्त्रीभव एव गुलमो मासि व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ॥१६॥

भाषा—नई प्रसूत मर्ह खीके अपश्य सेवन करनेसे अथवा अपक गर्भपात होनेसे अथवा ऋतुकालके समय अपश्य भोजन करनेसे वायु कुपित होकर उस खीके रुधिर (जो ऋतुसमय निकले उस) को लेकर गुलम करे वह गुलम पीड़ायुक्त व दाहयुक्त होता है । और पित्तगुलमके जो लक्षण कहे हैं वे सब इसमें होय और इसमें दूसरे विशेष लक्षण होते हैं उनको कहता हूँ सुनो । यह गुलम बहुत देखमें गोल गोल हिले, अवयव कहिये हाथ पैरके साथ नहीं हिले, शूलयुक्त होय, गर्भके

समान सब लक्षण मिले अर्थात् मुखसे पानी छूटे, मुख पीला पड़ जाय, स्तनका अग्रभाग काला हो जाय और दोहदादि लक्षण सब मिले ये सब लक्षण व्याधिके प्रभावसे होते हैं । जैसे क्षयी रोगवालेको खीरमणकी इच्छा और काले नख ताल्वादिक होते हैं । यह रक्तज गुलम खियोंके होता है । दश महीना व्यतीत हो जाय तब इस रक्तगुलमकी चिकित्सा करनी चाहिये । कोई कहते हैं कि यह गर्भ है अथवा रक्तगुलम है यह शंका जानकर माधवाचार्यने दश महीना व्यतीत होनेपर ऐसा कहा है । कारण इसका यह है कि नवम और दशम महीना यह प्रसूत होनेका समय है । शंका—क्योंजी ! “ यः स्पदंते पिंडित एव नांगैः ” इत्यादिक विशेषणोंसे स्पष्ट प्रतीत होता है । क्योंकि गर्भ तो निरंतर प्रत्येक अवयवके साथ शूलरहित फड़कता है और रक्तगुलमके इससे विपरीत लक्षण हैं । फिर दश महीना व्यतीत होनेपर चिकित्सा करना चाहिये ऐसा क्यों कहा ? उत्तर—इसका कारण इस प्रकार है कि इस रोगमें जब तो दश महीना व्यतीत हो जाय तब चिकित्सा करे तो सुखसाध्य होता है । कुछ प्रसवके नियमसे नहीं कहा । क्योंकि प्रसव ग्यारह बारह महीनोंमेंमी होता है सो चरकमेंमी लिखा है । “ तं स्त्री प्रसूते सुचिरेण गर्भ स्पष्टो यदा वर्षगणैरपि स्यात् । ” जैसे जीर्णज्वर होनेपर दूध पीना और दस्तका लेना हितकारक होता है । इसीसे ग्रन्थान्तरोंमेंमी लिखा है । ‘ रक्तगुलमे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् । ’ इस रक्तगुलमको दस महीना व्यतीत होनेपर पुरानापना होय है और जय्यटनेमी कहा है कि दश महीनोंके पहिले मर्दनादि क्रिया करनेसे गर्भाशयको विकार होता है । क्योंकि रुधिर उस ठिकानेपर जमा होय है और ग्यारहवें महीनेमें गुलमका गोला बहुत अच्छा जम जाता है इसीसे ग्यारहवें महीनेमें स्नेहादिकक्तरके सब झरीर सूहु (नरम) करनेसे भेदनक्रिया करे तो गर्भाशय भले प्रकार अच्छा रहे । अब कहते हैं कि बहुत दिनका गुलमरोग ऐसी अवस्था होनेपर असाध्य हो जाय है उसको कहते हैं ॥

**सञ्चितः क्रमशो गुलमो महावास्तुपरिग्रहः ॥ कृतमूलः शिरानद्वो
यदा कूर्म इवोन्नतः ॥ १७ ॥ दौर्बल्यारुचिहृष्टासकासच्छर्द्य-
रतिज्वरैः ॥ तृष्णातंद्राप्रतिइयायैर्युज्यते न स सिद्ध्यति ॥ १८ ॥**

माषा—क्रमक्रमसे बढ़ा गुलम जब सब उदर (पेट) में फैल जाय और धातुओंमें उसका मूळ जाय पहुँचे तथा उसपर नाहियोंका जाल लिपट जाय और कल्कुएकी पीठके समान गुलम ऊँचा होय तब इस रोगीके निःसत्त्वपना, अरुचि, सूखी रद, खांसी, वमन, अरति और ज्वर तथा प्यास, तन्द्रा और पीनस ये होय ऐसा रोगी असाध्य है ॥

असाध्य लक्षण ।

मृहित्वा सज्वरः श्वासश्छर्द्यतीसारपीडिते ॥ हृत्राभिहस्त-
पादेषु शोथः क्षिपति गुल्मनाम् ॥ १९ ॥ श्वासः शूलं पि-
पासान्नविद्वेषो ग्रन्थिमूढता ॥ जायते दुर्बलत्वं च गुल्मनां
मरणाय वै ॥ २० ॥

भाषा—बमन और अतिसार इनसे पीडित ऐसा गुल्मरोगीका हृदय, नाभि, हाथ, पैर इन ठिकाने सूजन होय और ज्वर, दमा जिसके होय ऐसे लक्षण होनेसे रोगी बचे नहीं । श्वास, शूल, प्यास, अन्नमें अरुचि और गुल्मकी गांठका एकाएकी नष्टता हो जाना और दुर्बलता ये लक्षण होनेसे जानना कि गुल्मरोगवालेकी मृत्यु समीप है । शंका—श्वोजी ! अंतर्विद्रधि और गुल्मरोग इनमें क्या भेद है ? इन दोनोंके स्थान और स्वरूप तो एकसे हैं । किर मेद क्या है ? उत्तर—तुमने कहा सो ठीक है अंतर्विद्रधि पचता है और गुल्म नहीं पचे है । इसका कारण यह है कि गुल्म तौं निराश्रय है सुश्रुतने कहामी है ॥

न निबंधोऽस्ति गुल्मस्य विद्रधिः सनिवंधनः ॥
गुल्मस्तिष्ठति दोषे स्वे विद्रधिमांसशोणिते ॥
विद्रधिः पच्यते तस्माद् गुल्मश्चापि न पच्यते ॥ २१ ॥

भाषा—गुल्मका निर्बंध नहीं है और विद्रधिका निर्बंध है । गुल्म अपने दोषोंमें रहता है और विद्रधिका ठिकाना मांसस्रधिरमें है, इसीसे विद्रधिका पाक होता है और गुल्मका पाक नहीं होय । गुल्म मुट्ठीके समान बड़ा है और विद्रधि इससे कुछ ज्यादा बड़ा होता है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाशुरनिर्भत्तमाधवाथयोगिनीमाशुरीभाषार्दीकार्या
गुल्मनिदान समाप्तम् ।

अथ हृद्गेनिदानम् ।



अत्युष्णगुर्वल्मकषायतिक्तैः श्रमाभिघाताध्ययनप्रसंगैः ॥
संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पंचविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

भाषा—अतिगरम, अतिमारी, अतिखटा, अतिकैला, अतिकहुवा ऐसे पदार्थ सेवन करनेसे, श्रम (धनुष आदिका सैंचना,), अभिघात (हृदयमें चोट लगना)

और भोजनके ऊपर भोजन नित्य करनेसे, संचितन (राजा के भयसे चिंता), मछ
मूत्र व्यादि वेगोंके रोकनेसे, वातादिकके क्षय और सन्निपातकरके तथा कृमिसे हृद-
यका रोग होय है वह पांच प्रकारका है ॥

उसकी संप्राप्ति और सामान्य लक्षण ।

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ॥

हृदि वाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥

भाषा—कुपित भये दोष रसको (हृदयमें जो रहता है) दुष्ट करके हृदयमें अनेक प्रकारकी पीड़ा करे उसको हृदयरोग कहते हैं ॥

वातहृद्रोगके लक्षण ।

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा ॥

निर्मथयते दीर्घते च स्फोट्यते पात्यतेऽपि च ॥ ३ ॥

भाषा—वातज हृदयरोगमें हृदय ईचासरीखा, सुईसे चोटनेसरीखा, फोरनेसरीखा दो टुकड़ा करनेके समान, मथनेके समान, कुलहाड़ीसे फारनेके समान पीड़ा करे है ॥

पित्तके हृद्रोगके लक्षण ।

तृष्णोष्णदाहशोहाः स्युः पैत्तिके हृदयकुमः ॥

धूमायनं च सूच्छ्वा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥ ४ ॥

भाषा—पित्तके हृदयरोगमें प्यास, किंचित् दाह, मोह और हृदयकी ग्लानि, धूंआ निकलतासा भालूम हो, सूच्छ्वा, पसीना और मुखका सूखना ये लक्षण होते हैं ॥

कफके हृदयरोगके लक्षण ।

गौरवं कफसंश्वावोऽरुचिः स्तंभोऽग्निमार्दवम् ॥

माधुर्यमपि चास्यस्य बलासा वर्तते हृदि ॥ ५ ॥

भाषा—कफसे हृदय व्याप्त होनेसे भारीपना, कफका गिरना, अरुचि, हृदय जकड़ जाय, मन्दाश्च, मुखमें मिठास ये लक्षण होते हैं ॥

त्रिदोषजके लक्षण ।

विद्यात्विदोषे त्वपि सर्वलिङ्गम्—

भाषा—जिसमें सब लक्षण मिलते होंय वह त्रिदोषका हृद्रोग जानना । इसमें

कुछभी अपथ्य होनेसे गांठ उत्पन्न होती है । उस गांठसे कृमि पैदा होते हैं ऐसा चरकमें कहा है ॥

कृमिज हृद्रोगके लक्षण ।

**तीव्रातितोदं कृमिजं सकण्डु ॥ उत्क्लेदः ष्टीवनं तोदः शूलं हृष्टा-
सकस्तमः ॥ अरुचिः इयावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ ६ ॥**

भाषा—तीव्र पीडाकरके तथा नोचनेकीसी पीडाकरके तथा खुजली करके युक्त ऐसा हृद्रोग कृमिजन्य जानना । उत्क्लेद (ओकारी आनेके समान मालूम हो), थूकना, तोद (सुर्जुभानेकीसी पीडा), शूल, हृष्टास, बंधेरा आवे, अरुचि, नेत्र काले पड़ जांय और मुखशोष ये लक्षण कृमिज हृदयरोगमें होते हैं । जट्य-टका यह मत है कि उत्क्लेदसे लेकर तमपर्यंत त्रिदोषके लक्षण कहे हैं । जैसे तोद शूल ये बादीसे होंय । उत्क्लेद, हृष्टास और ष्टीवन ये कफसे और तम ये पित्तसे लक्षण होते हैं । और अरुचिसे लेकर शोषपर्यन्त कृमिज हृद्रोगके लक्षण जानने । इस विषयमें प्रत्येक आचार्योंके भिन्न भिन्न मत हैं ॥

सर्वोक्ते उपद्रव ।

झोम्नः सादो भ्रमः शोषो द्वेयास्तेषामुपद्रवाः ॥

कृमिजे कृमिजातीनां श्लैष्मिकाणां च ये मताः ॥ ७ ॥

भाषा—झोम कहिये पिपासा (प्यास) स्थान उसमे ग्लानि होय, भ्रम, शोष ये सब हृद्रोगोंके उपद्रव जानने । और कफकी कृमिरोगके जो उपद्रव पिछाड़ी कह आये हैं वे कृमिज हृद्रोगके लक्षण होते हैं । तथा “ हृष्टासमास्यस्त्रवणमविपा- कमरोचकम् । ” इत्यादि ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाशुरप्रणीतमाघवार्थबोधिनीमाशुरीभाषादीकार्या
हृद्रोगनिदान समाप्तम् ।

अथ मूत्रकृच्छ्रनिदानम् ।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूपक्षमव्यप्रसंगनित्यद्रुतपृष्ठयानात् ॥

आनूपमत्साध्यशनादजीर्णात्स्युमूर्त्रकृच्छ्राणि नृणामिहाष्टौ ॥ ९ ॥

भाषा—व्यायाम (दंड कसरत आदि), तीक्ष्णौषध (राई आदि), रुत्वा

१ “त्रिदोषजे तु हृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते । तिलक्षीरगुडादीश्च ग्रथिस्तस्योपजायते ॥ मर्मैकदेशो सक्लेद् रसश्चाप्युपगच्छति । सक्लेदात्कृमयश्चास्य भवस्युपहतात्मनः ॥ ” इति ॥

पदार्थ और नित्यग्रति मध्यपान करना, निरंतर घोड़ेपर चढ़नेसे और जलसमीप रहनेवाले पक्षी (हंस, सारस, चकवा आदि) का मांस खानेसे और मछली, मोजनके ऊपर भोजन करनेसे और कच्चे पदार्थ इत्यादिकोंके खानेसे मनुष्योंके आठ प्रकारका मूत्रकृच्छ्ररोग होता है । पृथक् दोषोंसे ३, सन्निपातसे १, चोट लगनेका १, मल रोकनेका १, वीर्य रोकनेका १ और पथरीका १ ये सब मिल-करके आठ भये ॥

संप्राप्ति ।

पृथग्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथ वा कोपमुपेत्य बस्तौ ॥

मूत्रस्य मार्गं परिपीडयति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ २ ॥

भाषा-अपने कारणसे कुपित भये जो वातादिक दोष अथवा सब दोष बस्तिमें कुपित होकर मूत्रके मार्गको पीड़ित करें तब मनुष्यका बड़े कष्टसे मूत्र उतरे ॥

पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

पीतं सरतं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं सुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥

भाषा-पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रसे पीला, कुछ लाल, पीड़ायुक्त, आम्रिके समान, वारंवार कष्टसे मूत्र उतरे ॥

वातिक मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

तीव्रातिं रुग्वंक्षणवस्तिमेद्ये स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वात्तात् ॥ ३ ॥

भाषा-वातके मूत्रकृच्छ्रसे वैक्षण (जांघ और ऊर इनकी संधि), मूत्राशय और इन्द्रिय इनमें पीड़ा होय और मूत्र वारंवार थोड़ा थोड़ा उतरे ॥

कफज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

बस्तेः सर्लिङ्गस्य गुरुत्वशोथौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छे ॥

भाषा-कफके मूत्रकृच्छ्रमें लिंग और मूत्राशय भारी हो तथा सूजन होय और मूत्र चिकना होय ॥

सन्निपातज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाताद्वंति तत्कृच्छ्रतमं तु कृच्छ्रम् ॥ ४ ॥

भाषा-सन्निपातसे सर्व लक्षण होते हैं । वह मूत्रकृच्छ्र कष्टसाध्य है ॥

शल्यज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च ॥

मूत्रकृच्छ्रं तदा घाताजायते भृशदारुणम् ॥

घातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिंगानि लक्षयेत् ॥ ६ ॥

भाषा—मूत्र वहनेवाले स्नोत (मार्ग) शल्य (तीर आदि) से विंध जाय अथवा पीड़ित होंय तौ उस घातसे भयंकर मूत्रकृच्छ्र होता है । इसके लक्षण घातज मूत्रकृच्छ्रके समान होते हैं ॥

मलके मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

शङ्खतस्तु प्रतीघातादायुर्विगुणतां गतः ॥

आध्मानं घातसंगं च मूत्रसंगं करोति च ॥ ६ ॥

भाषा—मल (विषा) का अवरोध होनेसे वायु विगुण (उल्टा) होकर अफरा, वाच, शूल और मूत्र इनका नाश करे तब मूत्रकृच्छ्र प्रगट होय ॥

अझमरीजन्य मूत्रकृच्छ्र ।

अझमरीहेतु तत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहरेत् ॥ ७ ॥

भाषा—पथरीके योगसे जो मूत्रकृच्छ्र होता है उसको पथरीका मूत्रकृच्छ्र कहते हैं ॥

शुक्रज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

शुक्रे दोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधारिते ॥

सशुक्रं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्वस्तिमेहनशूलवान् ॥ ८ ॥

भाषा—दोषोंके योगसे शुक्र (वीर्य) दुष्ट होकर मूत्रमार्गमें गमन करे तब उस मनुष्यके मूत्राशय और लिंग इनमें शूल होय और मूत्रते समय मूत्रके संग वीर्य-पतन होय ॥

अझमरी और शर्करा इनका साम्य और अवांतर मेद ।

**अझमरी शर्करा चैव तुल्यसम्भवलक्षणे ॥ विशेषणं शर्क-
रायाः शृणु कीर्तयतो मम ॥ ९ ॥ पच्यमानाऽझमरी पित्ता-
च्छोष्यमाणा च वायुना ॥ विमुक्तकफसंधाना क्षरंती शर्करा
मता ॥ १० ॥ हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षावग्निश्च दुर्बलः ॥**
तथा भवति मूच्छा च मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ॥ ११ ॥

भाषा—अझमरी (पथरी) और शर्करा इन दोनोंकी संप्राप्ति और लक्षण समान हैं परंतु इनमें थोड़ा सा मेद है उसको कहता हूँ । पित्तसे पकनेवाली और वायुसे

शुष्क होनेवाली ऐसी पथरी कफसंबंधी न होय तब मूत्रके मार्गसे रेतके समान झरने लगे उसको शर्करा कहते हैं । उस शर्करायोगसे हृदयमें पीड़ा, कम्प, कूखमें शूल, मंदाग्नि, मूच्छी और भयंकर मूत्रकृच्छ्र ये रोग होते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममायुरप्रणितमाधवार्थविधिनीमाथुरीभाषादीकाया
मूत्रकृच्छ्रनिदान समाप्तम् ।

अर्थ मूत्राधातनिदानम् ।

जायन्ते कुपितैदौषैर्मूत्राधातास्त्रयोदशा ॥

प्रायो मूत्रविधाताद्यैर्वात्कुण्डलिकादयः ॥ १ ॥

भाषा-मूत्रका बेग रोकनेसे, आदिशब्दने मल शुक्रादिका बेग रोकनेसे और रक्षा भोजन आदि जानना । कुपित भये हुए दोषोंसे वातकुण्डलिकादिक तेरह प्रकारके सूत्राधातरोग होते हैं ॥

वातकुण्डलिकाके लक्षण ।

रौद्र्याद्वेगविधाताद्वा वायुर्बस्तो सवेदनः ॥ मूत्रमाविश्य चराति
विगुणः कुण्डलीकृतः ॥ २ ॥ मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं संप्र-
वर्तते ॥ वातकुण्डलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ३ ॥

भाषा-रक्षे पदार्थ खानेसे अथवा मलमूत्रादि बेगोंके धारण करनेसे कुपित भय, जो वायु सो बस्ति (मूत्राशय) में प्राप्त होकर पीड़ा करे और मूत्रसे मिलकर मूत्रके बेगों विगुण (उल्टा) करके बहाँ आप कुण्डलके आकार (गाढ़कार) मूत्राशयमें विचरे तब मनुष्य उस वातसे पीड़ित हो मूत्रको बारंबार थोड़ा थोड़ा पीड़िके साथ त्याग करे । इस दाहण व्याधिको वातकुण्डलिका रोग कहते हैं ॥

अष्टीलाके लक्षण ।

आध्मापयन्वास्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्वलोन्नतम् ॥

कुर्यात्तीव्रतिंमष्टीलां मूत्रमार्गवरोधिनीम् ॥ ४ ॥

भाषा-बरित (मूत्राशय) और गुदा इनमें यह वायु अफरा करे तथा गुदाकी कायुको रोककर चश्चल और उच्चत (ऊंची-) ऐसी अष्टीला (पत्थरकी पिण्डीके स्तूप) को प्रगट करे । यह मूत्रके मार्गको रोकनेवाली और भयंकर पीड़ा करनेवाली है ॥

वातवस्तिके लक्षण ।

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ॥ निरुणद्धि मुखं तस्य
बस्तोर्बस्तिगतोऽनिलः ॥ ६ ॥ मूत्रसंगो भवेत्तेन वस्तिकुशिनि-
पीडितः ॥ वातवस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कूच्छ्रप्रसाधनः ॥ ६ ॥

भाषा—जो मरुष्य अड (जिह) से मूत्रबाधको रोके उसके वस्ति (मूत्रा-
शय) का वायु वस्तिके मुखको बन्द कर दे तब उसका मूत्र बन्द हो जाय और
वह वायु वस्तिमें और कूखमें पीड़ा करे तब उस व्याधिको वातवस्ति ऐसा कहते
हैं । यह बड़े कष्टसे साध्य होता है ॥

मूत्रातीतके लक्षण ।

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्तते ॥

मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ७ ॥

भाषा—मूत्रको बहुत देर रोकनेसे पीछे वह जलदी नहीं उतरे और मूत्रते नमय
धीरे धीरे उतरे इस रोगको मूत्रातीत कहते हैं ॥

मूत्रजठरके लक्षण ।

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्त्तहेतुकः ॥ अपानः कुपितो वा-
युरुदरं पूरयेष्टशम् ॥ ८ ॥ नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्र-
वेदनाम् ॥ तन्मूत्रजठरं विद्यादधोवस्तिनिरोघजम् ॥ ९ ॥

भाषा—मूत्रका वेग रोकनेसे मूत्रवेगधारणजीत और उदावर्त्तका कारणभूत
ऐसा अपानवायु कुपित होकर पेट बहुत फूल जाय और नाभिके नीचे तीव्र
वेदनासंयुक्त अफरा करे, अधोवस्तिका रोध करनेवाले ऐसे इस रोगको मूत्रजठर
ऐसा कहते हैं ॥

मूत्रोत्संगके लक्षण ।

बस्तौ वाप्यथ वा नाले मणौ वा यस्य देहिनः ॥

मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ १० ॥

स्वच्छनरल्पमल्पं सरुजं वाथ नीरुजम् ॥

विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्संगसंहितः ॥ ११ ॥

भाषा—प्रवृत्त भया मूत्र वस्तिमें अथवा शिश्व (लिंग) में अथवा शिश्वके
अग्रभागमें अटक जाय और बलसे मूत्रको करेमी तौ वादीसे वस्तिको फाढ़कर जो

मूत्र निकले वह मंद मंद थोड़ा थोड़ा पीड़िके साथ अथवा पीड़ारहित रुधिरसहित निकले ऐसी विगुण वायुसे उत्पन्न हुई इस व्याधिको मूत्रोत्संग कहते हैं ॥
मूत्रक्षयके लक्षण ।

रुक्षस्य क्लांतदेहस्य वस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ॥

मूत्रक्षयं सरुदाहं जनयेतां तदाहृयम् ॥ १२ ॥

भाषा-रुखा भया अथवा आंत (थक गया) देह जिसका ऐसे पुरुषके वस्ति (मूत्राशय) में रहे जो पित्त और वायु वे मूत्रका क्षय करें और पीड़ा दाह होता है उसको मूत्रक्षय ऐसा कहते हैं ॥

मूत्रग्रन्थिके लक्षण ।

अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् ॥

अश्मरीतुल्यरुग्गान्धिर्मूत्रत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ १३ ॥

भाषा-वस्ति के मुखमें गोल स्थिर छोटीसी गांठ अकस्मात् होय, उसमें पथरीके समान पीड़ा होय इस रोगको मूत्रग्रन्थि ऐसा कहते हैं ॥

मूत्रशुक्रके लक्षण ।

मूत्रितस्य ख्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम् ॥

स्थानाच्चयुतं मूत्रयतः प्राकपश्चाद्वा प्रवर्तते ॥

भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १४ ॥

भाषा-मूत्रबाधाको रोककर जो मनुष्य खीसङ्ग करे उसका वायु शुक्रको उडाय स्थानसे भ्रष्ट करे तब मूत्रनेके पहिले अथवा मूत्रनेके पीछे शुक्र गिरे और उसका बर्ण राख मिले पानीके समान होय उसको मूत्रशुक्र ऐसा कहते हैं ॥

उष्णवातका लक्षण ।

व्यायामाध्वातपैः पित्तं वर्स्ति प्राप्यानिलायुतम् ॥ वर्स्ति मेहं गुदं चैव प्रदृहेत्सावयेदधः ॥ १५ ॥ मूत्रं हारिद्रमथ वा सरत्तं रक्तमेव च ॥ कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जीतोरुष्णवातं वदन्ति तम् ॥ १६ ॥

भाषा-व्यायाम (दंड कसरत), अति मार्गका चलना और धूपमें डोलना इन कारणोंसे कुपित भया जो पित्त सो वस्तिमें प्राप्त हो वायुसे मिल वस्ति, अंडकोश और गुदा इनमें दाह करे और हल्दीके समान अथवा कुछ रक्तसे युक्त वा ढाल ऐसा मूत्रका खाव वारंवार कष्टसे होय, उसको उष्णवात रोग कहते हैं ॥

मूत्रसादके लक्षण ।

पित्तं कफो वा द्वौ वापि संहन्येतेऽनिलेन चेत् ॥ कृच्छ्रान्मूत्रं

तदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत् ॥ १७ ॥ सदाहं रोचनाशंखचूर्ण-
वर्णं भवेत् तत् ॥ शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥ १८ ॥

भाषा-पित्त अथवा कफ वा दोनों वायुकरके विगड़े हुए होय तब मनुष्य पीला, लाल, सफेद, गाढ़ा ऐसा कष्टसे मूत्रे और मूत्रनेके समय दाह होय और जब वह मूत्र पृथ्वीमें स्थ्रव जाय तब गोरोचन, शंखका चूर्ण ऐसा वर्ण होय अथवा सर्व वर्णका होय इस रोगको मूत्रसाद कहते हैं ॥

विड्विघातके लक्षण ।

रुक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावर्त्तं शकृद्यदा ॥ १९ ॥ मूत्रस्रोतोऽनुप-
द्येत विड्विसृष्टं तदा नरः ॥ विड्विधं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्वि-
घातं विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

भाषा-रुक्ष और दुर्बल पुरुषके शकृत् (मल) जब वायुकरके प्रेरित उदावर्त्तको प्राप्त हो तब वह मल मूत्रके मार्गमें आवे उस समय मनुष्य मूत्रने लगे तौ बडे कष्टसे मूत्र उतरे और उसके मूत्रमें विषाक्तीसी दुर्गंध आवे, उसको विड्विघात कहते हैं ॥

वस्तिकुंडलरोगके लक्षण ।

द्रुताध्वलंघनायासैरभिघातात्परपीडनात् ॥ स्वस्थानाद्वस्ति-
रुदृतः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥ २१ ॥ शूलस्पन्दनदाहातौ
विन्दुं विन्दुं स्रवत्यपि ॥ पीडितस्तु सृजेद्वारां सरंभोद्वेष्टनात्ति-
मान् ॥ २२ ॥ वस्तिकुंडलमाहुस्तं घोरं शत्रविषोपभम् ॥
पवनप्रवलं प्रायो दुर्निवारमद्विद्विभिः ॥ २३ ॥

भाषा-जलदी जलदी चलनेसे, लंघन करनेसे, परिश्रमसे, लकड़ी आदिकी चोट लगनेसे, पीड़ासे वस्ति अपने स्थानको छोड़ ऊपर जाय मोटी होकर गर्भके समान कठिन रहे, उससे शूल, कम्प और दाह ये होय । मूत्रकी एक एक बुन्द गिरे । यदि वास्त जोरसे पीडित होय तौ बड़ी धार पड़े, वस्तिमें सूजन होय. पेटमें पीड़ा होय इस रोगको वस्तिकुण्डल ऐसा कहते हैं । यह शत्रके समान जलदी प्राणनाशक और विषके समान कालांतरमें प्राणका नाशकर्ता भयंकर है । इसमें प्रायः वायु प्रवल है । मन्दद्विद्वाले वैद्योंसे इसका निवारण (चिकित्सा) करना कठिन है ॥

इसको अन्य दोषोंका सम्बन्ध होनेसे जो लक्षण होते हैं उनको कहता हूँ ।

तस्मिन्यित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता ॥

श्वेषणा गौरवं शोथः स्थिरं मूत्रं घनं सितम् ॥ २४ ॥

भाषा—बही बस्तिकुंडल पित्तयुक्त होनेसे दाह और मूत्रका बुरा रंग होय और कफयुक्त होनेसे जडत्व, सूजन, मूत्र चिकना, गाढ़ा, सपेद ऐसा होय ॥

साध्यासाध्य लक्षण ।

श्वेषमरुद्धविलो वस्तिः पित्तोदीर्णो न सिद्ध्यति ॥

आविष्रांतविलः साध्यो न च यः कुण्डलीकृतः ॥ २५ ॥

भाषा—कफकरके जिसका सुख बन्द होय ऐसा और पित्तकरके व्यास भई ऐसी वस्ति साध्य नहीं होय और जिस वस्तिका सुख खुला होय तथा जो कुण्डलीकृत होय नहीं वह साध्य है ॥

कुण्डलीभूतके लक्षण ।

स्थाद्वस्तौ कुंडलीभूते तृणमोहः श्वास एव च ॥ २६ ॥

भाषा—वस्ति कुण्डलीभूत होनेसे प्यास, दाह और श्वास ये लक्षण होय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्भितमाधवार्थवौधिनीमाथुरीभाषादीकार्या

मूत्राधातरोगनिदान समाप्तम् ।

अथाइमरीरोगनिदानम् ।

—६३—

वातपित्तकैस्तिस्त्रश्वतुर्थी शुक्रजाऽपरा ॥

प्रायः श्वेषाश्रयाः सर्वा अइमर्यः स्मृत्यमोपमाः ॥ १ ॥

भाषा—वात, पित्त, कफ इनसे ३ चौथी शुक्रसे अइमरीरोग (पथरी) होती है । यह पथरी विशेषकरके कफाश्रित है । “ यमोपमाः ” कहिये अच्छी चिकित्सा न होय तौ यद अवश्य प्राणनाशक है ॥

सम्प्राप्ति ।

विशेषयेद्वितिगतं सशुक्रं मूत्रं सपितं पवनः कफं वा ॥

यदा यदाइमर्युपजायते च क्रमेण पित्तोषिव रोचना गोः ॥ २ ॥

भाषा—जिन मनुष्योंका वायु बस्तिमें प्राप्त हो शुक्रयुक्त अथवा पित्तयुक्त मूत्र अथवा कफको सुखावे तब उस स्थानमें पथरी प्रगट होती है । जैसे गौके पित्तमें गोरोचन जमे है, उसी प्रकार बस्तिमें वीर्यसे पथरी होय है ॥

पूर्वरूप ।

**नैकदोषाश्रयाः सर्वा अश्मर्याः पूर्वलक्षणम् ॥
बस्त्याधमानं तदासंन्देशेषु परितोऽतिरुक्तं ॥
मूत्रे बस्तुसगंधत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः ॥ ३ ॥**

भाषा-सब अश्मरी (पथरी) एक दोषके आश्रय नहीं हैं अर्थात् अनेक दोषा-श्रिव हैं । बस्ति का फूलना, बस्ति के आसपास अत्यंत पीड़ा होनी, मूत्रमें बकरेके पेशाबकीसी दुर्गंव जावे, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, अरुचि ये पथरीके पूर्वरूप जानने ॥

पथरीके सामान्य लक्षण ।

**सामान्यलिंगं रुद्धनाभिसेवनीबस्तिसूर्घसु ॥ विशीर्णधारं मूत्रं
स्यात्तया भार्गनिरोधने ॥ ४ ॥ तद्यपायात्मुखं मेहेदच्छं गोमेद-
कोपमम् ॥ तत्संक्षोभात्क्षते सास्त्रभायासाच्चातिरुग्भवेत् ॥ ५ ॥**

भाषा-नाभि सेवनी (अंडकोशके समीपका भाग) और बस्ति का अग्रभाग इनमें शूल होय पथरीके योगसे मूत्रमार्ग रुकनेसे मूत्रकी धार कटी निकले, पथरी मूत्रमार्गके पाससे हट जाय तौ मूत्र अच्छी रीतिसे उतरे और स्वच्छ गोमेदम-णिके समान होय, अश्मरी (पथरी) के योगसे बस्ति में घाव होनेसे रुधिर मिला मूत्र उतरे और मृतते समय जोर करनेसे बड़ा क्लेश और पीड़ा होय ये सामान्य लक्षण जानने ॥

वातकी पथरीके लक्षण ।

**तत्र वाताभृशं व्याप्तो दन्तान्खादाति वेपते ॥ मथाति मेहनं ना-
भि पीडयंत्यनिश्चं क्वग्न् ॥ ६ ॥ सानिलं सुंचाति शकून्मुदुमेहाति
बिंदुशः ॥ इयावा रुक्षाश्मरी चास्य स्याच्चिता कंटकैरिव ॥ ७ ॥**

भाषा-वायुकी पथरीसे रोगी अत्यंत पीड़ा करके व्याप्त होय, दातोंको चवाके, कांपे, लिंगको हाथसे रगड़े, नाभिको रगड़े और रातदिन दुःखसे रोवे और मूत्र आनेके समय पीड़ा होनेके कारण अधोवायुको परित्याग करे, मूत्र वारंवार टपक रपक गिरे, उसकी पथरीका रंग नीला और खबा होय उसके ऊपर कांटे होय ॥

पित्तकी पथरीके लक्षण ।

पित्तेन दद्यते बस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् ॥

भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्ता पीता सिताश्मरी ॥ ८ ॥

भाषा-पित्तकी पथरीके रोगीसे- बस्तिमें दाह होय और खारसे जैसा दाह होय

ऐसी वेदना होय, बस्ति के ऊपर हाथ धंखने से गरम मालूम होय और मिलाएकी मर्मगीके समान होय, लाल, पीली, काली होय ॥

कफकी पथरीके लक्षण ।

बास्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेषणा शीतलो गुरुः ॥

अश्मरी महती श्लेषणा मधुवर्णाथ वा सिता ॥ ९ ॥

माषा—कफकी पथरीसे बस्तिमें नोचनेकीसी पीड़ा होय, शीतलपना होय और पथरी बड़ी मुर्गीके अंडेसमान, स्वच्छ और मद्य (दाढ़) के रंगकीसी अर्थात् कुछ पीलीसी होय यह कफकी पथरी बहुधा बालकोंके होती है यह कहा है ॥

एता भवांति बालानामेषामेव च भूयसा ॥

आश्रयोपचयात्पत्वाद् ग्रहणाहरणे सुखाः ॥ १० ॥

माषा—पूर्वोक्त त्रिदोषजा अश्मरी (पथरी) विशेषकरके बालकोंके होती है । कारण उनका भारी मटा शीतल चिकना आहार है और उनकी बस्ति छोटी तथा पुष्टा थोड़ी होय है । इसीसे बैद्योंको उसका चीरना, फाडना, काटना, निकालना कठिन नहीं होय सो सुश्रुतनेमी कहा है ॥

शुक्राश्मरीके लक्षण ।

शुक्राश्मरी तु महती जायते शुक्रधारणात् ॥ स्थानाच्चयुत-

ममुक्तं हि मुष्क्योरन्तरेऽनिदिः ॥ ११ ॥ शोषयत्युपसंहत्य

शुक्रं तच्छुष्कमश्मरी ॥ बस्तिरुक्तं कृच्छ्रमूत्रत्वं मुष्क्ष्वयथु-

कारिणी ॥ १२ ॥ तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ॥

पीडिते तवज्ञाशेऽस्मन्नश्मर्येव च शर्करा ॥ १३ ॥

माषा—शुक्राश्मरी शुक्र (वीर्य) के रोकनेसे बड़े मनुष्योंकोही यह पथरी होती है । मैथुन करनेके समय अपने स्थानसे चलायमान हो गया जो वीर्य उस समय मैथुन न करे तब शुक्र (वीर्य) बाहर नहीं निकले, भीतरही रहे तब वायु उस शुक्रको उठाकर सुखा देता है उसीको शुक्रजाश्मरी कहते हैं । इसकरके अंड-कोषोंमें सूजन, बलीमें पीड़ा और मूत्रकृच्छ्रता होती है । शुक्राश्मरीकी आदिमें गर्लिंग और अंडकोष, पेड़ इनमें पीड़ा होती है । वीर्यका नाश होनेके कारण पथरीकी नाई शर्करा उत्पन्न होती है ।

पथरीशर्वरीके उपद्रव ।

अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मन्ननुलेमगे ॥ निरोति सह भूत्रे-

ण प्रतिलोमे विवर्ध्यते ॥ १४ ॥ मूत्रस्त्रोतःप्रवृत्ता सासक्ता
कुर्यादुपद्रवान् ॥ दैर्घ्यलयं सदनं काश्ये कुक्षिशूलमथारुचिम् ॥
पांडुत्वमुष्णवातं च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ॥ १५ ॥

भाषा-वायुका वस्तिमें अनुलोमगतिसे प्रवेश होता है तौ वह शर्करा वायुकरके छोटे
छोटे इकट्ठे होकर मूत्रके साथ वाहर निकले और यदि वायु प्रतिलोम होय तौ मूत्र-
मार्गको रोक दे यदि मूत्रमार्गमें प्राप्त होय तौ मूत्रके बहनेवाले छिद्राको रोक दे फिर
इतने उपद्रवोंको प्रगट करे । दुर्बलता, ग्लानि, कृशता, कूखमें शूल, अरुदि, पाण्डु-
रोग, उष्णवात, प्यास, हृदयमें पीड़ा, वमन ये सब उपद्रव होय ॥

असाध्य लक्षण ।

प्रश्ननाभिवृष्णं बद्धमूत्रं रुजान्वितम् ॥

अश्मरी क्षपयत्याशु शर्करा सिकतान्विता ॥ १६ ॥

भाषा-जिसके नामि और वृष्ण सूज जांय, मूत्र उतरे नहीं, पीड़ा होय ऐसे
मुरुषका शर्करा और सिकतायुक्त पथरी प्राणनाश कर ॥

इति श्रीपण्डितदत्तरामाशुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाशुरीभाषादीकायां
अश्मरीनिदन समाप्तम् ।

अथ

माधवनिदानस्थ उत्तरभागः ।

तत्र प्रमेहनिदानम् ।



आस्यासुखं स्वप्रसुखं दधीनि ग्राम्योदकानूपरसाः पवांसि ॥

नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहद्वेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ १ ॥

भाषा-बैठनेके सुखसे, निद्राके सुखसे अथवा स्वप्रसुख कहिये स्वप्रसुख स्थीप्रसुंग
आदि सुखसे, दही, ग्रामके संचारी जीव भेड़ वकरी आदि, जलके संचारी जीव
मच्छी कलुआ आदि, अनूप (जलसमीप) के रहनेवाले जीव हंस चक्रवा आदि,
ऐसे प्राणियोंके मांसरस, दूध, नया अन्न और नया जल तथा शर्करा आदि गुडके
पदार्थ अथवा गुडके विकार ये और जितने कफकारक पदार्थ हैं वे सब प्रमेह होनेके
कारण हैं ॥

कफपित्तवात्प्रमेहोंकी क्रमसे सम्प्राप्ति ।

मेदश्च मांसं च शरीरं च क्लेदं कफो वस्तिगतः प्रदूष्य ॥
करोति मेहान्समुदोर्णमुष्ट्यैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि ॥ २ ॥
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून्संदूष्य मेहान्कुरुतेऽनिलश्च ॥
साध्याः कफोत्था दृश पित्तजाःषट् याप्यान् साध्याः पवनाच्चतुष्काः॥
समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते ॥ ३ ॥

भाषा-वस्ति (मूत्रस्थान) गत कफ मेद मांस और शरीरके क्लेदको विगाढ़-कर प्रमेहको उत्पन्न करता है । उसी प्रकार गरम पदार्थसे पित्त कुपित होकर पूर्वोक्त मेद मांसको विगाढ़कर प्रमेहको उत्पन्न करे और वायु यह दोष क्षीण होनेसे धातु कहिये वसा मज्जादिको ईचकार वस्तिके मुख्यपर लाकर प्रमेहको प्रगट करे । कफसे प्रगट दस प्रमेह साध्य हैं । कारण इसका यह है कि कफदोष और मेद-प्रभृति दूष्य इनपर कटुतिकादि किया समान है । इस गेगमे रोगकाही प्रभाव ऐसा है कि इसमें तुल्यदूष्यको साध्यत्व कहा है और प्रमेहके बिना और रोगोंको अतुल्य (असमान) दूष्यत्व साध्यका हेतु होता है । पित्तके छः प्रमेह विषम चिकित्सा करनेसे वाप्य होते हैं अर्थात् पित्त हरण करनेवाले जो शीत मधुर आदि द्रव्य वे मेदको बढ़ानेवाले हैं और मेदहरणकर्ता उष्णकटुकादि द्रव्य पित्तकर्ता हैं ऐसी किया विषम है । वादीसे प्रगट चार प्रमेह मज्जादि गंभीर धातुओंके आकर्षण करनेसे अत्यन्त पीड़कर्ता हैं और इनकी विषमही किया है इसीसे ये चार असाध्य हैं ॥

प्रमेहका दोषदूष्यसंग्रह ।

कफः सपित्तं पवनश्च दोषा मेदोऽस्त्रशुक्रांबुवसालसीकाः ॥

मज्जारसौजः पिशितं च दूष्याः प्रमेहिणीं विश्वातिरेव मेहाः ॥ ४ ॥

भाषा-कफ, पित्त और वादी ये दोष और मेद, सूधि, शुक्र, जल, मांस, स्नेह (चर्बी), लसिका (मांसका जल), मज्जारस, ओज और मांस ये दूष्य जानने । इन दोष और दूष्य दोनोंसे वीस प्रकारके प्रमेह होते हैं ॥

पूर्वलूप ।

दन्तादीनां मठाठव्यत्वं प्रायूपं पाणिपादयोः ॥

दाहश्चिक्षणतो देहतृट्श्वासश्चोपजायते ॥ ५ ॥

भाषा-दांतोंमें अग्निशब्दसे जिह्वा तालु आदिका ग्रहण है; इनमें मैला वहुदं

रहे, हाथ पैरमें दाह, अंगका चिकनापना, प्यास, श्वास, चकारसे केशों (बारों) का आपसमे लिपट जाना और नखोंका बढ़ जाना । ये प्रमेहके पूर्वरूप होते हैं ॥

सामान्य लक्षण ।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमृतता ॥ ६ ॥

माषा-बहुत और गाढ़ा मूत्र उतरे ये प्रमेहके पूर्वरूप होते हैं ॥

प्रमेहके कारण ।

दोषदूष्यविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥

मृत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेदेषु कल्प्यते ॥ ७ ॥

माषा-दोष और दूष्य इनके भेद न होनेसे परंतु दोष और दूष्य इनके संयोग भेदसे मृत्रवर्णादि भेद करके प्रमेहमे भेद होता है । दस छः चार इत्यादिक दोष (बात, पित्त, कफ) दूष्य (मास, मेद, मज्जादि) जैसे सफेद, पीला, काला, तामेके रंगका और इयाम इन पांच रंगोंके संयोग करनेसे पिंगल पाटलादि अनेक वर्णभेद होते हैं । इसी प्रकार दोषादिकोंके संयोगसे नाना प्रकारके प्रमेह होते हैं । संयोगभेदकी कैसे प्रतीति हो ऐसा कोई पूछे तो उसके वास्ते कहते हैं । मूत्रके वर्णादि भेदसे समान कारणोंके भेद कल्पना करने चाहिये । जैसे घट (घड़ा) बनाने समय मृत्तिकादि कारण सामग्रीमें भेद नहीं है परन्तु कुम्मकारादि (कुम्हार आदि) संयोग भेदकरके घड़ा, सरखा आदि अनेक जातिभेद हो जाते हैं ॥

कफके १० प्रमेहके लक्षण ।

**अच्छं बहुसितं शीतं निर्गंधमुदकोपमम् ॥ मेहत्युदकमेहेन
किञ्चिदाविलपिच्छिलम् ॥ ८ ॥** इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेषु-
मेहतः ॥ सांद्रीभवेत्पर्युषितं सान्द्रस्नेहेन मेहति ॥ ९ ॥ सुरामेही
सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम् ॥ संहष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्दुलं
सितम् ॥ १० ॥ शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति ॥
मृत्राणून्सक्तामेही सिकताहृपिणो मलान् ॥ ११ ॥ शीतमेही
सुबद्धशो मधुरं भृशशीतलम् ॥ शनैः शनैः शनैमेही मन्दं मन्दं
प्रमेहति ॥ लालातंत्रयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ १२ ॥

माषा-१ उदकप्रमेहकरके स्वच्छ, बहुत सपेद, शीतल, गंधरहित, पानीके समान कुछ गाढ़ा और चिकना मूते हैं । २ इक्षुप्रमेहसे ईखके रससमान अत्यंत मीठा ऐसा मूत्र होय । ३ सांद्रप्रमेहसे रात्रिमे पात्रमें धरनेसे जैसा होवे ऐसा मूत्र होय ।

४ सुराप्रमेहसे दाल्के समान ऊपर निर्मल और नीचे गाढ़ा ऐसा मूते । ५ पिण्डप्रमेहसे पीसे चावलोंके पानी समान सपेद और बहुत मूते तथा भूतते समय रोमाँच होय । ६ शुक्रप्रमेहसे शुक्र (वीर्य) के समान अथवा शुक्रमिला मूत्र होय । ७ सिक्तामेहसे मूत्रके कण और बालू रेतके समान मलके रवा गिरें । ८ इशीतमेहसे मधुर तथा अत्यंत जीतल ऐसा वारंवार बहुत मूते । ९ शैनैर्मेहसे धीरे धीरे और मन्द मन्द मूते । १० लालाप्रमेहसे लारके समान तारयुक्त और चिकना मूत्र होता है ॥

पित्तके ६ प्रमेहके लक्षण ।

गंधवर्णरसस्पृशैः क्षारेण क्षरतोयवत् ॥ १३ ॥ नीलमेहेन
नीलाभं कालमेही मषीनिभम् ॥ हारिद्रमेही कटुकं हारिद्रा-
सन्निभं दहेत् ॥ १४ ॥ विस्वं मांजिष्ठमेहेन मांजिष्ठसलिलो-
पमम् ॥ विस्वसुष्णं सलवर्णं रक्ताभं रक्तमेहतः ॥ १५ ॥

भाषा—११ क्षारप्रमेहसे खारी जलके समान गंध, वर्ण, रस और स्पर्श ऐसा मूत्र होता है । १२ नीलप्रमेहसे नीले रंगका अर्थात् पौया पक्षीके पंखके सहश मूते । १३ कालप्रमेहसे स्याईके समान काला मूते । १४ हारिद्रप्रमेहसे तीक्ष्ण हल्दीके समान और दाहयुक्त मूते । १५ मांजिष्ठप्रमेहसे आम दुर्गंध और मजीठके समान मूते । १६ रक्तप्रमेहसे दुर्गंधयुक्त, गरम, खारी और रुधिरके समान लाल मूत्र करे ॥

वातके ४ प्रमेहके लक्षण ।

वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः ॥ मज्जाभं मज्जमिश्रं
वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ कषायमधुरं रुक्षं क्षौद्रमेहं
वदेद्रु बुधः ॥ हस्ती मत्त इवाजस्त्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् ॥ साल-
सीकं विवद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति ॥ १७ ॥

भाषा—१७ वसाप्रमेही वसा (चर्बी) युक्त अथवा वसाके समान मूते । १८ मज्जाप्रमेही मज्जाके समान अथवा मज्जा मिला वारंवार मूते । १९ क्षौद्रप्रमेही कर्षेला, मैठा और चिकना ऐसा मूते । २० हस्तिप्रमेही मस्त हाथीके समान निरंतर वेगरहित जिसमें तार निकले और ठहर ठहरके मूते ॥

कफप्रमेहके उपद्रव ।

आविपाकोऽरुचिश्छार्दिर्ज्वरः कासः सपीनसः ॥
उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥ १८ ॥

भाषा—अबका परिपाक न होय, असुचि, वमन, ज्वर, खांसी, पीनस ये कफ प्रमेहके उपद्रव हैं ॥

पित्तप्रमेहके उपद्रव ।

वस्तिमेहनयोः शूलं मुष्कावदरणं ज्वरः ॥

दाहस्तृष्णाभिलक्ष्मी विडभेदः पित्तजन्मनाम् ॥ १९ ॥

भाषा—वस्ति और लिंग इनमें पीड़ा होय, अंडकोशोंका पककर फटना, ज्वर, प्यास, खट्टी डकार, मूच्छी और पतला दस्त होय ये पित्तप्रमेहके उपद्रव हैं ॥

वातप्रमेहके उपद्रव ।

वातजानामुदावर्त्ते कंठहृदयहलोलताः ॥

शूलमुनिद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥ २० ॥

भाषा—उदावर्त्त, गला, हृदय इनका रुकना, लोलता (सर्वरत भक्षणेच्छा), शूल, निद्रानाश, शोष, सूखी, श्वास ये वातप्रमेहके उपद्रव हैं ॥

प्रमेहके असाध्य लक्षण ।

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्तुतमेव च ॥

पिडिकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ २१ ॥

भाषा—ऊपर कहे जो अविषाकादि उपद्रव वे सब होय । जिसके मूत्रका स्नाव बहुत हुआ होय, शराविका आदि जो पिडिका आगे कहेंगे वे होय, रोगका अंगमें प्रवेश हो गया हो ऐसे लक्षण होनेसे वह प्रमेह मधुज्यको मार डाले ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

जातः प्रमेही मधुमेहिना यो न साध्यरोगः स हि वीजदोषात् ॥

भाषा—मधुमेही पुरुषसे उत्पन्न भया जो प्रमेहवान् पुरुषका रोग वीजदोषके कारणसे साध्य नहीं होय । इस जगह मधुमेहशब्दसे साधारण प्रमेह जानना । इस जगहभी मधुकोशटीकावालेने मधुमेहशब्दपर बहुतसा शास्त्रार्थ लिखा है ।

कुलपरंपरागत अन्य विकारोंको असाध्यत्व कहते हैं ।

ये चापि केचित्कुलजाधिकारा भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान् २२

भाषा—जो कोई कुष्ठादिक कुलपरंपरागत विकार हैं वे सब असाध्य हैं । अब कहते हैं कि सर्व प्रमेहोंकी उपेक्षा करनेसे मधुमेहत्वको प्राप्त होते हैं इसकी कहते हैं ॥

सर्वं प्रमेहकी अपेक्षा करनेसे मधुमेह होता है ।

सर्वं एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः ॥

मधुमेहत्वमायांति तदाऽसाध्या भवति हि ॥ २३ ॥

भाषा—सब प्रमेह औषधके बिना कालकरके मधुमेहको प्राप्त होते हैं तब वे असाध्य हो जाते हैं ॥

धातुक्षय और आवरण इनसे कुपित भये वायुको मधुमेहका संभव होता है ।

मधुमेहे मधुसमं जायते स किञ्च द्विधा ॥

कुञ्जे धातुक्षयाद्यायौ दोषावृतपथेऽथ वा ॥ २४ ॥

भाषा—मधुमेहमें मूत्र मधु (सहत) के समान होता है वह दो प्रकारका है । एक तो धातुक्षय होनेसे वायु कुपित होकर होता है और दूसरा दोषोंकरके पवनका मार्ग आवृत (ढकते) करके होता है ॥

आवरणके लक्षण ।

आवृतो दोषलिंगानि सोऽनिमित्तं प्रदशेयन् ॥

क्षीणः क्षणात्पुनः पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥ २५ ॥

भाषा—आवृत वायुसे प्रगट मधुमेह जिस पित्तादिदोषकरके आच्छादित होता है उसके लक्षण अकस्मात् दीर्घे, क्षणभरमें क्षीण होंय, क्षणमें पूर्ण होंय वह कष-साध्य जानना ॥

मधुमेहशब्दकी प्रवृत्ति विषय निमित्त ।

मधुरं यज्ञ मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति ॥

सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याज्ञ तनोरतः ॥ २६ ॥

भाषा—प्रमेहमें रोगी प्रायशः मधु (सहत) के समान मीठा मूते और सब शरीरको मीठा कर दे इसीसे सर्वं प्रमेहको मधुप्रमेहसंज्ञा दी है और असृतसागरमें जो छोड़े प्रमेह आत्रेयके मतसे लिखे हैं वे प्रमाणरहित हैं और प्रसिद्धमेंभी प्रमेह वीस प्रकारके हैं इसीसे इमने छोड़ दिये हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरकृतमाधवार्थवोधिनीमाथुरीभाषादीकार्यां
प्रमेहनिदानं समाप्तम् ।

अथ प्रमेहपिटिकानिदानम् ।

शराविका कच्छपिका जालनी विनताऽलजी ॥ मसूरिका सर्ष-
पिका पुत्रिणी सविदारिका ॥ १ ॥ विद्रधिश्चोति पिडिकाः प्रमे-
होपेक्षया दश ॥ संधिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ २ ॥

माषा—प्रमेहकी उपेक्षा करनेसे शराविकादि दश पिटिका संधिमर्म और मांसल
ठिकानेमें होती हैं ॥

सबके लक्षण ।

अंतोन्त्रता च तद्रूपा निम्नमध्या शराविका ॥ सदाहा-
कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥ ३ ॥ क्षालनी
तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता ॥ अवगाढर्जोत्क्लेदा पृष्ठे
वाप्युदरेऽपि वा ॥ ४ ॥ महती पिटिका नीला सा बुधैर्विनता
स्मृता ॥ रक्ता सिता स्फोटवत्ती दारुणत्वलजी भवेत् ॥ ५ ॥
मसूरदलसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका ॥ गौरसर्षपसंस्थाना
तत्प्रमाणा च सर्षपी ॥ ६ ॥ महत्यल्पचिता ज्ञेया पिडिका
चापि पुत्रिणी ॥ विदारीकंदवद् वृत्ता कठिना च विदारिका ॥
विद्रधेलक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा ॥ ७ ॥

माषा—१ शराविका यह पिटिका ऊपरके भागमें ऊंची और मध्यमें बैठीसी होय
जैसा मट्टीका शराब होता है ऐसी होती है । २ कच्छपिका यह कछुवाके पीठके
समान कुछ दाइयुक्त ऐसी होती है । ३ जालनी यह तीव्र दाहकरके संयुक्त और
मांसके जालसे व्यास होती है । ४ विनता ये कुंसी पीठमें अथवा पेटमें होती है
इसकी पीड़ा बहुत होय, ठंडी होय तथा बड़ी और नीले रंगकी होती है । ५ अलजी
लाल, काली, बारीक फोड़ोकरके व्यास भयंकर होती है । ६ मसूरिका मसूरकी
दालके समान बड़ी होती है । ७ सर्षपिका सपेद सरसोंके समान बड़ी होती है ।
८ पुत्रिणी यह बीचमें एक बड़ी कुंसी होय उसके चारों ओर छोटी २ कुंसी और
होय उसको पुत्रिणी कहते हैं । ९ विदारिका यह विदारीकन्दके समान गोल और
करड़ी होती है । १० विद्रधिका यह विद्रधिके लक्षणकरके युक्त होती है । मोज
और मुश्शुतके मतसे नौ पिडिका हैं और चरकके मतसे सातही हैं ॥

ये पिटिका कैसे उत्पन्न होती हैं ।

ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः ॥ ८ ॥
विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः ॥
तावच्छैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः ॥ ९ ॥

भाषा—जो प्रमेह जिस दोषकरके उल्लबण होता है तिसकरके तिसी दोषके उल्लब-
णकरके पिटिका होती है । यह पिटिका प्रमेहके विना दुष्टमेदके होनेने प्रगट होती
है । जबतक इनकी गांठ नहीं बधे तबतक नहीं दीखे । “ये यन्मयाः स्मृता
मेहाः” इस पदके ऊपर मधुकोशवालेने शास्त्रार्थ लिखा है । ग्रन्थ बढ़नेके मयसे
हमने नहीं लिखा ॥

असाध्यपिटिकालक्षण ।

गुदे व्यादि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः ॥
सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिडिकाः परिवर्जयेत् ॥ १० ॥

भाषा—गुदामें, हृदयमें, शिरमें, कंधामें, पीठमें, और मर्मस्थानमें उड़ी पिटिका
और उपद्रवयुक्त हो तथा दुर्बलाग्नि पुरुषकी पिटिका त्याज्य है । पिटिकाके उप-
द्रव चरकने कहे हैं सो इस प्रकार “ वृद्धासमाससंकोचमोहाहिकामदञ्चराः । विसर्प-
मर्मसंरोधाः पिटिकानामुपद्रवाः ॥ ” इसका अर्थ सुगम है, इसीसे नहीं लिखा ।
शांका—क्योंजी ! ख्रियोंके प्रमेह क्यों नहीं होता ? उत्तर—इसका कारण और ग्रन्थमें
इस प्रकार लिखा है “ रजःप्रसेकान्नारीणां मासि मासि विशुद्धयति । कृत्स्नं शरीर-
दोषाश्च न प्रमेहन्त्यतः ख्रियः ॥ ” ख्रियोंके महीनेके महीना रज वहा करे है इसीसे
सब देह और दोष शुद्ध होते हैं इसीसे ख्रियोंके प्रमेह नहीं होय और ख्रियोंके प्रमेह
होना कहीं नहीं देखा । यहभी एक बलवान् कारण है और सोमादिक रोग होते हैं ।
कदाचित् कोई कहे कि और रोगका होना असंभव है तो यह केवल ज्ञानेका
स्थान है, इसका किसीने यथार्थ निर्णय नहीं करा । प्रमेहनिवृत्तिके लक्षण सुश्रुतमें
कहे हैं । यथा “ प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छलम् । विशदं कटु तिक्तं च
वदारोग्यं प्रवक्षते ॥ ” इति ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणातिमाधवार्थोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां
प्रमेहमधुमेहपिटिकानिदानं समाप्तम् ।

अथ मेदोनिदानम् ।

कारण और सम्प्राप्ति ।

अव्यायामदिवास्वप्रशेष्मलाहारसेविनः ॥ मधुरोऽन्नरसः प्रायः
स्त्रेहान्मेदो विवर्द्धते ॥ १ ॥ मेदसा वृत्तमार्गत्वात्पुष्यंत्यन्येन
धातवः ॥ मेदस्तु चीयते यस्मादुशक्तः सर्वकर्मसु ॥ २ ॥

भाषा—दंड कसरतके न करनेसे, दिनमें सोनेसे और कफकारक पदार्थ सेवन करनेसे ऐसी रीतिसे वर्तनेवाले पुरुषका अज्ञरस केवल मधुर कहिये आमरूप हो स्नेह करनेसे मेदको बढ़ावे मेदकरके मार्ग बंद होनेसे अन्य धातु हाड़, मज्जा, वीर्य आदि पुष्ट होती नहीं और मेद बढ़े तब वह पुरुष सर्व कर्म करनेको अशक्त होता है ॥
मेदस्वी पुरुषके लक्षण ।

क्षुद्रश्वासतृष्णामोऽस्त्रप्रकथनसादनैः ॥ युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गंधे-
रल्पप्राणोऽल्पमैथुनः ॥ ३ ॥ मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेष्वस्थिषु
स्थितम् ॥ अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्त्वनो भवेत् ॥ ४ ॥

भाषा—“क्षुद्रश्वासः रुक्षायासोद्द्रवः” इत्यादिक पिछाड़ी कह आये सो रुक्षा, मोह, निद्रा, अकस्मात् शासका रोग, अंगरङ्गानि, भूख, पसीना और दुर्गंधि इन लक्षणकरके वह पुरुष युक्त होय उसकी शक्ति घट जाय और मैथुन करनेमें उत्साह न होय मेद यह सब प्राणिमात्रोंके उदर और हड्डियोंमें रहे हैं इसीसे मेदवाले पुरुषका पेट बढ़ा करता है ॥

मेदस्वीका अवस्थाविशेष ।

मेदसावृत्तमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः ॥ चरन्संधुक्षयत्य-
ग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥ ५ ॥ तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारं
चापि कांक्षति ॥ विकारांश्चाश्चुते घोरान्कांश्चित्कालव्यति-
क्रमात् ॥ ६ ॥ एताद्वुपद्रवकरो विशेषादग्निमारुतौ ॥ एतौ
हि दृहतः स्थूलं वनं दावानलो यथा ॥ ७ ॥

भाषा—मेदसे मार्ग रुक जानेसे कोठेमे पवनका संचार विशेष होय तब अग्निको यह पवन बढ़ावे, भोजन करे, आहारको तुरन्त शोषण करे तब वह आहार शीघ्र पचकरके फिर जेमनेकी इच्छाको प्रगट करे और भोजन करनेमें कालका व्यतिक्रम

होनेसे भयंकर वातके रोग उत्पन्न होय । ये अग्नि और वायु बड़ा उपद्रव करते हैं । जैसे दावानल (अग्नि) वनको जरावे है उसी प्रकार ये दोनों उस स्थूल (मोटे) पुरुषको जराते हैं ॥

अत्यंत मेद बढ़नेका परिणाम ।

मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः ॥

विकाशान् दारुणान् कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम् ॥ ८ ॥

भाषा—मेद अत्यन्त बढ़नेसे वायु आदि ये अक्समात् भयंकर प्रमेह, पिटिका, ज्वर, भगंदर विद्रवे, वातरोग इत्यादि उत्पन्न करके शीघ्र ही जीवका नाश करे ॥

स्थूलक्षण ।

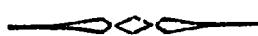
मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फुग्दुरस्तनः ॥

अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ९ ॥

भाषा—मेद और मांस ये अत्यन्त बढ़नेसे जिस पुरुषके कूले, पेट और स्तन ये थल थल हलें और उसके शरीरकी स्थूलता बढ़ी होय अर्थात् जैसी चाहिये तैसी न होय तथा उत्साह (होशयारी) न रहे ऐसे मनुष्यको जातिस्थूल कहते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तरामभाषुरप्रणीतमाधवभावार्थविधिनीमायुरीभाषादीकार्यां
मदोनिदान समाप्तम् ।

अथ काश्यनिदानम् ।



प्रसंगवशसे काश्य (क्षीण) रोगका निदान ग्रन्थान्तरसे लिखते हैं ।

वातो रुक्षान्नपानानि लंघनं प्रमिताशनम् ॥ क्रियातियोगः
शोकश्च वेगनिद्राविनिश्चः ॥ १ ॥ नित्यं रोगोऽरतिनित्यं
व्यायामो भोजनाल्पता ॥ भातिर्धनादिचिंता च काश्यका-
रणयीरितम् ॥ २ ॥ क्रोधोऽतिमैथुनं चैव शुक्रःयाधिस्तथैव
च ॥ काश्यस्य द्वेतवः प्रोक्ताः समस्तैरपि तांत्रिकैः ॥ ३ ॥

भाषा—कुपित वायु रुखा अन्न (चना, कांगनी, सामखि आदि), रुक्षपान औटाया जल आदि), लंघन, योडा भोजन, क्रियातियोग कहिये वर्मन विच-
नका बहुत होना, शोक बंधुवियोगादिक, मूत्र मल आदि वेगोंका रोकना, निद्राका
, नित्यही रोगी रहना, सर्वदा अरति होना, व्यायाम (दंड, कसरत और

मार्गका चलना आदि श्रम), अतिभय, धन आदिकी चिंता, क्रोध, अति मैथुन शुक्रव्याधि (प्रमेहरोग आदिक) ये सर्व कार्य क्षीण होनेके कारण वैद्य कहते हैं ॥

कृशमनुष्यके लक्षण ।

शुष्कस्फुगुदरशीवाधमनीजालसन्ततिः ॥

अस्थिशोषोऽतिकृशतः स्थूलपर्वनरो मतः ॥ ४ ॥

भाषा—जिसके कूले, पेट, गरदन और धमनी कहिये नाडियोंका जाल ये सब सूख जांय तथा इड़ी सूख जांय और पर्व कहिये जोड़ मोटे होंय वह पुरुष कृश (लटा) कहता है ॥

अति कृशको वर्जनीय वस्तु ।

व्यायाममतिसौहित्यं क्षुतिप्पासा महोषधम् ॥

न कृशः सहते तद्वदुतिशीतोष्मैथुनम् ॥ ५ ॥

भाषा—व्यायाम (दंड कसरत) का करना, अति सौहित्य (अच्छी बात), सूख, प्यास, उत्कट औषध तथा शीतलता, गरमी और मैथुन इनको कृश मनुष्य नहीं सह सके हैं इसीसे इनको त्याग दे ॥

आति कृशके जो रोग होते हैं उनको कहते हैं ।

मोहः कासः क्षयः श्वासगुल्माशीर्स्युदराणि च ॥

भृशं कृशं प्रधावन्ति रोगाश्च ग्रहणीसुखाः ॥ ६ ॥

भाषा—जो मनुष्य ज्वरादि रोगसे कृश होय अथवा वातरुक्षान्वपानादिकसे कृश होय और वह कुपथ्य करे तौ इतने रोग होय जो विदाही और अभिष्यंदी वस्तु स्वाय तौ प्लीह (तापतिली) होय और खटाई स्वाय तौ सासी होय और अति मैथुन करे तौ क्षईका रोग होय, और व्यायाम शीतल भोजनपानादिक करे तौ श्वासरोग होय, जो रुखा अन्वपान, कहुवा, खटा भक्षण और शीतल भारी चिकना आदिका सेवन करे तौ गुलम (गोला) होय और अर्श (बवासीर) कारक पदार्थ सेवनसे बवासीर होय । इसी प्रकार उदररोग संग्रहणी आदि रोग होते हैं । अब कहते हैं कि कोई कृशभी बलवान् होय है इसमें क्या हेतु है ॥

आधानसमये यस्य शुक्रभागोऽधिको भवेत् ॥

मेदोभागस्तु हीनः स्यात्स कृशोऽपि महाबलः ॥ ७ ॥

भाषा—गर्भ रहनेके समय शुक्रका भाग अविक होय- और मेदका भाग थोड़ा होय तौ मेद थोड़ा होनेसे तो कृश होय और शुक्राधिक्य होनेसे बलवान् होय ॥

कस्यचित् स्थूलस्यापि ताहक् बलं न दृश्यते तत्र हेतुमाह ।
मेदसोऽज्ञोऽधिको यस्य शुक्रभागोऽल्पको भवेत् ॥
स स्त्रिघोऽपि सुपुष्टोऽपि बलहीनो विलोक्यते ॥ ८ ॥

माषा—गर्भ रहते समय मेदका भाग आधिक होय और शुक्रका भाग योड़ा होय तौ वह पुष्टभी होय परंतु बलहीन होता है ॥

दृष्टन्त ।

यथा पिपीलिका स्वल्पा यथा च वरटी बलात् ॥
स्वतश्चतुर्गुणं भारं नीत्वा गच्छति तन्मुखम् ॥ ९ ॥

माषा—जैसे पिपीलिका (चेटी) आप आतिकृश है और खानेकी वस्तु दाल चाँबल आदि भारीभी है परंतु उनको खींचकर बिलमें ले जाती है और वरटी (पीली मांसी) झींगर आदि आपसे चौंगुने भारीभी हैं परंतु खींचकर अपने स्थानमें ले जाती हैं । इसी प्रकार बलवान् पुरुष जानना ॥

असाध्यकार्यमाह ।

स्वभावात् कृशकायो यः स्वभावादल्पपावकः ॥
स्वभावादबलो यश्च तस्य नास्ति चिकित्सितम् ॥ १० ॥

माषा—जिसका स्वतः स्वभावसे कृश शरीर है और जिसकी स्वभावसे मंदाग्नि है और जो स्वभावसे बलहीन है उसकी चिकित्सा नहीं है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनीमतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां
कार्श्यनिदान समाप्तम् ।

अथ उदररोगनिदानम् ।

अग्निका दुष्ट होना यही उदररोगका विशेषकरके कारण है ।
रोगाः सर्वैऽपि मन्देऽन्यो सुतंरामुदराणि च ॥

अजीर्णान्मालिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात् ॥ १ ॥

माषा—अग्नि मन्द होनेसे सब रोग होते हैं और उदर तौ विशेषकरके होता है

१ “ तेषामग्निबले हीने कुप्यांति पवनादयः । ” इति । २ “ तात्स्थ्यतद्वर्मताभ्यां च तरसमीपतयापि च । तत्साहच्याच्छब्दानां वृत्तेरेषा चतुर्विंश्या ॥ ” इति ।

कारण यह है कि अधिमांद्य यह त्रिदोषजनक है और अजीर्णसे मलिन अन्से (विरुद्ध अध्यशनादिक) और मल (दोष तथा पुरीषादिक) इनके संचयसे उदररोग होता है । इस जगह उदरशब्दकरके उदरस्थित रोग जानने सो ग्रन्थान्तरमें लिखा है ॥

उदरकी सम्प्राप्ति ।

रुद्धा स्वेदांबुवाँहीनि दोषाः स्रोतासि संचिताः ॥

प्राणाद्यपानान्संदूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥ २ ॥

माषा-चातादिदोष स्वेद (पसीना) वहनेवाली और जलको वहनेवाली नाड़ी-योंके मार्गको रुद्ध (रोक) कर और वे दोष बढ़कर प्राणवायु, अग्नि और अपान-वायु इनको अत्यन्त दुष्ट कर मनुष्योंके उदररोग उत्पन्न करते हैं । उदररोगका पुर्व-रूप सुश्रुतमें लिखा है । “ तत्पूर्वरूपं बलवर्णकांक्षा वलीविनाशो जठरे तु राज्यः । जीर्णीपरिज्ञानविदाहवत्यो वस्तौ रुजः पादगतश्च शोथः ॥ ” इति ॥

उदरके सामान्यरूप ।

आध्मानं गमनेऽशक्तिदौर्बल्यं दुर्बलाग्निता ॥

शोथः सदनमंगाकां संगो वातपुरीषयोः ॥

दाहस्तंद्रा च सर्वेषु जठरेषु भवति हि ॥ ३ ॥

माषा-अकरा, चलनेकी शक्तिना नाश, दुर्बलता, मंदाग्नि, सूजन, अंगगूँनि, वायुका तथा मलका रुक्ना, दाह, तन्द्रा ये लक्षण सब उदरमें होते हैं ॥

उदररोगसंरूपा ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्रीहवद्धक्षतोदकैः ॥

संभवंत्युदराण्यष्टौ तेषां लिंगं पृथक् शृणु ॥ ४ ॥

माषा-पृथक् दोषोंसे अर्थात् वात, पित्त, कफसे, सञ्चिपातसे सञ्चिपातोदर, प्रीहोदर १ बद्धोदर १ क्षतोदर १ और जलोदर १ सब मिलाकर ८ मध्ये । उनके लक्षण पृथक् पृथक् कहते हैं ॥

तिनमें वातोदरके लक्षण ।

तत्र वातोदरे शोथः प्राणिप्राभिकुक्षिषु ॥ ५ ॥ कुक्षिपार्थो-

दुरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम् ॥ कुष्ककासोऽग्नमदौऽधो गुरुता

१ “ अतिसचितदोषाणा पापकर्म च कुर्वताम् । उदराण्युपजायते मंदाग्नीना विशेषतः ॥ स्वेदवहाना भेदोमूल लोमकूपश्च । ” इति । २ “ उदकवहानां स्रोतसां तालुमूलं क्लोम च ” इति ।

भलसंग्रहः ॥ ६ ॥ इयावारुणत्वगादित्वमकस्माद् वृद्धिहास-
वत् ॥ सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णाशिराततम् ॥ ७ ॥ आधमा-
तहृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ॥ वायुश्वाच सरुकछब्दो
विचरेत्सर्वतो गतिः ॥ ८ ॥

भाषा—वातोदरमें हाथ, पैर, नाभि और कूख इनमें सूजन होय; संधियोंका टूटना तथा कूख, पसवाड़े, पेट, कमर, पीठ इनमें पीड़ा; सूखी खांसी, अंगोंका टूटना, कमरसे नीचेके भागमें भारीपना, मलका संग्रह होना, त्वचा नख नेत्रादिकका काला लाल होना, पेट अकस्मात् (निमित्तके विना) बड़ा हो जाय, छोटा हो जाय, सुई चुभानेकीसी तथा नोचनेकीसी पीड़ा होय, पेट चारों तरफ बारीक काली झिराओं (नाड़ियों) से व्याप्त होय, चुटकी मारनेसे फूली पखालके सभान शब्द होय इस उदरमें वायु चारों तरफ डोलकर शूल करे तथा गूंजे ॥

पित्तोदरके लक्षण ।

पित्तोदरे ज्वरो मूच्छी दाहस्तूद कटुकास्यता ॥ भ्रमोऽतिसारः
पातत्वं त्वगादाबुदरं हरित् ॥ ९ ॥ पीतताप्रशिरानद्वं सस्वेदं
सोष्म दद्यते ॥ धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १० ॥

भाषा—पित्तके उदररोगमें ज्वर, मूच्छी, दाह, प्यास, मुखमें कड़वासा, भ्रम, अतिसार, त्वगादिक (नख नेत्र) इनमें पीलापना, पेट हरा होय, पाली, तामेके रंगकी नाड़ियोंसे उदर व्याप्त हो, पसीना आवे, गरमीसे सब देहमें दाह होय, आंतोंसे धुआंसा निकलता दीखे, हाथके स्पर्श करनेसे नरम मालूम हो, शीघ्र पाक होय अथवा जलोदरत्वको प्राप्त हो और उसमें धोर पीड़ा होय ॥

कफोदरके लक्षण ।

श्वेषमोदरेऽगस्तदनं स्वापः श्वयथुगौरवम् ॥ निद्रोत्क्लेशोऽरुचिः
श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता ॥ ११ ॥ उदरं स्तिमितं स्त्रिघं शुक्ल-
राजीततं महत् ॥ चिराभिवृद्धिकठिनशीतस्पर्शं गुरुस्थिरम् ॥ १२ ॥

भाषा—कफके उदररोगमें हाथ पैर आदि अंगोंमें शून्यता हो और जकड़ जाय, सूजन होय, अंग भारी हो जाय, निद्रा आवे, बमन होगी ऐसा मालूम होय, अरुचि होय, श्वास, खांसी होय, त्वचा नख नेत्रादिक सपेद हों, पेट निश्चल चिकना सपेद नाड़ियोंसे व्याप्त हो, इसकी वृद्धि बहुत कालमें होय, पेड़ करडा और शीतल मालूम होय तथा भारी और स्थिर होय ॥

सन्निपातोदरके लक्षण ।

स्त्रियोऽन्नपानं नखरोमसूत्रविडार्त्वैर्युक्तमसाधुवृत्ताः ॥

यस्मै प्रयच्छन्त्यरथो गरांश्च दुष्टांबुदूषीविषसेवनाद्वा ॥ १३ ॥

तेनाशु रलं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः सुवोरं जठरं चिरिंगम् ॥

तच्छोत्तवाते भृशदुर्दिने वा विशेषतः कुर्याति दृश्यते च ॥ १४ ॥

स चातुरो मूर्च्छिति हि प्रसक्तं पांडुः कृशः शुष्यति सेवया च ॥

दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव-

भाषा-खोटे आचरणवाली स्त्री जिस पुरुषको नख, केश (वार), मल, मूत्र, आर्तव (रजोदर्शका रुधिर) मिळा अन्नपान देय अथवा जिसका शत्रु विष देवे, अथवा दुष्टांबु (जहरमिला, मछली तिनका पत्ता आदि औटा हुआ ऐसा जल) और दूषीविष (मन्दविष) इनको सेवन करनेसे रुधिर और वातादिक दोष शीघ्र कुपित होकर अत्यन्त भयंकर त्रिदोषात्मक उदररोग उत्पन्न करते हैं, वे शीतकालमें अथवा शीतल पवन चले उस समय अथवा जिस दिन वर्षाका झड़ लगे उस दिन विशेषकरके कोपको प्राप्त हो और दाह होय । इसका कारण यह है कि उस समय दूषीविषका कोप होता है । वह रोगी निरंतर विषके संयोगसे मूर्च्छित होय, देहका पीला वर्ण तथा कृश होय और परिश्रम करनेसे शोष होय तो इसको दूष्योदरे ऐसा कहते हैं ॥

प्लीहोदरके लक्षण ।

प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ १५ ॥

विदाहीभिष्यांदिश्तल्य जंतोः प्रदुष्टमत्थर्थमसूक्षफश्च ॥

प्लीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धो प्लीहोत्थमेतज्जठरं वदन्ति ॥ १६ ॥

तद्वामपार्थं परिवृद्धिमोत विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ॥

मन्दृच्वराग्निः कफपित्तलिंगहृपद्गुतः क्षीणवल्लोऽतिपांडुः ॥ १७ ॥

भाषा-अब प्लीहोदरके लक्षण कहता हूँ तू स्तून । विदाही (वंश करीरादि) अर्थात् दाह करनेवाले और अभिष्यद्वी (दध्यादि) अर्थात् स्रोत (छिद्र) रोकनेवाले ऐसे अन्न निरंतर सेवन करनेवाले पुरुषके अत्यंत दुष्ट भये जो रुधिर और कफ बढ़कर प्लीह (तापतिली) को बढ़ावे इस उदरको प्लीहोत्थ उदर कहते हैं ।

१ यदुक्तम्—“ जीर्ण विषज्ञोषधिभिर्हृत वा दावाग्निना वाऽत्पशोषित वा । स्वभावतो वा गुणविश्रहीन विषं हि दूषीविषतामूष्यते ॥ ” इति । २ एतदेव सन्निपातोदरं दूष्योदर कीर्तित न पुनरधिक इत्यर्थः । रत्न दूष्य दूषयित्वा भवतीति दूष्योदर कि वा परस्पर दूषयतीति दोषा एव दूष्यास्तैः कृतमुद्रर दूष्योदरम् ।

यह वर्णित तरफ बढ़ता है। इस अवस्थामें रोगी बहुत दुःख पाता है, देहमें मंदज्ज्वर होय, मंदाग्नि होय तथा कफपित्तोदरके लक्षण इसमें मिलते हैं, बलक्षीण होय, अत्यंत पीला वर्ण होय ॥

यकृद्वाल्युदरके लक्षण ।

सव्यान्यपाश्वे यकृति प्रदुषे ज्ञेयं यकृद्वाल्युदरं तदेव ॥ १८ ॥

भाषा—दहने तरफ जो यकृत कहिये कलेजा है वह दुष्ट कहिये रोगयुक्त होनेसे छीहोदरके समान उदर होय उसको यकृद्वाल्युदर कहते हैं। दोषोंकरके यकृतका मेद होता है। इसीसे यकृद्वालि उदर कहते हैं ॥

इसमें दोषोंका संबंध कहते हैं ।

उदावर्त्तरुजानाहैमौहतृङ्गदहनज्वरैः ॥

गौरवासुचिकाठिन्यविद्यात्तत्र मलान्क्रमात् ॥ १९ ॥

भाषा—उदावर्त्त, शूल, अफरा इनसे वायु, मोह, प्यास, ज्वर इनसे पित्त और मारीपना, अरुचि, कठिनता इनसे कफ ऐसा क्रमपूर्वक दोषोंका संबंध ज्ञानना ॥
बद्धगुदोदरके लक्षण ।

यस्यांत्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाइमाभिर्वा पिहितं यथावत् ॥

संचीयते तस्य मलः सदोषः शनैः शनैः संकरवच्च नाळ्याम् ॥२०॥

निरुद्ध्यते तस्य गुदे पुरीषं निरेति कृश्रादितिचालपमल्पम् ॥

ह्लन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति ॥ २१ ॥

भाषा—जिस पुरुषकी आंत उपलेप कहिये गाढे अन्नकरके (शाकादिक) अथवा बाल तथा बारीक पत्थरके टुकड़ेकरके बद्ध हो जाय, उस पुरुषका दोषयुक्त मल धीरे धीरे आंतडीकी नलीमें होकर जैसे बुद्धारीसे ज्ञारा तृण धूर आदि क्रमसे बढ़े हैं उसी प्रकार बढ़े और वह मल बढ़े कष्टसे गुदाद्वारा थोड़ा २ निकले। जब मलका निकलना बंद हो जाय तब मल दोषोंकरके गुदासे ऊपर आवे इसीसे उदर बढ़े हैं अर्थात् हृदय और नाभिके मध्य अन्नपाकस्थानकी वृद्धि होय। इसीसे इस उदरको बद्धगुदोदर कहते हैं। अथवा गुदाके ऊपर आंतोंका बद्ध होनेसे बद्धगुद कहते हैं यह चरकका मत है ॥

क्षतीदरके लक्षण ।

शालयं तथान्नोपद्वितं यदंत्रं भुक्तं भिनत्यागतमन्यथा वा ॥

तस्मात्तुतोऽत्रात्सलिलप्रकाशः स्नावः स्नवेद्वै गुदतस्तु भूयः ॥२२ ॥

१ यकृद्वाल्यति दोषैर्मैद्यताति यकृद्वाल्युदरम् ।

नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम् ॥ एतत्परिस्त्राव्युदरं प्रदिष्टम्-

भाषा—काँटा धूल आदि अज्ञके साथ मिलकर पेटमें चला जाय अर्थात् पक्कांश-यमें विलोम (देढ़ा तिरछा) चला जाय तब आंतोंको काटे और सीधा जाय तो नहीं काटे अथवा जंभाई अति अशन करनेसे अर्थात् रोकनेसे आत फट जाय सो चरकर्म लिखामी है । उन फटे आंतोंसे गलित पानीके समान स्वाव मुनः गुदके मार्ग होकर झेर; नाभिके नीचेका भाग बढ़े, नोचनेकीसी तथा भेद (चीरने) कीसी पीड़ासे अत्यन्य व्यथित होय, इस क्षतोदरको ग्रन्थांतरमें परिस्त्रावि उद्दर कहते हैं और इसीको छिद्रोदर कहते हैं यह गयदासका मत है ॥

जलोदरकी उत्पत्तिसह लक्षण ।

दक्षोदरं कीर्तयतो निवोध ॥ २३

यः स्तेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वांतो विरिक्तोऽप्यथ वा निरूद्धः ॥
पिवेजलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दूष्यन्ति हि तद्वानि ॥ २४ ॥
स्तेहोपलित्सेष्वथ वापि तेषु दक्षोदरं पूर्ववदभ्युपैति ॥

स्तिर्घं महत्तपरिवृद्धनाभिसमाततं पूर्णभिवांबुना च ॥

यथा द्वतिः क्षुभ्याति कंपते च श्वान्दायते चापि दक्षोदरं तत् ॥ २५ ॥

भाषा—अब जलोदर कैसे होता है उसको कहते हैं । स्तेह (धूत तैलादि) पान करा होय अथवा अनुवासन बस्ति करी हो, बमन करा हो अथवा दस्त करा हो अथवा निरूद्धवस्ति करी हो ऐसा पुरुष शीतल जल पीवे तब उसकी जल वहनेवाली नसोंके मार्ग तत्काल दुष्ट होते हैं । वे उदक वहनेवाले स्रोत (मार्ग) स्तेहसे उपलिप्त (चीकने) होनेसे पूर्ववत् (अर्थात् अज्ञरस उपस्तेहन्यायकरके अर्थात् इनको बाहर लायकर उदरको उत्पन्न करे) जलोदर होता है । उसमें चिकनापन दीवे, ऊँचा होय, नाभिके पास बहुत ऊँचा होय, चारों ओर तनासा मालूम होय, पानीकी पोट भरीसी होय, जैसी पानीसे भरी पस्तालमें जल हले है उसी प्रकार हले, गुद्गुद शब्द करे, कांपे इसको जलोदर अर्थात् जलंधर कहते हैं ॥

साध्यासाध्यनिचार ।

जन्मनैवोदरं सर्वे प्रायः कृच्छ्रतमं विदुः ॥

बलिनस्तदजातांबुयत्साध्यं नवोत्तितम् ॥ २६ ॥

१ “ शर्करांतृणकोष्ठास्थिकंटकैरन्नसंयुतैः । भिद्येतान्त्र यदा मुक्तैर्जैर्भयास्यशनेन वा ॥ इति ।

माषा—सर्व प्रकारके उदर जन्मसेही प्रायः अत्यन्त कष्टसाध्य होते हैं । बलवान् पुरुषके नवीन प्रगट भया हो और उसमें पानी नहीं प्रगट भया हो ऐसा बड़े यत्नसे साध्य होता है । पानी नहीं प्रगट भया हो ऐसे उदरके लक्षण चरकर्में कहे हैं ॥

अशोथमरुणाभासं सृज्ञब्दं नातिभारिकम् ॥ २७ ॥ सदा गुड-
गुडायंतं शिराजालगवाक्षितम् ॥ नाभि विष्टभ्य पायो तु
वेगं कृत्वा प्रणश्यति ॥ २८ ॥ हृदंशणकटीनाभिगुदं प्रत्ये-
कशूलिनः ॥ कर्कशं सृजतो यानं नातिमन्दे च पावके ॥ २९ ॥
लोलस्याचिरमेवास्थे मूत्रेऽलपे संहते विश्वि ॥ अजातोदक-
मित्येत्युलं विज्ञाय लक्षणेः ॥ ३० ॥

जातोदकके लक्षणभी चरकर्में इस प्रकार कहे हैं सो लिखते हैं ॥
यथा ।

पयःपूर्णा हृतिरिव क्षोभे शब्दकरं मृदु ॥
अप्रध्यक्षशिरं शूनं नितान्तमुदरं महत् ॥ ३१ ॥
आलस्यमास्यवैरस्यं मूत्रं बहुशकृतस्तुतम् ॥
जातोदकस्य लिंगं स्यान्मदोऽग्निः पांडुतापि च ॥ ३२ ॥
इति ।

पक्षाद्वद्वगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा ॥

प्रायो भवत्यभावाय छिद्रांत्रं चोदरं सृणाम् ॥ ३३ ॥

माषा—बद्धगुदोदर १५ दिवसके पिछाड़ी असाध्य होता है, उसी प्रकार सब प्रकारके उदय (पानी) उत्पन्न होनेसे नाशकारक होते हैं, और छिद्रांत्रोदर यह प्रायः नाशक होता है । कदाचित् शल्य अथवा शख्वचिकित्सा जैसी होनी चाहिये तैसी होय तो उदक (पानी) प्रगट भया उदररोग छिद्रांत्र अथवा बद्धगुद साध्य होता है यह प्रायः इस पदसे सूचना करी ॥

असाध्यलक्षण ।

शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्षिप्रतनुत्वचम् ॥

बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणं च वर्जयेत् ॥ ३४ ॥

माषा—जिस उदररोगीके नेत्रोंपर सूजन होय. लिंग टेढ़ा हो गया हो, पेटकी त्वचा गीली तथा पतली हो गई होय, बल, रुधिर, मांस और आग्नि ये जिसके क्षीण हो गये हों ऐसा रोगी त्याज्य है ॥

द्वासरे असाध्य लक्षण ।

पार्श्वभंगान्नविद्रेषशोथातीसारपीडितम् ॥

विरिक्तं चाप्युदीरणं पूर्यमाणं विवर्जयेत् ॥ ३६ ॥

माषा—पार्श्वभंग (पसरियोमे पीडा), अन्नमें अरुचि, शोथ, अतिसार इनसे पीडित और दस्त करनेसे जिसका पेट फिर पानीसे मर जाय ऐसे उदररोगीको वैद्य त्याग देय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाशुरप्रणीतमाघवार्थषोधिनीमाशुरीभाषादीकाया
उदररोगनिदान समाप्तम् ।

अथ शोथरोगनिदानम् ।

—————
शोथकी संप्राप्ति ।

रक्तपित्तकफान्वाखुर्दुष्टो दुष्टान्वहिःशिराः ॥

नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ॥

सोत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निर्विचयादतः ॥ १ ॥

माषा—कुपित भई वायु स्वकारणसे दृष्ट भये रक्तपित्तकफको बाहा शिरा (वाह-रकी नाडियों) में प्राप्त हो तब उनकी गति बंद करे इसीसे वह पवन त्वचा और मांस इनके आश्रयसे सूजन उत्पन्न करे । वह सूजन ऊँची और कठिन होय । इसको रक्तसहित त्रिदोषोका संबंध है अर्थात् सञ्चिपातात्मक ऐसा कहते हैं । “ त्वङ्-मांससंश्रयम् ” इस पदसे ब्रणशोथ जो शोथका भेद है सो दिखाया दयोकि ब्रणका संभव आठ ब्रणवस्तुओंमें होनेसे सो कहामी है । “ त्वङ्-मांसशिरान्नायुअ-स्थिसन्धिकोषे मर्माणि इति अष्टौ ब्रणवस्तूनि भवन्ति ” इति ॥

सर्वे हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्ववात्मकम् ॥

दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिवाताद्विषादपि ॥ २ ॥

माषा—वह सूजन कारणभेदसे कार्यभेद होकर नौ प्रकारकी होती है । यथा अलग अलग दोषोंसे ३, द्व्यंज ३, सञ्चिपातज १, अभिवातज १ और विषसे १ ऐसे सब मिलकर नौ प्रकारका शोथरोग भया ॥

निदान ।

शुद्धामया भक्तकृशा बलानां क्षारम्लतीक्षणोष्णगुरुरूपसेवा ॥

दध्यामसृच्छाकविरोधिपिष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च ॥ ३ ॥

अर्जीस्यचेष्टा वपुषो ह्यशुद्धिर्मांभिघातो विषमा प्रसूतिः ॥

मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणां च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः ॥४॥

भाषा—वमन आदि, ज्वरादिक, अभोजन (विगुण भोजन) इनसे जो कृश और बलहीन मनुष्योंके क्षारादिकका सेवन सूजनेका कारण होता है । तहाँ नोन, खटाई, तीखी, उण्ण, भारी वस्तुओंमें दही, अपक मट्ठी, निषिद्ध साग, विशुद्ध (क्षीरमत्स्यादिक), संयोगजविषसे दूषित अन्नके सेवन करनेसे, ववासीर, दंड कसरतके न करनेसे, शोधनके योग्य दोषोंके न शोधनेसे, हृदयादि मर्मोंके दोषजन्य उपघातसे, कञ्चा गर्भपात होना, विषमप्रसूति, वमनादि पंच कर्मोंका मिथ्या योग ये सर्वे दोषज सूजनका कारण कहे हैं ॥

पूर्वलूप ।

तत्पूर्वरूपं क्षवथुः शिरायामोऽगगौरवम् ॥ ५ ॥

भाषा—संताप, नसेंकी तननेके समान पीड़ा, देह भारी ये लक्षण सूजन होनेवाले पुरुषके होते हैं ॥

सामान्यलक्षण ।

सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्मा च शिरातनुत्वम् ॥

सलोमहर्षश्च विवर्णता च सामान्यलिंगं श्वयथोः प्रदिष्टम् ॥ ६ ॥

भाषा—अंग भारी हो, चित्तमें स्वस्थता न होना, ऊँची सूजन और दाह, नसें पतली हो जाय, रोमांच और देहका रंग बदल जाय ये सूजनके सामान्य लक्षण हैं ॥

वातज शोथके लक्षण ।

चलस्तनुत्ववपुरुषोऽरुणोऽसितः ससुसिहर्षार्तियुतोऽनिमित्ततः ॥

श्रशाम्याति प्रोब्रमतिप्रपीडितो दिवाबलीस्याच्छृथुःसमरिणात् ॥

भाषा—वादीसे सूजन चंचल, त्वचा पतली हो जाय, कठोर हो, लाल, काली तथा त्वचा शून्य पड़ जाय, भिन्न भिन्न वेदना हो अथवा रोमांच और पीड़ा हो, कदाचित् निमित्तके बिना शांत हो जाय उस सूजनके दावनेसे तत्क्षण उपरको उठ आवे, दिनमें जोर बहुत करे ॥

पित्तज शोथके लक्षण ।

मृदुः सगंधोऽसितपीतरागवान् ब्रमज्वरस्वेदतृष्णमदान्वितः ॥

य उष्यते स्पर्शरुगक्षिरागकृत् स पित्तशोथो भृशादाहपाकवान् ॥ ८ ॥

माषा-पित्तकी सूजन नरम, कुछ दुर्गंधयुक्त, काली, पीली और लाल होय । उसके होनेसे भ्रम, ज्वर, पसीना, प्यास और मस्तपना ये लक्षण होय, दाह होय, हाथ लगानेसे दूखे, इसीसे नेत्र लाल हों, उसमें अत्यंत दाह तथा पाक होता है ॥

कफज शोथके लक्षण ।

**गुरुः स्थिरः पांडुररोचकान्वितः प्रस्पेकानिद्रावष्मिवहिमांघ्यकृत् ॥
सकृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो न चोद्यमेद्रात्रिवली कफात्मकः ॥९॥**

माषा-कफकी सूजन मारी, स्थिर, पीली होती है । इसके योगसे अन्धेष, लारका गिरना, निद्रा, वमन, मन्दाग्नि ये लक्षण होय तथा इस सूजनकी उत्पत्ति और नाश बहुत कालमे होय, इसको दबानेसे ऊपरको नहीं उठे, रात्रिमें इसकी ग्रबलता हो ॥

द्वंद्ज और संचिपातज शोथके लक्षण ।

निदानाकृतिसंसर्गच्छयथुः स्याद्विदोषजः ॥

सर्वाकृतिः सविपाताच्छोथो व्याघ्रिश्रलक्षणः ॥ १० ॥

माषा-दो दोषोंके लक्षण और कारण एकत्र मिलनेसे द्वंद्ज-शोथ जानना और संचिपातसे सूजन होय उसमें वातादिक तीर्णों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥

अभिघातज शोथके लक्षण ।

अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः ॥

द्विमानिलो दध्यनिलैर्भद्धातकपिकच्छुजैः ॥ ११ ॥

रसः शूकैश्च संस्पर्शाच्छयथुः स्याद्विसर्पवान् ॥

भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥ १२ ॥

माषा-काषादिककी चोट लगनेसे, शस्त्रादिकसे छेदन होनेसे, पत्थर आदिसे फूटनेसे अथवा घावके होनेसे, आदिशब्दसे लकड़ी आदिके प्रहारसे, शीतल पवन लगनेसे, समुद्रकी पवन लगनेसे, भिलायेका तेल लग जानेसे और कौचकी फलीका स्पर्श होनेसे जो सूजन होय वह चारों तरफ फैल जाय, अत्यन्त दाह होय, उसका रंग लाल होय और विशेषकरके इससे पित्तके लक्षण होते हैं ॥

विषज शोथके लक्षण ।

**विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् ॥ दंशादंतनखाधाता-
दविषप्राणिनामपि ॥ १३ ॥ विषमूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्र-**

संकरात् ॥ विष्वृक्षानिलस्पशाद्ग्रयोगावच्छर्णनात् ॥ मृदुश्च-
लोऽवलंबी च शीघ्रो दाहरुजाकरः ॥ १४ ॥

भाषा—विषवाले प्राणियोंके अंगपर चलनेसे अथवा सूतनेसे अथवा निर्विष (विषराहित मनुष्यादि) प्राणियोंके डाढ, दांत नख लगनेसे अथवा सविष प्राणियोंके विष्ठा, मूत्र, शुक्र इनसे भरा अथवा मालिन वस्त्र अंगमें लगनेसे अथवा विषवृक्षकी हड्काके लगनेसे अथवा संयोगज विष अंगमें लगनेसे जो सूजन उत्पन्न होती है वह विषज कहलाती है । वह सूजन नरम, चंचल, भीतर प्रवेश करनेवाली जल्दी प्रगट होनेवाली, दाह और पीड़ा करनेवाली होती है ॥

जिस जिस ठिकाने दोष सूजन उत्पन्न करे उनको कहते हैं ।

दोषाः श्यथुमूर्ध्वं हि कुर्वेत्यामाशयस्थिताः । १५ ॥

पक्षाशयस्था मध्ये तु वर्चःस्थानगतास्त्वधः ॥

कुत्सदेहमनुप्राप्ता कुर्युः सर्वरसं तथा ॥ १६ ॥

भाषा—आमाशयस्थित दोष ऊपर (उरःस्थानादिकोंमें) सूजनको करें, पक्षाशयमें स्थित दोष मध्ये कहिये उर और पक्षाशय इन दोनोंके नीचमें सूजन करें, मलस्थानगत दोष नीचेके स्थान (पैर आदि) में सूजन करें और सर्व देहमें दोष स्थित होनेसे सब देहमें सूजनको करते हैं ॥

सूजनके कृच्छ्रादिभेद ।

यो मध्यदेशो श्यथुः सकृष्टः सर्वगच्छ यः ॥

अधोऽगेऽरिष्टभूतः स्याद्यश्वोध्वं परिसर्पीति ॥ १७ ॥

भाषा—जो सूजन मध्यदेशमें तथा सब देशमें होय वह कष्टसाध्य है और सूजन नीचेके अंगमें प्रगट हो ऊपरको चढ़े वह असाध्य है ॥

असाध्य लक्षण ।

श्वासः पिपासा छार्दिंश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च ॥

यस्य चान्ने रुचिर्नास्ति शोथिनं परिवर्जयेत् ॥ १८ ॥

भाषा—श्वास, प्यास, वमन, दुर्बलता, ज्वर ये लक्षण होय और जिसकी अन्नमें अहुचि होय ऐसे सूजनवाले रोगीको वैद्य त्याग दे ॥

अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः ॥

पुरुषं हंति नारीं तु मुखजो गुह्यजो द्रव्यम् ॥

नवोऽनुपद्रवः शोथः साध्योऽसाध्यः पुरोरितः ॥ १९ ॥

भाषा-अन्य रोगोंके उपद्रवसे प्रगट न भई हो ऐसी सूजन पहिले पैरोंमें उत्पन्न हो फिर सुख आदि ऊपरके स्थानोंमें प्राप्त होय उसको उलटी सूजन कहते हैं । वह पुरुषका नाश करे और जो प्रथम सुखपर होकर पीछे पैरोंपर उत्तरे वह सूजन खियोंकी धातक है और जो प्रथम गुदामें उत्पन्न होकर सब देहमें व्याप्त हो वह स्त्रीपुरुष दोनोंकी नाशक है । नवीन और उपद्रवराहित जो सूजन होय वह साध्य है और “ अधोऽगेऽरिष्टसंभूतः ” इत्यादि क्षेकमें कही हुई सूजन असाध्य है ।

शोथके उपद्रव ।

छर्दिस्तृष्णारुचिः शासो ज्वरोऽतीसार एव च ॥

सप्तकोऽयं सदौर्बल्यः शोथोपद्रवसंश्वङ्गः ॥ २० ॥

भाषा-छर्दि, प्यास, अरुचि, श्वास, ज्वर, अतिसार, दुर्बलता ये सात सूजनके उपद्रव हैं यह चरकमें लिखा है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाघवार्थबोधिनीमाथुरीभाषादीकायां
शोथरोगनिदान समाप्तम् ।

अथांडवृद्धिनिदानम् ।

सम्प्राप्ति ।

कुद्धोऽनुर्ध्वगतिर्वायुः शोथशूलकरश्वरन् ॥

मुष्को वंक्षणतः प्राप्य फलकेशाभिवाहिनीः ॥

प्रपीड्य धमनीर्वृद्धिं करोति फलकेशयोः ॥ १ ॥

भाषा-कुपित भई अधोगमनशील (नीचे विचरनेवाली) तथा सूजन और शूल उत्पन्न करनेवाली वायु कूखमें संचार करती हुई, अंडकोश और वंक्षण (अंडकोश और जंघाकी संधि) से अंडमे आयकर अंडकी वृद्धि और कोश इनके वहनेवाली धमनी (नाडी) को दुष्ट कर अंडकी (दोनों अंडकी अथवा एक ओरके अंडकी) वृद्धि करती है ॥

दोषास्त्रमेदोमूत्रांत्रैः सवृद्धिः सप्तधा गदः ॥

मूत्रांत्रजावप्यनिलाञ्छेतुभेदस्तु केवलम् ॥ २ ॥

भाषा-वह वृद्धिरोग तीनोंसे ३, रुधिरसे १, मेद १, मूत्र १ और आंतोंसे १ ऐसा सात प्रकारका है । मूत्रज और अंत्रज वृद्धि ये दोनों वायुसे होते हैं । परन्तु

इन दोनोंके निदान और चिकित्सामें भेद होनेसे पृथक् ग्रहण करा है वह लिखायी है।
“ सूत्रांत्रजावप्यनिलाद्येतुमेदस्तु केवलम् । ” इति ॥

वात, पित्त, कफ और भेद इनसे प्रगट भई वृद्धिके लक्षण ।

वातपूर्णादतिस्पश्चा रुक्षो वातादहेतुरुक्त् ॥

कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिंगैश्च पित्तजः ॥

कफवन्मेदसो वृद्धिमृदुस्तालफलोपमः ॥ ६ ॥

भाषा-वातसे भरी मसक जैसी हाथसे लगनेसे मालूम होय ऐसा मालूम होय । रुक्ष और विना कारण दूखने लगे, वह वातकी अंडवृद्धि जाननी । काले फोड़ोंसे व्याप्त तथा जिसमें पिच्चवृद्धिके लक्षण मिलते होय उस अंडवृद्धिको पित्तकी तथा रक्तकी कहते हैं । मेदसे जो अंडवृद्धि होती है वह कफकी वृद्धिके समान मृदु (नरम) तथा तालफलके समान हो अर्थात् पीले रंगज्ञी और गोल होती है ॥

पित्तकी अंडवृद्धिके लक्षण ।

पकोदुमधरसङ्काशः पित्ताद्वाष्मयाकवान् ॥ ८ ॥

भाषा-पित्तकी अंडवृद्धि पके गूलरके समान होती है तथा दाह और गरमी तथा पकनेवाली होती है ॥

कफकी अंडवृद्धिके लक्षण ।

कफाच्छीतो गुरुः स्निधः कंदूमान्कठिनोऽल्परुक्त् ॥

भाषा-कफसे अंडवृद्धि शीतल, भारी, चिकनी तथा खुजलीयुक्त, कठिन और थोड़ी पीड़ायुक्त होती है ॥

सूत्रवृद्धिके लक्षण ।

सूत्रधारणशीलस्थ वृत्तजः स च गच्छति ॥ ९ ॥

अंभोभिः पूर्णहतिक्तकोभं याति सरुङ्गमृदुः ॥

सूत्रकृच्छ्रमधः स्थाच्च चलयन्फलकोशयोः ॥ ९ ॥

भाषा-सूत्रको रोकनेका जिसको अभ्यास होय उसके यह रोग होता है । वह पुरुष जब चले तब पानीसे भरी पखालके समान डवकडवक हले तथा बजे और उसमें पीड़ा थोड़ी होय, हाथके हौनेसे नरम मालूम होय, उसमें सूत्रकृच्छ्रकीसी पीड़ा होय फल और कोश दोनों इधर उधर चलायमान होय ॥

अंत्रवृद्धिके लक्षण ।

वातकोपिभिराद्वारैः शीतत्रयावगाहनैः ॥ धारणे रण्भाराच्च-

विषमांगप्रवर्त्तने ॥ ७ ॥ क्षोभणैः क्षुभितोऽन्यैश्च क्षुद्रांत्रावयवं
यदा ॥ पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ॥ कुर्याद्दं-
क्षणसंधिस्थो ग्रन्थ्याभं श्वप्यथुं तदा ॥ ८ ॥

भाषा-वातकोपकारक आहोरके सेवन करनेसे, शीतल जलमें प्रवेग करके स्नान-
करनेसे, उपस्थित मूत्रादि वर्गोंके धारणसे, व्याप्रासवेग अर्थात् करनेकी इच्छा न होय
उसको बलपूर्वक प्रेरणा करनेसे, भारी वोझके उठानेसे, आदिमार्गके चलनेसे, अंगोंकी
विषम चेष्टा अर्थात् टेढा तिरछा अंग करके गमनादिक करनेसे, बलवान्से वैर
करना, कठिन धनुषका ईच्छा इत्यादि ऐसेही और कारणोंसे कुपित भया वायु
छोटी आंतोंके अवयवोंके एक देशको विगाड़कर अर्थात् उनका संकोच कर अपने
रहनेके स्थानसे उसको नीचे ले जाय तब वंक्षणसंधिमें स्थित होकर उस स्थानमें
गांठके समान सूजनको प्रगट करे ॥

इसको औषध न करनेका परिणाम ।

उपेक्षमाणस्य च मुष्कवृद्धिमाध्मानहृकर्तंभवतीं स वायुः ॥
प्रपीडितोऽतः स्वनवान्प्रथाति प्रधमापयन्नेति पुनश्च मुक्तः ॥ ९ ॥

भाषा-जिस अंडवृद्धिसे अफरा होय, पीडा होय, जडता होय, उसकी उपेक्षा
करनेसे अर्थात् औषध न करनेसे तथा अंडकोशोंके दावनेसे जो वायु कोंकों शब्द
करे तथा हाथके दावनेसे वायु ऊपरको चढ जाय और छोड़नेसे फिर नीचे उतरकर
अंडोंको फुलाय दे ये लक्षण होते हैं ॥

असाध्य लक्षण ।

क्षुद्रांत्रावयवाञ्छेष्मा मुष्कयोर्वात्संचयात् ॥

अंत्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः ॥ १० ॥

भाषा-छोटी आंतोंके अवयव (अंगवाला) कफवातके संचयसे मुष्कके विषे
प्राप्त होय तथा जिसमें वातके लक्षण कहे वे सब मिलते होंय वह अंडवृद्धि असाध्य
है । वर्ध्म अर्थात् वदरोगका निदान ग्रन्थान्तरमें लिखा है ॥

वर्ध्मरोगनिदान ।

अन्त्यभिष्यदिगुर्वामसेवनान्निचयं गतः ॥ ११ ॥ करोति

ग्रन्थिवच्छोफं दोषो वंक्षणसन्धिषु ॥ ज्वरशूलांगदाहांत्यं तं

वर्धमिति निर्दिशेत् ॥ १२ ॥ यस्य पूर्वं फिरंगाख्यो रोगो भूत्वा

प्रश्नाभ्यति ॥ तस्य जंतोर्वर्ध्मरोगमित्युक्तः सुश्रुतादिभिः ॥ १३ ॥

तथोष्णवात्जुष्टस्य वेदव्रणयुत्तस्य च ॥ तस्य पुंसो वर्ध्मरोगं प्रवदन्ति भिषग्वराः ॥ १४ ॥

भाषा—अभिष्यंदि वस्तुके खानेसे, भारी अन्नके खानेसे, कच्चे अन्नके खानेसे, चृद्धिको प्राप्त भये दोष अथवा “ अत्यभिष्यंदिगुर्वाम० ” इस जगह “ अत्यभिष्यंदिगुर्वज्ञशुष्कपूज्यामिषाशनात् । ” ऐसाभी पाठ है अर्थात् अभिष्यंदि भारी अन्नके खानेसे तथा सुखा और पूज्य कहिये गौ आदिके मांस खानेसे दोष (वात, पित्त, कफ) कुपित होकर वंक्षणको सन्धियोंमें अर्थात् वस्तिस्थानके समीप जिनको नरे कहते हैं उनमें सूजनको प्रगट करे उस सूजनके होनेसे ज्वर होय तथा सूजनमें पीड़ा होय, अंगोंमें अत्यंत दाह होय । जिस मनुष्यके पहिले फिरंग (सुजाक) का रोग होकर शांत हो गया होय उसके यह बदका रोग होता है । अथवा गरमी-बाले पुरुषके लिंगमें व्रण (घाव) होय उसके यह बदरोग होता है ॥

इति श्रीपणिडतदत्तराममाशुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाशुरीभाषावीकारां
अंदवृद्धिनिदानं समाप्तम् ।

अथ गलगंडनिदानम् ।

——————
निबद्धः श्यथुर्यस्य मुष्कवल्लंबते गले ॥

महान्वा यदि वा हस्तो गलगंडं तमादिशेत् ॥ १ ॥

भाषा—जिसके गलेमें अनुबंधयुक्त वडी अथवा छोटी अंडकोशके समान सूजन होकर लटके उसको गलगंड कहते हैं ॥

गलगंडकी संप्राप्ति ।

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टौ मन्यां समाश्रित्य तथैव मेदः ॥

कुर्वन्ति गंडं क्रमशास्त्रिलिंगैः समन्वितं तं गलगंडकाहुः ॥ २ ॥

भाषा—जिसके गलेमें दुष्ट भये वा कफ और उसी प्रकार मेद गलेकी दोनों मन्यानादियोंका व्याश्रय लेकर क्रमसे आप अपने लक्षणसंयुक्त गंड (गोला) उत्पन्न करे हैं उसको गलगंडरोग कहते हैं । यह रोग वात, कफ और मेद इन कारणोंसे तीन प्रकारका है । यह रोग अपनेही स्वभावसे पैत्तिक नहीं होता है । जैसे चारु-र्धिकज्वर अपने प्रभावसे जंघामें कफका और मस्तकमें वातका प्रथम आता है इसमें भी पित्तका नहीं होता है । उसी प्रकार इस रोगमें भी जाना नहीं होता है ॥

बातिक गलगंडके लक्षण ।

तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्वः इयावोऽरुणो वा पवनात्मकस्तु ॥

पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्धिपाक्षो यद्वच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥

वैरस्यभास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ॥३॥

भाषा—वातकी गलगंड काली नसेंसे व्यास होय और उसमें सुईके त्रुमनेकीसी पीड़ा होय, उसका रंग काला और लाल होय तथा कठोर होय, बहुतकालमें बढ़े तथा पके नहीं और जो पके तो कदाचित् यद्वच्छापूर्वक पके उस रोगीके मुखमें विरसता होय तथा तालु व गलेमें शोष होय ॥

कफज गलगंडके लक्षण ।

स्थिरः सबणौ गुरु रुग्मकंडूः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु ॥४॥

चिराभिवृद्धिं भजते चिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित् ॥

माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥५॥

भाषा—कफकी गलगंड स्थिर, त्वचाके रंगके समान बणे होय, भारी हो, खुजली बहुत चले, शीतल और बड़ी होती है । वह बहुत दिनमें बढ़े और बहुत कालमें पके, पीड़ा थोड़ी होय, मुखमें मिठास होय तथा गलेमें और तालुएमें कफ लिह-सासा होय ॥

मेदज गलगंडके लक्षण ।

स्निग्धो गुरुः पांडुरनिष्टुगंधो मेदोभवः स्वल्परुजोऽतिकंडूः ॥

प्रलंबतेऽलाखुवद्लपमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥

स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यम् ॥६॥

भाषा—मेदसे प्रगट गलगंड चिकना होय, भारी, पीलावर्ण, दुर्गंधयुक्त, मंद पीड़ा करनेवाला और अत्यन्त खुजली चले, वह तुंबीफलके समान लंबा होय, उसकी जड़ छोटी होय और देहानुरूप क्षय और वृद्धि इनसे युक्त होय अर्थात् देहके क्षीण होनेसे क्षीण हो जाय, देहके बढ़नेसे बढ़ जाय, उसका मुख तेल लगा होय ऐसा चिकना होय और बोलते समय गलेसे दो शब्द निकलें ॥

असाध्य लक्षण ।

कृष्णच्छृसन्तं मृदुसर्वगात्रसंवत्सरातीतमरोचकात्तर्म ॥

क्षीणं च वैद्यो गलगंडजुषं भिन्नस्वरं चापि विवर्जयेत् ॥७॥

भाषा—बड़े कष्टसे श्वास लेनेवाला, नरम शरीरवाला, जिसके गलगंड होकर वर्ष

दिन व्यतीत हो गया हो और अस्त्रिसे पीड़ित क्षीण हो गया होय और स्वरभेद-
युक्त ऐसे गलगंडपीड़ित मनुष्यको वैद्य त्याग दे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरकृतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषादीकायां
गलगंडनिदानं समाप्तम् ।

अथ गंडमालापचीनिदानम् ।

कर्क्खुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु ॥

मेदःकफाभ्यां चिरमंदपाकैः स्याद्गंडमाला बहुभिस्तु गंडैः ॥ १ ॥

भाषा—मेद और कफ इनसे प्रगट भया कूख, कंधा, नाड़के पिछाड़ी, मन्यान-
डीमे, गलेमें और वंक्षण (जानुमेह्रसंधि) इन ठिकाने छोटे बेरके बराबर, बड़े
बेरके समान, आमलेके समान ऐसी अनेक प्रकारकी गंड होती हैं । वे बहुत दिनमें
हीले २-पक्के उनको गंडमाला कहते हैं ॥

अपचीके लक्षण ।

ते ग्रंथयः केचिद्वासपाका स्वान्ति नश्यति भवन्ति चान्ये ॥

कालाङ्गुवंधं चिरमादुधाति सैवापचीति प्रवर्द्धति केचित् ॥ २ ॥

भाषा—अब गंडमालाका भेद अपची है उसको कहते हैं । पूर्वोक्त गंडमालाकी
गांठ पके नहीं अथवा पाक होनेसे ल्लवे, कोई नष्ट हो जाय, दूसरी नवीन उठे ऐसी
पीड़ा बहुत दिन रहे उसको कोई अपची ऐसा कहते हैं ॥

असाध्य और साध्य लक्षण ।

साध्या सूता पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छार्दियुता न साध्या ॥३॥

भाषा—पूर्वोक्त अपची रोग साध्य है और उसमें पीनस होय, पसवाडोंमें शूल,
खांसी, ज्वर बमन ये होंय तो वह अपची असाध्य है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषादीकायां
गंडमालापचीनिदानं समाप्तम् ।

अथ ग्रंथिनिदानम् ।

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः संदूष्य मेदश्च तथा शिराश्च ॥

वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोथं कुर्वत्यतो ग्रंथिरिति प्रादिष्टः ॥ १ ॥

भाषा-अत्यन्त दुष्ट भये वातादि दोष मांस; रुधिर और मेद, उसी प्रकार द्विरा (नस) इनको दुष्ट कर (इस जगह दुष्टिका अर्थ वृद्धि करना चाहिये क्षयरूप न करना चाहिये कारण इसका यह है कि क्षीण विकारोंकी सामर्थ्य रोग करनेकी नहीं होती है।) गोल, ऊँची, गांठके समान अथवा कठिन सूजनको उत्पन्न करे उसको ग्रंथि (गांठ) ऐसा कहते हैं॥

वातज ग्रंथिके लक्षण ।

आयम्यते वृश्वाति तुद्यते च प्रत्यस्थते मथ्यति भिद्यते च ॥

कूष्णो गुरुर्बस्तिरिवाततश्च भिन्नः स्वेच्छानिलजोऽस्मच्छम् ॥२॥

भाषा-वादीकी गांठ तनेके समान करडी मालूम हो, छीलनेके समान मालूम हो, शुई चुभनेकीसी पीड़ा होय, मानो गिरा चाहती है, मथनेकीसी पीड़ा होय. फोरने-कीसी पीड़ा होय, काला वर्ण हो, नरम हो, वस्तिके चोड़ी होय और उसके समान चोड़ी होय और उसके फूटनेसे स्वच्छ रुधिर निकले ॥

पित्तकी ग्रंथिके लक्षण ।

दंदह्यते धूम्यते चूष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि ॥

रक्तः सपीतोऽप्यथ वापि पित्ताद्विन्नः स्वेहुष्टमतीव चाक्षम् ॥३॥

भाषा-पित्तकी गांठ आगसे भरेके समान अत्यन्त दाह को, आर्तासे धूंआ निकलतासा मालूम हो, चूष्यते कहिये मानो तिंगी लगायेके कोई चूसे है, खार लगानेके सदृश पक्का मालूम हो, अभिके समान जलीसी मालूम होय, उस गाठका रंग लाल अथवा किंचित् पीला होय और फूटनेसे उसमेंसे दुष्ट रुधिर बहुत निकले हैं ॥

कफकी ग्रंथिके लक्षण ।

शीतो विवर्णोऽल्परुजोऽतिरिक्तः पाषाणवत्सन्नहनोपन्नः ॥

चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्विन्नः स्वेच्छुकुछघनं च पूयम् ॥४॥

भाषा-कफकी ग्रंथि (गांठ) शीतल, प्रकृतिसमान वर्ण (कोई किंचित् विवर्ण हो ऐसा कहते हैं), योड़ी पीड़ा हो, अत्यन्त खुजली चले, पत्यस्के समान कठिन वडी होय और चिरकालमें बढ़नेवाली होय। फूटनेसे उसमेंसे सप्त गाढ़ी राध निकले ॥

मेदज ग्रंथिके लक्षण ।

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निघो महाकंडुयुतोऽरुजश्च ॥

मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्नं पिण्याकसर्पिः प्रतिमं तु मेदः ॥५॥

भाषा-मेदको ग्रंथि शरीरके बढ़नेसे बढ़े और शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण हो जाय चिकनी, बड़ी, खुजलीयुक्त, पीड़ारहित होती है और जब वह फूट जाय तब उसमें से तिलकलक्षके समान अथवा वृत्तके समान मेदा निकले ॥

शिराज ग्रंथिके लक्षण ।

व्यायामजातैर्खलस्य तैस्तेराक्षिप्य वायुस्तु शिराप्रतानम् ॥

संकुच्य संपीड्य विशोष्य चापि ग्रंथि करोत्युन्नतमाङ्गु वृत्तम् ॥६॥

भाषा-निर्दल पुरुप शरीरको परिश्रमकारक कर्म करे तब वायु कुपित होकर शिराके जालको संकुचित कर एकत्र कर और सुखायकर ऊँची गांठको शीघ्र प्रगट करे ॥

साध्यासाध्य लक्षण ।

ग्रंथिः शिराजः स च कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्थात्सरुजश्चलश्च ॥

अस्तु एवाप्यचलो महाश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥७॥

भाषा-वह शिरा कहिये नसकी गांठ कृच्छ्रसाध्य है । यदि वह पीड़ायुक्त चंचल होय तो वह गांठ साध्य है और पीड़ारहित तथा निश्चय बड़ी और मर्मस्थानमें प्रगट भई होय तो वह असाध्य है उसको वैद्य त्याग दे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरिनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमायुरीभाषादीकाया
ग्रन्थनिदानं समाप्तम् ।

अथाबुद्दनिदानम् ।

संप्राप्ति ।

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः संसूर्धिता मांसमसृक्ष प्रदूष्य ॥

वृत्तं स्थिरं मंदरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्धिपाकम् ॥

कुर्वीत मांसोच्छ्रयमत्यगाधं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ॥९॥

भाषा-शरीरके किसी भागमें दुष्ट भये दोष मांस रुधिरको दुष्ट कर गोल, स्थिर, मंद, पीड़ायुक्त, यह ग्रंथिरोगसे बड़ी होय है, बड़ी जिसकी जड होय, वहु काल्यमें बढ़नेवाली तथा पकनेवाली ऐसी मांसकी गांठ उठे । उसको वैद्य बुद्द ऐसा कहते हैं ॥

वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा च ॥

तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रंथेः समानानि सदा भवन्ति ॥२॥

भाषा—वह अर्द्धदरोग वादीसे, कफसे, पित्तसे, रुधिरसे, मांससे और मेहसे ऐसा चूँच प्रकारका है। उसके लक्षण सर्वदा ग्रंथिके सदृश होते हैं ॥
रक्तार्द्धके लक्षण ।

दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिरासु संकुच्य संपीड्य ततोऽस्य पाकम् ॥
सास्त्रावसुब्रह्मति मांसपिंडं मांसाङ्कुरैराचितमाशु वृद्धम् ॥ ३ ॥
करोत्यजस्त्रं रुधिरप्रवृद्धिमसाध्यते तद्विधिरात्मकं तु ॥
रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पाङ्गुर्भवेत्सोऽर्द्धार्द्धपीडितस्तु ॥ ४ ॥

भाषा—दुष्ट भये दोष नसेंमें रहा जो रुधिर उसको संकोच कर तथा पीडित कर मांसके गोलेको प्रगट करे। वह यर्त्तिक्तित् पकनेवाला तथा कुछ स्वावयुक्त हो और मांसाङ्कुरसे व्यास और शीघ्र बढ़नेवाला ऐसा होता है। उसमेंसे रुधिर वहा जरे। यह रक्तार्द्ध असाध्य है। वह रक्तार्द्धपीडित रोगी रक्तक्षयके उपद्रवोंकरके पीडित होनेसे उसका वर्ण पीला हो जाय ये रक्तार्द्धके लक्षण हैं ॥

मासर्जार्द्धकी संप्राप्ति ।

मुष्टिप्रहारादिभिरदीतेऽगे मांसं प्रदुष्टं जनयेद्धि शोथम् ॥
अवेदनं स्त्रिघमनन्यवर्णमपाकमश्मोपसमं प्रचाल्यम् ॥ ५ ॥
प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद्वेन्मांसपरायणस्य ॥ ६ ॥
मासार्द्धं त्वेतदसाध्यमुक्तं—

भाषा—मुष्टा आदिके लगनेसे अंगमें पीड़ा होय। उस पीडासे दुष्ट भया मास सो सूजन उत्पन्न करे। उस सूजनमें पीडा नहीं होय और वह चिकनी, देहके वर्ण होय, पके नहीं, पत्थरके समान कठिन, इले नहीं ऐसी होती है। जिस मनुष्यका मांस चिंगड जाय अथवा जो नित्य मांसको खाया करे उसके यह अर्द्धदरोग होता है। यह मांसार्द्ध असाध्य कहा है। कोई मांसार्द्धका भेद रसोली कहते हैं ॥

साध्यमें असाध्य प्रकार ।

साध्येष्वपीमानि तु वर्जयेत् ॥

संप्रस्तुतं मर्मणि यज्ञ जातं स्रोतःसु वा यज्ञ भवेदचाल्यम् ॥ ७ ॥

भाषा—साध्यमेंभी यह आगेका अर्द्धदरोग वर्जित है, स्रोत (ज्ञेर) और मर्मस्थानमें प्रगट भया हो अथवा नासा आदि स्रोत (मार्ग) में प्रगट भया हो और जो स्थिर होय वह असाध्य है ॥

अध्यर्द्धके लक्षण ।

यज्ञायतेऽन्यत्खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदधर्यर्द्धमर्द्धज्ञैः ॥

भाषा—पहिले जिस ठिकानेपर अर्बुद मया होय उसी ठिकानेपर दूसरा अर्बुद प्रगट होय उसको अध्यर्बुद कहते हैं ॥

द्विर्बुदके लक्षण ।

यद्वंद्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विर्बुदं तत्र भवेदसाध्यम् ॥ ८ ॥

भाषा—एक कालमें दो अर्बुद अथवा एकके पिछाड़ी दूसरा अर्बुद क्रमसे प्रगट होय उसको द्विर्बुद कहते हैं यह असाध्य है ॥

अर्बुद न पंकनेका कारण ।

न पाकमायांति कफादिकाद्वा मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु ॥

दोषस्थिरत्वाद्वार्थनाच्च तेषां सवार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ ९ ॥

भाषा—कफ अधिक होनेसे अथवा विशेषकरके मेद अधिक होनेसे तथा दोषोंके स्थिर होनेसे अथवा दोषोंके ग्रंथिरूप होनेसे सर्व प्रकारकी अर्बुद स्वभावसेही पके नहीं है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाशुरनिर्भतमाधवार्थबोधिनीमाशुरीभाषादीकायां
अर्बुदान्दान समाप्तम् ।

अथ श्लीपदनिदानम् ।

संप्राप्ति ।

यः सज्वरो वंक्षणजो भृशाऽर्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेण ॥

तत् श्लीपदं स्यात्करकणनेत्राश्चोष्टनासास्वपि केचिदाहुः ॥ १ ॥

भाषा—जो सूजन प्रथम वंक्षण (रोगो) में उत्पन्न होकर धीरे धीरे पैरोंमें आवे और उसके साथ ज्वरभी होय तो इस रोगको श्लीपद कहते हैं । यह श्लीपद हाथ कान, नेत्र, शिश्र, होठ, नाक इनमेंभी होती है ऐसा कोई कहते हैं ॥

वातज श्लीपद ।

वातजं कृष्णरूक्षं च स्फुटितं तीव्रेदनम् ॥

अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर एव च ॥ २ ॥

भाषा—वातजी क्षीपद काली, रूखी, फटी और जिसमें तीव्र पीड़ा होय, विनाशणके दूखे और उसमें ज्वर बहुत होता है ॥

पित्तजं श्लीपद् ।

पित्तजं पीतक्षुकाशां दाहज्वरयुतं मृदु ॥

भाषा—पित्तकी श्लीपद पीले रंगकी, दाह और ज्वरयुक होय तथा नरम होती है ॥

श्लैष्मिकं श्लीपद् ।

श्लैष्मिकं स्निग्धमणि च श्वेतं पाङ्गु गुरु स्थिरम् ॥ ३ ॥

भाषा—कफकी श्लीपदका वर्ण चिकना, सफेद, पीला, भारी और कड़िन होता है ॥

असाध्य लक्षण ।

वल्मीकमिव संजातं कंटकैरुपचीयते ॥

अब्दद्रात्मकं महत्तच्च वर्जनीयं विशेषनः ॥ ४ ॥

भाषा—सर्पकी बांधीके समान वढ़ी भई और जिनके ऊपर काढ़ हाँय ऐसी एक वर्जकी हो गई हो और बड़ी होय उसको वैय त्याग दे ॥

श्लीपदमें कफको प्राधान्य अव्यभिवारकरके हैं उसको कहते हैं ।

त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छीपदानि कफोच्छ्रयात् ॥

गुरुत्वं स महत्त्वं च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥ ५ ॥

भाषा—ये जो पूर्वोक्त तीनों श्लीपदमें कफकी अधिकता है, कारण इसका यह है कि भारी और महत्त्व ये दोनों कफके विना नहीं होते ॥

श्लीपद कौनसे देशमें उत्पन्न होय है उसको कहते हैं ।

पुराणोदकधूयिष्ठः सर्वतुषु च शीतलाः ॥

ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ ६ ॥

भाषा—वयोक्तुमें पानी अधिक वर्षे परंतु पृथ्वीके नीचे होनेसे खूले नहीं इसीसे युराने पानीका संचय (इकड़ा) होय और सर्व ऋतुमें सख्ती रहा करे ऐसे जे अनूप (पूरव) आदि देश उनमें यह श्लीपदोरोग विशेषकरके होता है । जांगल देशमें आमिका अधिक अंश होता है इससे उन देशमें जलको पुण्यत्व नहीं होता है और अनूप देशमें गरमी मंद पड़नेसे उष्ण ऋतुमें शीतलता होती है । हाथ कान आदिमें श्लीपद रोगकी शंका होनेसे दोषोंके कोपद्वारा ज्वर करके श्लीपदको जान लेवे ॥

असाध्य लक्षण ।

यच्छेष्मणाहाराविहारजातं पुंसः प्रकृत्या च कफात्मकर्य ॥

साक्षात्मत्युत्रतसर्वलिंगं सकंडुरं श्लैष्मयुतं विवर्ज्यम् ॥ ७ ॥

भाषा—जो श्लीपद कफकारक आहार विहारसे प्रगट भया तथा कफप्रकृतिवाले पुरुषके कफसे प्रगट भया होय तथा सावयुक्त तथा जिस दोषसे प्रगट भया होय उस दोषके लक्षण उसमें बढ़ गये होंय, जिसमें खुजली बहुत हो और कफयुक्त होक सो श्लीपदरोगी वैद्यकरके त्याज्य है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तरामभाशुरनिर्भितमाधवार्थबोधिनीभाशुरीभाषाटीकायां
श्लीपदरोगनिदान समाप्तम् ।

अथ विद्रधिनिदानम् ।

—४८—

त्वथलमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः ॥ दोषाः शोथं
श्वनैघोरं जनयन्त्युच्छ्रुता भृशम् ॥ १ ॥ महाशूलं रुजावंतं
बृतं वाप्यथ वायतम् ॥ स विद्रधिरिति रूपातो विक्षेयः
पद्धिधश्च सः ॥ २ ॥ पृथगदोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा
तथा ॥ षण्णामपि हि तेषां तु लक्षणं संप्रचक्षते ॥ ३ ॥

भाषा—अत्यंत बडे तथा अस्थि (हड्डी) का बाश्रय करके रहनेवाले वातादि दोष त्वचा, रुधिर, मांस और मेद इनको दुष्ट कर धीरे धीरे भयंकर शोथ उत्पन्न करे. उसकी जड हड्डी पर्यंत पहुँच जाय, उत्पन्नकालमें अत्यन्त पीड़ाकारक तथा गोल अथवा लंबा जो शोथ (सूजन) होय उसको विद्रधि कहते हैं । पृथक दोषोंसे ३, साम्राज्योत्तरसे १, क्षत (धाव) से १ और रुधिरसे १ ये मिलकर छः प्रकारकी विद्रधि होती है । उन छहो विद्रधिके लक्षण कहते हैं ॥

वातज विद्रधिके लक्षण ।

कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः ॥

चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसंभवः ॥ ४ ॥

भाषा—जो विद्रधि काली, लाल, विषम कहिये कदाचित् छोटी कदाचित् मोटी होय, अत्यन्त वेदनायुक्त और उसका प्रगट होना तथा पाक ये नाना प्रकारके होय उसको वातविद्रधि कहते हैं ॥

पित्तकी विद्रधिके लक्षण ।

पक्कोदुंबरसंकाशः इयावो वा ज्वरदाहवान् ॥

क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसंभवः ॥ ५ ॥

भाषा-पित्तकी विद्रधि पके गूलरके समान होय अथवा काला वर्ण होय, ऊर, दाह करनेवाली उसका प्रगट और पाक शीघ्र होय ॥

कफकी विद्रधिके लक्षण ।

शरावसदृशः पांडुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः ॥

चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसंभवः ॥ ६ ॥

भाषा-कफकी विद्रधि शराव (मट्टीके शराव) सदृश वडो होय, पीला वर्ण शीतल, चिकनी, अल्पपीडा होय । उसकी उत्पत्ति और पाक देरमे होता है ॥

पक्जेके अनन्तर उनका खाव ।

तनुपीतसिताश्वैषामास्तावाः क्रमशः स्मृताः ॥

भाषा-ये तीन प्रकार विद्रधि पक्जेके अनन्तर होते हैं । इनसे वातादिकोंके क्रमसे थोड़ा पीला और सपेद राध निकले ॥

सन्निपातकी विद्रधिके लक्षण ।

नानावर्णरुजा स्नावो घंटालो विषमो महान् ॥

विषमं पच्यते चापि विद्रधिः सान्निपातिकः ॥ ७ ॥

भाषा-सन्निपातकी विद्रधिमे अनेक प्रकारकी पीडा (जैसे तोद, दाह, खुजली, पीडा) तथा अनेक प्रकारका स्नाव (जैसे पतला, पीला, सपेद स्नाव) होय । घंटाल कहिये नीचे स्थूल होय और ऊपर पतरी हो अर्थात् अग्रभाग अति ऊंचा होय. छोटी, बड़ी, कदाचित् पके कदाचित् नहीं पके ऐसी होती है ॥

आगंतुज विद्रधिकी संप्राप्ति ।

तेस्तैभावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यकारिणः ॥ क्षतोष्मा वायुविसृ-
तः सरक्ते पित्तमीरयेत् ॥ ८ ॥ ज्वरतृष्णा च दाहश्च जायन्ते
तस्य दोहनः ॥ आङ्गतुविद्रधिज्ञेयः पित्तविद्रधिलक्षणः ॥ ९ ॥

भाषा-तिन तिन भाव कहिये लकड़ी पत्थर डेला आदिका अमिघात (चोट लगना पिच जाना इत्यादि) होनेसे अथवा तलवार, तीर, वरछी इत्यादिक लगनेसे वाव हो जानेसे, अपथ्य करनेवाले पुरुषके कुपित वायुकरके विस्रत (फैला) क्षतोष्मा (घावकी गरमी) और साधुरसहित पित्तको कोप करे उस पुरुषके ज्वर, प्यास और दाह होय और उसमें पित्तकी विद्रधिके लक्षण मिलते होंय इसको आगंतुज विद्रधि जाननी ॥

रक्तजा विद्रधिके लक्षण ।

कृष्णस्फोटवृत्तः इयावस्तीत्रशहरुजाकरः ॥

पित्तविद्रधिलिंगस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ॥ १० ॥

भाषा—काले फोड़ोंसे व्यास, इयामर्वण, दाह, पीड़ा और ज्वर ये उसमें तीव्र होंद तथा पित्तकी विद्रधिके लक्षणकरके युक्त होय उसको रक्तविद्रधि जानना ॥

अंतर्विद्रधिके लक्षण ।

पृथक् संभूय वा दोषाः कुपिता गुल्मस्त्रपिणम् ॥

वल्मीकिवत्समुत्तद्भमंतः कुर्वति विद्रधिम् ॥ ११ ॥

भाषा—कुपित भये पृथक् पृथक् अथवा मिले भये दोष शरीरमें गोलके और चांचीके समान बढ़ी ऐसी विद्रधि उत्पन्न करते हैं ॥

विद्रधिके स्थान ।

**गुदे बस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षी वंक्षणयोस्तथा ॥ वृक्षयोः पुरीहि
यकृति हृदये क्लोम्नि चाप्यथ ॥ १२ ॥ एषामुक्तानि लिंगानि
बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ गुदे वातनिरोधस्तु वस्तौ कुच्छाल्पमूत्रता
॥ १३ ॥ नाभ्यां हिङ्का तथाटोपः कुक्षी मारुतकोपनम् ॥ कटि-
द्रुष्टग्रहस्तीत्रो वंक्षणोत्थे च विद्रधौ ॥ १४ ॥ वृक्षयोः पार्थसंको-
चः पुरीहुच्छासावरोधनम् ॥ सर्वाग्ग्रहस्तीत्रो हृदि कंपश्च
जायते ॥ श्वासो यकृति हिङ्का च क्लोम्नि पेरीयते पयः ॥ १५ ॥**

भाषा—गुदा, बस्ति, मुख, नाभि, कूख, वंक्षण, वृक्ष (कूख, पिंडी, प्शीह), यकृत (कलेजा), हृदय, क्लोम (प्यासका स्थान) इन ठिकानेपर विद्रधि होती है । इसके लक्षण बाह्य विद्रधिके समान जानने । १ गुदामें विद्रधि होनेसे अधोवायुका रोध होय । २ बस्तिमें अर्थात् मूत्राशयमें होनेसे कठिनतासे थोड़ा २ मूत्रे । ३ नाभिमें होनेसे हिंचकी तथा पीड़ापूर्वक क्षोभ होय । ४ कूखमें होनेसे पवनका कोप होय । ५ वंक्षणमें होनेसे कमर और पीठका बल्लपूर्वक जफड जाना होय । ६ कूखके पिंडमें होनेसे पसवाड़ोंका संकोच होय । ७ प्शीहामें होनेसे श्वास रुक जाय । ८ हृदयमें होनेसे सब अंग जकड जायं और कंप होय । ९ कलेजेमें होनेसे श्वास और हिंचकी होय । १० क्लोममें अर्थात् पिपासास्थानमें विद्रधि होनेसे वारंवार पानी पीनेकी इच्छा होती है ॥

स्वावनिर्गम ।

नाभेषुपरिजाः पक्वा यांत्युर्ध्वमितरे त्वधः ॥

अधः सुतेषु जीवेत् सुतेषुर्ध्वं न जीवति ॥ १६ ॥

भाषा—नाभिके ऊपर जो विद्रधि होय उनके पक्लेसे जो स्वाव कहिये राध आदिका वहना हो वह मुखके रास्ते होता है और नाभिके नीचे होनेसे जो स्वाव होय गुदके मार्गसे होता है और नाभिके समीप होनेवाली विद्रधियोंका स्वाव दोनों मार्गसे होय । जिनका स्वाव नीचेके मार्ग हो वह रोगी जीवे और ऊपरके मार्ग जिसका स्वाव होय वह रोगी बचे नहीं ॥

विद्रधिमें साध्यासाध्य ।

हन्त्राभिवस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु वाहृतः ॥ जीवेत्कदाचित्पु-

रुषो नेतरेषु कथंचन ॥ १७ ॥ साध्या विद्रधयः पञ्च विवर्ज्यः

सञ्चिपातिकः ॥ आमपक्वविदृग्धत्वं तेषां शोथवदादिशेत् ॥ १८ ॥

भाषा—हृदय, नाभि और बस्ति इन ठिकानेको छोड़कर प्रगट जो विद्रधि (अर्थात् मुँह क्षोम इत्यादि ठिकाने) बाहर फूटनेसे कदाचित् पुरुष वच जाय और ठिकानेपर फूटनेसे नहीं बचे । पहिली पांच विद्रधि साध्य हैं, सञ्चिपातिकी विद्रधि असाध्य है, इन विद्रधियोंको आम, पक्व और विदृग्ध ये तीन अवस्था शोथरोगके समान जाननी चाहिये ॥

असाध्य लक्षण ।

आध्मातं बद्धनिष्यन्दं छर्दिहिक्कातृषान्वितम् ॥

रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ १९ ॥

भाषा—अफरायुक्त, सूत्र रुक गया होय, हिचकी बमन और प्यास इनसे पीड़ित, शूल, श्वास इनकरके युक्त ऐसे मनुष्यके विद्रधि रोग असाध्य होता है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममायुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमायुरभाषाटिकाया
विद्रधिनिदान समाप्तम् ।

अथ ब्रणनिदानम् ।

एकदेशोत्थितः शोथो ब्रणानां पूर्वलक्षणम् ॥ षड्धिः स्यात्पु-
थक् सर्वरक्तागंतुनिमित्तजः ॥ १ ॥ शोथाः षडेते विज्ञेया प्रागुत्तेः

शोथलक्षणैः ॥ विशेषः कथ्यते तेषां पक्वापक्वविनिश्चये ॥ २ ॥

भाषा—एक ठिकानेपर सूजन उत्पन्न होनेसे जाने कि इसके ब्रण (फोड़ा) होंयगे सो ब्रणरोग पृथक् दोषोंसे ३, सञ्चिपातसे १. रुधिरसे १ और आगंतुक १ ऐसे मिलकर छः प्रकारका है। इन छहों ब्रणोंमें जो प्रथम सूजन होय उनके लक्षण शोथरोगलक्षणके समान जानने। इसमें पक्व (पक्ने) अपक्व (न पक्ने) के विषयमें जो विशेषता है उसको इस जगह कहते हैं ॥

ब्रणपाक ।

विषमं पच्यते वातात्पित्तोत्थश्वाचिरं चिरम् ॥

कफजः पित्तवच्छोफो रक्तागंतुसमुद्भवः ॥ ३ ॥

भाषा—चादीसे विषम पाक होय अर्थात् कहीं पके कहीं नहीं पके, पित्तसे बहुत जलदी पके, कफका फोड़ा देरमें पके और रुधिरका तथा आगंतुक फोड़ेका पक्ना पित्तके समान अर्थात् जलदी पके है ॥

कच्चे फोड़ेके लक्षण ।

मंदोष्मताऽल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णोत्ता ॥

मंदवेदनता चैव शोथानामाभलक्षणम् ॥ ४ ॥

भाषा—सूजन हाथके झूनेसे थोड़ी गरम लगे, थोड़ी सूजन होय, फोड़ेका स्थान करो होय, देहके रंग समान उसका रंग होय और उसमें पीड़ा मंद होय, ये कच्ची सूजनके लक्षण हैं ॥

पच्यमानब्रणके लक्षण ।

दद्यते दद्यनेव क्षारेणेव च पच्यते ॥ पिपीलिकागणेनेव दद्यते
छिद्यते तथा ॥५॥ भिद्यते चैव शस्त्रेण दंडेनेव च ताळ्यते ॥
पीढ़ियते पाणिनेवांतः सूचीभिरिष तुद्यते ॥ ६ ॥ शोषश्वोषो
विवर्णः स्यादंगुल्येवावपात्यते ॥ आसने शायने स्थाने शांतिं
बृश्चिकाविद्धवत् ॥७॥ न गच्छेदाततः शोथो भवेदाध्मातव-
स्तिवत् ॥ ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैव पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥

भाषा—जिस समय ब्रण पक्नेको होय उस समय ये लक्षण होते हैं। आग्रेसे भरासा फोड़ेका स्थान मालूम हो, खार लगानेकासा चिनमिनावे, चेटी काटनेकीसी पीड़ा होय, वह दो टूक करनेके समान तथा शस्त्रसे फारनेके समान दंड आदिके मारनेके समान तथा हाथसे मीडनेके समान तथा मीतरी सुर्ईसे छेदनेके समान

पीडा होय और उसमे अत्यंत दाह होय, आशेसे सेकनेके समान उसमें वेदना होय, उस फोडेका रंग बदल जाय, उंगलीके लगानेसे उखारनेकीसी पीडा होय, बैठनेमें सोनेमें खडे रहनेसे बीचू काटनेकीसी धोर पीडा होय, वह पीडा कभी शांत नहीं होय, वह सूजन फूली हुई बस्ति (मूत्रस्थान) के सदृश तनीसी होय, उसमें ज्वर-प्यास और अरुचि ये लक्षण होते हैं ॥

पक्वव्रणके लक्षण ।

**वेदनोपशमः शोथो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः ॥ प्रादुर्भावो
वर्णानां च तोदः कंडूमुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥ उपद्रवाणां प्रशमो
निन्नता स्फुटनं त्वचः ॥ दस्ताविवांबुसंचारः स्याच्छोथेऽगुलि-
पीडिते ॥ १० ॥ पूयस्य पीडयत्येकमन्तमन्ते च पीडिते ॥
भक्ताकांक्षा भवेच्चैव शोथानां पक्वलक्षणम् ॥ ११ ॥**

भाषा—ब्रण पक्नेसे पीडा शांत हो जाय, उसकी सूजन तामेके रंगकी होय और योडी होय, ऊंची न हो, उसमें गुजलट पडे, सुई तुमानेकीसी पीडा होय, वारंवार खुजली चले, पित्तदाहादि उपद्रवोंकी गांति हो, खुजानेसे उस जगह गढेला हो जाय, त्वचा फट जाय, सूजन हाथके दबानेसे जैसे बस्तिके नीचेका पानी इधर उधर होय उसी प्रकार राध इधर उधर होय, अन्नमें इच्छा हो ॥

एक दोषसे सूजन उत्पन्न होय उसमें पक्नेके समय तीनों दोषोंका संबंध होता है ।
**नत्तेऽनिलादुग्न विना न पित्तं पाकः क्लफं वापि विना न पूयः ॥
तस्माद्धि सर्वे परिपाककाले पचन्ति शोथाद्विभिरेव दोषैः ॥ १२ ॥**

भाषा—वादीके विना पीडा नहीं होय, पित्तके विना दाह नहीं होय और कफके विना राध नहीं होय अर्थात् पक्नेके समय तीनों दोषोंके मिलनेसे सब प्रकारकी सूजन पकती है । रक्तपाकलक्षण ग्रन्थांतरामें कहे हैं । तथा—“ कफजेषु च शोथेषु गंभीरं पाकमेत्यस्कृ । पक्वं स्तिग्धं ततः स्पष्टं यत्र स्यात्किञ्चिद्गोपता ॥ त्वक्सावण्यं रुजोऽल्पलवं घनस्पीशत्वमश्मवत । रक्तपाकभिति ब्रूयात्तं प्राज्ञो मुक्तसंशयः ॥ ” इसका अर्थ सुगम है ॥

राध न निकालनेसे जो परिणाम होता है उसको दृष्टांत देकर कहते हैं ।
**कक्षं समासाद्य यथैव वाहिर्वार्यवीरितः संदहति प्रसद्य ॥
तथैव पूयोऽप्यविनिःसृतो हि मांसं शिराः स्नायु च खादतीह ॥ १३ ॥**
भाषा—फूसके गंजमें लगी हुई आग पवनकी सहायता पाकर जैसे वह फूसके

जलाकर स्वाक कर दे उसी प्रकार ब्रणमेंसे राध न निकालनेसे वह राध मांस शिरा और स्नायु इनको स्वाय लेती है ॥

आमादि लक्षणज्ञानसे वैद्यके गुणदोष दिखाते हैं ।

आमं विद्यव्यमानं च सम्यक् पक्वं च लक्षणैः ॥

जानीयात्स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥ १४ ॥

भाषा-आम (कच्चा) पच्यमान और जो अच्छी रीतिसे पक गया हो ऐसे ब्रणके लक्षण जो वैद्य जाने हैं उसीको वैद्य जानना चाहिये वाकीके सब चेर हैं ॥

अपक्कका छेदन और पकेकी उपेक्षा करनेमें दोष ।

यश्चिन्त्याममज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते ॥

श्वपचालिव मंतव्यौ तावनिश्चितकारिणौ ॥ १५ ॥

भाषा-जो अज्ञानसे कच्चे फोडेको पका समझकर फोडे और जो पके फोडेको कच्चा समझकर चीरे नहीं, ये दोनों अविचारदान् वैद्य चांडालके समान जानने ॥

ब्रणनिदान ।

द्विधा ब्रणः परिज्ञेयः शारीरगन्तुभेदतः ॥

दोषैराद्यस्तयोरन्यः शस्त्रादिक्षतसंभवः ॥ १ ॥

भाषा-शरीर और आगंतुक इन भेदोंसे ब्रण दो प्रकारका है । पहिला शारीर दोषोंके कोपसे होता है और दूसरा शस्त्रादिक्षकरके घावके होनेसे होता है ॥

वातिक्त्रण ।

स्तब्धः कठिनसंस्पर्शौ मन्दस्थावो महारुजः ॥

तुद्यते स्फुरते इथावो ब्रणो मारुतसंभवः ॥ २ ॥

भाषा-वादीसे प्रगट ब्रणमें जकड़ना तथा हाथके छूनेसे कठिन मालूम होय । उसमेंस थोड़ा साव होय तथा पीड़ा बहुत होय तथा सुईके जुमानेकीसी पीड़ा होय और उसका रंग काला होय ॥

पित्तत्रणके लक्षण ।

तृष्णामोहज्वरक्तेदद्वादुष्यचवदारणैः ॥

ब्रणं पित्तवृत्तं विद्याद्वैश्च पूतिकैः ॥ ३ ॥

भाषा-प्यास, मोह, ज्वर, क्लेद, दाह, सडना, चिरासा होय, वास आवे, साव होय ये पित्तत्रणके लक्षण हैं ॥

कफब्रणके लक्षण ।

बहुपिच्छो गुरुः स्थिधः स्तिमितो मन्दवेदनः ॥

पाङ्गुवणोऽल्पसंक्षेदी चिरपाकी कफोद्धवः ॥ ४ ॥

भाषा—कफका स्वाव अत्यंत गाढ़ा, भारी, चिकना, निश्चल, मन्द पीड़ा, पीला रंग, योड़ा स्ववेवाला और बहुत कालमें पके ॥

रक्तज द्वंद्वज ब्रण ।

रक्तो रक्तस्रुती रक्ताद्वित्रिजः स्यात्तदन्वयैः ॥ ५ ॥

भाषा—जो रक्तके कोपसे ब्रण होय वह रक्तवर्ण, उसमेंसे रुधिर स्वरूप, एक दोष और रुधिरके संबंधसे जो होता है वह द्वंद्वज अथवा दो दोष तथा रुधिर इनके मिलनेसे संनिपातका ब्रण जानना ॥

सुखब्रणके लक्षण ।

त्वङ्गमांसजः सुखे देशे तरुणस्यानुपद्धुतः ॥

धीमतोऽभिनवः काले सुखं साध्यः सुखब्रणः ॥ ६ ॥

भाषा—जो ब्रण त्वचा और मांस तथा मर्मराहित स्थानमें उपद्रवरहित होय और जो तरुण तथा ज्ञानी पुरुषके हेमंत शिशिरकालमें प्रगट होय, उसको सुखब्रण कहते हैं वह सुखसाध्य है ॥

कृच्छ्रसाध्य और असाध्य लक्षण ।

गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततः कृच्छ्रो ब्रणः स्मृतः ॥

सर्वैर्विहीनो विज्ञेयः सोऽसाध्यो निरुपक्रमः ॥ ७ ॥

भाषा—जो पूर्व क्षोकमें लक्षण कह आये उनमेंसे कुछ लक्षण थोड़े होनेसे ब्रण कृच्छ्रसाध्य होता है और गुणरहित होता है, वह असाध्य है। उसकी चिकित्सा न करनी चाहिये ॥

दुष्टब्रणके लक्षण ।

पूतिपूयातिदुष्टासृक्ष्वाव्युत्संगी चिरस्थितिः ॥

दुष्टब्रणोऽतिगंधादिः शुद्धलिंगविपर्ययः ॥ ८ ॥

भाषा—जिसमेंसे दुर्गंधयुक्त राध और सड़ा भया रुधिर वहे जो ऊपर ऊँचा तथा भीतरसे पीला हो, बहुत दिन रहनेवाला होय उसको दुष्टब्रण कहते हैं। वह शुद्धलिंगके विपरीत होता है ॥

शुद्धव्रणके लक्षण ।

जिह्वातलाभोऽतिमृदुः शूक्ष्मः स्थिग्योऽल्पवेदुनः ॥

सुव्यवस्थो निरास्रावः शुद्धोऽव्रण इति स्मृतः ॥ ९ ॥

भाषा—जो ब्रण जीभके नीचे भागके समान अत्यंत नरम होय, स्वच्छ, चिकना, थोड़ी पीड़ायुत, भले प्रकारका कहिये ऊंचा आदि जो दुष्ट ब्रणादिकर्म लक्षण कहे वे न होय, दोष रक्तादिस्रावराहित होय उसको शुद्ध ब्रण जानना ॥
भरनेवाले ब्रणके लक्षण ।

क्षपोतवर्णप्रलिमा यस्यांताः क्लेदवर्जिताः ॥

स्थिराश्च पिटिकावंतो रोहतीति तमादिशेत् ॥ १० ॥

भाषा—जिसका घाव कबूतरके रंग सदृश होय और जिसमें क्लेद न बहता होय और घाव स्थिर हो, जिसमें फूंसीसी मालूम हो, उसको वैद्य जाने कि यह ब्रण (घाव) स्थिर भरनेवाला है ॥

जो ब्रण मर गया हो उसके लक्षण ।

रूढवत्मानमग्रंथिमशूनमरुजं ब्रणम् ॥

त्वक्स्वर्णं समतलं सम्यगूढं तमादिशेत् ॥ ११ ॥

भाषा—जिसका मार्ग भर गया होय, गांठ बंधी होय, सूजन और पीड़ा जिसमें छोटी नहीं, त्वचाके समान वर्ण हो गया हो, घावका गढ़ेला भरकर बराबर हो गया हो वह ब्रण उत्तम भरा जानना ॥

व्याधिविशेषकरके ब्रण कृच्छ्रसाध्य होता है सो कहते हैं ।

कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ॥

ब्रणाः कृच्छ्रेण सिद्धयंति येषां चापि ब्रणे ब्रणाः ॥ १२ ॥

भाषा—कोढ़ी पुरुष, विषवाला पुरुष, क्षीरोगवाला, मधुमेही पुरुष ऐसोंका ब्रण बड़े कष्टसे साध्य होता है और जिसके पहिले ब्रणमें ब्रण प्रगट होय उसके ये ब्रण कष्टसाध्य होते हैं ॥

साध्यासाध्य लक्षण ।

वसा मेदोऽथ मज्जानं मस्तुलुंगं च यः स्त्रवेत् ॥

आगन्तुजो ब्रणः सिद्धयेन्न सिद्धयेहोषसंभवः ॥ १३ ॥

भाषा—जिस ब्रणमेंसे चर्बी, मेद, मज्जा और बस्तिस्त्रेह ये वहें वह ब्रण आगन्तुज होय तो साध्य है और दोषकृत होय तो साध्य नहीं होय है ॥

असाध्यव्रणके लक्षण ।

मद्यगुर्वाञ्ज्यसुमनः पद्मचन्दनचम्पकैः ॥

सुंगधा दिव्यगंधाश्च मुमूष्ठौणां ब्रणाः स्मृताः ॥ १४ ॥

भाषा-मद्य, अगर, घृत, फूल, कमल, चन्दन और चंपाके फूलके समान अथवा चमत्कारी पारिजात आदि फूलकीसी गंध जिस ब्रणमेंसे आवे वह ब्रण भरनेवाले रोगीके जानना ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

ये च मर्मस्वसंभूता भवंत्यत्यर्थवेदनाः ॥ दृश्यन्ते चान्तरत्यर्थं वहिः शीताश्च ये ब्रणाः ॥ १५ ॥ दृश्यन्ते वहिरत्यर्थं भवंत्यंत-शीतलाः ॥ प्राणमासक्षयश्वासकासारोचक्षपीडिताः ॥ १६ ॥ प्रवृद्धपूयरुधिरा ब्रणा येषां च मर्मसु ॥ क्रियाभिः सम्यगरब्धा न सिद्धयान्ति च ये ब्रणाः ॥ वर्जयेदेव तत्वैद्यः संरक्षन्नात्मनो यशः ॥ १७ ॥

भाषा-जो ब्रण मर्मस्थानमें प्रगट मये हों और उनमें अत्यंत पीड़ा होय वह तथा जिस ब्रणके भीतर दाह होय और बाहर शीतल होय वे अथवा बाहर दाह होय और भीतर शीतलता होय वे तथा जिनमें बल भाँस इनका क्षय होय, श्वास, खांसी, अरुचि इनसे अत्यंत पीडित होय ऐसे अथवा जो ब्रण मर्मस्थानमें प्रगट भये हों उनमेंसे राध रुधेर बहुत वहे वे अथवा जिन ब्रणोंकी अच्छी चिकित्सा लगानेसे भी अच्छे न होय ऐसे ब्रणोंको अपने यशकी रक्षा करनेवाला वैद्य त्याग दे ॥

ब्रणरोगमे अपथ्य ।

ब्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात् ॥

तौ च रुक्ष च दिवास्वापात्ताश्च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ १८ ॥

भाषा-परिश्रम करनेसे ब्रणमें सूजन होती है और जागनेसे ललाही होती है और दिनमें सोनेसे सूजनपर लाली आयकर पीड़ा होती है और मैथुन करनेसे सूजन लाली पीड़ा होकर मृत्यु होय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाशुरनिर्मितमाधवार्थोधिनीमाशुरीभाषादीकार्यो

शारीरब्रणनिदानं समाप्तम् ।

अथागंतुव्रणनिदानम् ।

नानाधारामुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः ॥

भवति नानाकृतयो व्रणास्तास्तान्निवोध मे ॥ ३ ॥

भाषा—अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्र अनेक ठिकानेपर लगनेसे अनेक प्रकारकी आकृति (स्वरूप) के ब्रण होते हैं, उनको कहता हूँ ॥
संख्यासंप्राप्ति ।

छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्छितमेव च ॥

घृष्टमाद्वस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २ ॥

भाषा—छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्छित और छठा घृष्ट ऐसे आगंतुक ब्रण जो प्रकारके होते हैं । उनके लक्षण कहता हूँ ॥

छिन्नके लक्षण ।

तिर्यक्खछिन्नं ऋजुर्वापि यो ब्रणस्तवायतो भवेत् ॥

गात्रस्य पातनं तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ३ ॥

भाषा—जो ब्रण तिरछाए, सरल (सीधा) अथवा लंबा होय उसको छिन्नब्रण कहते हैं ॥

भिन्नके लक्षण ।

शार्क्तकुंतैषु लड्गाय्रविपाणौ राशयो हतः ॥

यत्तिर्यक्तिस्ववते तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ४ ॥

भाषा—वच्छी, भाला, बाण, तरवारका अग्रभाग, विषाण (दांत, सींग,) इनसे आगय (कोष्ठ) को बेधकर योडासा रुधिर सवे (निकले) उसको भिन्न कहते हैं ॥
कोष्ठके लक्षण ।

स्थानान्यामाग्निपकानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ॥

हृदुंदुकः फुफ्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ ५ ॥

भाषा—आमाशय, अश्याशय, पकाशय, मूत्राशय, रक्ताशय, कलेज़ा, प्लीह, हृदय, मलागय और फुफ्फस इन स्थानोंकी कोष्ठसंज्ञा है ॥

इन भेदोंके लक्षण ।

तस्मिन्भिन्ने रक्तपूर्णं ज्वरोदाहश्च जायते ॥ मूत्रमार्गं गुदास्येभ्यो

**रक्तं ब्राणाज्जगच्छति ॥ ६ ॥ मूर्च्छा शास्त्रपाञ्चमानमभक्तच्छन्दं
एव च ॥ विष्मृत्रवातसंगश्च स्वेदास्त्रावोऽक्षिरक्तता ॥ ७ ॥ लोह-
गंधित्वमास्यस्य गात्रदौर्गंध्यमेव च ॥ हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि
विशेषं चात्र भे शृणु ॥ ८ ॥**

भाषा—वह कोष भिज होकर रुधिरसे भर जावे तब उधर दाह होय है, मूत्रमार्ग, गुदा, मुख और नाक इनमेंसे रुधिर वहे; मूर्च्छा, श्वास, प्यास, पेटका फूलना, अन्नमें अरुचि, मल, मूत्र, अधोवायु इनका अवरोध, पसीना बहुत आवे, नेत्रमें लाली, मुखमें लोहेकीसी वास आवे, अंगमें दुर्गंधि, हृदय और पसवाड़ोंमें शूल ये लक्षण होते हैं इनसे जो विशेष लक्षण हैं उनको मुझसे सुन ॥

आमाशयस्थित रक्तके लक्षण ।

आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं च्छर्दयत्यपि ॥

आध्मानमतिभात्रं च शूलं च भृशदारूणम् ॥ ९ ॥

भाषा—आमाशयमें रुधिरका संचय होनेसे रुधिरकी वमन, पेट बहुत फूले और अत्यंत भयंकर शूल होय ॥

पक्षाशयस्थके लक्षण ।

पक्षाशयगते चापि रुजागौरवमेव च ॥

अधःकाये विशेषेण शीतता च भवेदिह ॥ १० ॥

भाषा—पक्षाशयमें रुधिरका संचय होनेसे शूल, देहमें मारीपना और कमरसे लेकर नीचेके मागमें शीतलता होती है ॥

विद्वन्रक्तके लक्षण ।

सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदंगं त्वाशयं विना ॥

उत्तुंडितं निर्गतं वा तद्विद्वमिति निर्दिशेत् ॥ ११ ॥

भाषा—वारीक अग्रभागवाले (सुई आदि) शस्त्रसे जाशय विना जो जंघ हैं उनमें वेध होनेसे तुंडित कहिये उनमेंसे वह शस्त्र न निकला होय, निर्गत कहिये शल्य निकल गया हो उसको विद्वन्र कहते हैं ॥

क्षतके लक्षण ।

नातिच्छन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम् ॥

विषमं व्रणमंगेषु तत्क्षतं त्वाभिनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥

भाषा—जिसमें अंग अतिछिक्क तथा अतिभिज्ज न भया हो और दोनोंके लक्षण मिलते हों तथा ब्रण तिरछा बांका होय उसको क्षतब्रण कहते हैं ॥
पिचितके लक्षण ।

**प्रहारपीडनाभ्यां तु यदंगं पृथुतां गतम् ॥
सास्थि तत्पिचितं विद्यान्मज्जारक्तपरिपूतम् ॥ १३ ॥**

भाषा—जो अंग हाड़सहित प्रहार कहिये सुन्दर आदिकी चोट अथवा दबना किनार आदि इनके योगमे पिच जाय तथा मज्जा रुधिरकरके युक्त होय, घाव न होय उसको पिचितब्रण कहत है ॥

घृष्णके लक्षण ।

**घर्षणादभिवातादा यदंगं विगतत्वचम् ॥
उषप्रावान्वितं तद्धि घृष्णमित्यभिनिर्देशेत् ॥ १४ ॥**

भाषा—कठिन वस्त्र आदिको घर्षण (घिसने) से चोटके लगनेसे जिस अंगकी ऊपरकी त्वचा जाती रहे तथा आगके समान गरम रुधिर तुचाय उसको घृष्ण ऐसा कहते हैं ॥

सशल्यब्रणके लक्षण ।

**शावं सशोथं पिटिकान्वितं च मुहुर्मुहुः शोणितवाहिनं च ॥
मृद्दूहतं बुद्धुदत्तुल्यमांसं ब्रणं सशल्यं सरुजं वदंति ॥ १५ ॥**

भाषा—जो ब्रण नीला, सूजनयुक्त, मरोगिनसे व्यास होय और बारबार उनमेंसे रुधिर वहे और नरम होकर ऊंपर बबूलेके समान उठा भया जिसका मांस होय उस ब्रणको सशल्य ऐसा जानना चाहिये ॥

कोष्ठभेद लक्षण ।

त्वचोऽतीत्य शिरादोनि भित्वा वा परिहृत्य वा ॥

कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान् ॥ १६ ॥

भाषा—त्वचाकी संधि कहिये शिरा, मांस, नस, हड्डी इनकी संधियोंको बेघकर अथवा शिरा आदिको छोड जो शल्य कोष्ठमें रहे हैं उससे आगे कहे भये लक्षण होते हैं ॥

असाध्यकोष्ठभेद ।

**तत्रांतलोहितं पांडुशीतपादकराननम् ॥
शीतोष्ठासं रक्तनेत्रमानद्धं परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥**

भाषा—जिसका रुधिर अंगोंमें संचित होय अर्थात् बाहर नहीं वहे और जो पीला बर्ण, जिसके हाथ पैर शीतल होंय और जो शीतल श्वासको छोड़े, जिसके काल नेत्र होंय तथा आनाह कहिये (पेट फूलना) ऐसे रोगीको वैद्य त्याग दवे ॥ मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि और संधि इन मर्मोंमें चोट लगनेके सामान्य लक्षण ।

अग्नः प्रलापः पतनं प्रमोहो विचेष्टनं उलानिरथोष्णता च ॥

स्वत्तांगता सूच्छेनमूर्ध्ववातस्तीव्रा रुजो वातकृताश्व तास्ताः १८ ॥

मांसोदकाभं रुधिरं च गच्छेत्सर्वेद्रियार्थोपरमस्तथैव ॥

दशाञ्छसंख्येष्वथ विक्षतेषु सामान्यतो मर्मसु लिंगमुत्तम् ॥ १९ ॥

भाषा—अग्न, अनर्थमाषण, गिरना, इन्द्रिय और मन इनको मोह, हाथ पैरका फैलाना, मुनि. उष्णता, अंगोंमें शिथिलता, मूर्छा, श्वासका चढ़ना, वातजन्य तीव्र पीड़ा, मांसके धोये हुए पानी सरीखा रुधिर वहे, नर्व इन्द्रियें विकल होंय अर्थात् सब इन्द्रियोंका न्यापार बंद हो जाय ये लक्षण मात्र आदि पांच मर्मविद्ध होनेसे होते हैं ॥

मर्मराहित शिराविद्धके लक्षण ।

सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभृतं रक्तं स्ववेत्तत्क्षणजश्च वायुः ॥

क्लरोति रोगान्विधान्यथोक्ताभित्तिरासु विद्वास्त्रथ वाक्षतासु ॥२० ॥

भाषा—शिरा कहिये (नाड़ी) विध जाय अथवा शिरामें घाव हो जाय, उसमेंसे इन्द्रगोप (वीरबहूदी) कीड़ाके समान लाल तथा पुष्पाल-रुधिर स्वें तथा रक्तक्षय होनेसे वायु कुपित होकर अनेक प्रकारके आक्षेपनादि गेग उत्पन्न करे हैं ॥

स्नायुविद्धके लक्षण ।

कौञ्ज्यं शरीरवयवावसादः क्रियास्वज्ञात्किस्तुसुला रुजश्च ॥

चिराद् ब्रणो रोहति यस्थ चापि तं स्नायुविद्धं पुरुषं व्यवस्थेत् २१ ॥

भाषा—कुबडापना, शरीरमें ग्लानि, काम करनेसे असामर्थ्यपना, बहुत पीड़ा और जिसका ब्रण बहुत दिनमें मेरे उसकी स्नायु विद्ध मई ऐसा जाने ॥

संधिविद्धके लक्षण ।

शोथाभिवृद्धिस्तुसुला रुजश्च वलक्षयः पर्वसु भेदशोथौ ॥

क्षतेषु संधिष्वचलाचलेषु स्यात्सर्वकर्मोपरमश्च लिंगम् ॥ २२ ॥

भाषा—चल अथवा अचल संधियोंका वेध होनेने सूजन बहे, पीड़ा बहुत होय, शक्तिका नाश होय, संधिमें भेदके समान पीड़ा होय, सूजन होय, कुछ कार्य करे परंतु उसमें उपराम होय ॥

हड्डी विधि गई हो उसके लक्षण ।

घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु सर्वास्ववस्थासु च नौति शांतिम् ॥

भिषग्विपश्चिद्दितार्थसूत्रस्तमस्थिविद्धं पुरुषं व्यवस्थेत् ॥ २३ ॥

भाषा-जिस पुरुषके रात दिन घोर पीड़ा होय, जागृतादि तीनों अवस्थाओं
जांति होय नहीं उसके अस्थि (हड्डी) विधी है ऐसा ऐष वैद्य जाने ॥

मर्मगद्वित शिरादिकोंके विद्धलक्षण कहनेकरके शिरादि मर्मविद्ध
लक्षणोंका हवाल देते हैं ।

यथास्वयेतानि विभावयेत्तु लिंगानि मर्मस्वभिताडितेषु ॥

भाषा-मर्मके ठिकाने चोटके लगनेसे ये पूर्वोक्त लक्षण जानने चाहिये । तुशब्दसे
रक्षण और तामान्यलक्षण होते हैं ऐसा जानना ॥

मांसमर्मके लक्षण नहीं कहे उनको कहते हैं ।

पांडुर्विवर्णः स्पृशितं न वेत्ति यो मांसमर्मस्वभिताडितः स्यात् २४ ॥

भाषा-जो पुरुष मांसमर्मके ठिकाने विद्ध होता है उसका पीला वर्ण देखा
विवर्ण होय और स्पर्शका ज्ञान न होय ॥

सर्वे ब्रणके उपद्रव ।

विसर्पः पक्षवातश्च शिरास्तम्भोपतानकः ॥ मोहोन्मादब्रणरुजा

ज्वरतुष्णा इनुग्रहः ॥ २५ ॥ कासञ्च्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः

सवेपथुः ॥ पोडशोपद्रवाः प्रोक्ता ब्रणानां ब्रणचिन्तकैः ॥ २६ ॥

भाषा-विसर्प, पक्षवात, शिरास्तम्भ, अपतानक, मोह, उन्माद, ज्वर, ब्रणकी
पीड़ा, श्वास, इनुग्रह, खांसी, वमन, आतिसार, हिक्की, श्वास और कंप ये ब्रणों
गके सोलह उपद्रव ब्रणरोगके जाननेवालोंने कहे हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाशुरनिर्भितमाधवार्थवैधिनीमायुरीभाषादीकायां
सद्योब्रणनिदानं समाप्तम् ।

अथ भग्ननिदानम् ।

भग्न दो प्रकारका हैं एक सब्रण और दूसरा ब्रणराहित,

इनमें ब्रणको कटकर ब्रणराहितको कहते हैं ।

भग्नं हमासाद्विधिं हुताशकाडे च संधौ च हि तत्र संधौ ॥

भाषा—अग्निवेशके मतसे कांडमंग और संधिमंग मिलकर संक्षेपसे भग्नरोग दो प्रकारका है

संधिमंगके लक्षण ।

उत्तिपष्टविश्लिष्टविवर्तितं च तिर्यकच विक्षितमधश्च षोडा ॥ १ ॥

भाषा—तहाँ संधिस्थानका भग्नरोग छः प्रकारका है उनके नाम कहते हैं । उत्तिपष्ट, विश्लिष्ट, विवर्तित, तिर्यक्, विक्षित और अविक्षित । भग्न नाम दूटनेका है ॥

संधिमंगके सामान्य लक्षण ।

प्रसारणाकुञ्चनवर्तनेया रुक्षपर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् ॥

सामान्यतः सन्धिगतस्य लिंगं—

भाषा—फैलाते समय, सर्वोनेके समय, नीचे करनेसे घेर पीड़ा होय और सर्वा सहा न जाय ये संधिमग्नके सामान्य लक्षण हैं ॥

उत्तिपष्टसन्धैः श्वेयथुः समन्तात् ॥ विशेषतो रात्रिभवा रुजा च—

भाषा—उत्तिपष्टमें संधिके चारों ओर सूजन होय और रात्रिमें पीड़ा बहुत होय, संधियोंके हाड़ दोनों बापसमें घिसे उसको उत्तिपष्ट ऐसा कहते हैं ॥

विश्लिष्टजंतौ च रुजा च नित्यम् ॥ २ ॥

भाषा—विश्लिष्ट संधियोंमें सूजन और रात्रिमें पीड़ा ये होकर सर्वे कालमें अत्यंत पीड़ा होय और उत्तिपष्टकी अपेक्षा इनसे लक्षण विश्लिष्टमें विशेष होते हैं अर्थात् संधि शिथिल मात्र होय । इसमें हाड़के हटनेसे बीचमें गलेटा हो जाता है ॥

विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्राः—

भाषा—विवर्तित संधिमें दोनों तरफके हाड़ संधिसे पलट जाय तब अत्यंत पीड़ा होती है इस संधिमें हाड़ दोनों तरफ फिरा करे ॥

तिर्यगते तीव्ररुजो भवान्ति ॥

भाषा—हड्डीके तिरछे हटनेसे पीड़ा बहुत हो और एक हड्डी संधिस्थान छोड़कर ढेढ़ी हो जाय ॥

क्षितेऽतिशूलं विषमा रुग्मस्यौ—

भाषा—संधिहड्डी एक ऊपरको हट जाय तो अत्यन्त पीड़ा होय और हाड़ोंमें कमजास्ती पीड़ा होय इस जगह एक हड्डीकी क्रियासे अथवा दोनों हड्डीकी क्रिया करके दोनों हाड़ परस्पर समीपसे दूर हो जाते हैं ॥

क्षिते त्वधो रुग्मिष्टश्च संदेः ॥ ३ ॥

भाषा-संधिकी इही एक नीचेको हट जाय तो पीड़ा होय और संधिकी विरुद्ध चेष्टा होय । इसमें संधिके हाड परस्पर दूर होय परंतु किंचित् नीचेको गमन करे ॥

अब कांडभग्नको कहते हैं ।

कांडे त्वतः कर्कटकाश्वर्कर्णविचूर्णितं पिच्छितमस्थिथछलिका ॥

कांडेषु भग्नं त्वतिपातितं च मज्जागतं च स्फुटितं च वक्रम् ॥ ४ ॥

छिन्नं द्विधा द्वादशधापि कांडे-

भाषा-कांडभग्न बारह प्रकारका है । १ कर्कटक, २ अश्वर्कर्ण, ३ विचूर्णित, ४ पिच्छित, ५ आस्थिथछलिका, ६ कांडभग्न, ७ अतिपातित, ८ मज्जागत, ९ स्फुटित, १० वक्र और दो प्रकारके छिन्न । १ कर्कटक अर्थात् हाड दोनों ओरसे दबकर बीचमें ऊँचासा होय । २ अश्वर्कर्ण घोडेके कानके समान जो हाड हो जाय । ३ विचूर्णित चुरकट हो गया हो वह शब्दसे अथवा स्पर्शसे जाना जाता है । ४ पिच्छित पिचा भग्ना हाड । ५ आस्थिथछलिका हाडका कोई भाग छिलकके समान उखड़कर रहे हैं । ६ कांडभग्न हड्डीका कांड टूटना । ७ अतिपात सब हाड टूटे सो । ८ मज्जागत हड्डीसे अवयव मज्जामें प्रवेश कर मज्जाको बाहर निकाले । ९ स्फुटित जिस हड्डीके बहुत टुकडे हो जाय । १० वक्र हड्डी तिरछी हो जाय वहमी भग्नमें गिरी जाती है । ११ छिन्न बारीक २ बहुतसे टुकडे हो जाय वह और १२ दूसरा एक ओरसे टूटकर दूसरी तरफ निकले हैं ॥

कांडभग्नके सामान्य लक्षण ।

स्वस्तांगताशोथरुजातिवृद्धिः ॥

संपीड्यमाने भवतीह शब्दः स्पर्शासहस्यंदनतोदशुलाः ॥ ५ ॥

सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य कांडे खलु चिह्नमेतत् ॥ ६ ॥

भाषा-अंगोंमें शिथिलता, सूजन, घोर पीड़ा, जिस स्थानकी हड्डी टूटी होय उस जगह पीड़ाके साथ शब्द होय, हाथके लगानेसे सहा न जाय, हड्डी फड़के, सुई छेदनेकीसी पीड़ा होय और शूल होय, कभी चैन न पड़े, कांड इस शब्दसे नलक, कपाल, बल्य, तरुण और रुचक इन पांच प्रकारकी हड्डियोंका संग्रह होता है । कांडभग्नके बारह भेदोंसे अधिक भेद होते हैं उनको कहते हैं ॥

भग्नं तु कांडे बहुधा प्रयाति समाप्ततो नामभिरेव तुल्यम् ॥

भाषा-कांडोंमें अनेक प्रकारके भंग होते हैं, सो जिस ठिकाने जैसी आकृतिका होय उसका उसी प्रकारका नाम बहना चाहिये ॥

कष्टसाध्य ।

अल्पाशिनो नात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च ॥

उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिद्ध्यति ॥ ७ ॥

भाषा—थोड़ा खानेवाला और जिसकी इन्द्रिय स्वाधीन न होय, वातप्रकृतिवालेकी, ज्वरादि उपद्रवसंयुक्त ऐसे पुरुषकी हड्डी टूटनेमें बड़े कष्टमें साध्य होती है ॥

असाध्य लक्षण ।

भिन्नं कपालं कव्यां तु संधिमुक्तं तथा च्युतम् ॥

जघनं प्रतिपिष्ठं च वर्जयेत्तु विचक्षणः ॥ ८ ॥

भाषा—कमरकी कपाल हड्डी टूट गई हो अथवा संधिके पासकी हड्डी इट गई हो अथवा स्थानसे हूट गई होय और जंघाकी हड्डीका चूर हो गया हो ऐसे रोगीको वैद्य त्याग दे ॥

असाध्यलक्षण ।

असंश्लिष्टकपालं च ललाटे चूर्णितं च यत् ॥

भग्नं स्तनान्तरे पृष्ठे शंखे मूर्ध्नि च वर्जयेत् ॥ ९ ॥

भाषा—ललाटकी हड्डीके टुकड़ा टुकड़ा हो परस्पर दूर हो जाय, जुड़नेके कामके न रहेअथवा स्तनके बीचकी अथवा पीठकी अथवा शंख (कनपटी) की हड्डी, मस्तककी हड्डी टूट गई हो उसको वैद्य त्याग दे ॥

सावधानता न करनेसे असाध्यता दिखाते हैं ।

सम्यक् संधितमप्यस्ति दुनिक्षेपनिवंधनात् ॥

संक्षोभाद्वापि यद्वच्छेद्विक्रियां तत्र वर्जयेत् ॥ १० ॥

भाषा—हड्डी भले प्रकार जुड़भी गई हो उसको अच्छी रीतिसे न गखे अथवा अच्छी रीतिसे वांधे नहीं, उसमें किसीका धक्का लगनेसे किर जैसेका तैसा हो जाता है और यह साध्य नहीं होय इसको वैद्य त्याग दे ॥

अस्थिविशेषकरके ममविशेष कहते हैं ।

तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि च ॥

कपालानि विभज्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि च ॥ ११ ॥

भाषा—तरुण हड्डी नव जाती है या टेढ़ी हो जाय नलकी हड्डी चिर जाती है,

१ सुश्रुते—“ जानुनितवांसगण्डतालुशस्वक्षणशिरःसु कपालात् ” इति ।

कपलास्थि फूटकर टूक टूक हो जाय, रुचकास्थि (दंतादिक) हड्डी ढुकडा होकर गिर पडे ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरकृतमाधवार्थवोधिनीमाथुरीभाषावीकार्या
मग्रनिदानं समाप्तम् ।

अथ नाडीव्रणनिदानम् ।

सम्प्राप्ति ।

यः शोथमाममतिष्कम्पुपेक्षतेऽज्ञो यो वा ब्रणं प्रचुरपूयमसा-
धुबृत्तः ॥ अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्यं तस्य स्थानानि पूर्व-
विहतानि ततः सप्तुयः ॥ तस्यातिमात्रगमनाद्विरिष्यते तु
नाडीव यद्विति तेन मता तु नाडी ॥ १ ॥

भाषा—जो सूख मनुष्य पके हुए फोड़ेको कच्चा समझकर उपेक्षा करे किंवा
बहुत राध पडे फोड़ेकी उपेक्षा कर दे तब वह बढ़ी हुई राध पूर्वोक्त त्वड्मांसादिक
स्थानोंमें जायकर उनको भेद कर वह बहुत भीतरही पहुँच जाय, तब एक मार्ग
कर उसमें वह राध नाडीके समान वहे, इसीसे इसको नाडीव्रण (नास्त्र) कहते हैं ॥

संख्यालूप संप्राप्ति ।

दोषैद्विभिर्भवति सा पृथगेकश्च ॥

संमूर्च्छतैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥ २ ॥

भाषा—पृथक् पृथक् दोषोंसे ३, सञ्चिपातसे ? और शल्यसे १ ऐसा नाडी-
व्रण पांच प्रकारका है ॥

वातनाडीव्रणके लक्षण ।

तत्रानिङ्गातपहृष्टसूक्ष्ममुखी सशूला

फेनादुविद्धमधिकं स्वति क्षपासु ॥

भाषा—वादीसे नाडीव्रणका मुख रुखा तथा छोटा होय और शूल होय । : स-
मेसे फेनयुक्त स्वत होय, रात्रिमें अधिक स्वते ॥

पित्तके नाडीव्रणके लक्षण ।

पित्तात्तु तृट्ज्वरकरी परिदाहयुक्ता

पीतं स्वत्यधिकमुष्णमहःसु चापि ॥ ३ ॥

माषा-पित्तके नाडीव्रणमें प्यास, ज्वर और दाह होय, उसमेंसे पीले रंगका और बहुत गरम राध स्वाव और दिनमें स्वाव अधिक होय ॥

कफज नाडीव्रणके लक्षण ।

**ज्वेया कफाद्वच्छुवनार्जुनपिच्छलास्त्रा
स्तब्धा सकंडुररुजा रजनीप्रवृद्धा ॥**

माषा-कफज नाडीव्रणमें सफेद, गाढ़ी, चिकनी राध निकले, खुजली चले, रातमें स्वाव बहुत होय ॥

सञ्चिपातज नाडीव्रणके लक्षण ।

**इहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्षशोषा यस्यां भवन्ति विहितानि च
लक्षणानि ॥ तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपात् घोरामसुक्षय-
करीमिव कालरात्रिम् ॥ ४ ॥**

माषा-जिस नाडीव्रणमें दाह, ज्वर, श्वास, मूर्छा, मुखका स्खलना और पूर्वोक्त लक्षण होंय उसको त्रिदोषकोपजन्य नाडीव्रण जानना । यह भयंकर प्राण नाश करनेवाला कालरात्रिके समान जानना ॥

शल्यज नाडी ।

**नष्टं कथंचिद्भुमार्गमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गर्ति
करोति ॥ सा फेनिलं मथितमुष्णमसृज्विमिश्रं स्वावं करोति
सद्गुरुं च नित्यम् ॥ ५ ॥**

माषा-किसी प्रकारसे शल्य (कंटकादि) उक्त स्थानमें पहुँचकर टूट जाय तो नाडीव्रणको उत्पन्न करे । उस नाडीव्रणमें ज्वाग मिला तथा रुधिरयुक्त मध्यके समान गरम नित्य राध वहे तथा पीड़ा होय ॥

साध्यासाध्य लक्षण ।

नाडीत्रिदोषप्रभवा न सिद्धचेच्छेषाश्वतस्वः खलु यत्नसाध्याः ॥ ६ ॥

माषा-त्रिदोषजन्य नाडीव्रण साध्य नहीं होय, बाकीके चार नाडीव्रण यत्ने करनेसे साध्य होते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाशुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाशुरीमाषादीकार्या
नाडीव्रणरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ भगंदरनिदानम् ।

**गुदस्य अंगुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिटिकार्तिंकृत् ॥
भिन्नो भगन्दरो ज्ञेयः स च पंचविधो मतः ॥ १ ॥**

भाषा—गुदोके समीप दो अंगुल ऊंची पिटिका (फुंसी) होय उसमें बहुत पीडा होय वह पिटिका फूट जाथ उसको भगंदरोग कहते हैं । मुश्शुतने इसकी निरुक्ति इस प्रकार करी है । तथा “ गुदभगवस्तिदारणात् भगंदरः ” इति । भगशब्द इस जगह गुदावाचक है सो भोजने कहामी है । “ भगं परिसमंताच्च गुदवस्तिस्तथैव च । भगवद्वारयेद्यस्मात् ज्ञेयो भगंदरः ॥ ” इति । यह भगंदरोग पांच प्रकारका है । यह संख्या कहना केवल रक्तज द्वंद्वज भगंदर-संभावनानिवारणार्थं जानना । इसके पूर्वरूप ग्रन्थान्तरोंसे लिखते हैं ॥

पूर्वरूप ।

**कटीकपालनिस्तोददाहकंदूरुजादयः ॥
भवान्ति पूर्वसूपाणि भविष्यन्ति भगंदरे ॥ २ ॥**

भाषा—कमरमें कपालास्थिमें सुईसी चुम्हे, दाह होय, खुजली चले, पीडा होय ये लक्षण जब भगंदर होनहार होता है तब होते हैं । इस जगहमी कपालास्थि पूर्वोक्त जाननी अर्थात् जो नाडीब्रणमें कह आये हैं ॥

शतपोनकके लक्षण ।

**कषायसूक्ष्मरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशो पिडिकां करोति या ॥
उपेक्षणात्पाकमुपैति द्राहणं रुजा च भिन्नारुणफेनवाहिनी ॥
तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां ब्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ॥ ३ ॥**

भाषा—कषैले और रूखे पदार्थ खानेसे वायु अत्यंत कुपित होकर गुदास्थानमें जो पिटिका (फंसी) प्रगट करे, उनकी उपेक्षा करनेसे वे फुंसी पके और फूट जांय तब पीडा होय । तथा लाल झाग मिली राध वहे तथा उसमें अनेक छिद्र हो जांय, उन छिद्रोंमें होकर मूत्र, मल और रेत (शुक्र) वहे, चालनीकेसे अनेक छिद्र होंय, इसी कारण इस रोगको शतपोनक ऐसा कहते हैं । शतपोनक नाम संस्कृतमें चालनीका है ॥

उष्णशिरोधरके लक्षण ।

**प्रकोपनैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति रक्तां पिडिकां गुदाश्रिताम् ॥
तदाशु पाकाहिमपूयवाहिनीं भगंदरं तूष्णशिरोधरं वदेत् ॥ ४ ॥**

भाषा—पित्तकारक पदार्थ खानेसे कुपित भया जो पित्त गुदामें लाल रंगकी पिटिका उत्पन्न करे, वह शीघ्र पककर उनमेंसे गरम राध बहे । ये पिटिका (फुंसी) ऊंटकी नाड़के समान होय इसीसे इसको उष्णशिशोधर कहते हैं ॥

परिस्नावी मण्डरके लक्षण ।

कंदूयनो घनस्नावो कठिनो मंदवेदनः ॥

श्वेतावसाभः कफजः परिस्नावी भग्नदरः ॥ ६ ॥

भाषा—कफसे प्रगट भये भग्नदरमें खुजली चले तथा उसमेंसे गाढ़ी राध बहे तथा वह पिटिका कठिन होय, उसमें पीड़ा योड़ी होय, उसका वर्ण सपेद होय, उसको परिस्नावी भग्नदर कहते हैं ॥

शंबूकावर्त्तके लक्षण ।

बहुवर्णरुजा स्नावाः पिडिका गोस्तनोपमाः ॥

शंबूकावर्तवन्नाडीशंबूकावर्त्तको मतः ॥ ६ ॥

भाषा—जिसमें गौके थनके समान अनेक पिडिका होय, उनका रंग, पीड़ा और स्नाव अनेक प्रकारका होय और व्रण शंखके आटके समान गोल होय, इसको शंबूकावर्त्त कहते हैं ॥

उन्मार्गभग्नदरके लक्षण ।

क्षताद्रुतिः पायुगता विवर्धते ह्युपेक्षणात्स्युः कृमयो विद्यार्यते ॥

प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुख्यैर्वर्णैस्तदुन्मार्ग्यभग्नदरं वदेत् ॥ ७ ॥

भाषा—गुदामें कांटे आदिके लगनेसे क्षण (घाव) हो जाय, उस घावकी उपेक्षा करनेसे उसमें कृमि पड़ जाय, वे कृमि उस क्षदको विदारण करें, ऐसे वह घाव गुदापर्यंत बढ़कर पहुँचे तथा कृमि उसमें अनेक मुख कर लेवे इसको उन्मार्गी भग्नदर कहते हैं ॥

माध्यासाध्य लक्षण ।

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्वे एव भग्नदराः ॥

तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः ॥ ८ ॥

भाषा—सब भग्नदर दुःसाध्य हैं तिसमेंमी त्रिदोषका भग्नदर असाध्य है और क्षतज विशेषकरके असाध्य है ॥

असाध्यके लक्षण ।

वातमूत्रपुरीषाणि कृमयः शुक्रमेव च ॥

भग्नदरात्प्रस्त्रवन्ति नाशयन्ति तमातुरम् ॥ ९ ॥

भाषा—जिस भगदर्मेंसे अधोवायु, मूत्र, विष्ट, कृमि और वीर्य वहे उस रोगीका नाश होय ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरानीर्भूतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकाया
भगदर्मनिदान समाप्तम् ।

अथोपदंशनिदानम् ।

कारण ।

हस्ताभिघातान्नखदन्तघातादधावनाद्रत्यतिसेवनाद्वा ॥

योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्वे पंचोपदंशा विविधोपचारैः ॥ १ ॥

भाषा—हाथकी चोट लगनेसे, नखदांतके लगनेसे, अच्छी रीतिसे न धोनेसे, अत्यन्त स्थिसंगके करनेसे अथवा योनिके दोषसे (अर्थात् दीर्घ करे बाल जिसके ऊपर होय) अथवा स्त्री गरम जलके धोनेसे, ब्रह्मचर्यवली स्त्रीसे गमन करनेसे इत्यादि कारणोंसे लिंगमें उपदंश (गर्भीका रोग) होय है वह पांच प्रकारका है ॥

वातोपदंशके लक्षण ।

सतोदभेदस्फुरणे: सकृष्णैः स्फोटैर्वर्यवस्थेत्पवनोपदंशम् ॥

भाषा—लिंगेन्द्रियके ऊपर काले फोडे उठें, उनमें चोटनेकीसी पीड़ा होय, तोड़नेकीसी पीड़ा होय और स्फुरण ये लक्षण वातोपदंशके जानने ॥

पिचोपदंश व रक्तोपदंशके लक्षण ।

पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तात्पिण्ठितावभासैः ॥ २ ॥

भाषा—पित्तके उपदंशकरके पीले रंगके फोडे होते हैं, उनमेंसे पानी बहुत वहे, दाह होय, स्थिरके उपदंशसे मांसके समान लाल रंगके फोडे होय ॥

कफोपदंशके लक्षण ।

सकंडुरैः शोथयुतैर्महाद्विः शुक्लैर्वन्तस्त्रावयुतैः कफेन ॥

भाषा—कफके उपदंशकरके सपेद मोटे फोडे होय, उनमें खुजली चले सूजन होय और गाढ़ी राध वहे ॥

सन्त्रिपातोपदंशके लक्षण ।

नानाविधस्त्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ॥ ३ ॥

भाषा—जिस उपदंशमें अनेक प्रकारका स्त्राव होय, पीड़ा होय यह त्रिदोषज उपदंश असाध्य है ॥

असाध्य लक्षण ।

विशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जयेत् ॥

भाषा—जिस उपदंश करके लिंगका मांस गल गया हो और कृमि लिंगको खाय जावें, केवल अंडकोश मात्र रह जाय, उसको वैद्य त्याग दें ॥

असाध्य लक्षण ।

संजातमात्रेण करोति सूढः क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः ॥

क्लालेन शोथकृमिदाहपाकैर्विशीर्णशिश्रो ब्रियते स तेन ॥ ४ ॥

भाषा—उपदंशके होतेही जो सूखे मनुष्य विषयमें आसक्त होकर इसका उपचार नहीं करे उसके लिंगमें थोड़े दिनमें सूजन और कीड़े पड़े और उसमें दाह पाकमी होय, पीछे वह गल जाय, ऐसा रोगी मर जाय ॥

लिंगवर्तिके लक्षण ।

अंकुरैरिव संघातैरुपर्युपरि संस्थितैः ॥ क्रमेण जायते वर्त्ति-स्ताप्रचूडशिखोपमा ॥ ६ ॥ कोशस्याभ्यन्तरे संधौ सर्वसंधिगतापि वा ॥ लिंगवर्तिरिति ख्याता लिंगार्शं इति चापरे ॥ ६ ॥

कुलस्थाकृतयः केचित्केचित्पद्मदलोपमाः ॥ मेद्रसंधौ नृणां केचित्केचित्सर्वाश्रयाः स्मृताः ॥ ७ ॥ रुजा दाहार्तिवहुलास्तृष्णातोदसमन्विताः ॥ स्त्रीणां पुंसां च जायंते हुपदंशाः सुदारुणाः ॥ ८ ॥

भाषा—सुर्गेकी चोटीके समान लिंगके ऊपर मांसके अंकुर एकके ऊपर एक प्रगट होय, कोशकी भीतरकी मणिमें अथवा सर्व संधियोंमें तो इस रोगको लिंगवर्ति ऐसा ह कहते हैं और कोई लिंगार्श कहते हैं । यह त्रिदोषजन्य है । इसमें मांसके अंकुर कुलस्थीके समान और कोई पद्मदलके समान, किसीके अंडकोशकी संधिमें, किसीके सर्व आशयमें होते हैं । पीड़ा दाह बहुत होय, प्यास, नोचनेकीसी पीड़ा होय, स्त्री और पुरुषोंके यह उपदंश घोर पीड़ाकारक होते हैं । इसमें “कुलित्याकृतयः” यहांसे लेकर “स्त्रीणां पुंसां च जायंते” यहांतक पाठ क्षेपक है । माधवका नहीं है और स्त्रियोंकेभी गरमीका रोग होय है यह मत सुश्रुतका है । परन्तु यह आर्ष याठ नहीं है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरानिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषादीकार्या
उपदंशनिदानं समाप्तम् ।

अथ फिरंगरोगनिदानम् ।

उपदंशरोगकाही भेद फिरंगरोग है उसको ग्रन्थान्तरसे लिखते हैं ।
फिरंगशब्दकी निरुक्ति ।

फिरंगसंज्ञके देशे बाहुलयेनैष यद्भवेत् ॥

तस्मात्फिरंग इत्युक्तो व्याधिव्याधिविशारदैः ॥ १ ॥

भाषा—फिरंगियोंके देशमें यह रोग बहुग्राकरके होय है, इसीसे वैद्य इसको फिरंगरोग कहते हैं ॥

विप्रकृष्टनिदान ।

गंधरोगफिरंगोऽयं जायते देहिनां ध्रुवम् ॥ फिरंगिणेति संसर्गात्
फिरंगिण्या प्रसंगतः ॥ भवेत्तं लक्ष्येत्तेषां लक्षणैर्भिषज्ञां वरः ॥२॥

भाषा—गंधरोग यह फिरंगरोग है । सो मनुष्योंके अंगेजोंके संसर्गसे अथवा फिरंगिणी (मेम) के प्रसंग कानेसे होता है । सो इसको इसके जो आगे लक्षण कहेंगे उनसे जाने ॥

रूपमाह ।

फिरंगस्त्रिविधो ज्ञेयो बाह्य आभ्यन्तरस्तथा ॥

त्रहिरन्तर्भवश्चापि तेषां लिंगानि च ब्रुवे ॥ ३ ॥

भाषा—फिरंग रोग तीन प्रकारका है एक बाहर होय, दूसरा भीतर होय है और तीसरा बाहर भीतर दोनों स्थानोंमें होता है । उनके लक्षण कहाता हूँ ॥

तत्र बाह्यः फिरंगः स्याद्विस्फोटसहशात्परुक् ॥

स्फुटितो ब्रणवद्वेद्यः सुखसाध्योऽपि स स्मृतः ॥ ४ ॥

भाषा—तहाँ बाहरका फिरंग रोग फोड़के समान थोड़ी पीड़ाकर्ता होता है और फोड़के समानही फूटे है यह सुखसाध्य है ॥

संधिष्वाभ्यन्तरः स स्यादुभयोर्लक्षणैर्युतः ॥

कष्टदोऽतिंचिरस्थायी कष्टसाध्यतमश्च सः ॥ ५ ॥

भाषा—और जो फिरंग सन्धियोंके भीतर होय अथवा दोनों बाहर और भीतरकी फिरंगके लक्षण मिलते होय वह आतेकष्ट देनेवाला बहुत कालतक रहनेवाला कष्टसाध्य है ॥

फिरंगरोगके उपद्रव ।

काइर्यं बलक्षयो नासाभंगो वह्नेश्च मंदता ॥

अस्थिशोषोऽस्थिवक्रत्वं फिरंगोपद्रवा अमी ॥ ६ ॥

भाषा—देह कृश हो जाय, बलनाश हो जाय, नाक बैठ जाय, अग्नि मंद हो जाय, इड्डी सुखे तथा इड्डी टेढ़ी हो जाय ये फिरंगके उपद्रव हैं ॥

साध्यासाध्य कष्टसाध्य ।

बहिर्भवो भवेत्साध्यो नूतनो निरुपद्रवः ॥ आभ्यन्तरस्तु क्षेन
साध्यः स्यादयमामयः ॥ ७ ॥ बहिरंतर्भवो जीर्णः क्षीणस्योपद्र-
वैर्युतः ॥ दोध्यो व्याधिरसाध्योऽयमित्युच्चुर्णयः पुरा ॥ ८ ॥

भाषा—जो फिरंग बाहर होय, नया और उपद्रवरहित होय वह साध्य है और
भीतर होय वह कष्टसाध्य है और जो बाहर भीतर दोनों ठिकानेपर होय तथा पुराना
पड़ गया और उपद्रवयुक्त होय वह फिरंग रोग असाध्य है । फिरंग यह रोग
चातका भेद जानना चाहिये । यह सुजाक नामसे ग्राहित है ॥

इति श्रीभग्विद्वद्तराममाशुरनिर्भतमाधवार्थवोधिनीभाशुरीभाषादीकार्यां
फिरंगरोगनिदान समाप्तम् ।

अथ शूकरोगनिदानम् ।

संप्राप्ति ।

अक्रमाच्छेफसो वृद्धियोऽभिवाभ्यति मूढधीः ॥

व्याधयस्तस्य जायन्ते दृश चाष्टौ च शूकराः ॥ ९ ॥

भाषा—जो मंदबुद्धिवाला पुरुष शाक्षोक्त क्रमके बिना लिंगको मोटा करा चाहे
वा विषकूमिका लिंगके ऊपर लेपादिक करे अथवा जलयोग वातस्यायन ऋषिका कहा
उनका साधन करे उसके २८ प्रकारके शूकर रोग होते हैं ॥

सर्षपिकाके लक्षण ।

गौरसर्पपसंस्त्याना शूकरुभयहेतुका ॥

पिटिका श्वेषनवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका च सा ॥ २ ॥

भाषा—दुष्ट जलजंतुओंका दुष्ट रीतिसे लेप करनेमें कफवात कुपित होकर सपेद
सरसोंके समान जो पिटिका (फुंसी) होय उसको सर्षपिका कहते हैं ॥

अष्टीलाके लक्षण ।

काठिना विषमैभुग्नैर्वायुनाष्टीलिका भवेत् ॥

भाषा—अप्रसक्त शूकोंके लेपसे वायु कुपित होकर कर्डी निहाईके समान पिटिका होय और विषम कहे कोई छोटी और कोई बड़ी और सुझ कहे टेढे ऐसे शूक कहिये मांसांकुरोंसे व्याप्त होय उसको अष्टीला कहते हैं ॥

ग्रंथितके लक्षण ।

शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्रथितं नाम तत्कफात् ॥ ३ ॥

भाषा—निरंतर शूकलेप करनेसे लिंगेन्द्रियके ऊपर गांठ पैदा होय उसको ग्रंथित कहते हैं ॥

कुंभिकाके लक्षण ।

कुंभिका रक्तपित्तोत्था जांबवास्थिनिभाऽशुभा ॥

भाषा—रक्तपित्तसे जासुनकी गुठलीके समान काले रंगकी पिटिका होय उसको कुंभिका ऐसा कहते हैं ॥

अलजीके लक्षण ।

तुल्यजां त्वलजीं विद्याध्यथा प्रोक्तं विचक्षणैः ॥ ४ ॥

भाषा—यह पिटिका प्रमेहपिटिकामें जो अलजी नाम पिटिका कह आये हैं उसके समान लाल काले फोड़ोंसे व्याप्त होय तथा उसके लक्षण पूर्वोक्त पिटिका-केसे होते हैं ॥

सृदितके लक्षण ।

सृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वातकोपतः ॥

भाषा—शूकपीडा होनेके अनंतर लिंगको हाथोंसे मीढ़नेसे अथवा दूबनेसे वायुके कोपसे लिंग सूज जाता है ॥

संमूढपिटिकाके लक्षण ।

पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपिटिका भवेत् ॥ ५ ॥

भाषा—लेप करनेसे अनंतर जब लिंगमें खुजली चले तब उसको दोनों हाथोंसे खुब खुजावे, तब एक मूढ (विना मुखकी) पिटिका होय उसको संमूढपिटिका कहते हैं ॥

अवमंथके लक्षण ।

दीर्घा वह्नचश्च पिटिका दीर्घन्ते मध्यतस्तु याः ॥

सोऽवमंथः कफासृभ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥ ६ ॥

भाषा—कफरक्तसे लंबी और अनेक तथा बीच बीचमें फूटी भई ऐसी जो पीटिका लिंगमें होंय, उसके होनेसे रोमांच और पीड़ा होय इस रोगको अवमंथ ऐसा कहते हैं ॥

पुष्करिकाके लक्षण ।

पित्तशोणितसंभूता पिटिका पिडिकाचिता ॥

पद्मकार्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका च सा ॥ ७ ॥

भाषा—पित्तरक्तसे उत्पन्न भई पिटिका उसके चारों तरफ अनेक छोटी छोटी फुंसी होंय और कमलके भौतरकी केसरके समान सब फुंसी होय उसको पुष्करिका ऐसा कहते हैं ॥

स्पर्शहानिके लक्षण ।

स्पर्शहार्नि तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम् ॥

भाषा—शूक्रका लेप करनेसे रुधिर दूषित होकर त्वचाके स्पर्शज्ञानको नष्ट करे है ॥
उत्तमाके लक्षण ।

मुद्रमाषोद्रमा रक्ता रक्तपित्तोद्गवाश्च याः ॥

व्याधिरेषोत्तमा नाम शूकाजीर्णनिमित्तजः ॥ ८ ॥

भाषा—शूक्रका वरंवार लेप करनेसे रक्तपित्त कुपित होकर मूँग उरदके समान लाल फुंसी लिंगोद्रियपर होंय उसको उत्तमा कहते हैं । यह अजीर्णके कारणसे होती है ॥

शतपोनकके लक्षण ।

छिद्रैणुमुखैर्लिंगं चितं यस्य समंततः ॥

वातशोणितजो व्याधिविज्ञेयः शतपोनकः ॥ ९ ॥

भाषा—जिस शुरुषके लिंगमें अनेक बारीक छिद्र हो जाय वह व्याधि वातशोणि-
तसे प्रगट होती है इसको शतपोनक कहते हैं ॥

त्वक्पाकके लक्षण ।

वातपित्तकृतो यस्तु त्वक्पाको ज्वरदाहवान् ॥ १० ॥

भाषा—वातपित्तसे लिंगकी त्वचा पक जाय और उसमें ज्वर दाह होता है ॥

शोणितार्दुदके लक्षण ।

कूज्जैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिटिकाभिर्निपीडितम् ॥

यस्य वास्तुरुजा चोद्या ज्ञेयं तच्छोणितार्दुदम् ॥ ११ ॥

भाषा—जिस पुरुषकी लिंगेन्द्रियके ऊपर काले लाल फोडे उत्पन्न होय तथा उनमें पीड़ा होय उसको शोणितार्द्ध कहते हैं ॥
मांसार्द्धके लक्षण ।

मांसदोषेण जानीयादर्द्धुर्दं मांससंभवम् ॥
भाषा—मांस दुष्ट होनेसे मांसार्द्ध प्रगट होता है ॥
मांसपाकके लक्षण ।

शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदुनाः ॥
विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥ १२ ॥

भाषा—जिसकी इन्द्रियका मांस गल जाय और अनेक प्रकारकी पीड़ा होय, (यह व्याधि त्रिदोषज है) इस व्याधिको मांसपाक कहते हैं ॥
विद्रधिके लक्षण ।

विद्रधिं सञ्चिपातेन यथोत्तमभिनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

भाषा—विद्रधिनिदानमें जो सञ्चिपातविद्रधिके लक्षण कहे हैं वेही यहां विद्रधिशूलके लक्षण जानने ॥

तिलकालकके लक्षण ।

कृष्णानि चित्राण्यथ वा शूक्रानि सविषाणि तु ॥
पातितानि पचन्त्याशु येद्रं निरवशेषतः ॥ १४ ॥
कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यते यस्य देहिनः ॥
सञ्चिपातसमुत्थान्तु तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ १५ ॥

भाषा—काले अथवा चित्रविचित्र रंगकेसे विषशूर्कोंका लेप करनेसे तत्काल सर्वलिंग पक जाय तथा सब मांस तिलके सहश काला होकर गल जाय इस त्रिदोष-उत्पन्न व्याधिको तिलकालक ऐसा कहते हैं ॥

असाध्य शूक्रदोषके लक्षण ।

तत्र मांसार्द्धं यज्ञ मांसपाकश्च यः स्मृतः ॥
विद्रधिश्च न सिद्धचांति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ १६ ॥

भाषा—जिस शूक्रदोषमें मांसार्द्ध, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये चार असाध्य हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधर्वाथेवोधिनीमाथुरीभाषाटीकाया
शूक्ररोगनिदान समाप्तम् ।

अथ कुष्ठनिदानम् ।

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्त्रिग्धगुह्णि च ॥ भजतामागतां छाद्वि
वेगांश्चान्यान्प्रतिब्रताम् ॥ १ ॥ व्यायामभतिसंतापभतिभुक्त्वा
निषेविणाम् ॥ शीतोष्णलंबनाहारान् क्रमं सुकृत्वा निषे-
विणाम् ॥ २ ॥ घर्मश्रमभयार्तानां द्रुतं शीतांशुसेविणाम् ॥
अजीर्णच्यज्ञनानां च पंचकर्मापचारिणाम् ॥ ३ ॥ नवान्नदधि-
मत्स्यादिलवणाम्लनिषेविणाम् ॥ मापमूलज्ञपिष्टन्नतिलक्षरि-
गुडाणिनाम् ॥ ४ ॥ व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां च भजतां
दिवा ॥ विप्रान्गुरुन्धर्षयतां पापं कर्म च कुर्वताम् ॥ ५ ॥ वाता-
द्यव्यापो दुष्टास्त्वयत्क्रमांस्तमंडु च ॥ दूषयंति सकुष्ठानां ततको
द्रव्यसंग्रहः ॥ अतः कुष्ठानि जायंते सत चैकादशैव च ॥ ६ ॥

भाषा-विरोधी कहिये क्षीरमत्स्यादि, पतले, स्नेहयुक्त, भारी ऐसे अन्नपानके
सेवन करनेसे, रटके वेगको रोकनेसे और अन्य वेग कहिये मलमूत्रादि वेगोंके
रोकनेसे, भोजन करके अत्यंत व्यायाम (ढंड कर्तरन) व्यवा व्यतिसंताप (सूर्यका
ताप) सहनेसे, शीत, गरमी, लंघन और आहार इनका उक्त क्रम छोड़कर
सेवन करनेसे पसीना श्रम और भय इनसे पीड़ित होय और उसी समय शीतल
जल पीवे इस कारणसे, अजीर्ण अन्न भक्षण करनेसे तथा भोजनके ऊपर भोजन
करनेसे; वमन, विरेचन, निरुद्धण, अनुवासन, नस्यकर्म इन पंचकर्मके
करते समय अपथ्य करनेसे; नया अन्न, दही, मछली, सारी, खट्टा, पद्मार्थके सेवन करनेसे,
उड्ड, मूरी, मिष्ठान (लड्डू, खजला, फेनी आदि), तिल, दूध, गुड इनके
खानेसे; अन्नके पचे बिना खीसंग करनेसे तथा दिनमें सोनेसे; ब्राह्मण, गुरु इनका
तिरस्कार करनेसे; पापकर्मके आचरण करनेसे ऐसे पुष्पोंके वातादिक तीनों दोष
त्वचा, रुधिर, मांस और जड़ इनको द्रुष्ट कर कुष्ठगेग (कोद) उत्पन्न करे । कुष्ठ
होनेके वातादि तीनों दोष और त्वचादि दूष्य ये भात पदार्थ अवश्य कारणभूत
हैं । इनसेही अठारह प्रकारके कुष्ठ होते हैं । तिनमें सात महाकुष्ठ और ग्याह
शुद्ध कुष्ठ हैं ॥

कुष्ठेको त्रिदोषजत्वभी होनेसे दोषाधिक्यसे वे सात प्रकारके हैं सो कहते हैं ।

कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वंद्वैः समागतैः ॥

सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिको मतः ॥ ७ ॥

भाषा—पृथक् पृथक् दोषोंकरके ३, द्वंद्वज ३ और सञ्चिपातसे १ सब मिलकर सात कुष्ठ भयं । सब कुष्ठ त्रिदोष होनेपरभी जो दोष अधिक होय, उसीमें व्यवहार करना चाहिये अर्थात् जिस दोषके लक्षण मिलें उसको उसी दोषका कुष्ठ जानना जैसे “ बातेन कुष्ठ कापालं ” अर्थात् बाताधिक्य होनेसे कापाल कुष्ठ होता है ॥

कुष्ठके पूर्वरूप ।

**अंतिशुक्षणत्वरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णता ॥ ८ ॥ दाहः कंदूस्त्व-
चि स्वापस्तोदः कोष्ठोन्नतिः कुमः ॥ व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रो-
त्पत्तिश्विरस्थितिः ॥ ९ ॥ रुद्धानामपि रुक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि
कोपनम् ॥ रोमहर्षोऽसृजः काष्ठर्ष्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ १० ॥**

भाषा—जिस ठिकाने कुष्ठ होनहार हो उस जगह हाथोंसे चिकना मालूम होय अथवा खरदारा मालूम होय, उस ठिकाने पसीना आवे अथवा नहीं आवे तथा उस ठिकानेका वर्ण पलट जाय, दाह होय, खुजली चले, त्वचाका स्पर्श मालूम न होय, नोचनेकीसी पीड़ा होय, विषैली माखीके काटनेके सदृश चकत्ता उठे, परिश्रम करे बिना देहमें श्रम होय, ब्रणमें पीड़ा अधिक होय, उन फोड़ोंकी उत्पत्ति शीघ्र होकर बहुत दिवसपर्यंत रहे, जब फोड़ा भरनेको होय तब रुखे रहें, उनका थोड़ा निमित्त होनेसे कोप होय, रोमांच होय और रुधिर काला पड़ जाय ये कुष्ठ होनेके पूर्वरूप होते हैं ॥

सप्त महाकुष्ठोंके लक्षण ।

कृष्णारुणकपालाभं यद्वक्षं परुषं ततु ॥

कापालं तोदुवदुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥ ११ ॥

भाषा—कापालकुष्ठ जो काले तथा लाल खीपडेके सदृश, रुखे, कठोर, पतले ऐसे त्वचावाले तथा नोचनेकीसी पीड़ायुक्त होय वे दुश्चिकित्स्य हैं अर्थात् वे चिकित्सा करनेमें कठिन हैं । इसको कापालकुष्ठ कहते हैं ॥

औदुंबरकुष्ठके लक्षण ।

रुग्दाहरागकंदूभिः परीतं लोमपिंजरम् ॥

उदुंबरफलाभासं कुष्ठमौदुंबरं वदेत् ॥ १२ ॥

भाषा—औदंवरकुष्ठ यह शूल, दाह, लाल और खुजलीँ इनसे व्याप्त होय इसमें बाल कपिल वर्णके होय तथा ये गूलरफलके समान होते हैं ॥
मंडलकुष्ठके लक्षण ।

श्वेतरक्तं स्थिरस्त्यानं स्निग्धमुत्सव्रमंडलम् ॥

कुच्छूमन्येन संयुक्तं कुष्ठं मंडलमुच्यते ॥ १३ ॥

भाषा—मंडलकुष्ठ सफेद, लाल, कठिन, गीला, चिकना, जिसका आकार मंडलके सदृश होय तथा एक दूसरेसे मिला होय ऐसा यह मंडलकुष्ठ कष्टसाध्य है ॥
ऋग्यजिह्वाकुष्ठलक्षण ।

कर्कशं रक्तपर्यंतमन्तःइयावं सवेदनम् ॥

यद्वक्षजिह्वासंस्थानमृक्षजिह्वं तदुच्यते ॥ १४ ॥

भाषा—ऋग्यजिह्वाकुष्ठ कठोर, अंतविषे लाल होय, बीचमे काला होय, पीडा करे तथा रीछकी जीभके समान होता है ॥
पुंडरीककुष्ठके लक्षण ।

सश्वेतं रक्तपर्यंतं पुडरीकदलोपमम् ॥

सोत्सेधं च सरागं च पुंडरीकं प्रचक्षते ॥ १५ ॥

भाषा—पुंडरीककुष्ठ जो कुष्ठ पुंडरीक (कमल) पत्रके समान सफेद होय और उसके अंतभाग लाल होय, यर्किचित् ऊंचा निकल आवे और मध्यमे थोडा लाल होता है ॥

सिध्मकुष्ठके लक्षण ।

श्वेतं ताङ्रं च तज्जु यद्वजो घृष्टं विमुचति ॥

प्रायेणोरसि तत्सिध्ममलात्तु सुमोपमम् ॥ १६ ॥

भाषा—सिध्मकुष्ठ सपेद, लाल, पतला, खुजानेसे भूमीसी उडे यह विशेष-करके छातीमें होता है और धीथाके फूलके आकार होता है ॥

काकणकुष्ठके लक्षण ।

यत्काक्षणांति कावर्णं सपाकं तीव्रवेदनम् ॥

त्रिदोषार्द्धं तत्कुष्ठं काक्षणं नैव सिद्धयति ॥ १७ ॥

भाषा—काकणकुष्ठ जो चिरमिटीके समान लाल अर्धात् बीचमे काला होय और ओरपास लाल होय अथवा बीचमें लाल होय और ओरपास काला होय, यर्किचित् पका, तीव्र पीडायुक्त, जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हो यह कुष्ठ अच्छा नहीं होता है ॥

ग्यारह क्षुद्रकुष्ठोके लक्षण ।

अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम् ॥

तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहलं हस्तिचर्मवत् ॥ १८ ॥

भाषा—चर्मकुष्ठ पसीनारहित, मोटी जगह व्यापनेवाला, मछलीकी त्वचासमान अर्थात् अभ्रकके पत्रसमान गोल गोल होय और जिसका चर्म हाथीके चर्मसमान मोटा और कठोर होय उसको चर्मकुष्ठ कहते हैं ॥

किटिभकुष्ठोके लक्षण ।

इयावं किनसरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम् ॥

भाषा—किटिभकुष्ठ नीलबर्ण, ब्रणकी चटके समान कठोर स्पर्शमालूम होय और परुष कहिये रुक्ष होय ॥

वैपादिककुष्ठोके लक्षण ।

वैपादिकं पाणिपादस्फोटनं तीव्रवेदनम् ॥ १९ ॥

भाषा—वैपादिक जिसमें हाथकी हथेली और पैरके तरवा फट जाय और पीड़ा बहुत होय, इस विपादिकाको विवाई नहीं जानना । क्योंकि विवाई केवल पैरमेही होती है और विवाईको शादीमें पाददारी कहते हैं और विपादिकमें हाथ पैरमें फुंसी इयामरंगकी होती है और वे फुंसी चुचाती हैं तथा खुजाती हैं. इसीसे पाददारी भिन्न और विपादिका भिन्न है ॥

अलसकुष्ठोके लक्षण ।

कंडूमध्दिः सरागैश्च गंडैरल्लसकं चितम् ॥

भाषा—अलसकुष्ठ, इस कुष्ठमें पीड़ा बहुत होय और जिसमें पिडिका पित्तके समान बहुत होय और लाल होय । इसमें बहुतसे मूर्ख वैद्य पित्तीकी शंका करते हैं ॥

दद्रूमंडलकुष्ठोके लक्षण ।

सकंडू रागपिटिकं दद्रूमंडलमुद्रतम् ॥ २० ॥

भाषा—दद्रूमंडलकुष्ठ इसमें खुजली होय, लाल होय और फोड़ा होय और ये ऊंचे उठ आयें, मंडलके आकार रोग उत्पन्न होय इसीसे इसको दद्रूमंडल कहते हैं ॥

चर्मदलकुष्ठोके लक्षण ।

रक्तं सशूलं कंडूमत्स्फोटं यद्दलयत्यपि ॥

तच्चर्मदलमाख्यातमस्पर्शासहमुच्यते ॥ २१ ॥

भाषा—चर्मदलकुष्ठ यह लाल हो, शूलयुक्त, खुजलीयुक्त, फोड़ोंसे व्याप होकर फूट जाय, इसमें हाथ लगानेसे सहा न जाय, इसमें त्वचा फट जाय ॥

पामाकुष्ठके लक्षण ।

सूक्ष्मा वह्यः पीडिकाः स्नाववत्यः पामेत्युक्ताः कंडुमत्यः सदाह्राः ॥

भाषा—पामाकुष्ठ जो पिटिका छोटी और बहुत होय, उनमेंसे स्नाव होय तथा खुजली चले और दाह होय इस कुष्ठको पामा (खाज) कहते हैं ॥

कच्छुकुष्ठके लक्षण ।

सैव स्फोटैस्तीत्रिदाहैरुपेता ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्या लिफजोश्च ॥२३॥

भाषा—कच्छुकुष्ठ वोही पामा भोटे फोड़ोकरके तथा तीत्रिदाहयुक्त होय और हाथोंमें होय उसको कच्छु कहते हैं । उत्रा यह कमरमें होती है ॥

विस्फोटककुष्ठके लक्षण ।

स्फोटा इयावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तुत्वचः ॥

भाषा—विस्फोटक जो फोटे काले वा लाल रंगके होय और जिनकी त्वचा पतली होय उसको विस्फोट कहते हैं ॥

शतारुकुष्ठके लक्षण ।

रक्तं इयावं सदाह्राति शतारु स्याद्वृत्रणम् ॥ २४ ॥

भाषा—शतारु लाल हो, इयाम होय, जलन होय, शूल हो तथा जिसमें अनेक फोटे होय उसको शतारुकुष्ठ कहते हैं ॥

विचर्चिकाके लक्षण ।

संकेंद्रः पिटिका इयावा बहुस्तावा विवर्चिका ॥

भाषा—विचर्चिका खुजलीयुक्त, काले रंगकी जो फुंसी (माताके समान) होय तथा उनमेंसे स्नाव बहुत होय उसको विचर्चिका कहते हैं ॥

चर्मकुष्ठसे लेकर विचर्चिका कुष्ठपर्यन्त १२ कुष्ठ होते हैं और पीछे क्षुद्र कुष्ठ ११ कहे हैं ऐसी कोई शंका करे उसके निमित्त कहते हैं । विचर्चिका पैरोंमें होकर फूटकर अर्थात् विपादिका होती है ऐसा कहनेसे संख्या नहीं बढ़ती है इस विषयमें भोजका यह मत है ॥

वातजादि कुष्ठोंके लक्षण ।

खरं इयावारुणं रुक्षं वातात्कुष्ठं सवेदनम् ॥

पित्तात्प्रकुपितं दाहराग्न्यावा नितं स्मृतम् ॥ २५ ॥

कफात्क्लेदि घनं स्निग्धं संकेंद्रं शैत्यगारवम् ॥

द्विलिंगं द्वंद्वजं कुष्ठं त्रिलिंगं सान्निपातिकम् ॥ २६ ॥

भाषा-वायुके योगसे कुष्ठ खरदरा, काले रंगका अथवा लालबर्ण, रुक्षा और पीड़ायुक्त ऐसा होता है । पित्तके योगसे कृपित कुष्ठमें दाह, लाल और स्वायुक्त होता है । कफके योगसे क्लेदयुक्त, सघन, चिकना, खुजली, शीतलतायुक्त और मारी ऐसा होता है । द्वंद्व कुष्ठमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं । सान्निपातिक कुष्ठमें तीन दोषोंके लक्षण होते हैं ॥

रसादि संसधातुगत कुष्ठोंके क्रमसे लक्षण ।

त्वकस्थे वैवर्ण्यमंगेषु कुष्ठे रौक्ष्यं च जायते ॥

त्वकपाको रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्त्तनम् ॥ २६ ॥

भाषा-संसधातुगत कुष्ठ होनेसे अंगका वर्ण पलट जाय है, अंग रुक्षा होय, त्वचा शून्य होय, रोमांच हो और पसीना बहुत आवे ॥

रक्तगत कुष्ठके लक्षण ।

कंडूर्विष्ट्यकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रये ॥ २७ ॥

भाषा-कुष्ठ रक्तगत होनेसे खुजली और राव बहुत होय ॥

मांसगत कुष्ठके लक्षण ।

वाहुत्त्वं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडिकोद्दमः ॥

तोदः स्फोटस्थिरत्वं च कुष्ठे मांसस्त्राश्रिते ॥ २८ ॥

भाषा-मांसगत कुष्ठ होनेसे सुख बहुत सूखे, अंगमे कर्कशपना होय, देहमें कुंसी पैदा होय और नोचनेकीसी पीड़ा होय, फोड़ा होय वे बहुत दिन रहें ॥

मेदोगत कुष्ठके लक्षण ।

कौण्यं गतिश्योऽगानां संथेदः क्षतसर्पणम् ॥

मेदःस्थानगते लिङं प्रागुत्तानि तथैव च ॥ २९ ॥

भाषा-कौण्य कहे हाथ गिर पडे, चलनेकी शक्ति मारी जाय, हड्डफूटन होय, घाव फैल जाय और पूर्वोक्त लक्षण (सरक्तमांगत कुष्ठके लक्षण) होय ॥

अस्थिमज्जागत कुष्ठके लक्षण ।

नासाभंगोऽक्षिरागश्च क्षतेषु कृमिसंभवः ॥

स्वरोपघातश्च भवेदस्थिमज्जासमाश्रिते ॥ ३० ॥

भाषा-अस्थि (हड्डी) और मज्जागत कुष्ठ होनेसे नाक गिर पडे, नेत्र लाल होय, घावमें कीड़ा पड़ जाय, स्वर बैठ जाय ये लक्षण होते हैं ॥

शुक्रार्त्तवगत कुष्ठके लक्षण ।

दंपत्योः कुष्ठबादुल्याहृष्टशोणितशुक्योः ॥

यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ३१ ॥

भाषा—जिस स्थिपुरुषके रुधिर शुक्र कुष्ठाधिक्यसे दुष्ट होंव, उस दुष्ट भये बीर्य और रजसे प्रगट भई जो संतान सोभी कोढ़ी होती है । इस जगह दुष्ट मया शुक्र और वार्तव सर्वथा बीजत्व नष्ट न होनेसे संतानके करनेवाले होते हैं और जीव संक्रमण कालमें कदाचित् बीज दुष्ट होय तो विषके कीड़ाके न्यायकरके संतान प्रगट होती है अर्थात् जैसे विष प्राणियोंके प्राणका नाशक है परंतु उसमेंभी विषका कीड़ा प्रगट होता है और वह उससे नहीं मरता है यह वाग्मटका मत है ॥

साध्यादि भेद ।

साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकं च यत् ॥ मेदांसे द्वन्द्वजं
याप्यं वज्यं मज्जास्थिसंश्रेतम् ॥ ३२ ॥ कृमिहृष्टासमन्दा-
श्यिसंयुक्तं यत्रिदोपजम् ॥ प्रभिन्नं प्रसृतांगं च रक्तनेत्रं हृत-
स्वरम् ॥ पंचकर्मगुणातीतं कुष्ठं हंतीह कुष्ठितम् ॥ ३३ ॥

भाषा—रस, रुधिर, मांस इन धातुओंके पर्यन्त गये जो कुष्ठ वे साध्य होते हैं तथा जिस कुष्ठमें वायु और कफ प्रधान होय वहभी साध्य है और मेदोधातुगत कुष्ठ तथा द्वन्द्वज कुष्ठ याप्य जानना मज्जा, आस्थि इन दोनों धातुओंमें कुष्ठ पहुँच गया हो तथा जो शुक्रगत हो वह कुष्ठ असाध्य है । तथा जिस कुष्ठमें कृमि, वमन मन्दाश्यि इन करके युक्त होय तथा त्रिदोपज होय वह असाध्य है । जो कुष्ठ फूटकर वहने लगे तथा जिस कुष्ठसे रोगीके नेत्र लाल होय अथवा स्वर बैठ गया होय और वमन विरेचनादि पंचकर्मके गुण जिस पुरुषके होय नहीं ऐसा रोगी मर जाय ॥

कुष्ठं प्रधानदोपके लक्षण ।

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तेनौदुंभरं कफात् ॥ ३४ ॥ मंडला-
रुद्यं विचर्चीं च ऋज्यारुद्यं वातपित्तजम् ॥ चर्मेक्कुष्ठं किटिर्भं
सिध्माल्सविपादिकाः ॥ ३५ ॥ वातश्लेष्मोद्भवाः श्लेष्मपित्ता-
द्वङ्गः शतारुषी ॥ पुंडरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा
॥ ३६ ॥ सर्वैः स्यात्काकणं पूर्वं त्रिकं दद्वः सकाकणा ॥
पुंडरीकिर्ष्यजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु ॥ ३७ ॥

भाषा-वादीसे कपालकुष्ठ, पित्तसे औंडुंवर, कफसे मंडल और विचर्चिका; वात पित्तसे ऋष्यजिह्वा, वातकफसे चर्मकुष्ठ, किटिभ, सिघम, अलस और विपादिका; कफपित्तसे दहू, शतारु, पुंडरीक विस्फोटक, पामा, चर्मदल, त्रिदोषसे काकण-कुष्ठ होता है। पहिले तीन (कपाल, उंडुंवर और मंडल), दहू, काकण, पुंडरीक और ऋष्यजिह्वा ये सात महाकुष्ठ जानने ॥

किलासनिदान ।

**कुष्ठेकसंभवं श्वित्रं किलासं चारुणं भवेत् ॥
निर्दिष्टमपरिन्नावि त्रिधातृद्वयसंश्रयम् ॥ ३८ ॥**

भाषा-कुष्ठ होनेके जो कारण (विरुद्ध भोजन पापकर्मादि) कहे हैं उन्हें कारणोंसे श्वित्र (सपेद कोढ) और किलास (लाल कोढ) ये होते हैं। इनमें साथ नहीं होय तथा ये तीन धातुओंका आश्रय करके रहते हैं अर्थात् तीन दोष और रुधिर, मांस तथा मेद इनका आश्रय करके रहते हैं ॥

वातादिभेदसे उनके लक्षण ।

**वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्तात्रं कृमलपत्रवत् ॥ सदाहं रोमविधांसि
कफाच्छ्रुतं वनं गुरु ॥ ३९ ॥ सकंडूरं क्रमाद्रक्तमांसमेदस्तु चा-
दिशेत् ॥ वर्णेनैवेद्यगुभयं कृच्छ्रं तचोत्तरोत्तरम् ॥ ४० ॥**

भाषा-वादीसे रुक्ष और लाल होय, पित्तसे कमलपत्रके समान लाल होय और उसमें दाह होय। उसके ऊपरके बाल गिर पड़ें। कफके योगसे वह कोढ सपेद, गाढ़ा और भारी होय उसमें खुजली चले। इसी क्रमसे रुधिर, मांस और मेद-काभी ठिकाना जानना अर्थात् दोष रक्ताश्रित होनेसे लाल, मांसाश्रित होनेसे तामेके रंग और मेदाश्रित होनेसे सपेद किलास होता है ॥

श्वित्रके साध्यासाध्य लक्षण ।

अशुक्लरोमा वहलमसंश्लिष्टमथो नवम् ॥

अनग्रिदग्धजं साध्यं श्वित्रं वज्येष्टतोऽन्यथा ॥ ४१ ॥

भाषा-जिस श्वित्र कोढके ऊपरके बाल सपेद न भये हों तथा जो पतले होकर आपसमें मिले नहीं तथा नवीन हों तथा अग्रिदग्ध न हों वह श्वित्रकोढ साध्य जानना। इससे विपरीत असाध्य जानना ॥

किलासके असाध्य लक्षण ।

गुह्यपाणितलोष्टेषु जातमप्यचिरंतनम् ॥

वर्जनीयं विशेषण किलासं सिद्धिविच्छिता ॥ ४२ ॥

भाषा—गुदास्थानमें, हाथोंमें, पैरोंके तलुओंमें, होठोंमें प्रगट मया किलास कुष्ठ थोड़े दिनका होय तौमी यश मिलनेकी इच्छावाला वैद्य छोड़ दे ॥

सांसर्गिकरोग ।

**प्रसंगाद्रात्रसंस्पर्शान्त्रिश्वासात्सहभोजनात् ॥ सहशश्यासनाच्चापि
वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ४३ ॥ कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभि-
ष्यन्द एव च ॥ औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नराव्रम् ॥ ४४ ॥**

भाषा—मैथुनादि प्रसंगसे अथवा जरीके स्पर्शसे, श्वासके लगनेसे, साथ बैठकर एक पात्रमें भोजन करनेसे, एक साथ एक शश्या (पलंग) पर सोनेसे तथा एक साथ मिलकर बैठनेसे, पास रहनेसे, धारण करे वस्त्रको धारण करनेसे, सूंघे पुष्पको सूंघनेसे अथवा पहरी हुई मालाको धारण करनेसे, लगाये हुए चंदनके लगानेसे, कोढ़, ज्वर, धातुशोप अर्थात् क्षईका रोग, नेत्ररोग (आंख दूखना) और औपसर्गिक रोग कहिये शीतलादिक और भूतोपसर्गादिक ये संक्रामिक रोग एक पुरुषसे उड़कर दूसरे मनुष्यके हो जाते हैं । इसीसे पूर्वोक्त रोगियोंका प्रसंगादिक न करे ॥

यथा

म्रियते यादे कुष्ठेन पुनर्जीतस्य तद्वे ॥

नातो निव्यतरो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्तितम् ॥ ४५ ॥

भाषा—कुष्ठरोगी मरे तौ किर उसके दूसरे जन्ममें यह हुष्ट रोग होता है इसीसे इस कुष्ठरोगके समान और दूसरा निव्य रोग नहीं है । कुष्ठरोगकी निरुक्ति “ कुत्सितं तिष्ठतीति कुष्ठम् । कुष्ठं भेषजरोगयोरिति हैमः ” ॥

इति श्रीपहितदत्तराममाथुरनिर्मितमाघवार्यबोधिनीमाथुरीभाषादीकायाँ
कुष्ठरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ शीतपित्तोदर्दकोठनिदानम् ।

शीतपित्तनिदानसंप्राप्ति ।

शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमारुतौ ॥

पित्तेन सह संभूय बद्धिरंतर्विसर्पतः ॥ १ ॥

भाषा—शीतल पवनके लगनेसे कफ वायु हुष्ट होकर पित्तसे मिल भीतर (रक्ता-दिकोंमें) और बाहर त्वचामें विचरे ॥

पूर्वरूप ।

पिपासारुचिहल्लासमोहसादांगगौरवम् ॥

रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

भाषा-प्यास, अरुचि, मुखमेंसे पानी गिरना, अंग गलना और भारी होना, नेत्रमें लाली ये पूर्वरूप शीतपित्तके जानने ॥

उदर्दके लक्षण ।

वरटीदष्टसंस्थानः शोथः संजायते बहिः ॥

सकंडूस्तोदवहुलच्छर्दिंज्वरविदाहवान् ॥

उदर्दमिति तं विद्याच्छीतिपेत्तमथापरे ॥ ३ ॥

भाषा-वरटी (तैया) के काटनेके समान त्वचाके ऊपर चक्ता हो जाय उनमें खुजली चले और सुई चुमानेकीसी पीड़ा होय । इसके संयोगसे वमन, संताप और दाह होय, इस रोगको उदर्द कहते हैं । कोई इसको शीतपित्त कहते हैं । इसको लौकिकमें पित्ती कहते हैं इसमें खुजली होय है सो कक्से जानना । चोटनी वादीसे होय है और ओकारी संताप और दाह ये पित्तसे होते हैं ऐसा जानना ॥

वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः ॥ ४ ॥

भाषा-शीतपित्तमें वात प्रधान तथा उदर्द कफप्रधान जानना ॥

उदर्दका दूसरा धर्म ।

सोत्संगैश्च सरागैश्च कंडूमस्त्रिश्च मंडलैः ॥

शैशिरः कफजो व्याधिरुदर्दः परिकार्तितः ॥ ५ ॥

भाषा-सरदीसे कफका कोप होकर अंगके ऊपर लाल लाल चक्ता उठे, उनमें खुजली बहुत चले और वे मंडलके साक्षार गोल हों वीचमें कुछ नीचे ओरपास उंचे होंय इस रोगको उदर्द कहते हैं ॥

कोष्ठके लक्षण ।

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्वेष्मान्नानिग्रहैः ॥

मंडलानि सकंडूनि रागवंति वहूनि च ॥

उत्कोठः सानुवंधश्च कोठ इत्यभिधीयते ॥ ६ ॥

भाषा-वमनकारक औषध सेवन करनेसे, अच्छी रीतिसे वमन न होनेसे, पित्त और कफ कुपित होनेसे अथवा स्वतः वमनके बेग आय भयेको रोकनेसे

देहके ऊपर लाल और बहुत चकत्ता उठें, उनमें सुजली चले इस रोगको उत्कोठ कहते हैं और वारंवार होय और जो क्षणभरमें उत्पन्न होकर नाश हो जाय उसको कोठ कहते हैं ॥

इति श्रीपञ्चतदत्तरामभायुरनिर्भितमाघवार्थबोधिनीमायुरीभाषादीकायां
शीतपित्तोददंकोठनिदानं समाप्तम् ।

अथाम्लपित्तनिदानम् ।

निदानपूर्वक अम्लपित्तका स्वरूप ।

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकारोपि पानान्नमुजो विदग्धम् ॥

पित्तं स्वहेतूपचितं पुरी यत्तदम्लपित्तं प्रवदंति संतः ॥ १ ॥

भाषा—विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) और दुष्टान्न, खट्ट, दाहकारक, पित्त बढ़ाने-वाला ऐसे अन्नपानको सेवन करनेसे वर्षादि ऋद्धुमें जलौषधिगत विदाहादि स्वकार-णसे संचित भया पित्त दुष्ट होय उसको अम्लपित्त कहते हैं ॥

अम्लपित्तके लक्षण ।

अविपाकक्लोपोत्क्रेदतिक्ताम्लोद्धारगौरवैः ॥

हृत्कंठदाहरुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्विषक् ॥ २ ॥

भाषा—अन्नका न पचना, विना परिश्रम करे परिश्रमसा मालूम हो, बमन, कड़वी, तथा खट्टी डकार आवे, देह भारी रहे, हृदय और कंठमें दाह होय, अरुचि होय ये लक्षण होनेसे अम्लपित्त वैद्य जाने ॥

अम्लपित्त दो प्रकारका एक ऊर्ध्वगत तथा दूसरा अधोगत उसमें प्रथम अधोगतके लक्षण ।

तृद्धदाहमूच्छर्छाभ्रममोहकारी प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम् ॥

स्तूलासकोठानलसादुकर्णस्वेदांगपीतत्वकरं कदाचित् ॥ ३ ॥

भाषा—अम्लपित्त अधोगत होनेसे प्यास, दाह, मोह (इन्द्रियमनोमोह), मूच्छर्छाभ्रम, मोह, सूखी रद्द, मंदाग्नि, कोठ कानमें पसीना, देहमें पीलापन ये लक्षण होकर गुदाके द्वारा काला लाल दुर्गियुक्त अनेक वर्णका पित्त गिरे ॥

ऊर्ध्वगत अम्लपित्तके लक्षण ।

वातं हरित्पित्तकनलिकृष्णमारक्तरक्तो भवतीव चात्मम् ॥

मांसोदकाभं त्वतिपिच्छलाच्छ्वेष्मानुयातं विविधं रसेन ॥ ४ ॥

भक्ते विद्गंधे त्वथवाप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवर्मि कदाचित् ॥

उद्गारमेवंविधमेव कंठे हृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजं च ॥ ६ ॥

भाषा—ऊर्ध्वगत पित्तसे हरे, पीले, नीले काले तामेके रंगके, लाल, अत्यंत स्वेष्ट, मांस धोये हुए जलके समान, अत्यंत गढ़ा, स्वच्छ, कफमिश्रित, खारी, कषैला आदि संयुक्त ऐसे पित्त गिरें। कभी कभी भोजन करा अब विद्गंधावस्थाको ग्रास होकर अथवा भोजन करनेके पहिले कहुई खड़ी ऐसी इमन होय तथा ऐसीही डकों आवें, कंठ, कूख और हृदय इनमें दाह होय, माया दूखे ॥

कफपित्तजन्य अम्लपित्तके लक्षण ।

करचरणदाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफपित्तम् ॥

जनयति फङ्गूसण्डलपिटिकाशतनिचित्तगात्ररोगचयम् ॥ ६ ॥

भाषा—हाथ पैरोंमें दाह, अंगोंमें गरमी, अन्नमें अरुचि, ज्वर कहु (खुँजली) सौंधिरके बिगड़नेसे देहमें मंडल हों, सैकड़ों पिटिका और आविपाक्षादि अनेक उपद्रव ये लक्षण कफपित्तसे होते हैं ॥

साध्यासाध्य विचार ।

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते नवः ॥

चिरोत्प्रितो भवेद्याप्यः कृष्णसाध्यः स कस्यचित् ॥ ७ ॥

भाषा—यह अम्लपित्तरोग नया होय तौ यत्न करनेसे साध्य होय और बहुत दिनका होय तो याप्य जानना और जो अपथ्य सेवन करनेवाला पुरुष है उसके यह अम्लपित्तरोग कृष्णताधृत होता है ॥

अम्लपित्तमें केवल वायुका और वातकफका संसर्ग होता है सो कहते हैं ।

सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत् ॥

दोषलिंगेन मतिमान् भिपङ्गमोहकरं हितम् ॥ ८ ॥

भाषा—वातयुक्त अम्लपित्त वातकफयुक्त अम्लपित्त और कफयुक्त अम्लपित्त ऐसे तीन प्रकारके अम्लपित्त बुद्धिमान् वैद्य दोषोंके लक्षणोंसे जाने । इसका कारण यह है कि ऊर्ध्वगत अम्लपित्तमें छार्दि (रह) रोगका भास होता है और अधोगत अम्लपित्तमें अतिसारकीसी चेष्टा मालूम होती है, इसीसे वैद्यको मोह होता है। इसीसे वैद्यको इस रोगकी सूक्ष्म रीतिसे परीक्षा करनी चाहिये ॥

वातयुक्त अम्लपित्तके लक्षण ।

कंपप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि ॥

तमसो दर्शनविभ्रमविमोहर्षाश्च वातयुते ॥ ९ ॥

भाषा—वातयुक्त अम्लपित्तमें कंप, प्रलाप, मूच्छी, चिमचिमा (चींटी काटनेसे प्रगट खुजलीके समान), देहग्लानि, फेट दूखना नेत्रोंके आगे अंधकार दौखे, भ्राति होना, इन्द्रियमनको मोह, रोमांच खड़े हों ये लक्षण होते हैं ॥

कफयुक्त अम्लपित्तके लक्षण ।

कफनिष्ठीवनगौरवजडताऽरुचिज्ञीतसादवमिळेपाः ॥

दहूनबलसादकंदूनिद्रा चिह्नं कफातुगते ॥ १० ॥

भाषा—कफयुक्त अम्लपित्तमें कफके ढेला गिरे, शरीरका अत्यंत जडपना, अरुचि, शीत लगे, अंगग्लानि, वमन, मुखरसे, कफसे लिहरा रहे, मंदाधि, बलनाश, खुजली और निद्रा ये लक्षण होते हैं ॥

वातकफयुक्त अम्लपित्तके लक्षण ।

उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसंभवे भवत्यम्ले ॥

भाषा—वातयुक्त अम्लपित्तमें ऊपर कहे हुए दोनोंके लक्षण होते हैं ॥

कफपित्तके लक्षण ।

अमो मूच्छीऽरुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजः ॥

प्रसेको मुखमाधुर्ये श्वेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ ११ ॥

भाषा—भ्रम, मूच्छी, अरुचि, वमन, आलस्य, मस्तकपीडा, मुखसे पानी वहन मुखमें मिठास ये कफपित्तयुक्त अम्लपित्तके लक्षण हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तरामायुरनिर्भितमाघवार्थवोचिनीमायुरीमाषादीकार्या
अम्लपित्तनिदान समाप्तम् ।

अथ विसर्पनिदानम् ।

इसकी निदानपूर्वक संख्यारूप संप्राप्ति और निरुक्ति ।

लवणाम्लकट्टज्ञादिसंसेवादोषकोपतः ॥

विसर्पः सतधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥

भाषा—खरी, खट्टा, कडुवा, गरम आदि पदार्थ सेवन करनेसे वातादि दोषोंका कोप होकर सात प्रकारका विसर्प गेग होता है वह सर्वत्र फैल जाय, इसीसे इसको विसर्प कहते हैं सो चरकंमें लिखायी है ॥

१ “ त्रिविष सर्पति यतो विसर्पस्तेन स स्मृतः । परिसर्पेऽश्रु वा नान्ना सर्वतः परि-
सर्पणात् ॥ ” इति ।

सर्व प्रकारके विसर्पे रक्तादिक् चार दूष्य और वातादि तीन दोष इनसे होते हैं सो कहते हैं ।

रक्तं लसीकात्वद्भूमांसं दूष्यं दोषात्मयो मलाः ॥

विसर्पाणं समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातुः ॥ २ ॥

भाषा-रुधि, मांसका जल, त्वचा, मांस ये दूष्य हैं और वातादि तीन दोष ये सात धातु विसर्पके उत्पन्न होनेके कारण हैं ॥

वातविसर्पके लक्षण ।

तत्र वातात्परीसपौ वातज्वरसमाकृतिः ॥

शोफस्फुरणनिस्तोदभेदपामार्त्तिहर्षवान् ॥ ३ ॥

भाषा-वादीसे विसर्प जो होय उसके लक्षण वातज्वरके समान होते हैं तथा उसमें सूजन, फरकना, नोंचेकीसी पीड़ा, तोड़नेकीसी पीड़ा, दर्द और रोमांच खड़े हों तथा वह विसर्प लंबा होता है ॥

पित्तविसर्पके लक्षण ।

पित्ताद्रुतगतिः पित्तज्वरलिंगोऽतिळोहितः ॥

भाषा-पित्तके विसर्पकी गति शीघ्र होय अर्थात् वह जल्दी फैल जाय यथा पित्तज्वरके लक्षण इसमें मिलते हों तथा अन्यथा लाल हो ॥

कफविसर्पके लक्षण ।

कफात्कंदूयुतः स्थिग्धः कफज्वरसमानस्त्रू ॥ ४ ॥

भाषा-कफकी विसर्पमें खुजली बहुत हाँय तथा चिकनी होय और उसमें कफ-ज्वरकीसी पीड़ा करे ॥

सन्निपातविसर्पके लक्षण ।

सन्निपातसमुत्थश्च सर्वरूपसमन्वितः ॥

भाषा-सन्निपातजन्य विसर्पमें जो वातादिकोंके लक्षण कहे हैं वे सब होते हैं ॥

अश्विसर्पके लक्षण ।

वातपित्ताज्ज्वरच्छदिंमूर्च्छातीसारतटभ्रमैः ॥ ५ ॥ आस्थिमेदा-

ग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥ करोति सर्वमंगं च दीप्तांगारावकी-

र्णवत् ॥ ६ ॥ यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्त्र सः ॥ शांतांगा-

सासितो नीलो रक्तो वाऽशूपचीयते ॥ ७ ॥ आग्निदग्ध इव स्फोटैः

शीघ्रगत्वाद्रुतं च सः ॥ मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोतिव-

लस्ततः ॥ ८ ॥ व्यथेतांगं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ॥
हिक्कां च सततोऽवस्थामीहर्शां लभते नरः ॥ ९ ॥ कर्चिच्छर्मा-
रतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ॥ चेष्टमानस्ततः क्षिष्ठो मनोदे-
हसमुद्धवाम् ॥ दुर्वोधामश्चुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥ १० ॥

भाषा-वातपित्तसे प्रगट विसर्प, ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास, मौर,
हड्डफूटन, मंदाग्नि, अंधकारदर्शन, अच्छदेष इन लक्षणोंकरके संयुक्त होय इसके
संयोगसे सर्व शरीर अंगरोंसे भरासा मालूम होय, जिस जिस ठिकाने वह विसर्प
फैले उसी उसी ठिकानेपर अग्निरहित अंगाखके समान काला, नीला, लाल होकर
शीघ्र सूजे, आगसे फूंकेके समान ऊपर, फफोला होय और उस विसर्पकी शीघ्र
गति होनेसे जलदी हृदयमें जाकर भर्मानुसारी विसर्प होय अथवा वह अत्यन्त
बलवान् होय अर्थात् अंगोंको व्यथा करे, संज्ञा और निद्रा इनका नाश बढ़ावे
तथा हिचकी उत्पन्न करे ऐसी मनुष्यकी अवस्था होय । अवस्था होनेके कारण
धरती, सेज, आसन इत्यादिकोंमें सुख होता नहीं, इलने चलनेसे हँसा होय, मन
तथा देहको हँसा होनेसे उत्पन्न भई ऐसी दुर्वोध निद्रा (मरणरूपी निद्रा) को
प्राप्त होय इस रोगको अग्निविसर्प ऐसा कहते हैं ॥

ग्रंथिविसर्पके लक्षण ।

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् ॥ ११ ॥ रक्तं च
वृद्धरक्तरुद्य त्वक्षशिरास्त्रायुमांसग्रस् ॥ दूषयित्वा च कीर्धाण्ड-
वृत्तस्थूलखरात्मनाम् ॥ १२ ॥ ग्रंथीनां छुरुते मालां इक्कानां
तीव्ररुद्धराम् ॥ श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्कावमिध्रमैः
॥ १३ ॥ मोहवैवर्ण्यमूर्च्छांगभंगाग्निसदनैर्युतम् ॥ इत्ययं
ग्रंथिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ॥ १४ ॥

भाषा-स्वदेहसे कुपित भया जो कफ सो पवनकी गतिको रोक कफको भेद-
कर अथवा बढ़े भये रुधिरको भेदकर त्वचा, नस, नाड़ी और मास इनमें प्राप्त हो
और इनको दुष कर लंबी, छोटी, गोल, मोटी, खरदी, लाल गाठोंकी माला प्रगट
करे । उन गाठोंमें पीड़ा अधिक होय, ज्वर होय, श्वास, खासी, अतिसार, मुखमें
पपड़ी परे, हिचकी, वमन, भ्रमता, मोह वर्णका पलटना, मूर्च्छा अंगोंका ढूटना,
मंदाग्नि ये लक्षण होते हैं । इस रोगको ग्रंथिविसर्प कहते हैं । यह कफवायुके
कोपसे उत्पन्न होता है । इसको सुश्रुत सपची कहते हैं ॥

कर्दमविसर्पके लक्षण ।

कफपित्ताज्ज्वरस्तंभो निद्रा तंद्रा शिरोरुजः ॥ अंगावसादविक्षेप-
प्रलापारोचकश्रमाः ॥ १६ ॥ मूर्च्छाग्निहानिभेदोऽस्थनां पिपासे-
न्द्रियगैरबम् ॥ आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स विसर्पति ॥ १७ ॥
प्रायेणामाशयं गृह्णन्नैकदेशं न चातिरुक्त ॥ पिंडकैरिव कीर्णोऽति-
पीतलोहितपांडुरैः ॥ १८ ॥ स्निग्धोऽखितो मेचकाभो मलिनः
शोफवान् गुरुः ॥ गंभीरपाकः प्राज्योष्मा स्पष्टः क्षिन्नोऽवदीर्यते
॥ १९ ॥ पंकवच्छीर्णमांसश्च स्पष्टत्वायुशिरगणः ॥ शब्दगंधि-
च वीसर्प कर्दमास्यसुशांति तस्म ॥ २० ॥

माषा—कफपित्तसे ज्वर, अंगोंका जकड़ना, निद्रा तंद्रा, मस्तकशूल, अंगगूँनि,
हाथ पैरोंका पटकना, बक्खाद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मन्दायि, हड्डफूटन, प्यास,
इन्द्रियोंका जकड़ना, आमका गिरना, मुखादि स्रोतों (छिद्रों) में कफज्ञा लेप
इत्यादि लक्षण होते हैं । तथा वह विसर्प आमाशयमें उत्पन्न हो पीछे सर्वत्र फैले,
उसमें पीड़ा थोड़ी होय, उसमें सर्वत्र पीली, तामेके रंगकी, सपेद रंगकी पिंडिका
होय तथा वह विसर्प चिकनी, स्थाइके समान काली, मलिन, सूजनयुक्त, भारी,
गंभीरपाक कहिये भीतरसे पकी हो । उसमें घोर दाह हो और वह दबानेसे तत्क्षण
गीली हो जाय तथा वह फट जाय तथा कीचके समान होकर उसका मांस गल
जाय । उसमें शिरा नाड़ी (नस) दीखने लगे, उसमें मुर्देकीसी वास आवे, इस
विसर्पको कर्दम कहते हैं ॥

क्षतज विसर्पके लक्षण ।

बाह्यहेतोः क्षतात्कुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन् ॥
विसर्प मारुतः कुर्यात् कुलित्थसदृशौश्चितम् ॥ २० ॥
स्फोटैः शोथज्वररुजा दाहात्यं इयावशोणितम् ॥ २१ ॥

माषा—बाह्यकारण करके क्षत (धाव) होकर उसमें वायु कुपित होकर वह रुधि-
रसाहित पित्तको व्रणमें प्राप्त कर विसर्परोग उत्पन्न करे । उसमें कुलधीके समान
श्यामवर्णके फोड़े होते हैं, सूजन हो, ज्वर हो और दाह होय । उसका रुधिर
काला निकले इस विसर्पको पित्तविसर्पके अन्तर्गत जाननेसे संख्यामें विरुद्ध नहीं
पड़े अन्यथा संख्या बढ़ जाती है यह भोजका मत है ॥

उपद्रव १

ज्वरातिसारवमथुस्तृण्मांसदरणं कुमः ॥

अरोचकाविपाकौ च विसर्पणामुपद्रवाः ॥ २२ ॥

भाषा—ज्वर, अतिसार, वमन, प्यास, मांसका गलना, अनायास श्रम, अरुचि, अन्न न पचना ये विसर्प गेगके उपद्रव हैं ॥

साध्यासाध्य लक्षण ।

सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः सर्वात्मकः कफकृतश्च
न सिद्धिमेति ॥ पित्तात्मकोऽजनवपुश्च भवेदसाध्यः कृच्छ्रा-
श्च मर्मसु भवन्ति हि सर्वे एव ॥ २३ ॥

भाषा—वात, पित्त, कफ इनसे प्रगट जो विसर्प वह साध्य होता है । सन्निपातज और क्षतज विसर्प साध्य नहीं होता है । पित्तसे प्रगट भया विसर्प जिसका काज-
लके समान अंग होय वह असाध्य और जो विसर्प मर्म ठिकानेपर होय वे सब
कष्टसाध्य होते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरकृतमाधवार्थवोधिनीमाथुरीभाषादीकार्यां
विसर्पोगनिदान समाप्तम् ।

अथ विस्फोटनिदानम् ।

लक्षण ।

कद्मुक्तीक्ष्णोष्णविदाहिरुक्षारैर्जीर्णाध्यज्ञनात्पैश्च ॥

तथुर्दोषेण विपर्ययेण कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु ॥ १ ॥

त्वचमाश्रित्य ते इत्ता मांसास्थीनि प्रदूष्य च ॥

घोरान् कुर्वन्ति विस्फोटान् सर्वान् ज्वरपुरःसरावे ॥ २ ॥

भाषा—कहुआ, खट्टा, तीखा (मरिचादि), गरम, दाहकारक, खत्ता, खारा,
अजीर्ण, भोजनके ऊपर भोजन और गरमी, ऋतुदोष कहिये शीतोष्णका अतियोग
अथवा ऋतुविपर्यय (ऋतुका पलटना) इन कारणोंसे वातादि दोष कुपित
हो त्वचाका आश्रय कर सुधिर, मांस और हड्डी इनको दूषित कर भयंकर विस्फो-
टक (फोड़ा) उत्पन्न करें । उनके प्रगट होनेसे पूर्व घोर ज्वर होता है ॥

विस्फोटस्वरूप ।

आश्रदग्धनिभाः स्फोटाः सज्जरा रक्तपित्तजाः ॥

क्वचित्सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति ते स्मृताः ॥ ३ ॥

भाषा—रक्तपित्तसे प्रगट भये ऐसे आपीकरके जरेके समान, फोड़ा अंगमें किसी एक ठिकाने अथवा सब देहमें होय हैं उनके होनेसे ज्वर होय उनको विस्फोटक ऐसा कहते हैं इस रोगमेंभी वातका अनुबंध होता है सो भोजने कहा है ॥
वातविस्फोटके लक्षण ।

शिरोरुक्ष शूलभूयिष्ठं ज्वरतृपर्वभेदनम् ॥

सुकृष्णवर्णता चौति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥

भाषा—मस्तकमे पीड़ा शूल, देहमें पीड़ा, ज्वर, प्यास, संधिगोरमें पीड़ा, फोड़ोंका वर्ण काला होय ये वातविस्फोटके लक्षण हैं ॥

पित्तविस्फोटके लक्षण ।

ज्वरदाहरुजास्त्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम् ॥

पीतछोहितवर्णं च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥

भाषा—ज्वर, दाह, पीड़ा, स्त्राव, फोड़ोंका पकना, प्यास, देह पीली हो अथवा लाल होय ये पित्तविस्फोटके लक्षण हैं ॥

कफविस्फोटके लक्षण ।

छर्घरोचकजात्यानि दंडुकाठिन्थपांडुताः ॥

अवेदनश्चिरात्पाकी स विस्फोटः कफात्मकः ॥ ६ ॥

भाषा—वमन, अरुचि, जडता नथा फोड़ा खुजलीयुक्त हो, कठिन, पीले और उनमें पीड़ा होय नहीं और वे बहुत कालमें पके यह विस्फोट कफका लक्षण जानना ॥
कफपित्तात्मक विस्फोट ।

कंडूर्दाहो ज्वरश्छार्दिरेस्तु कफपैत्तकः ॥

भाषा—खुजली, दाह, ज्वर और वमन इन लक्षणोंसे कफपित्तजन्य विस्फोट जानना ॥

वातपित्तात्मकके लक्षण ।

वातपित्तकृतो यस्य कुरुते तीव्रवेदनाम् ॥ ७ ॥

भाषा—वातपित्तके विस्फोटमें तीव्र पीड़ा होती है ॥

१ यदाह भोजः—“ यदा रक्तं च पित्त च वातेनानुगतं त्वाचि । आश्रदग्धनिभान् स्फोटन् कुरुतः सर्वदेहगत् ॥ सज्जरान् सपरीदाहान् विद्याद्विस्फोटकास्तु ताव । ” इति ।

कफवात् त्मकके लक्षण ।

कंदूस्त्रैमित्यगुरुभिर्जीवीयात्कफवातिरुम् ॥

भाषा—खुजाँी, गोलापना, मारीना इन लक्षणोंसे कफवातका विस्फोट जानना ॥

सविपातविस्फोटके लक्षण ।

मध्ये निमोन्नतोऽते च कठिनोऽल्पप्रकोपवान् ॥

दाहरागतृष्णामोहच्छदिंसूच्छारुजो ज्वरः ॥

प्रलापो वेपथुस्तंद्रा सोऽसाध्यश्च द्विदोषजः ॥ ९ ॥

भाषा—जो फोड़ा बीचमे नीचे होय और औरपाससे ऊंचा होय, कठिन, कुछ पका होय है । तथा जिसके योगसे दाह, अंगमें लाली, स्थास, मोह, बमन चूच्छी, पीड़ा, ज्वर, प्रलाप. कंप, तन्द्रा ये लक्षण होते हैं वह सविपातका विस्फोट असाध्य है ॥

रक्तज विस्फोटके लक्षण ।

रक्ता रक्तसमुत्थाना गुंजापलानिभास्तथा ॥

वेदितव्यास्तु रक्तेन पैतिक्रेन च हेतुना ॥

न ते सिद्धं समायांति सिद्धेयोगशतरपि ॥ १० ॥

भाषा—रुधिरसे प्रगट भया विस्फोट तामे के रंगका, गुंजा。(चिरमिटी) के समान लाल, वह रुधिरके दुष्ट होनेसे अथवा पित्तके दुष्ट होनेसे होता है । इसमें तैकड़ों अनुभव करनेसे भी साध्य नहीं होते ॥

साध्यासांघ्यविचार ।

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषतः ॥

सर्वहृष्पान्वितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ ११ ॥

भाषा—एक दोषसे प्रगट भया जो विस्फोट वह साध्य है । द्विदोषका कषसाध्य है और सर्व लक्षणयुक्त होय सो भयंकर तथा जिसमें उपद्रव बहुत होय वह विस्फोट असाध्य है ॥

उपद्रव ।

हिक्का श्वासोऽरुचिस्तृष्णा अंगसादो हृदि व्यथा ॥

विसृप्ज्वरहल्लासा विस्फोटानामुपद्रवाः ॥ १२ ॥

भाषा-हिचकी, श्वास, अरुचि, प्यास, अंगलानि, हृदयमें पीड़ा, विसर्पणे,

ज्वर, बमन ये विस्फोटके उपद्रव जानना ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्भूतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां
विस्फोटनिदानं समाप्तम् ।

अथ मसूरिकानिदानम् ।

कारण और संप्राप्ति ।

कदम्बललवणक्षारविशुद्धाध्यशानाशनैः ॥ दुष्टनिष्पावशाकादिप्र-
दुष्टपवनोदकैः ॥ १ ॥ कुद्धयहेकणाद्वापि देहे दोषाः समुद्ध-
ताः ॥ जनयति शरीरेऽस्मन्दुष्टरक्तेन संगताः ॥ यस्तु राकृति-
संस्थानाः पिण्डिकाः रुद्धुर्मसूरिकाः ॥ २ ॥

भाषा-कहुआ, खट्टा, नोनका, खारी, विशुद्ध भोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन) दुष्ट अन्न, निष्पाव (शिवीवीज, उरद, मूँग) आदि, शक, विषेले फूल आदिसे मिला पवन तथा जल, शनैश्चरादि खोटे ग्रहोंका देखना इन सब कारणोंकरके शरीरमें वातादि दोष उपित होकर दुष्ट रुधिरमें मिलकर मस्तरके समान देहमें अनेक मरोरी उत्पन्न करे, उनको मसूरिका (माता) ऐसा कहते हैं । “ दुष्टरक्तेन संगता ” इस पदके धरनेसे रुधिरका कटु अम्लादि हेतुकरके विशेष कोप दिखाया । इसीसे ग्रंथांतरोंमें लिखाभी है ॥

मसूरिकाके पूर्वरूप ।

तासां पूर्वं ज्वरः कंडूर्गात्रभंगोऽसूचिर्व्रमः ॥
त्वचि शोफः सौवर्णयो नेत्ररागस्तथैव च ॥ ३ ॥

भाषा-तिस माता (शीतला) के पूर्व ज्वर होता है, खुजली चले, देहमें फूटनी होय, अन्नमें अरुचि, भ्रम होय, अंगके ऊपरकी त्वचामें सूजन होय तथा वर्ण पलट जाय, नेत्र लाल होय ये शीतलाके पूर्वरूप होते हैं ॥

वातकी मसूरिकाके लक्षण ।

स्फोटाः कृष्णाशुणा रूक्षास्तीत्रवेदनयान्विताः ॥
कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिलसंभवाः ॥ ४ ॥

१ “ पित्त शोणितसंसृष्ट यदा दूषयति त्वचम् । तदा करोति पिण्डिकाः सर्वगत्रेषु दोहिनाम् ॥ मसूरमुद्भाषाणां तुल्याः कालोपमा इति । मसूरिकास्तु ता ज्ञेयाः पित्तरक्ता-
पिंका बुधैः ॥ ” इति ।

**संध्यास्थपर्वणां भेदः कासः कंपोऽरतिः कुमः ॥
शोषस्ताल्वोष्टजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता ॥ ६ ॥**

भाषा—बातमसूरिकाके फोडा काले, लाल और खक्स होते हैं । उनमें तीव्र पीड़ा होय, कठिन होय, शीघ्र पके नहीं, इसके योगसे संधि, हाड़ और पौर्वमें फोडने-कीसी पीडा होय, खांसी, कंप, चित्त स्थिर न हो, बिना परिश्रमके श्रम होय, तालुआ, हाँठ और जीभ ये सूजने लगें, प्यास अरुचिंये लक्षण होते हैं ॥

पित्तकी मसूरिकाके लक्षण ।

रक्ताः पीताः सिताः स्फोटाः सदाहास्तीत्रवेदनाः ॥

भवंत्यचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्धवाः ॥ ६ ॥

विद्धभेदश्चांगमर्दश्च दाहतृष्णाऽरुचस्तथा ॥

मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीक्ष्णः सुदाहणः ॥ ७ ॥

भाषा—पित्तकी मसूरिकाका मुख लाल, पीड़ा, सपेद होय है । उसमे दाह तथा पीड़ा बहुत होय और ये शीतला शीघ्र पके । इसके योगसे मल पतला होय, अंग दूटे, दाह, प्यास, अरुचि, मुखपाक और नेत्रपाक होय, ज्वर तीव्र हो ये लक्षण होते हैं ॥

रक्तज मसूरिकाके लक्षण ।

रक्तजायां भवंत्येते विकाराः पित्तलक्षणाः ॥ ८ ॥

भाषा—रक्तज मसूरिकामें पित्तज मसूरिकाके लक्षण होते हैं ॥

कफज मसूरिकाके लक्षण ।

कफप्रसेकः स्तैमित्यं शिरोहगात्रगौरवम् ॥

हृल्लासः सारुचिनिंद्रा तंद्रालस्यसमन्विता ॥ ९ ॥

श्वेताः स्त्रिघा भृशं स्थूलाः कंदूरा मंदवेदनाः ॥

मसूरिका कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥ १० ॥

भाषा—कफकी मसूरिकामें मुखके द्वारा कफका साव होय अंगमें आद्रेता तथा भारीपना, मस्तकमे शूल, बमन अनेकीसी इच्छा होय, अरुचि, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य ये होय । और फोडा सफेद, चिकने, अत्यंत मोटे होय । इनमें खुजली बहुत चले, पीडा मंद होय और वे बहुत दिनमें पके ॥

त्रिदोषज मस्तुरिकाके लक्षण ।

नीलाश्रीपिटीविस्तीर्णा मध्ये निन्ना महारुजः ॥

चिरपाकाः पूतिस्त्रावाः प्रभूताः सर्वदोषजाः ॥ ११ ॥

भाषा—त्रिदोषज मस्तुरिकाके फोडे नीले, चिपटे, लंबे, बीचमें नीचे ऐसे होते हैं उनमें पीढ़ा अत्यंत होय तथा वे बहुत दिनमें पर्के और उनमेंसे दुर्गंधयुक्त स्त्राव होय वे फोडे सर्व दोषके बहुत होते हैं ॥

चमपिडिका ।

कंठरोधोऽरुचिस्तंद्राप्रलापारतिसंयुताः ॥

दुश्चिकित्स्याः समुहिष्टाः पिडिकाश्चर्मसंज्ञिताः ॥ १२ ॥

भाषा—जिस फोडे के होनेसे कंठ रुक जाय, अलाचे, तन्द्रा, प्रलाप चैन न पड़ना ये लक्षण होते हैं । जिनकी औषधि नहीं हो सके ऐसी चर्मसंज्ञक पिडिका जाननी ॥

रोमांतिक ।

रोमकूपोन्नतिसमा रामिण्यः कफपित्तजाः ॥

कासारोचकसंयुता रोमांत्या ज्वरपूर्विकाः ॥ १३ ॥

भाषा—कफपित्तसे केशों (वालों) के छिद्रके समान बारीक और लाल ऐसी मस्तुरिका होय । इनके होनेसे खांसी अस्त्रिय होय तथा इनके होनेसे पहिले ज्वर होय । इनको रोमांच (कस्त्रमीमाता) ऐसा कहते हैं ॥

रसादि सप्त धातु ।

रसगत मस्तुरिकाओंके लक्षण ।

तोयबुद्दुसंकाशास्त्वगतात्र मस्तुरिकाः ॥

स्वल्पदोषाः प्रजायंते भिन्नास्तोयं स्वर्थंति च ॥ १४ ॥

भाषा—रसगत मस्तुरिका पानीके बूझके सहज हों, इनके फूटनेसे पानी वह यह त्वगत मस्तुरिका है । कारण इसका यह है कि दोष स्वल्प है ॥

रक्तगत मस्तुरिकाके लक्षण ।

रक्तस्था लोहिताकाराः शीत्रपाकास्तनुत्वचः ॥

साध्या नात्यर्थदुष्टास्तु भिन्ना रक्तं स्वर्थंति च ॥ १५ ॥

भाषा—रुधिरगत मस्तुरिका तामेके रंगकी, जलदी पकनेवाली होती है । उनके ऊपरली त्वचा पतली होती है । यह अत्यंत दुष्ट होनेसे साध्य नहीं होय और इसके फूटनेसे इसमेंसे रुधिर निकले ॥

मासगतके लक्षण ।

मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाकास्तनुत्वचः ॥

गात्रशूलोऽरतिः कंदूमूच्छीदाहतृष्णान्विताः ॥ १६ ॥

माषा-मांसस्थ मस्तिष्का कठिन, चिकनी होती है । ये बहुत दिनमें पके तथा इसकी त्वचा पतली होय, अंगोंमें शूल होय चैन पड़े नहीं, खुजली चले, मूच्छी दाह और प्यास ये लक्षण होते हैं ॥

मेदोगतके लक्षण ।

मेदोजा मंडलशारा मृदवः किञ्चिदुन्नताः ॥

घोरज्जरपरीताश्च स्थूलाः कृष्णाः सवेदनाः ॥

संमोहारतिसंतापाः क्षीश्विदाभ्यो विनिस्तरेत् ॥ १७ ॥

माषा-मेदोगत मस्तिष्का मंडलके आकार अर्थात् गोल होय, नरम, कुछ ऊंची, मोटी तथा काली होती है । इसके होनेसे भयंकर ज्वर, पीड़ा, इन्द्रिय मनको मोह, पित्तका आस्थिर होना, संताप ये लक्षण होते हैं । इस मस्तिष्कासे कोई एक आदि मनुष्य बचता होगा । इसमें यह दिखाया कि यह अत्यंत कृच्छ्रसाध्य है ॥

अस्थिमज्जागतके लक्षण ।

अस्थिग्रात्रसमाहृढाश्चिपिटाः किञ्चिदुन्नताः ॥ मज्जोत्था भृशसं-

मोहवेदनारतिसंयुताः ॥ १८ ॥ छिदंति मर्मधामानि प्राणाना-

शु द्वरंति ताः ॥ भ्रमरेणव विद्धानि भवत्यस्थीनि सर्वतः ॥ १९ ॥

माषा-अस्थिमज्जागत मस्तिष्का बहुत छोटी, देहके समान रूप, चिपटी, कुछ ऊंची होती है, अत्यन्त चित्तविभ्रम, पीड़ा, अस्वस्थता ये लक्षण होते हैं । तिन मर्मस्थानोंमें मेदकरके शीघ्र प्राण हरण करे । इसके होनेसे सर्व हड्डियोंमें भी रेके काटनेके समान पीड़ा होती है ॥

शुक्रगतके लक्षण ।

पक्वाभाः पिङ्ककाः स्निग्धाः क्षृष्णाश्चात्यर्थवेदनाः ॥

स्तौमित्यारतिसंमोहदाहोन्मादस्मन्विताः ॥ २० ॥

शुक्रजायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवन्ति च ॥

निर्दिष्टं क्लेवलं चिह्नं दृश्यते नतु जीवितम् ॥ २१ ॥

माषा-शुक्रधातुगत मस्तिष्का पकेके समान चिकनी, अलग अलग होती हैं । इनमें अत्यंत पीड़ा होय, इनके होनेसे गीलापना, अस्वस्थता, मोह, दाह, उन्माद

ये लक्षण होते हैं । रोगी वचे ऐसा इसमें कोई लक्षण नहीं दीखे, इसीसे इसको असाध्य जानना ॥

सप्तधातुगत मसूरिकाके दोषके संबंधसे लक्षण कहते हैं ।

दोषमिश्रास्तु सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणः ॥

भाषा—ये सप्तधातुगत मसूरिका वातादिकोंके लक्षणोंकरके तीन दोषों करके मिश्रित प्रगट भई जाननी ॥

धातुगत और दोषज मसूरिकामें कौन साध्य हैं सो कहते हैं ।

त्वग्गता रक्तजाञ्चैव पित्तजाः श्वेषमजास्तथा ॥ २३ ॥

पित्तश्वेषमकृताञ्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः ॥

एता विनापि क्रियया प्रशास्यन्ति शरीरणाम् ॥ २४ ॥

भाषा—रसगत, रक्तगत, पित्तज, कफज, पित्तकफज ये मसूरिका सुखसाध्य हैं । ये औषधके विनार्भी शांत होती हैं ॥

कषसाध्य ।

वातजा वातपित्तोत्था वातश्वेषमकृताञ्च याः ॥

कृच्छ्रसाध्या मतास्तास्तु यत्नादेता उपाचरेत् ॥ २५ ॥

भाषा—वातज, वातपित्तज, वातकफज मसूरिका कषसाध्य हैं । इनकी यत्नपूर्वक चिकित्सा करे ॥

असाध्य मसूरिकाके लक्षण ।

असाध्याः सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥

प्रवालसद्वशाः काश्चित्काश्चिजंबूफलोपमाः ॥ २६ ॥

लोहजालसमाः काश्चिदतसीफलसन्निभाः ॥

आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः ॥ २७ ॥

भाषा—सन्निपातज मसूरिका असाध्य हैं उनके लक्षण कहता हूँ । कोई मुँगाके समान लाल होंय, कोई जामनके समान और कोई लोहजालके समान तथा अलसीके बीजके समान होती हैं । दोषोंके भेदकके इनके अनेक प्रकारके रंग होते हैं ॥

सर्वमसूरिकाके अवस्थाविशेषकरके लक्षण ।

**कासो हिक्काथ मोहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ॥ प्रलापारतिमू-
च्छांश्च तृष्णा दाहोऽतिघृणता ॥ २७ ॥ मुखेन प्रस्ववेद्रक्तं तथा**

ब्राणेन चक्षुषा ॥ कंठे बुधुरैकं कूत्वा श्वसित्यत्यर्थदारुणम्
॥ २८ ॥ मसूरिकाभिभृतो यो भृशं ब्राणेन निःश्वसेत् ॥ स
भृशं त्यजाति प्राणस्तुष्णातौ वायुदूषितः ॥ २९ ॥

भाषा—खासी, हिचकी, मोह, तीव्रज्वर, प्रलाप, असंतोष, मूच्छी, प्यास, दाह,
नेत्र टेढ़े, तिरछे, बांके, फटेसे ये लक्षण होते हैं । मुख, नाक और नेत्र इनके मार्ग
होंदर रुधिर गिरे, कंठमें घरघर शब्द होय और भयंकर श्वास ले । जो मसूरि-
कापीडित रोगी केवल नाकके द्वारा श्वास लेय वह पुरुष वायु और तुषा इनसे
पीडित होता हुआ तत्काल प्राण त्याग करे ॥

मसूरिकाके उपद्रव ।

मसूरिकांते शोथः स्यात्कूपरे मणिवंधके ॥

तथांसफलके वापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ॥ ३० ॥

भाषा—मसूरिका (शीतला) के अंतमें कूर्परपर पहुँचा तथा' कंधा इनमें सूजन
होय । इसको व्यवहारमें गुरु ऐसा कहते हैं । यह चिकित्सा करनेमें कठिन है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममायुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमायुरीभाषादीकायां

मसूरिकानिदान समाप्तम् ।

अथ क्षुद्ररोगनिदानम् ।

अजगल्का ।

स्त्रिया सकर्णा ग्रथिता नरुजा मुहूसन्निभा ॥

कफवातोत्थिता ज्वेया बालानामजगल्का ॥ १ ॥

भाषा—बालकके कफवातसे चिकनी, त्वचाके वर्णके समान वर्ण होय, गांठसी
वंधी, रुजा (पीड़ा) रहित तथा मूँगाके सदृश जो पिंडिका होय उसको अजग-
ल्का कहते हैं ॥

यवप्रख्याके लक्षण ।

यवाकारा सुकठिना ग्रथिता मांससंश्रिता ॥

पिंडिका क्षेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति चोच्यते ॥ २ ॥

भाषा—कफवातसे प्रगट जौके समान कठिन, गांठके सदृश, मांसमिश्रित जो
पिंडिका होय उसको यवप्रख्या कहते हैं । भोजके मतसे इसको अंत्रालजी कहते हैं ॥

१ “ क्षेष्मानिलौ श्रितौ द्वायु पोषिकां पित्तमङ्गलम् । दुष्टौ जनयतो वक्रामवप्यूषा-
मकण्डुराम् ॥ आमो दुस्तरसकाशा विद्यादन्त्रालजीं तु ताम् ॥ ” इति ।

अंधालजी ।

घनामवक्रां पिटिकासुन्नतां परिमंडलम् ॥
अंधालजीमल्पपूर्या तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ ३ ॥

भाषा—कफवातसे प्रगट, कठिन, जिसमें मुख न हो तथा ऊँची ऐसी पिडिका होय । तथा जिसके चारों ओर मंडलाकार हो और जिसमें राध थोड़ी होय उसको अंधालजी ऐसा कहते हैं ॥

विवृतापिडिकाके लक्षण ।

विवृतास्यां महादाहां पकोदुंबरसन्निभाम् ॥
परिमंडलां पित्तकृतां विवृतां नाम तां विदुः ॥ ४ ॥

भाषा—पित्तके योगसे फटे मुखकी, अत्यन्त दाहयुक्त, पके गूलरके समान चारों ओर बल पड़ी हुई जो पिडिका होय उसको विवृता ऐसा कहते हैं ॥

कच्छपिकाके लक्षण ।

ग्रथिताः पंच वा षड् वा दारुणाः कच्छपोन्नताः ॥
क्लपानिलाभ्यां पिडिका ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥ ५ ॥

भाषा—कफवायुसे प्रगट गांठ बंधी, पांच अथवा छः कठिन कहुएके पीठके समान ऊँची जो पिडिका होय उनको कच्छपिका ऐसा कहते हैं ॥

वल्मीकिपिडिकाके लक्षण ।

श्रीवास्तकशाकरपाददेशे संधौ गले वा त्रिभिरेव दौष्ठैः ॥
ग्रंथिः सवल्मीकवदक्रियाणां जातः क्रमणैव गतः प्रवृद्धिम् ॥ ६ ॥
मुखैरनेकैः श्रुतितोदवद्विर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नतायैः ॥
वल्मीकिमाहुर्भिषजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात् ॥ ७ ॥

भाषा—कंठ, कंधा, कूख, हाथ, पैर, संधि, गला इन ठिकाने तीनों दोषोंसे सर्पकी बांधीके समान गाठ होय उसका उपाय न करे तब वह धीरे धीरे बढ़े, उसमें अनेक मुख हो जाय, उनमेंसे साव होय, नोचनेकीसी पीड़ा होय तथा वह मुखके ऊपर कुछ ऊँची होकर विसर्पके समान फैल जाय इस रोगको वैद्य वल्मीकि ऐसा कहते हैं । इसके ऊपर औषधी उपचार नहीं चले और पुराना होनेसे वैशेष असाध्य जानना ॥

इन्द्रवृद्धाके लक्षण ।

पद्मकार्णिकवन्मध्ये पिण्डिकाभिः समाचिताम् ॥

इंद्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ ८ ॥

भाषा—कमलकार्णिकाके समान बीचमें एक पिण्डिका होय उसके चारों ओर छोटी छुंसी होय उसको इन्द्रवृद्धा ऐसा कहते हैं । यह बात पित्तसे उत्पन्न होती है ॥
गर्दभिकाके लक्षण ।

मंडलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिटिकाचितम् ॥

रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥ ९ ॥

भाषा—चातपित्तसे प्रगट एक गोल, ऊंचा तथा लाल और फोड़ोंसे व्यास ऐसा मंडल होय वह बहुत दूखे उसको गर्दभिका ऐसा कहते हैं ॥
पाषाणगर्दभलक्षण ।

वातश्लेषमसमुद्धूतः श्वयथुर्हनुसंधिजः ॥

स्थिरो मंदरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः ॥ १० ॥

भाषा—वातकफसे ठोड़ीकी संधिमें कठिन, मन्द पीड़ा करनेवाली, चिक्की ऐसी सूजन होय उसको पाषाणगर्दम ऐसा कहते हैं ॥
पनसिका ।

कर्णस्थाभ्यन्तरे जातां पिण्डिकासुथ्रवेदनाम् ॥

स्थिरां पनसिकां तां तु विद्याद्वातकफोत्थिताम् ॥ ११ ॥

भाषा—कानके भीतर वात, पित्त, कफसे जो छुंसी उत्थ्रवेदनासाहित प्रगट होती है और वह स्थिर होय, उसको पनसिका कहते हैं ॥

जालगर्दभ लक्षण ।

विसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान् ॥

दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ १२ ॥

भाषा—पित्तसे विसर्पके समान इधर उधरको फैलनेवाली, पतली तथा कुछ पक्कनेवाली ऐसी सूजन होय उसमें दाह होय और ज्वर होय इसको जालगर्दभ कहते हैं । कोई आवार्य कहते हैं कि इसमें पक्कता नहीं होती यथा ॥

१ “ कफवातौ प्रकुपितौ मासमाश्रित्य कर्णयोः । समन्ततः परिस्तब्धां कुरुतः पिण्डिकां स्थिराम् ॥ विषमां दाहसयुक्तां विद्यात्पनसिका तु ताम् । ” इति । २ “ पित्तोत्कद्य-खयो दोषा जनयति त्वगाश्रिताः । श्याष रक्त तनु शोथमपाक बहुवेदनम् ॥ विसर्पिणं सदाहं च तृष्णाज्वरसमन्वितम् । विसर्पमाद्युत्त व्याधिमपरे जालगर्दभम् ॥ ” इति ।

इरिवेल्किके लक्षण ।

पिडिकामुत्तमांगस्थां वृत्तामुप्रस्त्रज्वराम् ॥

सर्वात्मिकां सर्वलिंगां जानीयादिरिवेल्किकाम् ॥ १३ ॥

भाषा—त्रिदोषसे प्रगट मस्तकमें गोल, अत्यंत पीड़ा और ज्वर करनेवाली, त्रिदोषके लक्षणसंयुक्त ऐसी पिडिका होय उसको इरिवेल्किका कहते हैं ॥

कक्षा (कखलाई) के लक्षण ।

बाहुकक्षांसपार्श्वेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम् ॥

पित्तकोपसमुद्धृतां कक्षामित्यभिनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥

भाषा—बाहु (सुजा) की जड़, कंधा और पसवाडे इन ठिकाने पित्त कुपित होकर काले फोड़ोंसे व्याप्त तथा वेदनायुक्त जो पिडिका हो उसको कक्षा वा कखलाई कहते हैं ॥

गंधनाम्रीके लक्षण ।

एकामेताहशीं दृष्ट्वा पिडिकां स्फोटसन्निभाम् ॥

त्वग्गतां पित्तकोषेन गंधनाम्रीं प्रचक्षते ॥ १५ ॥

भाषा—पित्तके कोपसे जो एक पिडिका फोड़ाके समान वडी त्वचाके भीतर होय उसको गंधनाम्री ऐसा कहते हैं ॥

अग्निरोहिणी (काली फुंसी) के लक्षण ।

कक्षाभागेषु वे स्फोटा जायंते मांसदाहुणाः ॥ अंतर्दृहिज्वरकरा

दीतपावक्सन्निभाः ॥ १६ ॥ सप्ताहाद्वादशाहाद्वा पक्षाद्वा हंति

भानवम् ॥ तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सान्निपातिकीम् ॥ १७ ॥

भाषा—कांखके आसपास मांसके विदारण कानेवाले जो फोड़ा होते हैं तिसकरके अंतर्दृह होय तथा ज्वर होय । वे फोड़ा प्रदीप अग्निके समान लाल होते, इन फोड़ोंमें वायु अधिक होनेसे सात दिन, पित्ताधिकसे बारह दिन और कफाधिकसे ५ दिनमे रोगी भरे । यह अग्निरोहिणी नामक त्रिदोषज पिडिका असाध्य है यह कठिन है ॥

चिप्यके लक्षण ।

नखमांसमधिष्ठाय वातः पित्तं च देहिनाम् ॥

कुर्वाते दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्यमादिशेत् ॥

तदेवाल्पतरेदोषैः कुनखं परुषं वदेत् ॥ १८ ॥

भाषा-वायु और पित्त नखोंके मांसमें स्थित होकर दाह और पापको करे इस रोगको चिप्प ऐसा कहते हैं । यह अल्प दोषोंसे होय तो इसको कुनख कहते हैं ॥
अनुशयके लक्षण ।

गंभीरामल्पसंरभा सर्वर्णमुपरिस्थिताम् ॥

पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादंतःप्रपाक्षिनीम् ॥ १९ ॥

भाषा-पैरोंमें त्वचांके समान वर्ण, यांत्काचित् सूजनयुक्त, भीतरसे पक्की जो पिंडिका होय उसको अनुशयी ऐसा कहते हैं ॥

विदारिकाके लक्षण ।

विदारीकंदबद्धता कक्षावंक्षणसंधिषु ॥

विदारिका भवेद्रक्ता सर्वजा सर्वलक्षणा ॥ २० ॥

भाषा-विदारीकंदके समान गोल, काखमें अथवा वंक्षणस्थानमें जो गांठ तामेके रंगकीसी होय उसको विदारिका ऐसा कहते हैं । यह सन्निपातसे होती है अर्थात् इसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥

शर्करा ।

प्राप्य मांसं शिरा स्नायुः श्लेष्मा मेदस्तथानिलः ॥

ग्रन्थि करोत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिंवसानिभम् ॥ २१ ॥

स्वत्यास्रावमनिलस्तत्र वृद्धिं गतः पुनः ॥

मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्ततः ॥ २२ ॥

भाषा-कफ, मेद और वायु ये मास, शिरा और स्नायु इनमें प्राप्त हो गाठ वांधते हैं जब वह फटे तब उसमें सहन, घृत, चर्वी इनके समान स्राव हो तिस-करके वायु पुनः बढ़कर मासको सुखाय उसकी वारीक खीचीसी गांठ करे उसको शर्करा कहते हैं ॥

शर्करार्बुदके लक्षण ।

दुर्गंधि छिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः ॥

सृजन्ति रक्तं सहसा तद्विद्याच्छर्करार्बुदम् ॥ २३ ॥

भाषा-शर्करा होनेके अनन्तर नाडियोंसे दुर्गंधि, क्लेदयुक्त, अनेक प्रकारके वर्णका (घृत, मेद और वसा इनके वर्णका) रुधिर स्रवे, उसको शर्करार्बुद कहते हैं । परंतु भोजने शर्करार्बुदको शर्करारोगके अंतर्गत कहा है ॥

१ “ तमेव भिन्नदुर्गंधं घृतमेदोनिभं शिराः । स्ववति स्रावमनिशं सदा स्याच्छर्करा-र्बुदम् ॥ ” इति ।

पाददारीके लक्षण ।

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थसूक्षयोः ॥

पादयोः कुरुते दार्शि सरुजां तलसंश्रिताम् ॥ २४ ॥

भाषा—जिस पुरुषको बहुत चलना पड़े हैं उसके पैर वायुके योगसे अत्यंत रुक्ष होकर पैरोंके तलुओंको विदीर्ण कर दे (फाड़ दे) उसको पाददारी कहते हैं अर्थात् विवाई कहते हैं। विपादिका कुष्ट फटे नहीं हैं फूट निकले हैं यह इनमें भेद जानना ॥

कदर (ठेक) के लक्षण ।

शर्करोन्मधिते पादे क्षते वा कंटकादिभिः ॥

ग्रंथिः कोऽवदुत्सन्नो जायते कदरं तु तत् ॥ २५ ॥

भाषा—पैरोंमें कंकर छिदनेसे अथवा कांटा लगनेसे बेरके समान ऊंची गांठ प्रगट होय, उसको कदर अर्थात् ठेक कहते हैं। अथवा “ग्रंथिः कोऽवदुत्सन्नो” इस जगह “ग्रंथिः कीलवदुत्सन्नो” ऐसाभी पाठ है। अर्थात् कीलके समान जो गांठ होय उसको कदर कहते हैं। यह कदररोग हाथोंमेंभी होता है सो मोर्जने लिखाभी है ॥

अलस (खारुआ) के लक्षण ।

क्षिञ्चांगुल्यंतरौ पादौ कंडूदाइरुजान्वितौ ॥

दुष्टकर्दमसंस्पर्शादुलसं तं विभावयेत् ॥ २६ ॥

भाषा—दुष्ट कीचमें डोलनेसे (वर्षा आदिका पानी और सड़ी कीचमें डोलनेसे), पैरोंकी ऊंगली गीली रहनेसे, उंगलियोंके बीचमें सपेद २ चक्का हो जाय, उनमें खुजली, दाह और गीलापना होय तथा पीड़ा होय उसको अलस अर्थात् खारुआ कहते हैं यह कफरक्तके दोषसे होता है ॥

इद्रलुप (चार्ह) के लक्षण ।

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्धितम् ॥ प्रच्यावयति रोमाणि

ततः श्वेषमा सशोणितः ॥ २७ ॥ रुणद्वि रोमकूपांस्तु ततोऽन्ये-

षामसंभवः ॥ तदिद्रलुपं खालित्यं प्राहुश्वाचेति चापरे ॥ २८ ॥

भाषा—पित्त वादीके साथ कुपित झोकर रोमकूपोंमें अर्थात् वालोंके छिद्रोंमें ग्रास हो तब मस्तक अथवा अन्य स्थानके बाल झडने लगे पीछे कफ और रुधिर

—१ “हस्तयोः पादयोश्चापि गम्भीरानुगत स्थिरम् । मांसकीलं जनयतः कुपितौ कफमास्तौ ॥ सशल्यमिव त देश मन्यंते तेन पीडितम् । शर्कराकदरं केचिन्मन्यन्ते वातकंटकम् ॥ ” इति ।

रोमकूप कहिये बालोंके प्रगट होनेके स्थानको रोक दे, उससे फिर बाल नहीं जांगे इस रोगको इन्द्रलुप, खालित्य, चाचा (चाई) कहते हैं । यह रोग खियोंके नहीं होता है, कारण इसका यह है कि उनका रुधिर महीनेके महीने शुद्ध होता है और निकलता रहता है इसीसे वह रोमकूपांको नहीं रोके हैं । सो विदेहाचार्यने लिखामी है और इसी रोगको खालित्य और रुद्धा कहते हैं सो मोजने लिखा है । परंतु कार्तिकाचार्य कहते हैं कि इन्द्रलुप रोग सूछ, डाढ़ीमें होता है और खालित्यरोग शिरमें होता है और रुद्धारोग पीड़ासहित होता है ॥

दारुणकके लक्षण ।

दारुणा कंडुरा रुक्षा केशभूमिः प्रपच्यते ॥

कफमारुतकोपेन विद्यादारुणकं तु तम् ॥ २९ ॥

भाषा—कफवायुके कोपसे केशोंकी जमीन आति कठिन होकर खुजावे, खरदी होय तथा बारीक फुंसी होकर पर्के उसको दारुणक ऐसा कहते हैं । कफवातके कोपसे यह रोग होता है । इसका कारण यह है कि विना पित्तके पाक नहीं होय सो विदेहने कहामी है ॥

अर्लंपिकाके लक्षण ।

अर्द्धंषि बहुवक्राणि बहुकुदानि मूर्धनि ॥

कफासृक्षृभिकोपेन नृणां विद्यादूर्धंषिकाम् ॥ ३० ॥

भाषा—रुधिर, कफ और कूपी इनके कोपसे माथेमें बहुत फुंसी हो जाय, उनमेंसे चेप विशेष निकले और हेत्युक्त होय इन फुंसियोंको अथवा ब्रणोंको अर्लंपिका कहते हैं ॥

पलित (सपेद बाल) के लक्षण ।

क्रोधशोकश्रमकृतः शरोरोषमा शिरोगतः ॥

पितं च केशान्पचति पलितं तेन जायते ॥ ३१ ॥

भाषा—क्रोध, शोक आर श्रमके करनेसे उत्पन्न मई जो शरीरउष्मा (गरमी) और पित्त सा मस्तकमें जाकर बालोंको पकाय दे अर्थात् सपेद कर दे । उसकरके यह पलितरोग होता है । पलित रोगपर मधुकोशटीकाकारने तथा भावप्रकाशने जात्यार्थ लिखा है ॥

१ “ अत्यत्सुकुमाराणा रजो दुष्ट स्वात च । अव्यायामवता यस्मात्तस्मात्र खलातः खियाः ॥ ” इति । २ “ यद्वृ पश्चाभासं सरजस्कं शिरस्त्वचि । पर्ष जायते जंतोस्तस्य रूप विशेषतः ॥ तोदैः समान्वित वातसकणु गौरव कफात् । सपिपास सदाहर्तिरार्गं पित्तास्त्रज तथा ॥ ” इति ।

मुखदूषिकाके लक्षण ।

शाल्मलीकंटकप्रख्याः कफमारुतकोपजाः ॥

जायंते पिण्डिका यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः ॥ ३२ ॥

भाषा—कफवायुके कोपसे सेमरके कांटेके समान तरुण (जवान) पुरुषके मुखके ऊपर जो कुंसी होय उनको मुखदूषिका अर्थात् मुहांसे कहते हैं । इनके होनेसे मुख बुग हो जाता है ॥

पद्मिनीकंटकके लक्षण ।

कंटकैराचितं वृत्तं घंडलं पाण्डु क्षण्डुरम् ॥

पद्मिनीकंटकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥ ३३ ॥

भाषा—कमलके कांटेके समान कांटे चारों ओर युक्त हों; गोल, पीले रंगका, खुजली जिसमें चलती होय ऐसा एक मंडल होय उसको पद्मिनीकंटक ऐसा कहते हैं । यह कफवायुसे होता है ॥

जंतुमणि (लहसन) के लक्षण ।

सममुत्सन्नमरुजं मंडलं कफरक्तजम् ॥

सहजं लक्ष्यम् चैकेषां लक्ष्यो जंतुमणिः स्मृतः ॥ ३४ ॥

भाषा—कफरक्तसे जन्मसेही प्रगट भई समान तथा कुछ ऊंचा, जिसमें पीड़ा होती नहीं ऐसा गोल मंडलके समान देहमें चिह्न होय उसको लक्ष्य कोई लक्ष्य तथा कोई जंतुमणि ऐसा कहते हैं । यह स्त्रीपुरुषोंके अंगमेदकरके शुभाशुभ फलदायक है ॥

माष (मस्ता) के लक्षण ।

अवेदनं स्थिरं चैव यस्तिन् गात्रे प्रदृश्यते ॥

माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्वापमादिशेत् ॥ ३५ ॥

भाषा—वादीसे शरीरके ऊपर उडदके समान, काली, पीडाग्रहित, स्थिर, कठिन, कुछ ऊंची गांठसी प्रगट होय उसको माष (मस्ता) ऐसा कहते हैं । इस क्षोकमें जो चकार है उससे कफमेदसेभी मस्ते होते हैं यह दिखाया । सो भोजने कहामी है ॥

तिलकालक (तिल) के लक्षण ।

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च ॥

वातपित्तकफोत्थेकात्तान्विद्या तिलकालकान् ॥ ३६ ॥

१ “ वातेरिते त्वाचि यदा दूष्येते कफमेदसी । शुद्धणं मूदु सवर्णं च कुरुते माषकं वदेत् ॥ ” इति ।

भाषा—वात पित्त कफके कोपसे काले तिलके समान पीडारहित त्वचासे मिले ऐसे अंगमें दाग होय उनको तिलशलक (तिल) कहते हैं । “ वातपित्तकफो-त्सेकात् ” इस पाठमें वात पित्त देतुरके कफका शोष होता है उसीसे तिल होते हैं । परन्तु चरकके मतसे पित्त रुधिरके शोष होनेसे तिल होते हैं । “ यस्य पित्तं प्रकृपितं शोणितं प्राप्य शुष्यति । तिलकः पित्तपक्षा व्यंगा नीलिका चास्य जायते ” ॥ इस वचनसे वातमी रुधिरको शोषण करता है । अन्य ग्रंथोंमें वात, पित्त, कफ ये तीनों रुधिरको शोषण करते हैं ॥

यथा ।

**मारुतः पित्तमादाय कफरक्तसमाश्रितः ॥
नीरुजं भण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते ॥ ३७ ॥**

न्यच्छके लक्षण ।

**महद्वा यदि वाऽत्यल्पं इयावं वा यदि वा सितम् ॥
नीरुजं भण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते ॥ ३८ ॥**

भाषा—मुखके बिना अन्य स्थानमें शरीरके ऊपर बढ़ा अथवा ओटा, काला अथवा सपेद् और पीडारहित दाग होय उसको न्यच्छ कहते हैं । यहमी व्यंगका भेद है । व्यंग (शाई) के लक्षण ।

**क्रोधायामुखप्रकृपितो वायुः पित्तेन संयुक्तः ॥
मुखमागत्य सहसा भण्डलं विसृजत्यतः ॥ ३९ ॥**

नीरुजं ततुकं इयावं मुखे व्यंगं तमादिशेत् ॥ ४० ॥

भाषा—क्रोध और श्रम इनसे कृपित भया वायु सो पित्तसंयुक्त होकर मुखमें प्राप्त होकर एक मंडल उत्पन्न करे, वह दूखे नहीं, पतला नथा इयामदर्ण होय उसको व्यंग ऐसा कहते हैं ॥

नीलिकाके लक्षण ।

कृष्णमेवंगुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः ॥ ४१ ॥

भाषा—पूर्वांक व्यंगके लक्षणसदृश जो काला मंडल अंगमें होय अथवा मुखपर होय उसको नीलिका कहते हैं । भोजने इस जगह नीलिकागत्र ऐसा कहा है अर्थात् सर्व देह नीली होती है ॥

१ “ मारुतः क्रोधर्पाभ्यामूर्च्छगो मुखमाश्रितः । पित्तेन सह सयुक्तं करोति वेदन त्वचि ॥ नीरुजं ततुकं इयावं व्यंगं तमिति निर्दिशेत् । कृष्णमेव त्वचं गात्रं नीलिकां तां विनिर्दिशेत् ॥ ” इति ।

परिवर्तिकाके लक्षण ।

**मर्दनात्पीडनाद्वापि तथैवाप्यभिघाततः ॥ मेद्रचर्म यदा वायुर्भ-
जते सर्वतश्चात् ॥ ४२ ॥ तदा वातोपसृष्टत्वात्तचर्म परिवर्तते ॥
मणेरधस्तात्कोशस्तु ग्रंथिरूपेण लंबते ॥ ४३ ॥ सवेदनं उदाहं
च पाकं च ब्रजति क्वचित् ॥ परिवर्तिकोति तां विद्यात्सरुजां
वातसंभवाम् ॥ सकंडूः कठिना वापि सैव श्लेष्मसमुत्थिताम् ॥ ४४ ॥**

भाषा—लिंगको मर्दन करनेसे अथवा रगडनेसे उसी प्रकार लिंगमें किसी प्रकारकी चोट लगनेसे व्यानवायु कुपित होकर उसके चर्ममें प्रवेश कर सर्वत्र विचरे उस समय वातसंस्पर्श हेतु करके लिंगकी चर्म पृथक् हो जाय और शिशका कोश सूज-कर मणिके नीचे गांठके समान होकर लटके उसमें पीड़ा होय, दाह होय और कभी कभी वह पक जाय इस पीड़ाको परिवर्तिका कहते हैं। यह वातसे होती है और जो कफसे होती तौ उसमें खुजली तथा कठिनता होती है ॥

अवपाटिकाके लक्षण ।

**अल्पीयसीं यदा हृष्टद्वाच्छेत्स्त्रियं नरः ॥
इस्ताभिघातादथ वा चर्मण्युद्वातते बलात् ॥ ४५ ॥
मर्दनात्पीडनाद्वापि शुक्रवेगविधानतः ॥
यस्यावपात्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ ४६ ॥**

भाषा—जिसकी योनिका छिद्र वारीक होय ऐसी स्त्रीसे बलपूर्वक मैथुन करनेसे अथवा हाथके आभिघात (चोट) से, बलसे लिंगके चामको उलटनेसे अथवा मीडनेसे अथवा जोरपूर्वक दाढ़नेसे अथवा शुक्रके वेगको धारण करनेसे उस पुरुषके लिंगकी चाम फट जाय इस पीड़ाको अवपाटिका कहते हैं। इस अवपाटिका रोगमें तीनों दोषोंके लक्षण पृथक् पृथक् होते हैं यह मत मोज़का है ॥

निरुद्धप्रकाशके लक्षण ।

**वातोपसृष्टे मेद्रे तु चर्म संश्रयते मणिम् ॥ ४७ ॥ मणिश्चमौप-
नद्वस्तु मूत्रस्रोतो रुणाद्वि च ॥ निरुद्धप्रकाशो तस्मिन् मंद-**

१ “ मर्दनादभिघाताद्वा कन्यायोनिपीडनात् । लक्ष्यते यदि मेद्रस्य वर्णमेदौर्विवक्षितम् ॥ अवपाटिकेति तां विद्यात् पृथग्दोषैः समन्विताम् । वाताम्लायरु (?) जहात्-लानस्त्रोदकारणी ॥ पित्तात्सदाहा रक्ताद्वा दाहपञ्चकी कठिना स्त्रिघा कण्ठनत्यन्तवैदनी (?) ” इति । २ “ मेद्रान्ते चर्मणि यदा मास्तः कुपितो भृशम् । द्वार निरुणद्वशैः प्रकाशं च मुहुर्भवेत् ॥ शूलं मूत्रं यत्र कुच्छ्वात्प्रकाशं तु यदा भवेत् । वातोपसृष्टमेद्रं च मणिर्न च विद्यार्थते ॥ निरुद्धं च प्रकाशं च व्याधिं विद्यात् छुदासणम् ॥ ” इति ।

धारमवेदनम् ॥ ४८ ॥ मूत्रं प्रवर्तते जंतोर्मणिर्विवेयते न च ॥
निरुद्धप्रकाशं विद्यात्सरुजं वातसंभवम् ॥ ४९ ॥

माषा-बायुके योगसे लिंग पीडित होनेसे चामडी सूजकर मणिभागमें ग्रास होय । वह मणि चर्मके संकोच होनेसे मूत्रके मार्गको रोके तब मूत्रका रोध होय तब उस शुरुषका मूत्र ठहर ठहरकर निकले, परंतु फीडा नहीं होय और मणि बाहर नहीं निकले, इस रोगयुक्त वतजन्य पीडाको निरुद्धप्रकाश कहते हैं । चर्मके संकोच होनेको निरुद्ध कहते हैं और मूत्रकी धार मन्द निकलनेको प्रकाश कहते हैं । “ अवेदनम् ” यह जो मूलमें पाठ है इस जगह कोई “ सवेदनम् ” ऐसा कहते हैं भोज आचार्यका मत भोजसंहितामें लिखायी है ॥

सन्निरुद्धगुदके लक्षण ।

वेगसंधारणाद्यायुर्विहतो गुदसंस्थितः ॥ निरुणद्धि महाक्षोतः
सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ५० ॥ मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कुच्छेण पुरीषं
तस्य गच्छति ॥ सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात्सुद्धारुणम् ॥ ५१ ॥

भाषा-मलमूत्रादिकोंका वेग रोकनेसे गुदाश्रित अपानवायु कुपित होकर खोत (गुदा) का अवरोध करे और वह द्वारको छोटा करे, पीछे मार्ग छोटा होनेसे उस शुरुषका मल बड़े कष्टसे बाहर निकले, इस भयंकर रोगको सन्निरुद्धगुद कहते हैं । इस रोगमेंभी निरुद्धप्रकाशके समान चर्मका संकोच होनेसे सन्निरुद्धगुद होता है अर्थात् अपानवायुके रुकनेसे पुरीष (मल) का अनिर्गम होता है ॥

आहिपूतनाके लक्षण ।

शकून्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् ॥ स्विन्ने वा स्नाप्य-
माने वा कंडू रक्तकफोद्धवा ॥ ५२ ॥ ततः कंडूयनात्क्षप्रस्फो-
टाः स्नावश्च जायते ॥ एकीभूतं ब्रणेषोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ५३ ॥

माषा-बालकके मल मूत्र करनेके अनंतर गुदाके न धोनेसे अथवा पसीना आनेसे तथा धोनेके अनन्तर रुधिर कफसे खुजली उत्पन्न होय, तदनन्तर खुजानेसे शीघ्र फोडा उत्पन्न होय और उनसे स्नाव होय पीछे ये सब मिलकर इस भयंकर व्याधिको प्रगट करे । इसे आहिपूतना कहते हैं । यह रोग बहुधा बाल लोम (छोटे छोटे रोम) में होता है । भोज कहता है कि यह रोग दुष्टस्तन्यपान अर्थात् माताके दुष्ट दूधके पीनेसे बालकके होता है ॥

१ “ दुष्टस्तन्यस्य पानेन मलस्याक्षालनेन च । कपहूदाहरुजावद्दिः पीडकैश्च समा-
चिता । अपिहृतना सभवति यथादोषं च दारुणा ॥ ” इति ।

वृषणकच्छूके लक्षण ।

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः ॥ यदा प्रक्षुद्यते स्वे-
द्वात्कंडूः संजायते तदा ॥ ६४ ॥ कंडूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटाः
स्नावश्च जायते ॥ प्राहुर्वृषणकच्छूँ तां शुष्मरत्तप्रकोपजाम् ॥ ६५ ॥

भाषा—जो मनुष्य स्नान करते समय लगे हुए मलको नहीं धोवे उस पुरुषका मल
अंडकोशोंमें संचित होय पीछे वह पसीना आनेसे गीला होय तब अंडकोशोंमें
धोर पीडा होय और खुजानेसे तत्काल फोडा होय । पीछे वे फोडा सख्त आप-
समें मिल जाते हैं । कफरत्तसे होनेवाली इस व्याधिको वृषणकच्छूँ कहते हैं ॥

गुदभ्रंशके लक्षण ।

प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं वहिः ॥

रूक्षदुर्बलदेहस्य गुदध्रंशं तमादिशेत् ॥ ६६ ॥

भाषा—जिस पुरुषकी देह रूक्ष और अशक्त होय उस पुरुषके प्रवाहन
(कुन्थन) तथा आतिरार हेतुकरके गुदा बाहर निकल आवे अर्थात् कांच बाहर
निकल आवे उस रोगको गुदभ्रंश रोग कहते हैं । इस रोगमें धातुक्षय होनेसे बात
कुपित होता है ॥

सूकरदंष्रके लक्षण ।

सदाह्वो रक्तपर्येतस्त्वकपाणी तीव्रवेदनः ॥

कुडूमाञ्च ज्वरकारी च सः स्यात्सूकरदंष्रकः ॥ ६७ ॥

भाषा—दाहयुक्त चारों ओर लाल होय, जिसकी त्वचा पक्नेवाली होय, तीव्र
पीडायुक्त, खुजलीसंयुक्त तथा ज्वर करनेवाली ऐसी सूजन अथवा त्रण होय उसको
सूकरदंष्र अर्थात् वराहडाड कहते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्भितमाधवार्थवोधिनीमाथुरीभाषाव्यकाया
क्षुद्ररोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ मुखरोगनिदानम् ।

संख्या ।

दंतेष्वष्टावोष्टयोश्च मूलेषु दशं पञ्च च ॥ नव तालुनि जिह्वायां
पञ्च सतदशामयाः ॥ कंठे त्रयः सर्वसरा एकपष्टिचतुःपरे ॥ १ ॥

भाषा-दंतरोग ८, होठोंके रोग ८, दंतमूलके रोग १३, तालुएके रोग ९, जिह्वाके ५, कंठके रोग १७ और सर्वसर ३ ऐसे सब मिलकर पैसठ मुखरोग हैं । ये श्लोक माधवके नहीं हैं भोजसंहिताके हैं ॥

तिनमें ८ होठोंके रोगोंकी संप्राप्ति ।

अनूपपिण्डितक्षीरदधिमाषाद्विसेवनात् ॥

मुखमध्ये गदान्कुर्युः कुञ्चा दोषः कफोत्तरः ॥ २ ॥

भाषा-जलसंचारी प्राणियोंके मास, दूध, दही, उरद आदि पदार्थके सेवन का-
नेसे कुपित भये कफादिक दोष मुखमें रोग उत्पन्न करते हैं ॥

वातिक ओष्ठरोगके लक्षण ।

कर्कशौ पह्लौ स्तब्धौ कृष्णौ तीव्रहृजान्वितौ ॥

दात्यते परिपात्यते ओष्ठौ माहूतकोपतः ॥ ३ ॥

भाषा-वादीके कोपसे होंठ कर्कश, खरदे, कठोर, काले होते हैं । उनमें तीव्र
पीड़ा होय, वह दो टुकड़ोंके समान हो जाय तथा होंठ में त्वचा किंचित् फट जाय ॥

पैत्तिकके लक्षण ।

चीयते पिण्डिकाभिस्तु सहजाभिः समंततः ॥

सदाहपाकपिण्डिकौ पीताभासौ च पित्ततः ॥ ४ ॥

भाषा-पिच्चसे होंठमें चारों ओर फुंसियोंसे प्राप्त हो, उनमें पीड़ा होय तथा
पक जावें और पीलेसे दीखें । इसमें जो दाह और पाक कहे हैं वे विशेषताके
सूचक हैं ॥

श्लैष्मिकके लक्षण ।

सवर्णाभिस्तु चीयते पिण्डिकाभेरवेदनौ ॥

भवतस्तु कफादोषौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरु ॥ ५ ॥

भाषा-कफसे होंठ त्वचाके समान वर्णवाले फुंसियोंसे व्याप्त होय, कुछ दूर्घं
तथा मलाईके समान चिकने और शीतल तथा भारी होय ॥

सान्निपातिकके लक्षण ।

सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च ॥

सन्निपातेन विज्ञेयात्तनेकपिण्डिकान्वितौ ॥ ६ ॥

भाषा-सन्निपातसे होंठ कभी काले, कभी पीले उसी प्रकार कभी सफेड तथा
अनेक प्रकारकी फुंसियोंसे व्याप्त होते हैं ॥

रक्तजके लक्षण ।

स्वर्जुरीफलवर्णाभिः पिण्डिकाभिर्निपिण्डितौ ॥

रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥ ७ ॥

भाषा—रुधिरसे होंठोंमें खजूरफलके वर्णकी फुंसी होय, उनमेंसे रुधिर गिरे तथा वे होंठ रुधिरके समान लाल होय ॥

मांसजके लक्षण ।

मांसदुष्टौ गुरुस्थूलौ मांसपिंडवदुद्रतौ ॥

जन्तवश्वात्र मूच्छेति नरस्योभयतोमुखम् ॥ ८ ॥

भाषा—मांस दुष्ट होनेसे होंठ जड (भारी) मोटे होते हैं, मांसपिंडके समान ऊँचे होय, इस रोगवाले मनुष्यके दोनों होंठोंमें अथवा होंठोंके प्रांतभागमें कीडे पड़ जावे ॥
मेदोजके लक्षण ।

सर्पिंडप्रतीकाशौ मेदसा कंडुरो गुरु ॥

स्वछं स्फटिकसंकाशमासावं स्रवतो भृशम् ॥

तयोर्विणो न संरोहेन्मृदुत्वं च न गच्छति ॥ ९ ॥

भाषा—मेदसे होंठ घृतके ज्ञागसमान, खुजलीसंयुक्त तथा भारी होय तथा उनमेंसे स्फटिकके समान निर्मल स्नाव बहुत होय, इसमें भया व्रण भेरे नहीं है तथा उसमें मृदुता नहीं रहे ॥

अभिघातजके लक्षण ।

ओष्ठौ पर्यवजीयेते पीब्येते चाभिघाततः ॥

ग्रथितौ च तदा स्थातां कंडूक्लेदसमन्वितौ ॥ १० ॥

भाषा—अभिघातसे (चोट लगनेसे) होंठ सबेत्र चिर जाय, पीड़ा होय, उसमें गांठ हो जाय तथा उनमें खुजली चलते समय पीव वहे । कोई कहते हैं कि अभिघातके ओष्ठोरोगमें केवल ऊपरका होंठ कटता है इस रोगमेंभी कफ पित्त सहायक जानने । सो भोजने कहामी है ॥

दंतमृलगत १६ रोग ।

शीतादके लक्षण ।

शोणितं दृन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते ॥ दुर्गन्धीनि सकूणा-

१ “क्षतावभिहतौ चाभि रक्तावोष्ठौ सवेदनौ । भवतः सपरिस्नावौ कफरक्तप्रदूषितौ ॥” इति । वातजः केवङः स्वकारणकुपितः अत्र तु वायुः अभिघाताद्भ्यते ॥

नि प्रक्षेदीनि मृदूनि च ॥ ११ ॥ दंतमांसानि जीर्यन्ते पचंति
च परस्तप्रम् ॥ शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसंभवः ॥ १२

भाषा—जिसके मस्तकोंमें से अकस्मात् रुधिर वहे और दांतोंका मांस दुर्गंधयुक्त,
काला पीवसाहित तथा नरम होकर गिरे और एक दांतका मस्ता पकनेसे वह दूसरे
मस्तकों पकावे यह कफरुधिरसे प्रगट व्याधिको शीताद नाम कहते हैं ॥

दन्तपुष्पुटके लक्षण ।

दंतयोद्धिषु वा यस्य श्वयथुर्जायते महान् ॥

दंतपुष्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥ १३ ॥

भाषा—जिसके दो अथवा तीन दांतकी जड़में महान् सूजन होय उसको दंतपु-
ष्पुट नाम कहते हैं । यह व्याधि कफरक्तसे होती है परन्तु आगे जो सौषिर रोग
कहेंगे उससे यह भिन्न है ॥

दंतवेष्टके लक्षण ।

स्वर्वंति पूर्यं रुधिरं चला दंता भवन्ति च ॥

दंतवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभवः ॥ १४ ॥

भाषा—रुधिर दुष्ट होनेसे दांतोंमें से रुधिर तथा राध वहे तथा दांत इलने लगे
उसको दंतवेष्टरोग कहते हैं ॥

सौषिरके लक्षण ।

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान्कफरक्तजः ॥

लालास्त्रावी स विज्ञेयः सौषिरो नाम नामतः ॥ १५ ॥

भाषा—कफ रुधिरसे दांतोंकी जड़में सूजन होय उसमें पीडा होय और स्त्राव होय
उसको सौषिर रोग कहते हैं । पूर्वोक्त दंतपुष्पुटमें पीडा होय और स्त्राव नहीं होता
है इससे यह पृथक् है ॥

महासाधरक लक्षण ।

दन्ताश्वलन्ति वेष्टेभ्यस्ताळु चाप्यवदीर्यते ॥

यस्मिन्स सर्वतो व्याधिर्महासौषिरसंज्ञकः ॥ १६ ॥

भाषा—इस त्रिदोष व्याधिकरके मस्तकों समीपके दांत हल्के और तालुएमें छिद्र
पड़ जाय, चकारसे दात और होंठभी फट जाय उसको महासौषिररोग कहते हैं ।
यह रोग मनुष्यको सात दिनमें मार डालता है सो भोजने कहांभी है । परन्तु

१ “ सदाहो दृतमूलेषु शोयः पित्त कफानिलाद । जातः कफ क्षपयति क्षीणे तस्मि-
न्सशोणितम् ॥ विवृद्धमनिश्च दंतास्ताल्वोष्टमपि दारयेत् । महासौषिरमित्येतत्सप्तरात्रा-
न्निहत्यसून् ॥ ” इति ।

गदाधर कहता है कि सौषिरमें जो भोजने लक्षण कहते हैं सो होय तो उसीको महा-
सौषिर कहते हैं ॥

परिद्रके लक्षण ।

दंतमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन्षुद्वयति चाप्यसुकः ॥

पित्तासुकफजो व्याधिज्ञेयः परिदरो हि सः ॥ १४ ॥

भाषा—इस रोगकरके दाँतोंका मांस विवर जाय और थूकनेसे रुधिर गिरे इस्ते
व्याधिको परिद्रकहते हैं । यह रोग पित्तरुधिरकसे होता है ॥

उपकुशके लक्षण ।

वैष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्वलंति च ॥ अवाकृताः प्रस्वर्वं-
ति शोणितं मन्दवेदुनाः ॥ १८ ॥ आध्मायन्ते मुते रत्ने मुखे दू-
तिश्च जायते ॥ यस्मिन्द्वुपकुशो नाम पित्तरक्तकृतो गदः १९ ॥

भाषा—जिसके मस्तुदोंमें दाह होकर पाक और दाँत हलने लगे, मस्तुदोंके विसर्जनसे
रुधिर मंद पीड़ाके साथ निकले, रुधिर निकलनेके पिछाड़ी फिर मस्तुदे फूल आवे
और मुखमें बास आवे इस पित्तरक्तकृत विकारको उपकुश कहते हैं ॥

वैदर्भके लक्षण ।

घृष्टेषु दन्तमूलेषु संरस्मो जायते महान् ॥

भवंति चपला दन्ताः स वैदर्भोऽभिघातजः ॥ २० ॥

भाषा—मस्तुदे रगडनेसे सूजन बहुत होय और दाँत हलने लगें उसको वैदर्भरोग
कहते हैं । यह रोग चोटके लगनेसे होता है ॥

खलीवर्धनके लक्षण ।

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः ॥

खलीवर्धनसंज्ञो वै जाते रुक्ष च प्रशास्यति ॥ २१ ॥

भाषा—वादीके योगसे दाँतके ऊपर दूसरा दाँत ऊंगे उस समय पीड़ा होय ।
जब वह दाँत ऊंग आवे तब पीड़ा शांत होय उसको खलीवर्धन कहते हैं ॥

करालके लक्षण ।

शनैः शनैः प्रकुरुते वायुदन्तसमाश्रितः ॥

करालान्विकटान्दंतान्करालो न च सिद्धचयति ॥ २२ ॥

भाषा—वादी धीमेरे धीरे मस्तुदेका आश्रय लेकर दाँतोंको टेढे तिरछे करें, उसको
करालरोग कहते हैं । यह रोग साध्य नहीं होता ॥

अधिमांसकके लक्षण ।

हानव्ये पश्चिमे दंते महाभ्योथो महारुजः ॥

लालास्त्रावी कफकृतो विज्ञेयो ह्याधिमांसकः ॥ २३ ॥

भाषा—जिसके पीछेकी डाढ़के नीचे अर्थात् मस्तूदेमें बहुत सूजन हो और घोर पीड़ा होय तथा लार बहुत वहे उसको अधिमांसक कहते हैं । यह कफके कोपसे होता है ॥

नाडीव्रणके लक्षण ।

दन्तसूलगता नाड्यः पंच ह्येया यथोरताः ॥ २४ ॥

भाषा—नाडीव्रणनिदानमें वात, पित्त, कफ, सचिपात और आगंतुज ऐसे पाच प्रकारके जो नाडीव्रण कहे हैं वे दंतसूल (मस्तूदोंमें) होते हैं । पहिले ११ और ५ नाडीव्रण ऐसे मिलकर १६ दंतसूल (मस्तूदे) के रोग होते हैं । परन्तु करालरोग सुश्रुतके मतसे अधिक है तथापि संग्रहकारने अपने ग्रंथमें लिखा है, इसीसे हमने भी यहाँ लिख दिया है । ये पांच नाडीव्रण शालाक्यसिद्धान्तके मतसे संरब्धापूरणार्थ माधवाचार्यने लिखे हैं ॥

दंतरोग ८ लिखते हैं ।

दालनके लक्षण ।

दीर्घमाणेष्विव रुजा यस्य दन्तेषु जायते ॥

दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥ २५ ॥

भाषा—जिसके दांतोंमें फोड़नेकीसी पीड़ा होय उसको दालनरोग कहते हैं । यह रोग वादीसे होता है ॥

कृमिदंतके लक्षण ।

कृष्णचिछद्रश्वलस्त्रावी ससंरम्भो महारुजः ॥

अनिमित्तरुजो वातात्स ह्येयः कृमिदन्तकः ॥ २६ ॥

भाषा—वादीके योगसे दातोमे काले छिद्र पड़ जायं तथा इल्जे लगें, उनमेंसे स्नाव होय, शोथयुक्त, पीड़ा होनेवाला और कारण विना दूखनेवाला ऐसा है उसको कृमिदन्तरोग कहते हैं । यहा दांतोंमें काले छिद्र पड़नेका यह कारण है कि दुष्ट रुधिरसे कृमि (कीड़ा) पैदा होकर दांतोंमें छिद्र करते हैं ॥

भंजनकके लक्षण ।

वक्रं वक्रं भवेद्यस्य दन्तभंगश्च जायते ॥

कफवात्कृतो व्याधिः स भंजनकंसंज्ञितः ॥ २७ ॥

भाषा—जिस व्याधिकरके मुख टेढ़ा होकर दांत फूटने लगें, यह व्याधि कफवात करके होता है । दांत भंगकारी दोषके प्रमावसे मुखमी टेढ़ा हो जाता है ॥

दंतहर्षके लक्षण ।

शीतरुक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसदा द्विजाः ॥

पित्तमारुतकोपेन दन्तहर्षः स नामतः ॥ २८ ॥

भाषा—दांत शीतल, रुक्ष, खटाई इत्यादि पदार्थ और पवन इनके लगनेको जो नहीं सह सके उसको दंतहर्ष कहते हैं । यह रोग पित्तवायुके कोपसे होता है । इस रोगको वातज छोनेपरभी उच्च (गरम) को नहीं सह सके । यह व्याधिका स्वभाव है इस जगह दूसरा प्राठान्तर है वह नीचे लिखते हैं ॥

दंतशर्कराके लक्षण ।

मलो दन्तगतो यस्तु पित्तमारुतशोणितः ॥

शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥ २९ ॥

भाषा—दांतोंका मल पित्तवायुके प्रभावसे सूखकर रेतके समान खरदरा स्पर्श मालूम होय उस रोगको दंतशर्करा ऐसा कहते हैं । इस श्लोकमें “ सा दंतानां गुणहरा ” ऐसाभी पाठ है । इसका यह अर्थ हुआ कि दांतोंके गुण शुक्र और छढ़ादि उनको दूर करे ॥

कपालिकाके लक्षण ।

कपालेष्विव दीर्णेषु दन्तानां सैव शर्करा ॥

कपालिकेति सा ज्ञेया सदा दंतविनाशिनी ॥ ३० ॥

भाषा—कपाल कहिये मट्टीके घडा आदिके जैसे टूक होते ऐसे दांत मलकरके सहित हो जायं तो उसी पूर्वोक्त दंतशर्कराको कपालिका ऐसा कहते हैं । यह रोग सदा नाशकता है ॥

इयावदंतके लक्षण ।

योऽसृङ्गमिश्रेण पित्तेन दग्धो दंतस्त्वशेषतः ॥

इयावतां नीलतां वापि गतः स इयावदन्तकः ॥ ३१ ॥

भाषा—जो दांत रुधिरसे मिले पित्तसे जलेके समान सब काले हो जायं उनको इयावदंत कहते हैं ॥

१ “ शीतमुष्णं च दशनाः सहंते स्पर्शन न च । यस्य दत च हर्षे तु विद्यात् पित्तस भरणात् ॥ ” इति ।

इनुमोक्षके लक्षण ।

वातेन तैस्तैभावैस्तु हृत्संधिवैसंहृतः ॥

इनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरदिंतलक्षणः ॥ ३२ ॥

भाषा-चादीके योगसे तिस अभिधातादिक करके हनुसंधि (ठोड़ी) में चोट लगनेसे दाँत चलायमान हो जाय उसको हनुमोक्ष कहते हैं । इसके लक्षण अर्द्द-तरोग जो वातव्याधिमें कह आये हैं उस प्रकारके होय । शुश्रुतने इस रोगको दाँतोंके समीप होनेसे दंतरोग कहा है परंतु संग्रहकारने लिखा मुख्य दंतरोग न होनेसे नहीं लिखा । इसको संग्रहकारने भोजके कहे अनुसार वातव्याधिमें लिखा है इसीसे हनुमोक्षरोगका पाठ किसी पुस्तकमें लिखा है और किसीमें नहीं लिखा है ॥

जिह्वागत ६ रोग ।

वातजके लक्षण ।

जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ॥

भाषा-चादीसे जीभ फटीसी, प्रसुप्त (रसका ज्ञान जाता रहे) और पर्वतीवृक्षके पत्रसमान कांटेयुक्त खरदी हो ॥

पित्तजके लक्षण ।

पित्तेन पीता परिदृश्यते च दीर्घैः सरत्तैरपि कंटकैश्च ॥ ३३ ॥

भाषा-पित्तसे जीभ पीली हो, उसमें दाह होय, उसमें लंबे लंबे तामेके समान कांटे होय इस रोगको लौकिकमें जाली कहते हैं अथवा जोड़ी कहते हैं ॥

कफजके लक्षण ।

कफेन गुर्वीं बहुला चिता च मांसोच्छ्रौयैः शाल्मालिकंटकाभैः ॥ ३४ ॥

भाषा-कफसे जीभ मोटी मारी होती है और उसमें सेमरके कांटेके समान मांसके अकुर होय ॥

अलासके लक्षण ।

जिह्वात्तले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽल्लाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः ॥

जिह्वां स तु स्तंभयाति प्रवृद्धौ मूले च जिह्वा भृशमोति पाकम् ॥ ३५ ॥

भाषा-जीभके नीचे कफरुधिरसे प्रगट ऐसी भयंकर सूजन होय उसको अलास कहते हैं । उसके बढ़नेसे स्तंभ होय तथा जीभके मूलमें सूजन होय । यह रोग असाध्य है ॥

उपजिह्वाके लक्षण ।

जिह्वाग्रहूपः श्वयथुः स जिह्वामुव्वम्य जातः कफरक्तमूर्तिः ॥

लालाकरः कण्डुयुतः सचोषः सा तूपजिह्वा कथिता भिषग्भिः ३६

भाषा-कफरुधिरसे जिह्वाप्रके समान (जैसा जीभका आगेका मांग होता है) ऐसी सूजन जीभको नीचे दबायकर उत्पन्न होय उसके योगसे लार बहुत बहे और उसमें खुजली चले तथा दाह होय, रक्तपित्तका कारण पित्त है उससे दाह होता है । इस रोगको वैद्य उपजिह्वा ऐसा कहते हैं ॥

तालुगत ९ रोग ।

कंठशुंडीके लक्षण ।

शुष्मासुभ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः शोथो ध्मातवस्त्वप्रकाशः ॥
तृष्णाकासथाष्टकृतं वदनित व्याधिं वैद्याः कंठशुंडीति नामा ॥३७॥

भाषा-कफरुधिरसे तालु के मूलमें फूली बस्तिके समान भारी सूजन होय इसके ग्रभावसे प्यास, खांसी, श्वास ये होते हैं । इस रोगको वैद्य कंठशुंडी कहते हैं ॥

तुंडकेरीके लक्षण ।

शोथः शूलस्तोददाहप्रपाकी प्राणुमाभ्यां तुंडिकेरी मता तु ॥

भाषा-कफरक्तसे तालुएमें बनकपासके फल समान सूजन होय और उसमें पीड़ा, झुईके छेदनेकासा दुख और दाह होकर पके उसको तुंडिकेरी कहते हैं ॥

अधुवके लक्षण ।

शोथः रुद्धो लोहितस्तालुदेशे रक्तो ज्वेयः सोऽधुवो रुद्धवरश्च ३८

भाषा-रुधिरसे तालुएमें लाल, स्तब्ध (छठर) ऐसी सूजन होय उसमें पीड़ा और ज्वर होय उसको अधुव ऐसा कहते हैं ॥

कच्छपके लक्षण ।

कूर्मौत्सन्नोऽवेदनो शीघ्रजन्मा रोगो ज्वेयः कच्छपः श्वेषणा वा ॥

भाषा-कफसे तालुएमें कङ्गुएकी पीठके समान ऊँची सूजन होय, उसमें पीड़ा थोड़ी होय, वह शीघ्र बढ़े नहीं उसको कच्छपरोग कहते हैं ॥

अर्णुदके लक्षण ।

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तार्बुद्दं प्रोक्तलिंगम् ॥ ३९॥

भाषा-रुधिरसे तालुएमें कमलकी कर्णिकाके समान सूजन होय, इसके लक्षण अर्बुदनिदानमें जो रक्तार्बुद्दके कहे हैं उसके प्रमाण जानने ॥

मांससंधातके लक्षण ।

दुष्टं मांसं निष्ठं तालुमध्ये कफाच्छूनं मांसंवात्माहुः ॥

भाषा-कफकरके तालुएमें दुष्ट मांस होकरके जो सूजन होय और वह दूखे नहीं उसको मांससंधात कहते हैं ॥

तालुपुष्पुटके लक्षण ।

नीरुकस्थायी कोलमात्रः कफात्स्यान्मेदोयुक्तः पुष्पुटस्तालुदेशो ४०॥

माषा-मेदयुक्त कफकरके तालुएमें पीडागहित और स्थिर तथा वेरके समान सूजन होय उसको तालुपुष्पुट ऐसा कहते हैं ॥

तालुशोषके लक्षण ।

शोषोऽत्यर्थं दीर्घते चापि तालुः श्वासश्वोयस्तालुशोषोऽनिलाच्च ॥

माषा-वादीसे तालु अत्यंत सूखकर फट जाय तथा भयंकर श्वास होय उसको तालुशोष कहते हैं ॥

तालुपाकके लक्षण ।

पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येवं तालुपाकं वदंति ॥ ४१ ॥

माषा-पित्त कुपित होकर तालुएमें अत्यंत भयंकर पाक (पकी फुंसी) उत्पन्न करे उसको तालुपाक कहत हैं ॥

कंठगत १७ रोग ।

तिनमें पांच रोहिणीकी सामान्य संप्राप्ति ।

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम् ॥

गलोपसंरोधकरस्तथांकुरौनीहंत्यसून्ध्याधिरथं हि रोहिणी ॥ ४२ ॥

माषा-गलेमें वायु, पित्त और कफ ये दुष्ट होकर मांसको तथा रुधिरको दूषित कर गलेमें अंकुर (कांटे) उत्पन्न करे हैं, उनसे गला रुक जाय यह रोहिणीनाम व्याधि प्राणनाशक है। सब रोहिणी सन्धिपातसे प्रगट होती हैं। उत्कर्षके बास्ते बात आदिका व्यपदेश है। इन सबका असाध्यत्व भोजने पृथक् २ लिखा है ॥

वातजाके लक्षण ।

जिह्वास्मन्ताङ्गशब्देनारुद्धु मांसांकुराः कंठनिरोधनाय ॥

सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढ्युक्ता ॥ ४३ ॥

माषा-जीभके चारों ओर अत्यंत बेदनायुक्त जो मांसांकुर उत्पन्न होय उनमें कंठका अवरोध होय तथा कंप, विनाम, स्नभादि वातके उपद्रव होय ॥

पित्तजाके लक्षण ।

क्षिप्रोद्धमा क्षिप्रविदाद्विपाक्ता तीव्रज्वरा पित्तनिष्ठितजाता ॥

भाषा-पित्तसे प्रगट भई रोहिणी शीघ्र बढे तथा तीव्रही पके उसके योगसे तीव्र ज्वर होता है ॥

१ “ सद्यविदोषजा हति त्र्यहात् श्वेषसमुद्दवा । पचाहात्पित्तसमूता सप्ताहात्पवनो-स्थिता ॥ ” हति ।

कफजाके लक्षण ।

स्नोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका स्थिरांकुरा या कफसंभवा सा ४४॥

भाषा—जो रोहिणी कंठके मार्गको रोध करे (रोक दे) तथा हैले हैले पके तथा जिसके अंकुर कठिन हों वह कफजन्य जाननी ॥

त्रिदोषजाके लक्षण ।

गंभीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषार्लिंगा त्रितयोत्थिता सा ॥

भाषा—त्रिदोषसे उत्पन्न भई रोहिणी गंभीरपाकिनी जिसमें राध बहुत होय तिसमें औषधीका प्रभाव नहीं चले और तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त होय यह तत्काल प्राणोंका हरण करे ॥

रक्तजाके लक्षण ।

स्फोटैश्चिता पित्तसमानर्लिंगा साध्या प्रादेष्टा रुधिरात्मका तु ॥ ४५ ॥

भाषा—रुधिरकी रोहिणी पित्तरोहिणीके समान जाननी तथा फोड़ोंसे व्यास होय यह साध्य है ॥

कंठशालूकके लक्षण ।

कोलास्थिमात्रः कफसंभवो यो ग्रांथिर्गले कंठशालूकभूतः ॥

खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कंठशालूकमिति श्रुवन्ति ४६ ॥

भाषा—कफसे गलेमें बेरकी गुठलीके समान गांठ होय, उसमें बारीक कांटे होंय तथा खरदरी और कठिन होय, यह रोग शस्त्रोंसे साध्य होय । इस रोगको कंठशालूकरोग कहते हैं ॥

अधिजिह्वके लक्षण ।

जिह्वाग्रहपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वोपरिष्टादपि रक्तमिश्रात् ॥

ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ ४७ ॥

भाषा—रक्तमिश्रित कफसे जीभके अग्रभागस्वर्ण जीभमें सूजन होय इसको अधिजिह्व कहते हैं । यह पक्नेसे असाध्य जानना ॥

बलयके लक्षण ।

बलास एवायतमुन्नतं च ग्रांथं करोत्यन्नगतिं निवार्य ॥

तं सर्वथैवाप्रतिवार्यवर्यं विवर्जनीयं बलयं वदन्ति ॥ ४८ ॥

भाषा—कफसे ऊंची और लंबी ऐसी गांठ कंठमें उत्पन्न होय उसके शोगसे कंठमें ग्रास (गस्सा) उतरे नहीं तथा उसमें कोई उपाय नहीं चले इस रोगको बलय कहते हैं । इसको वैद्य त्याग देय ॥

बलासके लक्षण ।

गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ श्वेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम् ॥

मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहुर्बलाससंज्ञं निपुणा विकारम् ॥ ४९ ॥

भाषा-कृपित भये जो कफ वायु सो गलेमें सूजन उत्पन्न करे उससे श्वास होय तथा कंठ दूखे इस मर्मभेद करनेवाली दुस्तर व्याधिको वैद्य बलास ऐसा कहते हैं ॥

एकवृद्धके लक्षण ।

वृत्तोन्नतोऽतः श्वयथुः सदाहः सकंडुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च ॥

नाम्रकवृद्धः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥ ५० ॥

भाषा-गलेमें गोल, ऊँची, किंचित् दाहयुक्त, खुजानेवाली ऐसी सूजन होय वह किंचित् पके और कुछ नरम होय तथा भारी होय इसका नाम एकवृन्द है । यह व्याधि कफरक्तसे होती है ॥

वृन्दके लक्षण ।

समुन्नतं वृत्तममंददाहं तीव्रज्वरं वृद्धमुदाहराति ॥

तं चापि पित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात्सतोदं पवनात्मकं तु ॥ ५१ ॥

भाषा-गलेमें ऊँची, गोल, तीव्रदाह तथा ज्वरयुक्त जो सूजन होय उसको वृन्द कहते हैं । यहभी रक्तपित्तके कोपसे होती है । इसमें वायुके संबंध होनेसे मुईके चोटनेकीसी पीड़ा होय । शंका-क्योजी ! कंठके १७ रोग कहे हैं और वृन्दको मिलायकर अठारह रोग हुए तो काहिये ति सत्रहकी संख्यामें भेद हुआ । उत्तर-तुमने कहा सो ठीक है परंतु तुल्यस्थान आकृति होनेसे एकवृन्दकाही भेद वृन्दरोग जानना । ऐसा माननेसे संख्यामें विरोध नहीं पड़े । यद्यपि एकवृन्द कफरक्तज है और वृन्दरोग पित्तरक्तज कहा है तथापि जैसे वृन्दका चोटनी होनेते वातात्मकत्व कहा है, तौभी एकवृन्दकी अवस्था विशेष होनेसे वृन्दको एकवृन्दके साथ ग्रहण करा है । जैसे कामलाके लक्षणसे भिन्नभी है तथापि इलीमक कामलाकाही भेद जानना और भोजनेभी इसको एकवृन्दकाही भेद कहा है । गदाधर कहता है कि छंदानुरोधके निमित्त एकवृन्द शब्दके एक शब्दका लोपकर वृद्धशब्दही मूलमें धरा है इससे वृन्द और एकवृन्द ये दोनों एकही हैं ॥

शतघ्नीके लक्षण ।

वर्तिवना कंठनिरोधिनी या चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः ॥

अनेकरुक्ष प्राणहरी त्रिदोषा ज्ञेया शतघ्नी तु शतग्निरुपा ॥ ५२ ॥

१ “ श्वेष्मरक्तसमुत्थानमेकवृन्द विभाषयेत् । तुल्यस्थानकृतिवृन्दो वृन्दजो रक्तपित्तजः ॥ ” इति ।

भाषा—कंठमें लंबी और कठिन सूजन होय, उससे कंठ रुक्ख जाय और उस सूजनके ऊपर मांसके अंकुर बहुत होय तथा उसमें तोद (चोटनी), दाइ, खुजली आदि अनेक वेदना होय, यह प्राण हरनेवाली सूजनको शतम्भी (लंबे तथा कांडे लंबे जिसमें होय ऐसे शस्त्र) के समान होय इसीसे इस रोगको यह संज्ञा दी है ॥
गिलायुके लक्षण ।

अंथिर्गले त्वाम्बलकास्थिमात्रः स्थिरोऽल्पस्त्रस्थात्कफरक्तमूर्तिः ॥

संलक्ष्यते सत्त्वमिवाशनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः ॥ ५३ ॥

भाषा—कफरक्तके कोपसे गलेमें अंबलेकी गुठलीके बराबर गांठ उत्पन्न होवे, वह गांठ कठिन मंदपीडावाली हो, इसके होनेसे अच्छ गलेमें अटकतासा मालूम होवे, यह रोग शस्त्रके द्वारा अर्थात् शस्त्रके काटनेसे साध्य होवे इसको गिलायु कहते हैं ॥

गलविद्रधिके लक्षण ।

सर्वे गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोथो रुजः संति च यत्र सर्वाः ॥

स सर्वदोषो गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः स्वलु सर्वजस्य ॥ ५४ ॥

भाषा—जो सूजन सब गलेमें व्याप्त होवे तथा जिसमें सर्व प्रकारकी पीड़ा होय वह विद्रधि निदानमें जो त्रिदोषकी विद्रधि कही है उसके समान गलविद्रधिके लक्षण जानने ॥

गलौघके लक्षण ।

शोथो महानब्रजलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेनिहन्ता ॥

कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिक्षीत्यर्थतेऽसौ ॥ ५५ ॥

भाषा—रक्तयुक्त कफसे गलेमें भारी सूजन होय, उसके योगसे कंठमें अच्छ जलका अवरोध (रुकावट) होय तथा वायुका संचार होय नहीं इसको वैद्य गलौघ कहते हैं ॥

स्वरघ्नके लक्षण ।

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकंठः ॥

कफोपादिग्धेष्वनिलायतेषु ज्ञेयः स रोगः इवसनात्स्वरघ्नः ॥ ५६ ॥

भाषा—वायुका मार्ग कफसे लिप्स होनेसे बार बार नेत्रोंके ज्ञागे अंधकार आकर जो पुरुष श्वासको छोड़े अथवा मूर्छा आकर जिसकी श्वास निकले, जिसको भिन्न स्वर होय, कंठ सूखे और विमुक्त कहिये कंठ स्वाधीन न हो अर्थात् थोड़ाभी अच्छ खाया हो तथापि कंठसे नीचे न उतरे, इस बातजरोगको स्वरघ्न कहते हैं ॥

मांसतानके लक्षण ।

प्रतानवान्थः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण ॥

इ मांसतानेति विभौति संज्ञां प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः ॥ ६७ ॥

भाषा—जो सूजन गलेमें उत्पन्न होकर क्रमसे फैलकर गलेको रोक ले तब बहुत कष्ट हो इस विदेश विकारको मांसतान कहते हैं । यह विकराल रोग प्राणोंका नाश करनेवाला है ॥

विदारीके लक्षण ।

सदाहृतोदं श्वयथुं सुतीब्रमन्तर्गले पूतिविश्वीर्णमांसम् ॥

पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पाथ्ये विशेषात्स तु येन श्वेते ॥ ६८ ॥

भाषा—पित्तसे गलेमें सूजन होवे तिसकरके दाह होय, चबक होय तथा छुर्ण-धियुक्त सडा मांस गिरे और रोगी जिस करबट सोवे उसी तर्फ वह रोग होता है । मांसके विदारण करनेसे विदारी कहलाता है ॥

मुखपाक ।

सर्वसर (मुखपाक मुख आना) तीन प्रकारका है इसमें वातजके लक्षण ।

स्फोटैः सतोदैवदनं समंताद्यस्याचितं सर्वसरः स वातात् ॥

भाषा—वादीके योगसे मुखमें सर्वत्र छाले हो जाय और वह चिनामिनावे, मुख, जिहा, गला, होंठ, मस्फूरे, दांत और तालु इन सबमें व्यासि होनेसे इस रोगको सर्वसर कहते हैं ॥

पित्तजके लक्षण ।

रक्तैः सदाहैः पिडकैः सपीतैर्यस्याचितं चापि सपित्तकोपात् ६९॥

भाषा—पित्तसे मुखमें लाल तथा पीले छाले होय और दाह होवे ॥

कफजके लक्षण ।

अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यस्याचितं चापि स वै कफेन ॥ ६० ॥

भाषा—कफसे मुखमें मंद पीड़ा और त्वचाके समान वर्ण जिनका ऐसे छाले सर्वत्र होय ॥

असाध्यमुखरोगके लक्षण ।

ओष्ठप्रकोपे वज्याः स्युर्मासरक्तप्रकोपजाः ॥ दंतमूलेषु वज्यौ तु

त्रिलिंगगतिसौषिराँ ॥ ६१ ॥ दंतेषु न च सिद्धन्ति इयावदाल-

नभंजनाः ॥ जिह्वातलेखलासश्च तालव्येष्वर्बुदं तथा ॥ ६२ ॥

स्वरग्नो वलयो वृन्दो वलासश्च विदारिका ॥ गलौघो मांसतानश्च
शतग्नी रोहिणी गले ॥ ६३॥ असाध्या कीर्तिंता ह्येते रोगा नव
दक्षेव तु ॥ तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥६४॥

भाषा-ओष्ठरोग (हाँठके रोगोंमें) मांसज, रक्तज और त्रिदोषज असाध्य हैं ।
मसूड़ोंके रोगोंमें सचिपात, नाड़ी और सौषिर और दांतोंके रोगोंमें इयाव, दालन
और भंजन, जिह्वाके रोगोंमें अलास और तालुएके रोगोंमें अर्द्धुद तथा गलेके
रोगोंमें स्वरग्न, वलय, वृन्द, वलास, विदारिका, गलौघ, मांसतान, शतग्नी और
रोहिणी ये उन्नीस रोग असाध्य हैं । इनपर चिकित्सा करनेवाले वैद्यको प्रत्याख्यान
औषधि न देनी चाहिये । यह तौ मृत्यु निश्चय करे और देवे तौ कदाचित् वचभी
जाता है ऐसा विचार कर औषधी देनी चाहिये ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरभाषार्थीकार्यां
मुखरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ कर्णरोगनिदानम् ।

कर्णशूलके लक्षण ।

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथा चरन्समंततः शूलमतीव कर्णयोः ॥

करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः स कर्णशूलः कथितो दुरासदः ॥१॥

भाषा-कानमें वायु दोषोंकरके (कफ, पित्त, सधिरस) आवृत होकर कानोंमें
उलटी फिरे तब अत्यंत शूल (दरद) होय इस रोगको कर्णशूल कहते हैं । यह
रोग कष्टसाध्य है । कर्णशूलके उपद्रव विदेहने इस प्रकार लिखे हैं । “ मूर्च्छा दाहो
ख्वरः कासः कुमोऽथ वमथुस्तथा । उपद्रवाः कर्णशूले भवत्येते भविष्यतः ॥ ”
इसका अर्थ सुगम है ॥

कर्णनादके लक्षण ।

कर्णस्वोतः स्थिते वाते शृणोति विविधान्स्वरान् ॥

भेरीमृदंगशंखानां कर्णनादः स उच्यते ॥ २ ॥

भाषा-वायु कानके हिंद्रोंमें स्थित होनेसे अनेक प्रकारके स्वर (तथा) भेरी, मृदंग
और शंख इनके दबद लुनाई देवे इस रोगको कर्णनाद कहते हैं ॥

वाधिर्य (वहरा) के लक्षण ।

यदा शब्दवहं वायुः स्रोत आवृत्य तिष्ठति ॥

शुद्धश्लेषमान्वितो वापि वाधिर्यं तेन जायते ॥ ३ ॥

भाषा-जिस समय केवल वायु अथवा कफयुक्त वायु शब्द वहानेवाली नाडियोंमें स्थित रोय तब उस पुरुषको शब्द सुनाई नहीं देय अर्थात् वहरा हो जाता है ॥
कर्णध्वेडके लक्षण ।

वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वंशुघोषसमं स्वनम् ॥

करोति कर्णयोः ध्वेडं कर्णध्वेडः स उच्यते ॥ ४ ॥

भाषा-पित्तादि दोषोंकर्के युक्त वायु कानोंमें बेणु (बंसी) का शब्द सुनाई देता है उसको कर्णध्वेड कहते हैं ॥

कर्णस्तावके लक्षण ।

शिरोऽभिघातादथ वा निमज्जतां जले प्रपाक्षादथ वापि विद्धधेः ॥

स्ववोद्धि पूयं श्रवणोऽनिलादितः स कर्णसंस्नाव इति प्रकीर्तिंतः ॥ ५ ॥

भाषा-शिरमें किसी प्रकारकी चोट लगनेसे अथवा पानीमें गोता माननेसे अथवा कानमें विद्रधि पकनेसे वायु कुपित होकर कानोंसे राध वहे उसको कर्ण-स्नाव कहते हैं ।

कर्णकंडूके लक्षण ।

मास्तः कफसंयुक्तः कर्णकंडूं करोति च ॥

भाषा-कफसे मिला हुआ वायु कानोंमें खुजली उत्पन्न करता है ॥

कर्णगूथके लक्षण ।

पित्तोष्मशोषितः श्लेषमा जायते कर्णगूथकः ॥ ६ ॥

भाषा-पित्तकी गरमीसे कफ सूखकर कानमें मैल जमे उसको कर्णगूथ कहते हैं ॥

कर्णप्रतिनादके लक्षण ।

स कर्णगूथो द्रवतां यदा गतो विलायितो ग्राणमुखं प्रपद्यते ॥

तदा स कर्णप्रतिनादसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽर्द्धभेदकृत् ॥ ७ ॥

भाषा-वही कानका मैल पतला होनेसे अथवा स्वेदादिकोंकरके पतला होकर सुख और नाकमें प्राप्त होय तब उसको कर्णप्रतिनाद कहते हैं । इस रोगसे अर्द्धशिर (आधासीसी) का विकार होता है ॥

कृमिकर्णके लक्षण ।

यदा तु मूर्च्छी त्वथ वापि जंतवः सृजन्त्यप्त्यान्यथ वापि मक्षिकाः ॥
तदंजनत्वाच्छ्रवणो निरुच्यते भिषग्भराद्यैः कृमिकर्णको गदः ॥ ८ ॥

भाषा—जिस समय कानमें कीड़े पड़ जाय अथवा मक्खी अंडा धरें तब कृमि लक्षणकरके इस रोगको कृमिकर्ण कहते हैं ॥

कानमें पतंगादि कीड़ा धसनेके लक्षण ।

पतंगाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि ॥ अरतिं व्याङ्गुलत्वं
च भृशं कुर्वन्ति वेदनाय् ॥ ९ ॥ कर्णो निरुद्यते तस्य तथा
फुरफुरायते ॥ कीटे चरति रुक्तीब्रा निस्पन्दे मन्दवेदना ॥ १० ॥

भाषा—पतंग, कनखजूरा, गिर्जाई आदि कानमें धसनेसे बैचैनी होय, जीव व्याङ्गुल होय, कानमें पीड़ा होय, कानमें नोचनेकीसी पीड़ा होय, वह कीड़ा कानके भीतर फड़के, फिरे, उस समय घोर पीड़ा होय और जब वह बन्द हो तब पीड़ा बन्द होवे ॥

द्विविध कर्णविद्रधिके लक्षण ।

क्षताभिषातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः ॥
सरक्तपीताशृणरक्तमात्रवेत्प्रतादधूमायनदाहचोषवान् ॥ ११ ॥

भाषा—कानमें खुजानेसे ब्रण हो जाय अथवा चोट लगनेसे कानमें ब्रण होकर विद्रधि होय, उसी प्रकार वातादि दोषोंकरके दूसरे प्रकारकी विद्रधि होती है । जब वह कूटे तव उसमेंसे लाल पीला संधिर वहे, नोचनेकीसी पीड़ा होवे, धुआंसा निकलता मालूम होवे, दाह होवे, चूसनेकीसी पीड़ा होवे ॥

कर्णपाकके लक्षण ।

कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्षेदकृद्धवेत् ॥

कर्णे विद्रधिपाकाद्वा जायते चांबुपूरणात् ॥ १२ ॥

भाषा—पित्तसे अथवा कान पकनेसे अथवा कानमें पानी जानेसे कर्णपाकरोग होवे उसकरके कान सड जावे और गीला रहे ॥

पूतिकर्णके लक्षण ।

पूर्यं स्ववति वा पूति स ज्ञेयः पूतिकर्णकः ॥

भाषा—जिसके कानमेंसे राध निकले वा वास आवे उसको पूतिकर्ण कहते हैं ॥
कर्णशोथ कर्णार्दुद कर्णीशका हवाल देते हैं ।

कर्णशोथार्दुदाशांसि जानीयादुत्तलक्षणैः ॥ १३ ॥

भाषा—कानकी सूजन, कानका अर्बुद और कानकी अशे (ववासीर) य रोग होय तो इनके लक्षण उसी २ निदानके द्वारा जानने । कुछ थोड़ेसे यहाँ लिखभी देते हैं । कर्णशोथ चार प्रकारका है । वात, पित्त, कफ, रक्तजके भेदसे इसीप्रकार कर्णार्श कानकी ववासीरभी चारही प्रकारकी है । चारसे विशेष शोय अर्गेंका होना असंभव है इससे चारही हैं ॥

कर्णार्बुदरोग सात प्रकारका है वात, पित्त, कफ, रुधिर, मास, मेदा और शिरा इनके भेदसे । अब कहते हैं कि कर्णरोग सुश्रुतके मतसे २८ प्रकारका है परन्तु चरकके मतसे चारही हैं उनको कहते हैं ॥

वातजके लक्षण ।

नादोऽतिरुद्धर्गमलस्य शोषः स्नावस्तुश्चाश्रवणं च वातात् ॥

भाषा—चाढ़ीसे कानमें शब्द होय, पीड़ा होय, कानका मैल सूख जाय, पतला स्नाव होय, सुनाई नहीं देवे अर्थात् वहरा हो जाय ॥

पित्तजके लक्षण ।

शोथः सरागो दरणं विदाहः सपीतपूतिस्त्रवणं च पित्तात् ॥ १४ ॥

भाषा—पित्तसे कानमें सूजन होय, कान लाल हो, दाह हो, विरासा हो जाय तथा किंचित् पीला हुर्गाधियुक्त स्नाव होय ॥

कफजके लक्षण ।

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोथशुक्ता स्थिधा सृतिः अलेषमभवेति रुक्ष च ॥

भाषा—कफके प्रमावसे विरुद्ध सुनना, खुजली चले, कठिन सूजन होय, सर्फेद और चिकना स्नाव होय ॥

सन्निपातजके लक्षण ।

सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात्स्नावश्च तत्राधिकदोषवर्णः ॥ १५ ॥

भाषा—सन्निपातसे जब लक्षण होय, स्नाव होय वा जौनसा दोष अधिक होय वैसाही दोषानुसार वर्णका स्नाव होय ॥

कर्णपाठीके रोग ।

कर्णशोथके लक्षण ।

सौकुमार्याचिरोत्सृष्टे सद्वापि प्रवर्द्धते ॥

कर्णशोथो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोट्वात् ॥ १६ ॥

भाषा—सुकुमार खीं अथवा बालक कानकी लौरको एक साथ बहुत बढ़ावे तौ कानकी पाली (लौर) मे सूजन होकर फूल जावे और दूखे ।

परिपोटके लक्षण ।

कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स वातात्परिपोटकः ॥ १७ ॥

भाषा-वादीसे काला, लाल और कठिन ऐसा फूल जाय उसको परिपोटकं कहते हैं ॥

उत्पातके लक्षण ।

गुर्वाभ्रणसंयोगात्ताण्डवाद्वर्षणादृपि ॥

शोथः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुजान्वितः ॥

रक्तो वा रक्तपिताभ्यामुत्पातः स गदो मतः ॥ १८ ॥

भाषा-कानमें भारी आभरण (गहना) पहननेसे अथवा चोटके लगनेसे अथवा कानझो खीचनेसे रक्तपित छोड़कर कानकी पालीमें हरी, नीली, अथवा लाल सूजन होय । उसमें दाह होवे, पीड़ा होवे और रक्त वहे इस रोगको उत्पात कहते हैं ॥

उन्मंथकके लक्षण ।

क्लीं बलाद्वर्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति ॥ १९ ॥

स कफं गृद्धि कुरुते सक्षोफं स्तब्धवेदनम् ॥

उन्मंथकः सकण्डूको विकारः कफवातजः ॥ २० ॥

भाषा-कानको बलपूर्वक बढ़ानेसे पाली (लौर) में वायु छुपित होकर कफको संग लेकर कठिन तथा मंद पीड़ायुक्त सूजनको प्राप्त करे । उसमें खुजली चले इस कफवातजन्य विकारको उन्मंथक कहते हैं ॥

दुःखवर्द्धनके लक्षण ।

संवर्ध्यमाने दुर्विष्टे कण्डूदाहरुजान्वितः ॥

शोफो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्द्धनः ॥ २१ ॥

भाषा-दुष्टीति करके कानको छेदनेसे तथा बढ़ानेसे खुजली, दाह, पीड़ायुक्त ऐसी सूजन होय वह पक जाय उसको दुःखवर्द्धन कहते हैं ॥

परिलेहीके लक्षण ।

कफासृक्षमिसंभूतः स विसर्पन्नितस्ततः ॥

लिहेच्च शष्कुर्ली पालि परिलेहीत्यसौ स्मृतः ॥ २२ ॥

भाषा-कफ रक्त कृमिसे उत्पन्न भई तथा सर्वत्र विचरनेवाली ऐसी जो सूजन कानकी पालीमें होय वह कानकी पालीको, खाय जाय और्ध्वार्थीत् उसका मांस छाने लगे उसको परिलेही कहते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थयोधीनीमाथुरीभाषार्थीकाया
कर्णरोगनिदान समाप्तम् ।

अथ नासारोगनिदानम् ।

पीनसके लक्षण ।

आनह्यते यस्य विशुष्यते च प्रक्षियते धूप्यति चैव नासा ॥

न वेत्ति यो गंधरसांश्च जन्तुर्ज्ञेषु व्यवस्थेत्स तु पीनसेन ॥

तं चानिलश्चेष्मभवं विकारं ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिंगम् ॥ १ ॥

भाषा-जिसकी नाक रुक जाय, वात शोषित कर्फसे नाक भीतरसे सखीसी रहे, गीली रहे, धुआंसा, निकले, जिसकी नाकमें सुगंधि दुर्गंधि मिष्ठ रसादिककी गंधि मालूम न हो, उसके पीनस प्रगट भई जाननी इस वातजन्य' विकारको प्रतिश्याय (पीनस) कहते हैं ॥

पूतिनस्यके लक्षण ।

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले संमूच्छितो यस्य समीरणस्तु ॥

निरोति पूतिर्मूखेनाक्षिकाभ्यां तं पूतिनस्यं प्रवदन्ति रोगम् ॥ २ ॥

भाषा-गले और तालुबेमें दुष भया पित्तरक्तादि दोषकरके वायु मिश्रित होकर नाक और मुखके मार्गोंसे दुर्गंधि निकले इस रोगको पूतिनस्य कहते हैं ॥

नासापाकके लक्षण ।

घ्राणाश्रितं पित्तमहंषि कुर्याद्यस्मिन्विकारे बलवांश पाकः ॥

तंग्रासिकापाकमिति व्यवस्थेद्विक्लेदकोथावथ वापि यत्र ॥ ३ ॥

भाषा-जिसकी नाकमें पित्त दूषित होकर फुंसी प्रगट करे और नाक भीतरसे एक जाय उसको नासिकापाक कहते हैं । इसमें नाकसे राध वहे ॥

पूयरक्तके लक्षण ।

दोषैर्विदग्धैरथ वापि जन्तोर्लाटदेशोऽभिहतस्य तैस्तैः ॥

नासा स्वेतपूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ४ ॥

भाषा—दाष दुष्ट होनेसे अथवा कपालमें चोट लगनेसे नाकमेंसे राख वहे आरु
रुधिर वहे इस रोगको पूयरक्त कहते हैं ॥

क्षवथु (छींक) के लक्षण ।

त्राणाश्रिते मर्मणि संप्रदुष्टो यस्थानिलो नासिकया निरेति ॥

क्लफाजुयातो बहुशोऽतिशब्दं तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः ॥ ६ ॥

भाषा—नासिकाश्रित मर्म (शृंगाटक मर्म) के विषे वायु दुष्ट होकर कफसहित
मारी शब्दको नासिकाके बाहर निकाले उसको क्षवथु (छींक) कहते हैं ॥

आगंतुज क्षवथुके लक्षण ।

तीक्ष्णोपयोगादतिजिन्नतो वा भावान्कटूनक्फनिरीक्षणाद्वा ॥

सूत्रादिभिर्वा तरुणार्थिमर्पणुद्वाटितेऽन्यक्षवथुनिरेति ॥ ६ ॥

भाषा—तीखे राइ आदि पदार्थ खानेसे अथवा कड़वा खानेसे, भिरच आदि
तीखे वस्तुओंके संघनेसे, सूर्यके देखनेसे अथवा कपडेकी वत्ती बनाकर नाकमें
तरुणार्थि मर्म (फणामर्म) में लगानेसे, आगंतुज क्षवथु (छींक) आती है।
आगंतुज और दोषज छींक एकही है ॥

भ्रंशथुके लक्षण ।

प्रश्चइते नासिकया हि यस्य सांद्रो विद्गधो लवणः कफश्च ॥

प्राक्संचितो बृद्धनि सूर्यतसे तं भ्रंशथुं व्याधिमुदाहरन्ति ॥ ७ ॥

भाषा—सूर्यकी गरमीकरके मस्तक तस होनेसे पूर्वसंचित भया विद्गध, गाढ़ा,
खारी ऐसा कफ नाकसे गिरे उस व्याधिको भ्रंशथुरोग कहते हैं ॥

दीपके लक्षण ।

त्राणे भृदां दाहसमन्विते तु विनिश्चरेष्टूम् इवेह वायुः ॥

नासा प्रदीपेव च यस्य जंतोर्ध्यार्धि तु तं दीपसुदाहरन्ति ॥ ८ ॥

भाषा—नाक अत्यंत दाहयुक्त होनेसे उसमें वायु धुआंके सहश विचरे और
नाक प्रदीप होवे इस रोगको दीप कहते हैं ॥

प्रतिनाहके लक्षण ।

उच्छ्वासमार्हं तु क्षफः सवातो रुध्यात्प्रतीनाहसुदाहरेत्तम् ॥

भाषा—वायुसहित कफ श्वासके मार्गको बंद करे तब नाकका स्वर अच्छी रीतिसे
चले नहीं इसको प्रतिनाह कहते हैं ॥

नासाश्वासके लक्षण ।

त्राणाद् घनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्ववेत्सावसुदाहरेत्तम् ॥ ९ ॥

भाषा—नाकसे गाढ़ा, पीला अथवा सपेद पतला दोषः (कफ) स्वे उसको स्वाव कहते हैं ॥

नासापरिशोधके लक्षण ।

ब्राणाश्रिते स्नोतसि मारुतेन गाढं प्रतसे परिज्ञोषिते च ॥

कृच्छ्राच्छ्रसेद्वर्धमदश्च जंतुर्यस्मिन्स नासापरिशोष उक्तः ॥ १० ॥

भाषा—वायुसे नासिकाका द्वार अत्यन्त तस होकर सूख जाय तब मनुष्य वडे कष्टसे ऊपर नीचेको श्वास लेय उस रोगको नासापरिशोष कहते हैं ॥

चिकित्सामेदार्थ पीनसके आमपकके लक्षण । —

शिरोगुरुत्वमूलचिर्नासास्नावस्तत्त्वः स्वरः ॥ क्षामः ष्टीवेत्थाऽ-

भीक्षणमामपीनसलक्षणम् ॥ ११ ॥ आमर्तिंशान्वितः श्लेषमा घन-

श्वाप्सु निमज्जति ॥ स्वरवर्णविशुद्धिश्च पक्षपीनसलक्षणम् ॥ १२ ॥

भाषा—शिरमें भारीपन, अन्नमें अरुचि, नासिकासे गरम गरम जलका झरना, आवाज कुछ मन्दी हो और शरीरका कृश होना, वांवार थूकना ये आम (कष्ट) पीनसके लक्षण हैं और जिसमें इसी पूर्वोक्त आम पीनसकेमी लक्षण हैं और कफ गाढ़ा हो गया हो और जलमें गरनेसे छूब जाय और मुखसे साफ आवाज निकले और मुखका रंग (रुहानी) अच्छा होय तो जानना कि यह पीनस पक गया है ॥

प्रतिश्यायकी संप्राप्ति ।

संधारणाजीर्णरजोऽतिभाष्यक्रोधर्तुवैष्म्यशिरोभितापैः ॥

प्रजागरातिरूपनाम्बुद्धीतावश्यायतो मैथुनवाष्पशोषैः ॥ १३ ॥

संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धौ वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेच ॥ १४ ॥

भाषा—वेगोंके रोकनेसे, अजीर्णकारक पदार्थोंके खानेसे, रज (धूल) के नासिकाके भीतर जानेसे, अत्यंत भाषण (अत्यंत पढ़ने) से और अत्यंत गुस्सा करनेसे तथा ऋतुविपर्यय अर्थात् एक ऋतुमें दूसरे ऋतुके लक्षण होनेसे, शिरोभिताप अर्थात् श्रीष्म ऋतुमें शिरसे अत्यन्त धूप सेवन करनेसे, रात्रिमें जागनेसे, [दिनमें विशेष सोनेसे और शीत पदार्थोंका अधिक सेवन करनेसे, इसी तरह कोहरके खानेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, पसीना अथवा आंसुओंके रुकनेसे, शिरमें दोष इकट्ठे हों फिर वायु वृद्धिगत होकर प्रतिश्याय रोग पीनस उत्पन्न करे ये कारण सद्योजनक अर्थात् तत्काल पीनस करनेवाले हैं ॥

चापादिकमसे इसका दूसरा निदान ।

चयं गता मूर्द्धनि मारुतादयः पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितम् ॥

प्रकुप्यमाना विविधैः प्रकोपैस्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति ॥ १६ ॥

भाषा—मस्तकमें पृथक् वातादि दोष तथा सर्व दोष उसी प्रकार सुधिर संचय होकर अनेक प्रकारके कारणोंसे (बलवान्से वैर करना दिवास्वापादि) कुपित होकर प्रतिश्याय उत्पन्न करें ॥

पूर्वरूपके लक्षण ।

क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽतिपूर्णता स्तम्भोऽगमदः परिहृष्टरोमता ॥

उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसरा स्मृत्ताः १६ ॥

भाषा—छोंकका आना, मस्तकका भारी होना, अंगोंका जकड जाना तथा अंगोंका टूटना, रोमांच अवमंथसे आदि ले और धूमादिक तत्काल होनेवाले उपद्रव होंय, जब पीनस होनझार होती है तब ये लक्षण होते हैं ॥

वातिक प्रतिश्यायके लक्षण ।

आनद्धा पिहिता नासा तनुस्नावप्रसेकिनी ॥

गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शंखयोरपि ॥

भवेत्स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मजे ॥ १७ ॥

भाषा—जिसकी नाकका मार्ग रुक जाय, आच्छादित हो जाय और उसमेंसे भतला पानी निकले, गला तालु होंठ ये सूख जांय और कनपटी दूखे, गला बैठ जाय ये बातके पीनसके लक्षण हैं ॥

पैत्तिक प्रतिश्यायके लक्षण ।

उष्णः स्पीतकः स्नावो श्राणात्स्ववाति पैत्तिके ॥ १८ ॥

कृशोऽतिपाण्डुः सन्तसो भवेदुष्णाभिपीडितः ॥

सधूममार्गं सहसा वमतीव च नासया ॥ १९ ॥

भाषा—जिसकी नाकसे दाह' और पीला स्नाव होवे, वह मनुष्य कृश और पीला हो जाय, उसका देह गरम रहे, नाकसे अधिके समान धुआं निकले यह पित्तकी पीनसके लक्षण हैं ॥

श्लेष्मिकके लक्षण ।

श्राणात्कफः कफ्कृते श्वेतः पीतः स्नवेद्धुः ॥

शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्वरुशिरा नरः ॥

कंठताल्वोष्ठशिरसां कंडूभिरभिपीडितः ॥ २० ॥

१ “ पूर्वरूपाणि दृश्यते प्रतिश्याये भविष्यति । श्राणधूमायन मंथक्षवयुस्तालुदाकनम् । कण्ठे ध्वंसो मुखस्नावः शिरस्थापूरण तथा ॥ ” इति ॥

भाषा—नाकसे सफेद पीला बहुत कफ गिरे, उसकी देह सफेद हो जाय, नेत्रोंके ऊपर सूजन होय, मस्तक भारी रहे और गला, तालु, होठ और शिर इनमें खुजली विशेष चले ये कफकी पीनसके लक्षण हैं ॥

सञ्चिपातके लक्षण ।

भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो यस्याक्षस्मान्विवर्तते ॥

स पक्वो वाप्यपक्वो वा स तु सर्वभवः स्मृतः ॥ २१ ॥

भाषा—जिसकी नाकमें पूर्वोक्त कहे सों सर्व लक्षण मिलें तथा वह पीनस वारंवार होकर पक्कर अथवा बिना पके नष्ट हो जाय, उसको सञ्चिपातकी पीनस कहते हैं । यह बिदेह आचार्यके मतसे असाध्य है ॥

दुष्प्रतिश्यायके लक्षण ।

**प्रक्षिद्यते पुनर्नासा पुनश्च परिशुष्यति ॥ पुनरानश्यते चापि पुन-
र्विद्रीयते तथा ॥ २२ ॥ निश्वासो वाति दुर्गंधो नरो गंधं न वेत्ति
च ॥ एवं दुष्प्रतिश्यायं जानीयात्कृच्छ्रसाधनम् ॥ २३ ॥**

भाषा—वारंवार जिसकी नाक झड़ा करे और सूख जाय और नाकसे अच्छी तरह श्वास नहीं आवे, नाक रुक जाय और फिर खुल जाय, श्वास लेनेमे वास आवे तथा उस रोगीको सुगंध दुर्गंधका ज्ञान जाता रहे ऐसे लक्षण होनेसे इसको दुष्प्रतिश्याय कहते हैं । यह कष्टसे साध्य होता है । यह पीनस पांच पीनसोंके अन्तर्गत जाननी इनकाही भेद है यह छठी नहीं है ॥

रक्तप्रतिश्यायके लक्षण ।

**रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्वावः प्रवर्तते ॥ ताप्राक्षश्च भवेजंतुरुरोधा-
तप्रपीडितः ॥ २४ ॥ दुर्गंधाच्छ्रास्वदनो गंधानपि न वेत्ति सः ॥ २५ ॥**

भाषा—रुधिरकी पीनसमें नाकसे रुधिर गिरे, नेत्र लाल होय, उरःक्षतकी पीड़ाके सदृश पीड़ा होय, श्वास अथवा मुखमें वास आवे, दुर्गंधिका ज्ञान नहीं होय, उरःक्षतके लक्षण ग्रन्थांतरमें लिखे हैं सों जानने । किसी पुस्तकमें “ पित्तप्रतिश्यायकृतैर्लग्नैश्चापि समन्वितः । ” ऐसा पाठ है इसका अर्थ यह है कि जिसमें पित्तकी पीनसके लक्षण मिलते हैं ॥

असाध्य लक्षण ।

सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः ॥ दुष्टां यान्ति काले-

१ “ नृणां दुष्प्रतिश्यायः सर्वजश्च न सिद्ध्यति । ” इति बिदेहः । २ “ उरःक्षतं गुरुं-
स्तब्धः पूतिकर्णकफो रसः । सकासः सञ्चरो ज्ञेय उरोधातः सपीनसः ॥ ३ ॥ अत्र पित्तप्र-
तिश्यायालिंगान्यपि बोद्धव्यानि तुल्यात् पित्तरक्तयोः ।

न तदाऽसाध्यां भवति च ॥ २६ ॥ मूर्च्छेति कृमयश्वात्र शेताः स्त्रि-
ग्नास्तथाऽणवः ॥ कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्यं तेनास्य लक्षणम् ॥ २७

भाषा—सर्व पीनस औषधी न करनेसे असाध्य होते हैं । इसमें नाकमें कीड़ा पड़ जाय, वे कृमि सफेद चिकने और बारीक होते हैं । कृमिज शिरोरोगोंके सहश लक्षण होंय, कृमिज शिरोरोगके लक्षण शिरोरोगमें कह आये हैं ॥

प्रतिश्याय और विकारोंकोभी करता है उनको कहते हैं ।

बाधिर्यमांद्यमन्त्वं घोरांश्च नयनाभयान् ॥

झोथाश्विसादकासादीचू वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥ २८ ॥

भाषा—पीनस बढ़नेसे बहरा हो जाय, मन्द दीखे, वास आवे नहीं, भयंकर नेत्ररोग होय; सूजन, मंदाग्नि, खांसी इत्यादि विकार होते हैं । सुशुत्तमें नासिकाके ३१ रोग कहे हैं और इस जगह पीनससे लेकर प्रतिश्यायपर्यन्त १५ रोग कहे हैं । बाकी १६ रोगोंको संख्यापूर्तिके बास्ते लिखते हैं ॥

अर्बुदं सप्तधा शोथाश्वत्वारोऽर्शश्वतुर्विधम् ॥

चतुर्विधं रक्तपित्तमुलं ग्राणेऽपि तद्विदुः ॥ २९ ॥

भाषा—सात प्रकारके अर्बुद रोग, चार प्रकारके शोथ (सूजन), चार प्रकारके अर्श और चार प्रकारके रक्तपित्त ये पूर्वोक्त कहे रोग सोलह होते हैं । वात, पित्त, कफ, रुधिर, मांस, भेदकरके छः हुए और सातवां शालाक्यसिद्धांतके मतसे सन्निपातका ऐसे सात प्रकारके अर्बुदरोग हुए । वात, पित्त, कफ, सन्निपातके भेदसे चार प्रकारकी सूजन भई तथा वात, पित्त, कफ सन्निपातके भेदसे चारही प्रकारकी अर्श (बवासीर) और चारही प्रकारका रक्त, रक्तपित्तकी समानतासे एकही जानना । पूर्वोक्त पीनससे लेकर प्रतिश्यायपर्यंत १५ भये और अर्बुदादि १६ हुए ऐसे सब मिलकर नासिकारोग ३१ हुए ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्भितभाधवमावार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां
नासिकारोगनिदान समाप्तम् ।

अथ नेत्ररोगनिदानम् ।

कारण ।

उष्णाभितसस्य जलप्रवेशाद्वेक्षणात्स्वप्नविषयात् ॥

स्वेदाद्रजाधूमनिषेवणात् छद्मिष्वाताद्वमनातियोगात् ॥ १ ॥

द्वाबान्नपानात्तिनिषेवणाच्च विषमूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च ॥
प्रखल्लसंरोक्तनशोककोषाच्छरोऽभिघातादतिमद्यपानात् ॥ २ ॥
तथा ऋद्धूनां च विपर्ययेण क्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च ॥

बाष्पथ्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकारात् जन्यन्ति दोषाः ॥ ३ ॥

भाषा—गरमीसे तस होकर जलमें प्रवेश (ज्ञानादि करना ऐसा करनेसे शीत-
लतामें शरीर व्याप्त होकर शरीरकी गरमी ऊपर चढ़कर नेत्रके तेजको पराभव
करनेसे नेत्ररोग उत्पन्न होता है) दूरकी वस्तुको देखनेसे, दिनमें सोनेसे, रात्रिमें
जागनेसे, नेत्रमें पसीना जानेसे, वाफ लगनेसे, नेत्रोंमें धूल जानेसे, धुआ जानेसे,
बमनके वेगको रोकनेसे, वहुत बमन (रह) होनेसे, पतले अन्नपानके अत्यंत
सेवन करनेसे, विष्णा मूत्र और अधोवायु इनके वेगको धीरे धीरे निप्रह कहिये वेग
धारण करनेसे, निरंतर रुदन करनेसे, शोकसे, मस्तकमें चोट लगनेसे, अति मद्य-
पान करनेसे, उसी प्रकार ऋद्धुके विपर्यय अर्थात् शीत कालमें गरमी और गरमीमें
शीतकाल होनेसे, क्लेश कहिये कामादिक दुःख उससे आभिघात कहिये दुःख
होनेसे, अति मैथुन करनेसे, अशुपानना वेग धारण करने और सूक्ष्म पदार्थका
अबलोकन करनेसे वातादि दोष नेत्रोंमें रोग पैदा करते हैं। सुश्रुतमें नेत्ररोगकी
संप्राप्ति इस प्रकार लिखी है ॥

यथा ।

शिरात्तुसारिभिद्यौर्ध्विगुणौरुद्ध्वमात्रितैः ॥
जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः ॥ ४ ॥

भाषा—कुपित हुए वातादि दोष नेत्रोंकी नसोंमें प्राप्त हो नेत्रोंका भाग व्याप्त
करनेसे उनमें भयंकर रोग उत्पन्न होता है। ये वात, पित्त, कफ, रुधिर, सन्त्रिपात
और आगत्वक इनसे होनेवाले ऐसे नेत्ररोग हैं ॥

नेत्ररोगमें प्रायः अभिष्यंद (नेत्र आना) होता है
इसीसे प्रथम उसको कहते हैं।

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः ॥

प्रायेण जायते धोरः सर्वनेत्रामयाकरः ॥ ५ ॥

भाषा—वात, पित्त, कफ और रुधिर इनसे चार प्रकारका अभिष्यंद रोग होता है,
इसकी पीड़ा नष्ट नहीं होय, तथा यह अभिष्यंदरोग सर्व नेत्ररोगोंका (अभि-
मंथादिक) का उत्पत्तिस्थान जानना सो सुश्रुतमें लिखा है। इस रोगको भाषामें
नेत्र दूखना कहते हैं अथवा आख आई कहते हैं ॥

वाताभिष्यंदके लक्षण ।

निस्तोदनस्तंभनरोमहर्षसंघर्षपारुष्यभिरोऽशितापाः ॥

विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ६ ॥

भाषा—शादीसे नेत्र दूखने आये होंय, उनमें सुई चुभानेकीसी पीडा हो, नेत्रोंका स्तम्भन (ठहर जाना), रोमांच, नेत्रोंमें रेत गिरनेके समान खटकें तथा रुक्ष होंय मस्तकमें पीडा हो, नेत्रोंसे पानी गिरे पान्तु नेत्र सूखनेसे रहे और नेत्रोंसे जो पानी गिरे वह शीतल हो ॥

पित्ताभिष्यंदके लक्षण ।

दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा धूमायनं दाष्पसमुच्छ्रयश्च ॥

उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ७ ॥

भाषा—पित्तसे नेत्र दूखने आनेसे तनमें बहुत दाह हो, नेत्र पक जांय, उनमें शीतल पदार्थ लगानेकी इच्छा हो, नेत्रोंसे धुआं निकले अथवा नेत्रोंमें धुआं जानेकीसी पीडा हो तथा नेत्रोंसे अश्रु (अंसू) बहुत पहुँ और गरम पानी निकले, आंख पीलीसी मालूम पडे ॥

कफजाभिष्यंदके लक्षण ।

उष्णाभिनन्दा गुरुताभिशोथः कृण्डूपदेहावतिशीतता च ॥

स्नावो बहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ८ ॥

भाषा—कफसे नेत्र दूखने आये हों उसको गरम वस्तु नेत्रोंमें लगानेसे आराम मालूम हो अर्थात् नेत्रोंमेंसे कसा मालूम हो तथा नेत्र भारी होंय, सूजन हो, खुजली चले, कीचडसे नेत्र दृष्टि हों और शीतल हों उनमेंसे स्नाव होय सो गाढ़ा और बहुत होय ॥

रक्तजाभिष्यंदके लक्षण ।

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समंतादतिलोहिताश्च ॥

पित्तस्य लिंगानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ९ ॥

भाषा—रक्ताभिष्यंदसे नेत्रोंसे लाल पानी गिरे, नेत्र लाल होंय और नेत्रोंमें ओरपास रेखासी लाल लाल दीखें और जो पित्ताभिष्यंदके लक्षण कहे हैं वे सब लक्षण इसमें होंवें ॥

अभिष्यंदसे अधिमंथकी उत्पत्ति होती है सो कहते हैं ।

वृद्धैर्तेरभिष्यंदैनराणामक्रियावताम् ॥

तावंतस्त्वधिमंथाः स्थुर्नयने तीव्रेदनाः ॥ १० ॥

भाषा—इस अभिष्यंदमें औषधोपचार न करनेसे यह बढ़कर उतनेहीं (चार) अभिष्यंदरोग नेत्रोंमें प्रगट होय इससे नेत्रोंमें तीव्र पीड़ा होय ये अभिमंथके सामान्य लक्षण हैं । वेदनाशब्द इस जगह व्यथामात्रका वाचक है । इससे यह प्रगट हुआ कि वातके अभिष्यंदसे वातिक आभिमंथ प्रगट होय । उसमें तीव्र वातज सर्व निस्तोदादि पीड़ायुक्त होय । इसी प्रकार पित्तकेसे, कफकेमें, रुधिरकेसे पित्तकफरुधिरके अभिमंथ स्वलक्षणकरके जानने ॥

दूसरे सामान्य लक्षण ।

उत्पात्यत इषात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा ॥

शिरसोऽर्घ्ने च तं विद्यादधिभंथं स्वलक्षणैः ॥ ११ ॥

भाषा—आधे शिरमें उपाडनेकीसी पीड़ा होय अथवा तोडनेकी तथा मथने-कीसी पीड़ा हो, व्याधिके प्रभावसे आधे शिरमें पीड़ा हो इसे आधिमंथ कहते हैं । इनके लक्षण वातज अभिष्यंदके समान जानने ॥

दोषमेदसे कालमर्यादाके लक्षण ।

हन्याद्वृष्टं श्लेषिकः सप्तरात्राद्योऽधीमंथो रक्तजः पंचरात्रात् ॥

षड्ग्रात्राद्वा वातिको वै निहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकः सद्य एव १२

भाषा—कफका अधिमंथ सात दिनमें हृषिका नाश करे, रक्तज अधिमंथ पाच दिनमें, वातिक अधिमंथ छः दिनमें और पैत्तिक व्यधिमंथ मिथ्योपचारसे तत्काल (तीन दिनमें) हृषिका नाश करे अथोत् आख जाती रहे इस जगह जो कालकी अवधि कही है सो व्याधिके स्वभावसे तथा लंघन प्रलेपादि क्रियाकरके तथा अंजन-निषेधके निमित्त कहा है ॥

नेत्ररोगके सामान्य लक्षण ।

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागोद्रेकसमन्वितम् ॥

घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः ॥ १३ ॥

भाषा—जिस नेत्ररोगमें पीड़ा विशेष होय, लाली बहुत होकर चमका चले तथा उसमें घर्ष (रेत गिरनेसे जैसी पीड़ा होती है वैसी) की पीड़ा होय, सुई चुमा-नेकीसी पीड़ा होय, शूलसा चले और सावयुक्त होवे, उन नेत्रोंको आमयुन्न जानना । अंजन लगानेस तथा हल्का अन्न खानेसे ये लक्षण कहे हैं ॥

निरामके लक्षण ।

मन्दवेदनता कण्डूः संस्मभाश्रुप्रशान्तता ॥

प्रसन्नवर्णता चाक्षणोः संपकं दोषमादिशेत् ॥ १४ ॥

भाषा—नेत्रोंमें पीड़ा कम होवे, खुजली चले, सूजन मंद होय. अंसुओंका गिरना बन्द होय, नेत्रोंका वर्ण स्वच्छ होय ये दोष पक्ष होनेके लक्षण हैं ॥

शोथसहित नेत्रपाकके लक्षण ।

कण्ठूपदेहाश्रुयुतः पक्षांदुंवरसन्निभः ॥

संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः स शोफजः ॥

शोथहीनानि लिंगानि नेत्रपाके त्वश्चथजे ॥ १६ ॥

भाषा—नेत्रोंमें सूजन आकर पक जाय, उनमें आसूं वहे और पके गूलजरके समान लाल होंय ये लक्षण शोथसहित नेत्रोंगके हैं और शोथ (सूजन)के बिना जो नेत्रपाक होय उसमें शोथको छोड़कर सब लक्षण होंय यह व्याधि त्रिदाषजन्य जाननी ॥

हत्ताधिमंथके लक्षण ।

उपेक्षणादक्षि यदाऽधिमंथा वातात्मकः सादृयति प्रसद्य ॥

रुज्जाभिरुग्माभिरसाध्य एष हत्ताधिमंथः खलु नेत्ररोगः ॥ १६ ॥

भाषा—वातज अधिमंथकी उपेक्षा करनेसे वह नेत्रोंको सुखाय देवे, उस मनुष्यके नेत्रोंमें तोद (झुईके तुमानेकीसी पीड़ा) दाहादि भारी पीड़ा होय, यह हत्तादिमंथनामक नेत्ररोग असाध्य है इसी रोगको विदेह वृष्ट्युत्क्षेपण कहता है अथवा वृष्टिनिर्गम तथा सकलाक्षिग्रोषभी जानना यही सुश्रुतकामी मत है। इस रोगसे नेत्र सूखे कमलके समान हो जाते हैं ॥

वातपर्ययके लक्षण ।

वारं वारं च पर्योनि भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः ॥

रुजश्च विर्विधास्तीव्राः स ज्ञेयो वातपर्ययः ॥ १७ ॥

भाषा—वायु कमसे कभी कभी भ्रुकुटीमें प्राप्त हो और कभी कभी नेत्रोंमें प्राप्त होकर और अनेक प्रकारकी तीव्र पीड़ा करे उसको वातपर्यय कहते हैं ॥

शुष्काभिपाकके लक्षण ।

यत्कूणितं दाहणरुक्षतत्म संदृश्यते चाविलदर्शनं च ॥

सुदाहरणं यत्प्रतिबाधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥ १८ ॥

१ “ अतगतः शिराणा तु यदा तिष्ठति मारुतः । स तदा नयनं प्राप्य शीघ्रं दृष्टिनिरस्यति ॥ तस्यां निरस्यमानायां निर्मयन्नित्र मारुतः । नयनं निर्वमत्याशु गूलतोदादि-मंथनैः ॥ ” इति । २ “ अंतःशिराणा श्वसनः स्थितो दृष्टिं च प्रक्षिपन् । हत्ताधिमंथं जन-यत्तमसाध्यं विदुर्जुधाः ॥ विवेहः—अथवा शोषयेद्धक्षोः क्षीणात्तेजोवक्लादयम् । तत्पत्नाभिव-संशुष्कं स वदेदिति लोचनम् ॥ ” इति ।

माषा-जो नेत्र खुले नहीं अर्थत् संकुचिन हो जांय, जिनकी वाहणी कम्लिन और रूप होय, जिन नेत्रोंमें दाह विशेष होय यथार्य दीखे नहीं, जो खोलनेमें बहुत दुःख होय उन नेत्रोंको शुष्काभिपाक नामक रोगसे पीड़ित जानना । यह रोग रक्तसहित वादीसे होता है सो कर्गलंचार्यने लिखा है ॥

अन्यतोवातके लक्षण ।

यस्यावद्वकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाप्यनिलोऽन्यतो वा ॥

कुर्याद्गुजं वै भुवि लोचने च तमन्यतोवात्मुक्ताद्दर्शने ॥ १९ ॥

माषा-घाटी (घार), कान, मस्तक, ठोड़ी, मन्या नाड़ी इनमें अथवा इकर ठिकाने स्थित जो वायु भुकुर्णी (भोंह) वा नेत्रोंमें तोद भंदादि पीड़ा करे इस रोगको अन्यतोवातरोग कहत हैं अर्थात् अन्य स्थानोंमें स्थित होकर अन्यस्थानोंमें पीड़ा करे इसीसे इसको अन्यतोवातरोग कहते हैं सो विदेहका मतमी है ॥

अम्लाध्युषितके लक्षण ।

इयावं लोहितपर्यन्तं सर्वं चाक्षि प्रपञ्च्यते ॥

सदाहशोथं सास्त्रावमम्लाध्युषितममृतः ॥ २० ॥

माषा-मध्यमें कुछ नीलवर्ण और आस पास लाल भरा हो ऐसे सर्व नेत्र पक जांय और उनमें पीले रंगकी फुंसी होय, उनमें दाह होकर सूजन होय तथा नेत्रोंसे पानी झरे । यह रोग अम्ल (खटाई) आदि खनेसे होता है । सुश्रुतके अन्तसे यह रोग पिच्छे होता है । इसको अम्लाध्युषित कहते हैं ॥

शिरोत्पातके लक्षण ।

अवेदना वापि सवेदना वा यस्याक्षिगच्यो हि भवन्ति ताम्राः ॥

मुद्विरज्यन्ति च याः सदा दृढयाधिः शिरोत्पात इति प्रादिष्टः ॥ २१ ॥

माषा-जिसके नेत्रकी नसें पीड़ासहित अथवा पीड़ादित, तांबेके ससान लाल रंगकी हो जांय और वे बराबर आधकाधिक (जियादासे जियादा) लाल हो जांय इस रोगके शिरोत्पात (सबउवायु) कहत हैं । यह रोग रक्तगन्ध है ॥

शिरोत्पातके लक्षण ।

मोदाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रागस्तु शिराप्रदर्शः ॥

ताम्राक्षमस्त्रं स्ववति प्रगङ्घं तथा न शक्तेत्यभवीक्षितुं च ॥ २२ ॥

१ “ कुर्जितः खरवत्मांसिक्षुच्छेन्मिलाविलक्षणम् । सदाहमसृजो वाताच्छुक्षपाकान्वितं वदेत् ॥ ” इति । २ “ मन्यानामन्तरे वायुसृत्यितः पृष्ठताङ्गेवा । करोति भेदं निस्तोद शंखं चाक्षोः स्वस्तया । तमादृत्यतात रोग वाष्ठिन्दो जनाः ॥ ” इति ।

भाषा—अज्ञानकरके शिरोत्पात (सबल) बायुकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् इलाज न करनेसे शिरोप्रहर्षरोग होता है । उसमें नेत्रोंसे लाल स्वच्छ ऐसे आँख गिरे और उस रोगीको नेत्रोंसे कुछ दिखलाई न देवे ॥

अब नेत्रोंके काले रंगमें होनेवाले रोग कहते हैं ।

स्वरणशुक्लक्षण ।

निमश्चरुपं तु भवेद्धि कृष्णे दूचयेव विच्छं प्रतिभाति यद्दै ॥

स्नावं स्वत्रेदुष्णमतीव यच्च तत्सव्रणं शुक्रमुदाहरंति ॥ २३ ॥

भाषा—नेत्रके काले भागमें शुक्र कहिये फूलसा हो जाय और वह भीतरसे गडासा हो जाय । उसमें सुई चुमानेकीसी पीड़ा होवे तथा नेत्रोंसे अति गरम और बहुतसा स्नाव होवे इस रोगको स्वरणशुक्र कहते हैं । इसमें पीड़ा बहुत होती है । क्षतर्में पीड़ा होना ठीकही है और नेत्रसरीखे सुकुमार ठिकानेपर तो विशेष पीड़ा होती है ऐसा मोजविदेहादिकोंका मत है ॥

त्वरणशुक्रके साध्यासाध्य लक्षण ।

दृष्टेः समीपेन भवेत्तु यत्तु न चादगाढं न च संस्करेद्धि ॥

अवेदनं वा न च युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमायाति कदाचिदेव ॥ २४ ॥

भाषा—जो शुक्र (फूल) दृष्टिके समीप होय नहीं और एक त्वचामें होय, बहुत स्वर्वे (झरे) नहीं, जिसमें पीड़ा न होय और एकही स्थानमें दो बूँद (फूल) न होय ऐसा शुक्र कदाचित् अच्छामी हो जाय परन्तु इनसे विपरीत लक्षण दृष्टिके समीप होना, दूसरी त्वचामें होय, बहुत स्वर्वे, पीड़ा होय, एक स्थानमें दो बूँद होंव यह शुक्र अच्छा नहीं होता है ॥

अव्रणशुक्लक्षण ।

स्यन्दृतिमङ्कुर्ण्णगतं सचोषं शंखेन्दुकुन्दप्रतिभासभास्य ॥

वैहायसाध्यप्रतनु प्रकाशपथावरं राध्यतमं वदन्ति ॥ २५ ॥

भाषा—अभिष्यंदस उत्पन्न होकर नेत्रोंके काले भागमें चोष कहिये सींग तुम-डीकी पीड़ायुक्त, शंख चन्द्र कुन्दपुष्प इनके समान सफेद, आकाशके समान पतला ऐसा जो ब्रणरहित शुक्र होय उसका सुखसाध्य कहते हैं ॥

अव्रणशुक्र अवस्थाविशेषके साध्य होता है उसको कहते हैं ।

गंभीरजातं बहुलं च शुक्रं चिरोत्थितं वापि बदन्ति बृच्छ्रस् ॥ २६ ॥

भाषा—जो शुक्र गंभीर हो अर्थात् दो त्वचाके भीतर हुआ हो तथा मोटा हो उसको कच्छसाध्य कहते हैं ॥

ब्रह्म अवस्थामें दक्षके असाध्य होता है उसको कहते हैं ।

‘विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं शिरासुक्षमद्विष्टुच्च ॥

द्वित्तिगतं लोहितमन्ततश्च शिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ॥२७॥

भाषा—जो शुक्रके बीचका मास गिर जाय, इसीसे शुक्रके स्थानमें गढ़ेला हो जाय अथवा इसके विपरीत कहिये पिशितावृत अर्थात् उसके चारों ओर मांस होय, -चंचल कहिये एक ठिकाने न रहे, शिराओंसे व्यास हो, बारीक हो गया हो, द्विष्टनाश करनेवाला (यह ‘द्विष्टः समीपे न भवेत्’ इसका उल्टा है) दो पटल कहिये परदोंके भीतर भग्ना हो, चारों ओरसे लाल हो और बीचमें सफेद और बहुत दिनका शुक्र हो ऐसेको वैद्य त्याग दे ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

उष्णाश्रुपातः पिडिङ्गा च नेत्रे यस्मिन्भवेन्मुद्दनिभं च शुक्रम् ॥

तदृप्यसाध्यं प्रवदंति केचिदन्यच्च यत्तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥ २८ ॥

भाषा—जिसके नेत्रोंसे गरम अश्रुपात (आसू) गिरकर पिडिका उत्पन्न होवे दो पटलमें शुक्र जानेसे ये लक्षण होते हैं । तथा जिसमें भूंगके बराबर शुक्र होवे ऐसा नेत्रका शुक्र असाध्य है और जो तीतरके पंखके समान कहिये काले रंगका होवे उसको मी असाध्य कोई कोई कहते हैं ॥

अक्षिपाकात्ययके लक्षण ।

श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डलं तु ॥

तमक्षिपाकात्ययमक्षिपाकं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः ॥ २९ ॥

भाषा—नेत्रके कृष्णमागमें दोषोंके योगसे चारों ओर सफेद शुक्र कैल जावे यह सन्निपातजन्य अक्षिपाकात्ययनामक रोग त्याज्य है ऐसा कहा है ॥

अजकाजातके लक्षण ।

अजापुरीषप्रतिमो रुजावान्सलोहितो लोहितपिच्छिलाश्रुः ॥

विगृह्य कृष्णं प्रपयोऽभ्युपैति तंचाजकाजातमिति व्यवस्थेत् ३० ॥

भाषा—काले भागमें बकरीके शुष्क विष्ठके समान दूखनेवाला लाल हो और गाढ़ा कुछ कालेसे बांसू वहें उसको अजकाजात ऐसा जानना चाहिये ॥

१ अजकाजातका भेद विदेह दूसरा कहता है । तथा—“ कृष्णैरक्षणोर्भवेच्छुक्रं छग्नीविद्समप्रभम् । सांद्रं पिच्छिलरक्तान्त्रं विस्थगा त्वनकेति सा ॥ ” इति ।

द्वष्टिके रोग ।

पहले पटलमें दांष जानेसे उसके लक्षण ।

प्रथमे पटले यस्य दोषो हृष्ट व्यवस्थितः ॥

अव्यक्तानि च रूपाणि कदाचिद्धि पश्यति ॥ ३१ ॥

भाषा-प्रथम पटलमें दोष स्थित होनेसे वह पुरुष अव्यक्तरूप (घटपटादि शब्दार्थ) देखे । द्वष्टिका प्रमाण सुश्रुतमें कहा है ॥
यथा ।

मसूरदलमात्रं तु पंचभूतप्रसादाभ्यु ॥

भाषा-आधे मसूरदलके समान पञ्चभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) से ग्राहण है । शंका-इस श्लोकमें तो मसूरदलके समान लिखा है फिर आधे मसूरके समान ऐसा अर्थ आपने कैसे किया ? उत्ता-तुमने कहा सो ठौक है परंतु यह अर्थ हमने निमि अचार्यक मतसे लिखा है । यथा “ पंचभूतात्मिका द्वष्टिर्भूतर्दद्योन्मिता । ” इति । अब कहते हैं कि मंडल चार हैं सो सुश्रुतमें लिखा है ॥
यथा ।

तेजोजलाश्रितं वायो तेष्वन्यात्पिशिता श्रितभ् ॥

मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितं त्वस्थित चापरम् ॥ ३२ ॥

भाषा-प्रथम पटल रुधिर और जल श्रित है, दूसरा पटल पिशित (मांस) के आश्रित है, तीसरा पटल मेदके आश्रित है, चौथा पटल अस्थि (हड्डी) के आश्रित है । सुश्रुतमें नेत्ररोगके भेद बहुत लिखे हैं ॥

द्वितीयपटलस्थित दोषके लक्षण ।

द्वष्टिर्भूतं विह्वलाति द्वितीयं पश्चलं गते ॥ माक्षिकामशकान्के-शान् जालकानि च पश्यति ॥ ३३ ॥ मण्डलानि पताकाश्र
मरीचीन्कुण्डलानि च ॥ परिपुर्वांश्च विविधान्वर्षमध्रं तमांसि
च ॥ ३४ ॥ दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते स समीपतः ॥
समीपस्थानि दूरे च वृष्टेगोचरविश्रमात् ॥ यत्क्वानपि चत्यर्थ
सूचीपाशं न पश्यति ॥ ३५ ॥

भाषा-दूसरे पटलमें दोषके जानेसे द्वष्टिविह्वल हो जाय अर्थात् पदार्थोंके देखनेमें असमर्थ होय उसी प्रकार नेत्रोंके आगे मक्खी, मच्छ, बाल, जाली, मंडल, पताका, किरण, कुण्डल आदि; अनेक प्रकारके बलके समूह, वर्षा, मेष्ठ

(वादल) अंधकार ये नहीं दीखें, ये दृष्टि विह्वल होनेसे होते हैं और विषयभ्रान्तिसे दूरकी वस्तु समीप दीखे और समीपकी दूर दीखे और अनेक यत्न करनेसेभी सुरक्षा छिद्र न दीखे ॥

तृनीयपटलगत दोषके लक्षण ।

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तान्तृतीयं पटलं गते ॥ ३६ ॥ महात्यपि
च रूपाणि च्छादितानीव चांबरैः ॥ कर्णनासाक्षांनानि
विकृतानि च पश्यते ॥ ३७ ॥ यथ दोषं च रज्येत द्वाष्टदौषे
बलीयसी ॥ अङ्गःस्थे तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते ॥ ३८ ॥
पार्श्वस्थिते पुनर्दौषे पर्श्वस्थं नैव पश्यति ॥ समंततः स्थिते
दोषे संकुलानीव पश्यति ॥ ३९ ॥ द्वाष्टमध्यस्थिते दोषं महाद्व-
स्वं च पश्यति ॥ द्विधा स्थिते द्विधा पश्यद्वद्विधा वाऽनव-
स्थिते ॥ दोषे दृष्टि स्थिते तिर्यगेन वै मन्यते द्विधा ॥ ४० ॥

मापा—तीसरे पटलमें दोष जानेसे ऊपरकी वस्तु दीखे नीचेकी वस्तु नहीं दीखे जो वस्तु बड़ी और भव्य होवे वह बख्तमें हीसी दीखे, कान नाक और नेत्र इन करके राहित पुरुषोंको देखे, टेढे बांके दीखे और जिस वातादि दीषका रुधिर मास मेदादिकोंके सहाय होनेसे उनमें जो दोष बलवन् होय उसका जैसा रूप (रंग) होवे उसी प्रकारका दीखे अर्थात् जिस जिस दोषका जैसा वर्ण होय वैसा दीखे, दोष नीचे स्थित होय तो सभी स्थ वस्तु नहीं दीखे और ऊपर दोष स्थित होय तो दूरकी वस्तु न दीखे और दोष पार्श्व (पसवाडे) में स्थित होनेसे पसवाडेकी वस्तु नहीं दीखे और दोष दृष्टिके मध्यम सर्वत्र स्थित होवे तो उस पुरुषको सब चीज मिलीसी दीखे । दृष्टिके मध्यमें दोष जानेसे बड़ी वस्तु छोटी दीखे, दो ठिकाने दोष रहनेसे एक वस्तुकी दो दीखे और दोष अव्यवस्थित अर्थात् एकही स्थानमें स्थित न होनेसे एक वस्तुके दो टुकड़ेसे दिखलाई देवें, दृष्टिगत दोष निरछे स्थित न होनेसे एक वस्तुके दो टुकड़ दिखलाई देवें यह स्वल्पोंका दीखना तीसरे पटलसे ग्राहम होता है । सो विदेहने लिखांभी है ॥

चतुर्थपटलगत तिमिरलक्षण ।

तिमिराख्यः स वै रोगश्चतुर्थपटलं गतः ॥ ४१ ॥ रुणद्वि सर्वतो
द्वृष्टि लिङ्गनाशमतः परम् ॥ अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरुद्धे

- १ “ यथास्व रज्यते दृष्टिदौषेभिरपटलस्थितेः । चतुर्थं पटलं प्राप्य मण्डलं त्यज्यते तु
द्वैः ॥ ” इति ।

**महागदे ॥ ४२ ॥ चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावंतरिक्षे च विद्युतः ॥
निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनि च पश्यति ॥ ४३ ॥**

भाषा—वह तिमिररोग चौथे पटल (परदे) मे पहुँचेनेसे दृष्टिको चारों ओरसे रोक दे इसको कोई आचार्य लिंगनाश कहते हैं और कोई तिमिर कहते हैं । यह अंधकारमय रोग अति बढ़ जाय तब उस मनुष्यको आकाशमें चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, विजुली और निर्मल तेजमी यथार्थ नहीं दीखें, तेजके पुंजसे दीखें लौकिकमें इस रोगको नजला कहते हैं । लिंगनाशकी निरुक्ति—“ लिंगते ज्ञायते इत्यनेनेति, लिंगमिन्द्रियशक्तिस्तस्य नाशो यस्मिन्निति लिंगनाशः ” अर्थात् जितकरके जाने सो कहिये लिंग (इन्द्रिय) उसका नाश जिसमें होय उसको लिंगनाश कहते हैं और इसी रोगको लौकिकमें मोतियाबिंदुभी कहते हैं ॥

तृतीयपटलाश्रित काचदोषकी दूसरी संज्ञा ।

स एव लिंगनाशस्तु नीलिकाकाचसंज्ञितः ॥

भाषा—तीसरे पटलगत झाँच (मोतियाबिंदु) की उपेक्षा करनेसे वही फिर चौथे पटलमें पहुँचता है तब उसे लिंगनाश और नीलिका कहते हैं । यह रोग असाध्य है प्रेसा निमिआचार्य लिखते हैं । परन्तु गदाधर आचार्य कहते हैं कि विशेष काचको नीलिकाकाच कहते हैं ॥

दोषविशेषकरके रूपका दीखना कैसा होता है ।

**तत्र वातेन रूपाणि भ्रमन्तीव हि पश्यति ॥ आविलान्य-
रुणाभानि व्यानिद्वानीव मानवः ॥ ४४ ॥ पित्तेनादित्यखद्यो-
तश्शक्तचापत्तिड्विगान् ॥ नृत्यन्तश्चैव शिखिनः सर्वं नीलं च
पश्यति ॥ ४५ ॥ करेन पश्येद्वपाणि स्त्रिधानि च सितानि
च ॥ सलिलपुषावितानीव परिजाड्यानि मानवः ॥ ४६ ॥ पश्ये-
द्वतेन रक्तानि तमांसि विविधानि च ॥ सूसितान्यथ कृष्णानि
पीतान्यपि च मानवः ॥ ४७ ॥ सञ्चिपातेन चित्राणि विष्णुतानि
च पश्यति ॥ बहुधा च द्विधा वापि सर्वाण्येव समंततः ॥
हीनांगान्यधिकांगानि ज्योतीष्यपि च पश्यति ॥ ४८ ॥**

भाषा—वादीसे रोगीको मलिन, कुछ लाल, तिरछी और भ्रमती ऐसी वस्तु दीखे पित्तसे सूर्य, खद्योत (पटवीजना), इन्द्रधनुष, विजुली इनको और नाचनेवाले उच्यते ॥ ” इति ।

१ “ काच इत्येष विजयो याप्यच्छिपटकस्थितैः । चतुर्थपटलं प्राप्तो लिंगनाशः स

उच्यते ॥ ” इति ।

सोर तथा सर्व वस्तु नीली दीखे । कफसे चिकनी और सफेद, तथा पानीमें डुबोई हुई निकालनेके समान और भारी ऐसा रूप दीखे । रुधिरसे लाल और अनेक श्रकारका अंधकार तथा चिकित्से सफेद, काली और पीली ऐसी वस्तु दीखे । सचिपातसे अनेक ग्रकारके विपरीत अर्थात् एककी अनेक दो अथवा अनेक ग्रकारके रूप दीखें । हीन अंगके अथवा आयिक अंगके रूप रोगी देखे और उयोगिस्वरूपसे सब पदार्थ दीखें ॥

पित्तसे दूमरा परिम्लायसंज्ञक तिमिर होता है ।

पितं कुर्यात्परिम्लायि मूर्च्छितं रक्ततेजसा ॥

पीता दिशस्तथोद्योतान्नवानपि स पश्यति ॥

विकीर्यमाणान्नद्योतैवृक्षांस्तेजोभिरेव च ॥ ५३ ॥

भाषा—रक्तके तेजसे मिश्रित हुए पित्तसे परिम्लायरोग होता है इसके योगसे भीगीको दिशा, आकाश और सूर्य ये पीले दीखें और सर्वत्र सूर्य ऊगेसे दीखें तथा वृक्षमी तेजस्वरूपसे दीखें । परिम्लाय पित्तको नील कहते हैं सो सात्यकिने लिखा है । इस रोगको कोई आचार्य रक्तपित्तसे होता है ऐसा कहते हैं सोभी लिखा है रागमेदसे लिंगनाशको षड्बिधत्व कहते हैं ।

वृक्ष्यामि षट्बिधं रागेऽल्लगनाशमतः परम् ॥ ५० ॥

रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पितात् ॥

कफात्सितः शोणितजः सरक्तो सप्तस्तदोषप्रभवो विचित्रः ॥ ५१ ॥

भाषा—इसके अनन्तर रागमेदसे छः प्रकारका लिंगनाश होता है सो इस प्रकार है । वातजन्य रुग्न लाल होता है । पित्तसे म्लायी, पीला, नीला अथवा नीलाही रंग होता है । कफसे सफेद और रुधिरसे लाल तथा सब दोषोंसे अनेक श्रकारका रंग होता है ॥

वातिकरागके विशेष लक्षण ।

अरुणं मण्डलं हृष्टयां स्थूलकाचारुणप्रभम् ॥

परिम्लायिनि रोग स्यान्म्लायि नीलं च मण्डलम् ॥

दोषक्षयत्कदाचित्स्यात्सृष्टं तत्र प्रदर्शनम् ॥ ५२ ॥

भाषा—परिम्लायि रोगमें दृष्टिके ऊपर मोटा काँचके समान लाल मण्डल होता

१ “ एवमेव तु विज्ञेया नीलाः—पित्तसमुद्भवाः । ” इति । २ “ विद्यधावि परिम्लायि पित्तरक्तेन संगतम् । तेन पीता दिशः पश्येद्यन्तामिव भास्करम् ॥ ” इति ।

है वह म्लान, लाल, पीला अथवा नीला होता है । उसमें दोष घटनेसे कदाचित् देखनेकी शक्ति होय इस जगह दोषशब्द सरके कोई कर्मजा ग्रहण करते हैं ॥
हृष्टप्रण्डलगत रागके लक्षण ।

अरुणं मण्डलं वाताच्चंच ऽ पुरुषं तथा ॥ पित्तान्मण्डलमानीर्लं
कांस्याभं पीतमेव च ॥ ६३ ॥ श्वेष्मणा वहर्लं स्त्रिगं शंखकु-
न्देन्दुपाण्डुरम् ॥ चलत्पन्नपलाशस्थः शुक्रो विन्दुरिवाभसः
॥ ६४ ॥ मृद्यमाने च नयने मण्डलं तद्विसर्पति ॥ प्रशालपद्म-
पत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ॥ ६५ ॥ द्वाष्टरागो भवे चत्रो लिं-
गनाशो त्रिदोषजे ॥ यथ स्वं दोषांतिगानि सर्वेष्येव भवति हि ॥ ६६ ॥

भाषा—वादीसे हृष्टप्रण्डल लाल, चंबल और खरदग होता है । पित्तसे हृष्टप्रण्डल किंचित् नीला तथा कांचके समाँ पीला होवे । कफसे भागी, चिकना, शंख, कुंदफूल और चन्द्र इनके समान सफद होय और उसके नेत्रमें इलोवाला, कमलपत्रके ऊपर पानीकी छूँदके समान, टेढ़ी निछ्ठी, सफद छूँद फैलीसी दिखाई दे । रुधिरसे हृष्टप्रण्डल मंगाके समान अथवा लल कपलके समान लाल होवे और त्रिदोषज लिंगनाशमें तरह तरहके मण्डल होय तथा सर्वदोषोंके लिंग मण्डलमें वातादि दोषोंके न्यारे २ लक्षण होय ॥

आगे कहे गये और पीछे कहे ऐसे हृष्टरोगोंकी संख्या ।

षड्गुणिगनाशाः षड्गुणे च रोगा दृष्टया श्रयाः षट् च षड्गुणे च स्युः ६७

भाषा—पूर्व लिंगनाश रोग छः और आगे विद्यधृत्यादि कहे गये छः ऐसे सब मिलकर बारह हृष्टरोग होते हैं ॥

पित्तविद्यधके लक्षण ।

पित्ते दुष्ट्रेन गतेन वृद्धि पीता भवेत्यस्य नरस्य दृष्टिः ॥

पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत्स वै नरः पित्तविद्यधदृष्टिः ॥ ६८ ॥

भाषा—पित्त दुष्ट होकर बढ़नेसे जिस मनुष्यकी हृष्ट पीली होय तथा उसके योगसे उस मनुष्यको सर्व पदार्थ पीले रंगक दीख उस हृष्टको पित्तविद्यध कहते हैं ॥

दिवांघके लक्षण ।

प्राते तृतीयं पटलं च दोषे दिवा न पश्यन्निशि वीक्षते सः ॥

रात्रौ स शीतातुर्गृहीतदृष्टिः पित्ताल्पभावादपि तानि पश्येत् ६९

भाषा—तीसरे पटलमें दोष (पित्त) जानेसे दिनमें रोगीको नहीं दीखे, रात्रिमें शीतलताके कारण पित्त कम होनेसे दीखे ॥

कफविदग्ध दृष्टिके लक्षण ।

तथा नरः श्वेषमविद्गधदृष्टिस्तान्येव शुच्छानि हि मंथने तु ॥

माषा—इसी प्राप्ति कफविदग्ध पुरुषको सफेद रूप दीखे ॥

रक्तांध (रत्नांध) के लक्षण ।

त्रिषु स्थितो यः पट्टेषु दोषो नकांच्यमापादयति प्रसद्य ॥

दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः पश्यन्तु रूपाणि कफाल्पभावात् दृ० ॥

माषा—जो दोष (कफ) तीनों पटलमें रह वह रक्तांध (रत्नांध) उत्पन्न करे । वह दिवस (दिन) में सूर्यके तेजसे कफ कम होनेसे दिनमें दीखे ॥

धूमदर्शीके लक्षण ।

शोकञ्चरायातशिरोभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः ॥

धूम्रांस्तथा पश्यति सर्वभावान्स धूरदर्शीति नरः प्रदिष्टः ॥ दृ० ॥

माषा—शोक, ऊर, परिश्रम और मस्तकताप इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर जिसकी दृष्टिमें विकार होते । उस मनुष्यको सर्व पदार्थ धूआके रंगके दीखें । इसके रोगको धूपदर्शी वा शोकविदग्धदृष्टि कहते हैं । इसमें दिनका धूंभाके रंगके पदार्थ दीखें । इसका कारण यह है कि रात्रिमें पित्तज्ञा तेज घटनेसे निर्मल दीखे ॥

हस्तदृष्टिके लक्षण ।

यो हस्तजात्यो दिवसेषु कृच्छ्रद्वस्थानि रूपाणि च तेन पश्येत् दृ० ॥

माषा—जो हस्तजात्य पुरुष होता है उसको दिनमें बड़े पदार्थ छोटे दीखें । इसका कारण यह है कि उस समय दृष्टिके मध्यगत दोष होता है । यह रोगभी पित्तज्ञ्य है ॥

नकुलांध्यके लक्षण ।

विद्योतते याय नरस्य दृष्टिरौषाभिपन्ना नकुलस्य यद्रत् ॥

चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत्स वै विकारो नकुलांध्यसंज्ञः दृ० ॥

माषा—जिस पुरुषकी दृष्टि दोषोंसे व्याप्त होकर नौलेजी दृष्टिके तमान चमके वह पुरुष दिनमें अनेक प्रकारके रूप देखे इस विकारको नकुलांध्य कहते हैं ॥

गम्भीरदृष्टिके लक्षण ।

दृष्टिरौषपा श्वसनोपसृष्टा संकोचप्रभ्यंतरतश्च याति ॥

रुजावगाढं च तमाक्षिरोगं गम्भीरकेति प्रवदंति तज्ज्ञाः ॥ दृ० ॥

माषा—जो हषि वायुमे विकृत होकर भीतरको संकुचित होवे तथा उनमें पीड़ा होवे उसको गंभीरहाषि कहते हैं ॥

आगंतुज लिंगनाशके लक्षण ।

बाह्यौ पुनद्वाविह संप्रदित्यौ निमित्ततश्चाप्यनिष्टितश्च ॥

निमित्ततस्तत्र शिरोभितापाञ्जेयस्तभिष्यदनिर्दर्शनः सः ॥६५॥

माषा—अभिघातज लिंगनाश दो प्रकारका है । एक निमित्तजन्य दूसरा अनिमित्तजन्य । तिनमें शिरोभितापकरके (विषवृक्षके फलसे मिले पवनका मस्तकमें स्पर्श होनेसे) होय उसको निमित्तजन्य कहते हैं । इसमें रक्ताभिष्यदंक लक्षण होते हैं ॥

अनिमित्तके लक्षण ।

सुरीर्धिंधर्वमहोरणाणं सन्दर्शनेनापि च भास्करस्य ॥

हन्येत हषिष्ठेत्तुजस्य यस्य स लिंगनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः ॥

तत्राक्षिविस्पृष्टमिवावभाति वैदूर्यवर्णा विमला च हषिः ॥ ६६ ॥

माषा—देव, ऋषि, गंधर्व, महासर्प और सूर्य इनके सन्मुख हषिको लगाकर (टक्टकी लगाकर) देखनेसे जिस मनुष्यकी हषि नष्ट होय उसको अनिमित्तलिंगनाश कहते हैं । इस रोगमें नेत्र स्वच्छ दीखते हैं और हषि वैदूर्यमणिके समान स्वच्छ कहिये इयामवर्ण होय । अब कहते हैं कि देवादिक भैतिक इंद्रियोंको नहीं विगड़े परन्तु उनकी शक्तिका नाश करते हैं । सो चरैकर्म लिखा है ॥

अर्मरोग पांच प्रकारका है ।

प्रस्तार्यमत्तुस्तीर्णं इयावं रक्तनिभं सिते ॥ सश्वेतं मृदु शुक्ला-

र्म शुक्रे तद्वर्द्धते चिरात् ॥ ६७ ॥ पद्माभं मृदुरक्तार्मं यन्मांसं

चीयते सिते ॥ पृथु मृद्वर्धिमांसार्म बहलं च यकृत्विभम् ॥

स्थिरं प्रस्तारि मांसाठ्यं शुष्कं सायवर्मं पंचमम् ॥ ६८ ॥

माषा—नेत्रोंके सफेद भागमें पतला, विस्तीर्ण, इयामवर्ण तथा लाल ऐसा जो मांस बढ़े उसको प्रस्तारि अर्मरोग कहते हैं । शुक्रभागमें सफेद मृदु मांस बहुत दिनमें बढ़े उसको शुक्रार्म कहते हैं । कपलके समान लाल तथा मृदु जो मांस बढ़े उसको रक्तार्म कहते हैं । जो मांस विस्तीर्ण, स्थूल, कलेजाके समान

१ “ देवादियोऽष्टौ हि महाप्रभावा न दुष्यन्तः पुरुषस्य देहम् । विश्वन्त्यद्यात्तरसा-यैव छाया तयोर्दर्पणसूर्यकांतौ । ” इति ।

कुछ काला लाल दीखे उसको अधिमासार्थ कहते हैं । जो कठिन और फैलनेवाला सावरहित मांस बड़े उसको सावर्घर्म कहते हैं । विदेहने कहामी है ॥

शुक्तिरोगके लक्षण ।

इवावाः स्युः पिण्डितनिभास्तु विंदवो ये

शुक्तयाभाः सितिनियताः स शुक्तिसंज्ञः ॥

भाषा-नेत्रके सफेद भागमें इयामवर्ण, मांसतुल्य, सीपीके समान जो विंदु होय उसको शुक्ति कहते हैं ॥

अर्जुनके लक्षण ।

एको यः शशास्त्रधिरोपमश्च विन्दुः शुक्तस्थो भवति तदर्जुनं वदंति द्वृः

भाषा-शुक्तभागमें शशेके रुधिरके समान जो विंदु (द्वंद) नेत्रमें उत्पन्न होय उसको अर्जुन कहते हैं ॥

पिष्टकके लक्षण ।

इलेष्ममारुतकोपेन शुच्छे मांसं समुन्नतम् ॥

पिष्टवत्पिष्टकं विद्धि मलात्कादर्शसन्निभम् ॥ ७० ॥

भाषा-कफवायुके कोपसे शुक्तभागमें पिष्ट (पिसा) सा जो मांस बड़े उसको पिष्टक कहते हैं । वह मलसे भिले अर्श (बवासीर) के समान होता है ॥

जालके लक्षण ।

जालाभः कठिनशिरो महान् सरक्तः

संतानः स्युत इह जालसंज्ञेतस्तु ॥

भाषा-नेत्रके सफेद भागमें शिरा (नस) का समूह जालीके समान होय और वह कठिन तथा रुधिरके समान लाल होवे उसको जाल कहते हैं ॥

शिराज पिटिकाके लक्षण ।

शुक्तस्थः सितपिण्डिकाः शिरावृता यास्ता

ब्रूयादसितसमीपज्ञाः शिराजाः ॥ ७१ ॥

भाषा-नेत्रकं शुक्तभागमें शिरा (नसो) से व्यास ऐसी सफेद कुंसी होय उसको शिराजपिण्डिका कहते हैं । यह कृष्णभागके समीप होती है ॥

बलासके लक्षण ।

कांस्याभोऽनुदुरथ वारिविंदुकल्पो विज्ञेयो नयनसिते बलाससंज्ञः ७२

१ “प्रस्तारिणोमणः स्नाव निरुणद्धि यदानिलः । विना स्नावे विशुष्य यत् सावमेतीली ज्ञाहिदुः ॥ ” इति ।

भाषा—नेत्रके शुक्रमार्गमें कांसेके समान बठिन पानीकी अथवा पानीके बूँदके समान कुछ ऊंची जो गाठ होय उसको बलौस कहते हैं ॥

नेत्रकी संधिके रोग ।

पूयालसके लक्षण ।

पक्षः शोथः संधिजो यः सतोदः स्नवेत्पूर्यं पूति पूयालसाख्यः ॥

भाषा—नेत्रकी संधिमें सूजन होवे और पक्कर फूट जाय, उसमेंमें दुर्गंधि और राध वहे तथा तोद (सुई छेदनेकी ती पीडा) होय उसको पूयालस कहते हैं ॥ उपनाइके लक्षण ।

अंथिनलिपो द्विसंधावपाकी कण्डुपायो नीरुजस्तूपनाइः ॥ ७३ ॥

भाषा—नेत्रकी संधिमें बड़ी गांठ होवे, वह थोड़ी पक्के, उसमें खुजली बहुत हो, दूखे नहीं उसको उपनाइ ऐसा कहते हैं ॥

स्नाव अथवा नेत्रनाडीके लक्षण ।

गत्वा संधीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्नावाङ्कक्षणैः स्वैरुपेतान् ॥

तं हि स्नावं नेत्रनाडीतं चैके यस्या लिंगं कीर्तयिष्ये चतुर्धा ॥ ७४ ॥

भाषा—चातादि दोष अश्रुमार्गसे संधियोंमें प्राप होकर स्वकीय लक्षणयुक्त स्नाव उत्पन्न करे उस स्नावको कोऽनेत्रनाडी कहते हैं । यह रोग चार प्रकारका है, उसके लक्षण कहते हैं । शंका क्योंजी ! चातका स्नाव क्यों नहीं कहा ? उत्तर—चातमें स्नाव नहीं होता है इसीसे विदेहने चारही प्रकारक स्नाव कहे हैं ॥

पाकः संधौ संस्नवेद्यस्तु पूर्यं पूयास्नावोऽसौ गङ्गः सर्वजस्तु ॥

इवेतं साद्रं षिञ्चिक्लं संस्नोऽद्धं श्लेष्मास्नावोऽसौ विकारो मतस्तु ॥ ७५ ॥

रक्तास्नावः शोणितद्या इव रक्तः स्नवं दुष्टं तत्र रक्तं प्रभूतम् ॥

हरिद्राभं पीतमुष्णं जलं वा पित्तास्नावः संस्नवेत्संधिमध्यात् ॥ ७६ ॥

भाषा—पूयास्नाव—नेत्रबीं संधिमें सूजन होकर पक्के तथा उसमेंसे राध वहे । यह रोग सन्निपातात्मक है । श्लेष्मास्नाव जिसमेंसे सकेद गाढ़ी और चिकनी राध वहे । रक्तास्नाव—जिस विकारमें विशेष गरम रुधिर वहे उसको रक्तास्नाव कहते हैं । पित्तास्नाव—जिसकी संधिमें हल्लीने समान पीला गरम जल वहे उसको पित्तास्नाव कहते हैं ॥

१ “मास्तो पित्तिः ष्णम्। शुक्रमागे व्यवस्थितः। नलिं द्वारवोच्छनो मूदुः स कफ-संभवः। बलासप्रथितं नाम तं श फ वृत्तमादिशेत् ॥” इति । २ “सन्निपातात्मकादक्ता-तिपत्तास्नावोऽक्षिं सांघसु । , इति ।

पर्वणी व अल्जीके लक्षण ।

ताम्रातन्वीदाहपाकोपपन्ना ज्ञेया वैद्येः पर्वणी वृत्तशोथा ॥

जाता सन्ध्यौ शुच्छक्षणेऽलजा स्यात् स्मिन्नेन रुधापिता पूर्वलिंगैः ७७

भाषा—नेत्रभी सफेद काली संधियोंमें तांबे के समान छेटी गोल जो फुंसी होवे और वह फुंसी दाह होकर पके उसको पर्वणी कहते हैं । और उसी ठिनाने पूर्वलपसंयुक्त बड़ी फुंसी उठे उसको अलजी कहते हैं । पर्वणी और अलजीमें इतनाही अंतर है कि अलजी बड़ी फुंसी होती है और पर्वणी छोटी फुंसी होती है यह विदेहका मत है ॥

कूमिग्रंथिके लक्षण ।

कूमिग्रंथिवर्तमनः पक्षमणश्च कण्ठूं कुर्याः कूमयः संघिजाताः ॥

नानारूपा वर्त्मशुक्ळां संयौ चरत्यतर्नयनं दूषयंतः ॥ ७८ ॥

भाषा—जिसके नेत्रसे शुक्रमागकी संधियों और पलकोंकी संधियों उत्पन्न झुई बनेक प्रकारकी कूमि, खुजली और गांठ उत्पन्न करे और नेत्रके पलक और सफेदी मागकी संधियों प्राप्त होकर नेत्रके भीतरके भागको दूषिन करे, भीतर फिरे उसको कूमिग्रंथि कहते हैं यह सञ्चिपात त्मक कहते हैं सा विदेहका मत है ॥

वर्त्ममर्पस्थानके रोग ।

उत्मंगपिडिकाके लक्षण ।

अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मतश्च या ॥

सोत्संगोत्संगपिडिका सर्जा स्थूलशुण्डुरा ॥ ७९ ॥

भाषा—नेत्रके ढकनेवाली वाफणी वर्धाद काएर्में फंसी होय और उसका मुख भीतर होय । वह लाल बड़ी तथा खुजलीसंयुक्त होय उसका उत्संगपिडिका कहते हैं । यह सञ्चिपातसे होती है । गदाग्र और विदेहके मतसे पलकोंके कोएर्में बाहरमी यह रोग होता है इस क्षाकम चक्रा लिखा है उसका प्रयाजन यह है कि इस जगहभी सुंगीके अंडेकासा रसस्नाव जानना ॥

कुंभिकाके लक्षण ।

वर्त्माते पिडिका धाता भिद्यते च स्त्रांते च ॥

कुंभीकवजिसदृशाः कुंभिकाः सञ्चिपातजाः ॥ ८० ॥

१ “ पर्वणीपिडिका तत्र नायत व्वरोपमा । शुच्छक्षणात्तद्धो च जनयेद्वोस्तनाकृतिम् ॥
पिडिकामलजीं तां तु विद्धि तांदा श्वसकुठम् ॥ ” इति । २ “ ततः पूयमसूक्ष्मणाः पताति
कूमयस्तथा । लक्षणीविधिवृक्ताः सञ्चिपातसमुत्थिताः । कूमिग्रंथि तु तं विद्याद्विहिना
नेत्रदूषणम् ॥ ” इति । ३ “ वर्मोत्संगाद्वाजनाः सञ्चिपाताद्व्रजायते । अभ्यन्तरमुखी
स्थूला बाह्यतश्च पि दृश्यते ॥ ४ विद्धि । पिडिकाभिश्च चितान्याभिः समंततः । उत्संगपिडिका
नाम कठिना मदवेदना ॥ ” इति ।

माषा—पलकोंके समीप कुंभिकाके बीजके समान होय वह पक्कर फूट जाय और फूटकर वहे उसको कुंभिका कहते हैं। कोई आचार्य कहते हैं कि कच्छदेशमें दाढ़िम (अनार) के बीजके आकार कुंभिका होती है॥

पोथकीके लक्षण ।

स्नाविण्यः कण्डुरा गुव्यो रक्तसर्षपसन्निभाः ॥

रुज्जावंत्यश्च पिण्डिकाः पोथक्य इति कीर्तिताः ॥ ८१ ॥

माषा—जिसके कोएमें लाल सरसों समान रुधिरसाव होय; खुजलीसंयुक्त भारी तथा पीड़िसंयुक्त कुंसी होय उसको पोथकी कहते हैं॥

वर्त्मशर्कराके लक्षण ।

पिण्डिका या खरा स्थूला सूक्ष्माभिरभिसंबृता ॥

वर्त्मस्था शर्करा नाम स होगो वर्त्मदूषकः ॥ ८२ ॥

भाषा—जिसके कोएमें जो पिण्डिका कठिन और बड़ी होकर सर्वत्र छोटी छोटी कुंसियोंसे व्याप्त होय उसको वर्त्मशर्करा कहते हैं। इससे कोए बिगड़ जाते हैं॥

अशोवर्त्मके लक्षण ।

उवर्वारुद्धीजप्रतिमाः पिण्डिका मंदवेदनाः ॥

शुक्ष्माः खराश्च वर्त्मस्थास्तदशोदत्म कीर्त्यते ॥ ८३ ॥

भाषा—ककड़ीके बीजके बराबर, मंद पीड़ा, पृथक् पृथक्, कठिन ऐसी फुंसी कोएमें उठें उसको अशोवर्त्म कहते हैं। निमि विदेहके मतसे यह सन्निपातात्मक है॥

शुष्कार्शके लक्षण ।

दीर्घाकुरः खरः स्तब्धो दारुणोऽम्यन्तरोद्धवः ॥

व्याधिरेषोऽतिविरुद्धातः शुष्काक्षो नाम नामतः ॥ ८४ ॥

भाषा—नेत्रके कोएमें लंबे, खरदरे, कठिन, दुःखदायक ऐसे जो मांसांकुर होय उस व्याधिको शुष्कार्श कहते हैं। यदभी राज्ञिपातज है॥

अंजनाके लक्षण ।

दाहतोदवती ताप्त्रा पिण्डिका वर्त्मसंभवा ॥

मृद्दी मंदरुजा सूक्ष्मा ज्वेया सांजननाभिका ॥ ८५ ॥

भाषा—दाह, तोद (चोटनी,) संयुक्त, लाल, नरम, छोटी, मंद पीड़ा करनेवाली ऐसी फुंसी नेत्रके कोएमें होय उसको अंजना कहते हैं। यहभी सन्निपातज है॥

१ “ विरजा कठिना वर्त्मापक्षान्तर्बह्यतोऽपि वा । पिण्डिका सन्निपतेन तदशोवर्त्म कीर्त्यते ॥ ८५ ॥ इति ।

वहलवत्तमके लक्षण ।

वत्मोपचीयते यस्य पिडिकाभिः समंततः ॥

सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्वहलवत्तमे तत् ॥ ८६ ॥

भाषा—जिसके नेत्रका कोया त्वचाके समान वर्ण तथा कठिन कुंतियोंसे व्याप्त होय उसको वहलवत्तमे रोग कहते हैं । यहमी सन्निपातज है ॥

वर्त्मबंधके लक्षण ।

कण्ठूमताऽल्पतोदेन वर्त्मशोथेन यो नरः ॥

न संप्रच्छादयेदक्षिय यत्रासौ वर्त्मबंधकः ॥ ८७ ॥

भाषा—जिसके नेत्रके कोयोंमें सूजनसे नेत्रके घरावर सूजन आय जावे उससे उस मनुष्यको कुछ नहीं दीखे इस रोगको वर्त्मबंधक कहते हैं । इस सूजनमें खुजली चले तथा तोद (चोटनी) होती है यह रोग त्रिदोषज है ॥

क्षिष्टवत्तमके लक्षण ।

मृद्धल्पवेदनं ताप्रं यद्वत्तमं सममेव च ॥

अक्षर्मात्त्वं भवेद्रक्तं क्षिष्टवत्तमेति तद्विदुः ॥ ८८ ॥

भाषा—नेत्रके नीचे ऊपरके दोनों कोये नरम, अल्प पीड़ा, तांबेके वर्ण होकर अकल्पात् लाल हो जाय तो इस रोगको क्षिष्टवत्तमरोग कहते हैं । यह रोग कफरक्तज है यही मत विदेहका है ॥

वर्त्मकर्दमके लक्षण ।

क्षिष्टं पुनः पित्तयुतं शोणेतं विद्वेद्यदा ॥

तदक्षिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमः ॥ ८९ ॥

भाषा—क्षिष्टवत्तमे फिर पित्तयुक्त रुधिरको दहन करे तब वह दही, दूध, माखनके समान गीला हो जाय, अत एव इस व्याधिको वर्त्मकर्दम कहते हैं । यह पित्ताधिक सन्निपातात्मक है ॥

इयाववत्तमके लक्षण ।

वर्त्म यद्वाद्यतोऽतश्च इयावं शूनं सवेदनम् ॥

तदाहुः इयाववत्तमेति वर्त्मरोगविशारदाः ॥ ९० ॥

भाषा—जिसके नेत्रके कोएके बाहर अथवा भीतर काली सूजन होय तथा पीड़ा

१ “ छेष्मा दुष्टेन रक्तेन क्षिष्टमांसमतः समम् । बंधुनीवनिभं वर्त्म क्षिष्टमांस तदुच्यते ॥ ” इति ।

होय उसको वर्त्मगगके जाननेवाले श्याववर्त्म कहते हैं । यह वाताधिक त्रिदोषजन्य है । विदेहने लिखा भी है ॥

प्रकृत्तिवर्त्मके लक्षण ।

अरुजं वाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि ॥

प्रकृत्तिवर्त्म तद्विद्यात्कृत्तिमत्यर्थमंततः ॥ ९१ ॥

भाषा—जो कोये अल्पपीडा तथा बाहरसे सजा हुआ अत्यंत कीचडसे व्यास हो उसको प्रकृत्तिवर्त्म कहते हैं । यह कफज विकार है ॥

प्रकृत्तिवर्त्मके लक्षण ।

यस्य धौतान्यधौतानि संबद्ध्यंते पुनः पुनः ॥

वर्त्मान्यपरिपक्वानि विद्यादक्षिणवर्त्म तत् ॥ ९२ ॥

भाषा—जिसके नेत्रके पलक धोनेसे अथवा नहीं धोनेसे वारंवार चिपक जावें, कोए पक्कर राधसे नहीं चिकटें तो इस रागको आकृत्तिवर्त्म कहते हैं । इस रोगको विदेह पिण्डायाया कहता है ॥

वातहत्तवर्त्मके लक्षण ।

विमुक्तसंधि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते ॥

एतद्वातहतं वर्त्म जानीयादक्षिचिन्तकः ॥ ९३ ॥

भाषा—जिसके नेत्रके पलक पृथक् पृथक् होंय, तथा जिसके पलक मिचें और खुले नहीं, ऐसे नेत्रनके कोये मिले नहीं उसको वातहतवर्त्म शालाक्यसिद्धांतवाला कहता है ॥

अर्बुदके लक्षण ।

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् ॥

आचक्षतेऽर्बुदमिति सरक्तमविलंवितम् ॥ ९४ ॥

भाषा—नेत्रके कोयेके भीतर गोल, मंदवेदनायुक्त, कुछ लाल, जलझी बढ़नेवाली ऐसी जो गांठ होय, उसको अर्बुद कहते हैं । यहभी सञ्चिपातज है ॥

निमेषके लक्षण ।

निमेषिणीः शिरा वायुः प्रविष्टो वर्त्मसंश्रयः ॥

प्रचालयति वर्त्मानि निमिषं नाम तं विदुः ॥ ९५ ॥

भाषा—वर्त्माश्रित (कोयेमें स्थित) जो वायु, सो निमेष (कहिये पलकके

१ “ हुष्टं श्वेष्मानिलात्पित्तं वर्त्मनोश्चीयते यदा । अग्रिद्वधनिभं श्यावं श्याववर्त्मेति तद्विद्दः ॥ ” है ।

उघाडने मूँदनेवाली नस) में प्रवेश होकर बारंबार पलकोंको चलायमान करे, उसको निमेष (नेत्रका मिचकाना) कहते हैं । विदेहने लिखा है । यह रोगमी सञ्जिपातज है ॥

शोणितार्द्धके लक्षण ।

वर्त्मस्थो यो विवर्द्धेत लोहितो मृदुरंकुरः ॥

तद्रक्तजं शोणितार्शश्चिछन्नं च्छिन्नं प्रवर्द्धते ॥ ९६ ॥

माषा-रुधिरके संबन्धसे नेत्रके कोयेके भीतर मागमें लाल तथा नरम अंकुर बढ़े उसको शोणितार्श कहते हैं । इसको जैसे कोट तैसे तैसे बढ़ता है इस रक्तज व्याधिको विदेह आचार्य असाध्य कहते हैं ॥

लगणके लक्षण ।

अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रंथिर्वर्त्मभवोऽरुजः ॥

सकण्डू पिच्छिलः कोलसंस्थानो लगणस्तु सः ॥ ९७ ॥

माषा-नेत्रके कोयेमें बेरके समान बड़ी, कठिन, खुजलीसंयुक्त, चिकनी गांठ होय, उसको लगण कहते हैं । यह रोग कफजन्य है इसमें पीड़ा और पक्ला नहीं होय ॥

विसर्वर्त्मके लक्षण ।

त्रयो दोषा वहिः शोथं कुर्यश्चिछ्राणि वर्त्मनोः ॥

प्रस्ववत्यंतरुदकं विसर्वद्विसर्वर्त्म तत् ॥ ९८ ॥

माषा-तीनों दोष कुपित होकर नेत्रके कोयोंको सुजाय देवे तथा उनमें छिद्र हो जाय उन कोयोंमेंसे कमलतंतुके समान भीतरसे पानी झरे इस रोगको विसर्वर्त्म कहते हैं ॥

कुंचनके लक्षण ।

वाताद्वा वर्त्मसंकोचं जनयन्ति यदा मलाः ॥

तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुंचनं नाम तद्विदुः ॥ ९९ ॥

माषा-वातादि दोष जब कोयेके मार्गको संकुचित करे तब मनुष्य नेत्रको उघाडकर नहीं देख सके इस रोगको कुंचन कूच्छान्मीलन कहते हैं । यह रोग सुश्रुताचार्यने नहीं लिखा माधवाचार्यनेही लिखा है ॥

१ “ निमेषिणीः शिरा वायुः प्रविश्य व्यवतिष्ठते । अत्यर्थं चलते वर्त्म निमेषः स न सिद्ध्यति ॥ ” इति । २ “ वायुः शोणितमादाय शिराणां प्रमुखे स्थितः । जनयत्वंकुरं तात्र वर्त्मने च्छोणितार्शोऽसाध्यः स्याद्रक्ताक्षाव्यय रक्तजम् ॥ ” इति ।

पक्ष्मकोपके लक्षण ।

प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्याक्षिण विशंति हि ॥

वृष्ट्यंत्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयंति च ॥ १०० ॥

असिते सितभागे च मूलकोशात्पतंत्यपि ॥

पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः ॥ १०१ ॥

भाषा—वादीसे चलायमान कोयेके बाल नेत्रमें प्रवेश करें और वह वारंवार नेत्रको रंगड़े जाय, इसीसे नेत्रके काले वा सफेद भागमें सूजन होय वह केश (बाल) जड़से टूट जावे, अत एव इस व्याधिको पक्ष्मकोप अथवा उपपक्ष्म कहते हैं । यह बड़ा हुःखदायक है ॥

पक्ष्मशातके लक्षण ।

वर्त्म पक्षाशयगतं पित्तं रोमाणि शातयेत् ॥

कृण्डुं दाहं च कुरुते पक्ष्मशातं तमादिशेत् ॥ १०२ ॥

भाषा—पलकोंकी जड़में रहनेवाला पित्त कुपित होकर नेत्रोंके बाल जिनको वरुनी अथवा वाफनी कहते हैं उनका नाश करे तथा नेत्रोंमें खुजली चले, दाह होय उसको पक्ष्मशात कहते हैं । इस रोगकोभी सुश्रुतने संख्या बढ़नेके भयसे नहीं लिखा माधवाचार्यने अन्य ग्रन्थोंके मतसे लिखा है ।

नेत्ररोगोंकी संख्या ।

नव संध्याश्रयास्तेषु वर्त्मजास्त्वेकविशंतिः ॥ शुक्लभागे दृशै-

कश्च चत्वारः कृष्णभागजाः ॥ १ ॥ सर्वाश्रयाः सप्तदृश द्वष्टि-

जा द्वादशैव तु ॥ बाह्यजौ द्वौ समाख्यातौ रोगौ परमदारुणौ ॥

भूय एतान्प्रवक्ष्यामि संख्यास्त्वपचिकित्सितैः ॥ २ ॥

भाषा—संधिमें होनेवाले नेत्ररोग ९ प्रकारके हैं, कोयेमें होनेवाले रोग २१ हैं, नेत्रके संफेद भागमें होनेवाले रोग ११ हैं, बाले भागके ४ हैं, सर्वसर अर्थात् सर्व नेत्रमें होनेवाले रोग १७ हैं, द्वष्टिके रोग १२ हैं और नेत्रके बाहरके रोग २ हैं ये हमने संग्रहीत क्षेत्रमें लिखे हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषादीकायां
नेत्ररोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ शिरोरोगनिदानम् ।

**शिरोरोगाश्च जायंते वातपितकफेण्ड्रिभिः ॥ सन्निपातेन रक्तेन
क्षयेण कूमिभिस्तथा ॥ सूर्यावर्त्तानिंवाताद्विवभेदकशंखकैः ॥ १ ॥**
भाषा—वात, पित्त, कफ इनसे ३, सन्निपातसे १, रुधिरसे १, क्षयसे १,
कूमिसे १, सूर्यावर्त्त १, अनन्तवात १, अर्धवमेदक १ और शंखक १ सब
मिलकर ११ प्रकारके शिरोरोग (मस्तकशूल) होते हैं ॥

वातजके लक्षण ।

यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम् ॥

बन्धोपतापैः प्रशमश्च यत्र शिरोभितापः स समीरणेन ॥ २ ॥

भाषा—जिसका मस्तक अक्समात् दूखे और रात्रिमें विशेष दूखे, बाधनेसे अथवा
सेकनेसे शार्दूली हो उसको वातज शिरोरोग जानना चाहिये ॥

पित्तकके लक्षण ।

यस्योष्णमंगारचितं तथैव भवेच्छिरो दद्याति वाऽक्षे नासा ॥

शीतेन रात्रौ च भवेच्छूमश्च शिरोभितापः स तु पित्तकोपात् ॥ ३ ॥

भाषा—जिसका मस्तक अंगारसे तपायेके समान गरम होवे और नाकमें दाह होय
शीतल पदार्थसे किंवा रात्रिमें शार्दूल हो उस मस्तकशूलको पित्तकोपका जानना ॥

श्लैषिकके लक्षण ।

शिरो भवेद्यस्य कफोपदेशं गुरु प्रतिस्तब्धमथो हिमं च ॥

शूनाक्षिकूटं वदनं च यस्य शिरोभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ४ ॥

भाषा—जिसका मस्तक भीतरसे कफकरके लिप (लिहसासा) होवे, मारी,
बंधासा और शीतल होवे तथा नेत्र सुजाकर मुखको सुजाय देवे इस मस्तकरोगको
कफके कोपकीं जानना चाहिये । “शूनाक्षिकूटं” इस जगह कोहे “शूलाक्षिकूटं”
ऐसा पाठ कहते हैं । इसका अर्थ यह है कि मस्तकमें मंद शूल होता है ॥

सन्निपातिकके लक्षण ।

शिरोभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिंगानि समुद्द्वन्ति ॥ ५ ॥

भाषा—त्रिदोषसे उत्पन्न मस्तकरोगमें तीनों दोषोंके सब लक्षण होते हैं ॥

रक्तजके लक्षण ।

रक्तात्मकः पित्तसमानलिंगः स्पर्शासृत्वं शिरसो भवेच्च ॥

भाषा-रक्तजन्य मस्तकरोगमें पित्तकृत मस्तकरोगके सब लक्षण होते हैं तथा
मस्तकका स्पर्श सहा नहीं जाय यह विशेष होता है ॥
क्षयजके लक्षण ।

असुग्वसाश्लेष्मसमीरणानां शिरोगतानामिह संक्षयेण ॥ ६ ॥
क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुद्ग्रहजोऽतिमात्रम् ॥
संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमोति ॥ ७ ॥

भाषा-मस्तकके रुधिर, वसा, कफ और वायु इनके क्षय होनेसे अत्यंत भयं-
कर मस्तकशूल होता है । छोंक बहुत आवे, मस्तक गरम होवे तथा उसमें स्वेदन,
बमन, धूमपान, नस्र और रुधिर निकलना थे उपद्रव करनेसे यह मस्तकशूल होता
है इसको क्षयज मस्तकशूल कहते हैं ॥

कृमिजके लक्षण ।

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं संभक्ष्यमाणं रुक्षरतीव चांतः ॥

ग्राणाच्च गच्छेद्वाधिरं सपूर्यं शिरोभितापः कृमिभिः स घोरः ॥ ८ ॥

भाषा-जिसके मस्तकमें टांकीके तोडनेकीसी पीडा होवे तथा कृमि भीतरसे
मस्तक पोखाकर पोला बर देवे तथा मस्तक भीतरसे फड़के तथा नाकमें रुधिर
राध और कीडा पडे यह कृमिजरोग बड़ा भयंकर है ॥

सूर्योर्बर्त्तके लक्षण ।

सूर्योदयं या प्रति प्रतिमन्दमन्दमक्षि भुवं रुक्षसमुष्ठेति गाढा ॥

विवर्द्धते चाशुमता सहैव सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च ॥ ९ ॥

शीतेन शांतिं लभते कदाचिदुष्णेन जंतुः सुखमामुयाद्वा ॥

सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्याप्रवृत्तं तमुदाहरन्ति ॥ १० ॥

भाषा-सूर्यके उदय होनेसे धीरे धीरे मस्तक दूखनेका आरंभ होय और जैसे
जैसे सूर्य बढ़े तैसे तैसे वह शूल नेत्र और भुक्टी (भौंह) इनमें दो प्रहर दिन
बढ़तेक बढ़ता जाय और सूर्यके साथ बढ़कर फिर जैसे सूर्य अस्त होय तैसे
तैसे पीडा मन्द होती जाय, शीतल और गरम उपचार करनेसे मनुष्यको सुख होय
इस सञ्चिपातिक विकारको सूर्योर्बर्त्त कहते हैं ॥

अनंतवातके लक्षण ।

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां संपीड्य गाढं सरुजां सुतीव्राम् ॥

कुर्वीति साक्षिभुवि शंखदेशो स्थिरिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥ ११ ॥

गंडस्य पाश्वे च करोति कंपं हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान् ॥

अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥ १२ ॥

माषा—तीनों दोष (बात, पित्त, कफ) दुष्ट होकर मन्यानाडीको पीडित कर नेत्र, भौंह, कनपटी इनमें घोर पीड़ा करें तथा गंडस्थल और पसवाडेमें पीड़ा कंप होय, ठोड़ी जकड़ जाय, नेत्ररोग होय त्रिदोषजन्य इस मस्तकरोगको अनन्तवात कहते हैं । सुश्रुतने अनन्तवातरोगको छेड़कर मस्तकरोग १० ही कहे हैं ॥

अर्धांवमेदक (आधासीसी) के लक्षण ।

रूक्षाशनात्यध्यशनशाप्तातावश्यमेथुनैः ॥ वेगसुंधारणाया-
सव्यायामैः कुपिते ऽनिलः ॥ १३ ॥ केवलः सक्फो वाञ्छै गृ-
हीत्वा शिरसो बली ॥ मन्याभूशश्वकर्णाक्षिललाटेऽर्धेऽतिवेद-
नाम् ॥ १४ ॥ शास्त्रारणिनिभां कुर्यात्तीव्रा ऽ॒र्धांवमेदकः ॥
नयनं वाथवा श्रोत्रमातिवृद्धो विनाशयेत् ॥ १५ ॥

माषा—खरे अन्नसे, अत्यन्त भोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), पूर्वदिशाकी पवन सेवन करनेसे, वर्फसे, मैथुनसे, मलमूत्रादिका वेग धारण करनेमें परिश्रम और दंड कसरत करनेसे इन कारणोंसे कुपित मई जो केवल वायु अथवा कफयुक्त वायु सो आधे मस्तकको ग्रहण कर मन्यानाडी, भृकुटी, कनपटी, कान, नेत्र, ललाट ये सब एक ओरसे आधे दूखे, कुलहाडीसे घाव करनेकीसी अथवा अरणी (आच निकालनेके काष्ठ) के भथनेकीसी पीड़ा होय उसको अर्धांवमेदक (आधासीसी) कहते हैं । यह रोग जब बहुत बढ़ जाता है तब एक ओरके कानसे बहरापन हो जाता है अथवा एक ओरकी आख मारी जाती है । जिस ओरको पीड़ा होय उधर ये उपद्रव होते हैं । सुश्रुतने इस रोगको त्रिदोषज कहा है ॥

शंन्तके लक्षण ।

पित्तरक्तानिला दुष्टाः शंखदशे विमूर्च्छिताः ॥ तीव्रसूणा-
हरागं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १६ ॥ स शिरो विषवद्वेगी
निरुद्ध्याशु गलं तथा ॥ त्रिरात्राज्जीवितं हृन्ति शंखको नाम नाम-
तः ॥ त्रयहाज्जीवति भैषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत् ॥ १७ ॥

माषा—दुष्ट भये जो पित्त, रक्त और वायु सो (इस जगह कफकोमी दुष्ट

^१ “ स्यादुत्तमागं रुजतेऽर्द्धमात्रं सतोदमेदभ्रममोहशूलेः । पक्षादशाहावथ वाप्यक-
स्मास्यादुर्द्धर्मेदो त्रितयाद्वचवस्येत् ॥ ” इति । ।

हुआ जाननीं यह सुश्रुतने कहा है) विशेष बढ़कर नेत्रोंमें भयंकर सूजन उत्पन्न करे और इसमें घोर पीड़ा होय, घोर दाह होय तथा नेत्र लाल बहुत हों और यह विषके समान बढ़कर गलेमें जाकर गलेको गेक दे, इस शंखरोगसे रोगीका तीन दिनमें प्राणोंका नाश होय । इन तीन दिनमें कुशल वैद्यकी औषधी पहुँचनेसे रोगी बचे परंतु प्रथम निश्चयकरके चिकित्सा करना ॥

**इति श्रीपण्डितदत्तरामभाथुरनिर्भत्तमाधवभाष्यार्थबोधिनिर्माथुरीभाष्यादिकार्यां
शिरोरोगनिदानं समाप्तम् ।**

अथ प्रदररोगनिदानम् ।

विरद्धमद्याध्यशनादजीर्णद्वर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च ॥
यानातिशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिधाताच्छ्यनाहिवाच्च च ॥
तं श्वेषमपित्तानिलसन्निपातैश्चतुः प्रकारं प्रदरं वदांति ॥ १ ॥

भाषा—विरुद्ध (क्षीर मस्त्यादि), मद, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), अजीर्ण, गर्भपात, आतिमैथुन, अतिगमन (चलना), अतिशोक, उपवासादिक करके कर्द्दन अर्थात् व्रतके करनेसे स्वरुप जाना, भारके बहनेसे अर्थात् भारी वस्तु उठाकर चलनेसे, काष कहिये लकड़ी आदिके लगनेसे, दिनमें सोनेसे इन कारणोंसे कफ, पित्त, बायु और सन्निपात इन भेदोंसे चार प्रकारका प्रदररोग होता है ॥

प्रदररोगके सामान्यरूप ।

असृग्दरं भवेत्सर्वं सांगमद्वं सवेदनम् ॥ २ ॥

भाषा—सब प्रदरोंमें अंगोंका टूटना तथा हाथपैरोंमें पीड़ा होती है ॥

उपद्रवके लक्षण ।

तस्थातिवृद्धौ दौर्बल्यं श्रमो मूर्च्छा मदस्तृष्णा ॥

दाहः प्रलापः पांडुत्वं तंद्रारोगाश्च वातजाः ॥ ३ ॥

भाषा—जब यह प्रदर बहुत बढ़ जाता है तब दुर्बलता होय, यक जाय, मूर्च्छा आवे, मस्तपन, प्यास, दाह, प्रलाप (बकना), देह पीला हो जाय, तन्द्रा और वातजरोग (आक्षेप अपतान कंपादिक) होते हैं ॥

श्लैष्मिकके लक्षण ।

आमं सपिच्छं प्रतिमं सपाण्डु पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु ॥

माषा-कफसे आम रस (कशा रस) संयुक्त चिक्ला, किंचित् पीला, मांसके चुले जलके समान स्थाव होय इसको श्वेतप्रदर अथवा सोमरोग कहते हैं ॥

पैचिकके लक्षण ।

सपीतनीलासितरक्तमुण्णं पित्तार्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात् ॥ ४ ॥

माषां-किंचित् पीला, नीला, काला, लाल, ऐसा प्रदर वहे उसमें पिच्चके दाह चिमचिमादि पीड़ा होय तथा उसका वेग अत्यन्त होय ॥

वातिकके लक्षण ।

खक्षारुणं फेनिलमलपमल्पं वातार्तिवातात्पिशितोदकाभम् ॥

माषा-वातसे खक्ष, लाल, झागसे युक्त, मांसके और सफेद पानीके समान योड़ा प्रदर वहे । उसमें वादी (आक्षेपकादि) की पीड़ा होती है ॥

त्रिदोषजके लक्षण ।

सक्षोद्रसर्पिंहरितालवर्णं मज्जाप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् ॥

तच्चाप्यसाध्यं प्रवदंति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत भिषक् चिकित्साम् ६ ॥

माषा-जो प्रदर शहद, घृत, हारिताल और मज्जा इनके रंगके समान तथा सुर्दा-कीसी दुर्गंधियुक्त होय उसको त्रिदोषज प्रदर जानना । यह असाध्य है अर्थात् इसकी वैद्य चिकित्सा न करे ॥

विशुद्धार्चवके लक्षण ।

**मासान्निःपिच्छदाहार्तिं पंचरात्रानुबंधि च ॥ नैवातिबहुलं नाल्प-
मार्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ ६ ॥ शशास्त्रक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षा-
रसोपमम् ॥ तदार्तवं प्रशंसन्ति यच्चाप्सु न विरञ्यते ॥ ७ ॥**

माषा-जो आर्तव (रजोदर्शनका रुधिर) चिक्ला नहीं होवे तथा जिसमें दाह शूलादिक न हों तथा जिसका अनुबंध महीनेमें पाच दिवस पर्यन्त होय तथा घृत न निकले और योड़ाभी न होय (मध्यमप्रमाणका होय) उसको शुद्ध आर्तव जानना चाहिये और जो आर्तव शशोके रुधिरके समान होवे अथवा लाखके रंगकासा लाल होवे और जिसका रंग कपड़ा जलमें डालनेसे वर्ण नहीं पलटे । उसको शुद्ध आर्तव कहते हैं ॥

इति श्रीपण्डितदत्तरामभायुरनिर्भतमाध्वार्थबोधिनिमायुरीमाषार्टीकाया

प्रदरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ योनिव्यापत्तिनिदानम् ।

विश्वतिव्यापदो योनैर्निर्दिष्टा रोगसंग्रहे ॥

मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुषेनार्त्तवेन च ॥

जायंते वीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृयक् ॥ १ ॥

भाषा—रोगसंग्रहमें योनिके वीस रोग हैं वह मिथ्या आहार और मिथ्या विहार करके तथा दुष्ट आर्तव (रुधिर) से, वीजदोषके और देवकी इच्छासे स्त्रियोंके होते हैं । उनले लक्षण पृथक पृथक कहता हूँ सुनो ॥

सा फेनिलमुदावृत्ता रजः कृच्छ्रण मुञ्चति ॥ २ ॥ वंध्यां नष्टा-
र्त्वां विद्यांद्वप्लुतां नित्यवेदनाम् ॥ परिप्लुतायां भवति ग्रा-
म्यघर्मेण रुभृशम् ॥ ३ ॥ वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तो-
दपीडिता ॥ चतुर्मुखपि चाद्यासु भवत्यनिलवेदनाः ॥ ४ ॥

भाषा—जिस योनिसे ज्ञाग मिला रुधिर बडे कष्टसे वहे उसको उदावृत्ता योनि कहते हैं और जिसका आर्तव नष्ट हो उसको वंध्या कहते हैं । जिसके निरन्तर पीड़ा हो उसको विप्लुता कहते हैं । जिसके मैथुन करनेमें अत्यन्त पीड़ा होय उसको परिप्लुता कहते हैं । जो योनि कठेर स्तब्ध होकर शूलतोदयुक्त होवे उसको वातला कहते हैं । स्वस्वलक्षणसंयुक्त पित्तला श्वेषमला योनिभी जाननी चाहिये और पहले जो चार योनि (उदावृत्ता, वंध्या, विप्लुता, परिप्लुता) कही है इनमें वातला की पीड़ा होती है और वातलामें पीड़ा विशेष होती है ॥

सदाहं क्षीयते रक्तं यस्याः सा लोहितक्षया ॥ सवातमुद्गमेद्वी-
जं वामिनी रजसान्वितम् ॥ ५ ॥ प्रसांसिनी ब्रंशते तु क्षोभि-
ता दुष्प्रजायिनी ॥ स्थितं स्थितं इन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंक्ष-
यात् ॥ ६ ॥ अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता ॥
चतुर्मुखपि चाद्यासु पित्तलिंगोच्छ्रयो भवेत् ॥ ७ ॥

भाषा—जिस योनिसे दाहयुक्त रुधिर वहे उसको लोहितक्षया कहते हैं । जिसमेंसे रजोयुक्त शुक वायु बगवर वहे उस जो वामनी कहते हैं । जो योनि स्थानभ्रष्ट होय उसको प्रसांसिनी कहते हैं । जिसमें अंग बाहर निकल आवे और यह विमर्दित करनेसे प्रसव योग नहीं होय है । जिस योनिमें रुधिर क्षय होनेसे गर्भ न रहे उसको पुत्रघ्नी कहते हैं । जो योनि अत्यन्त दाह पाक (पकना) और ज्वर इन लक्षणोंकरके संयुक्त होय उसको पित्तला कहते हैं । इनमें पहली चार (रक्तक्षया, वामना, प्रसं-

सिनी और पुत्रधीरी) में पित्तके लक्षण अधिक होते हैं और पित्तलामें पित्तके विशेष लक्षण होते हैं और पित्तलामें जो ज्वर दाह पाक कहे हैं सो उपलक्षणमात्र हैं अर्थात् इसमें नीला, पीला, सफेद आर्तव वहता है यह जानना सो तंत्रान्तरोंमें लिखा है ॥

अत्यानन्दा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति ॥ कर्णिन्यां कर्णि-
कायोनौ श्वेष्मासुभ्यां प्रजायते ॥ ८ ॥ मैथुनाचरणात्पूर्वं
पुरुषादतिरिच्यते ॥ बदुशश्चातिचरणात्योर्बीजं न विदति
॥ ९ ॥ श्वेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूयुक्ताऽतिशीतला ॥
चतुर्ष्वापं चाद्यासु श्वेष्मलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ १० ॥

१ “ व्यापलुबणकद्वम्लक्षाराद्यैः पित्तजा भवेत् । दाहपाकज्वरोषणात्तिनीलपीता सिता भवेत् ” इति ।

यवनशास्त्रानुसारेण स्त्रीरोगाः ।

रिहमगर्भाऽऽशयस्तस्य हारं सुयलमिजाजतः ॥ वारिदस्त्वयाविस्वा हेतवः प्रतिब-
धकाः ॥ १ ॥ तत्रापि द्विविधः सादै माहीति परिकीर्तितः ॥ तत्रयोग प्रतीकार तत्र वैद्यः
समाचरेत् ॥ २ ॥ गर्भे रिहमकोष्ठस्था सौदीं सगमवर्तिनी ॥ गिलजत्सौदत्तदहेन हिर्कित्
चापि भृश भवेत् ॥ ३ ॥ समवैरिवकत्तदेर आमदन् हैन एव च ॥ दाहाविश्व शैत्यत्व
लिंगनिर्देश इत्यसौ ॥ ४ ॥ यकसत्सभवेमुष्मिन्वरांग शोषण रजः ॥ सूक्ष्म प्रवर्तते शीत
पर सौदाप्रकोपजम् ॥ ५ ॥ रत्नवत् प्रभवत्वस्मिन्मैलानरिहम्शुद्धवेत् ॥ हेंइद्रारहेजनामेय
गर्भस्थितिघातका ॥ ६ ॥ कदाचिहैवयोगेन सम्भवेद्वर्मलक्षणम् ॥ मासत्रयोत्तर पातो
रत्नवत्सगतो द्विष्टम् ॥ ७ ॥ मनीते नाशयेनैव विशेषित्यनेन सयुता ॥ सुरतावसरे तत्र
वेदना विन्द्रकुद्धवेत् ॥ ८ ॥ सभोगानन्तर नारी वेगाद्वित्तिष्ठते द्वृतम् ॥ रिहम्मुखान् मनी
यातो वहिरेवभवेत्पुनः ॥ ९ ॥ अकरत् वध्यत्वमाख्यात मिपुनः स्थामिषवरैः ॥ परि-
क्षणीय वद्वीत्या प्रतिक य यथायथम् ॥ १० ॥ मनीहैजक्षिपेदप्सु भिन्नभिन्न च स्तरेत् ॥
दूषित तद्विजानीयात् तहन् शीनन दोषल ॥ ११ ॥ रिहम्हुष्ममयो दोषः प्रदराख्यां दृढा
रुजम् ॥ द्वौषधी कीचवदनी द्विविधां विवधात्ययम् ॥ १२ ॥ कस्याश्विदगनायास्तु प्रसवे
सकट भवेत् ॥ अष्टमान्मासतस्तस्यै क्षीर पातु दिशोद्दिष्क ॥ १३ ॥ परिपाकाऽनन्दूपं तद्र
जसोद्रेककुञ्ज च ॥ ताद्विकृत्या रिह दर्द भवेद्वृणेन वारिणा ॥ १४ ॥ जरायुसुखवधेन
मृतिभूत्य योदरे ॥ जनीनमोत तत्प्रोक्त शाल्य तुल्य विधातकृत् ॥ १५ ॥ अचल जडव
त्तिष्ठेन्नार्थसा क्षयकारकम् ॥ इर्वाजस्य कर्त्तव्यो वानताशर्मणे शोनैः ॥ १६ ॥ हिमहस्तपदं
तस्याः शीतवाधा भवेद्दृशम् ॥ मन्दाग्रिर्वलहानिश्चानुसाहः श्वाससभवः ॥ १७ ॥ व्यथा
मर्भाशयस्था तु मैथुना तिशयात्तथा ॥ भवेद्रजोविकाराच्च प्रसूते प्रागनन्तरम् ॥ १८ ॥
दुष्टोपारोदुखारोस्थाऽमध्यूणं पातयत्यधः ॥ समग्रविग्रहाभावमकालेपि च कल्पयेत् ॥ १९ ॥
द्वहतवा सूतममुख्ये इस्तिस्का आन्तिरेव च ॥ अवलौ द्वौ हृदाऽभावो भवेद्वर्मसमा-
कुतिः ॥ २० ॥ प्रदरोऽन्यः समाख्यातोऽसमयेष्वाक् रूपमासतः ॥ हैज नारीश्वदरक्त-
पीतवर्णं विमिश्रितम् ॥ २१ ॥ अन्तमुखो व्रणो धोरः सता निरहमस्मृतः ॥ कर्कीकारः
कठोरः स्याच्छोथतः स्त्र चिरंतनात् ॥ २२ ॥ अन्येऽप्यत्र विकारास्य तत्क्याखिन्नकोप-
नेत् ॥ तक्षियत् चापि तर्वै विधेया विविवाऽगदैः ॥ २३ ॥ ४ इति । एते श्लोकाः शुद्धा
वा अशुद्धा वैति न शक्ता विवेकतुं वयम् ।

भाषा—जो योनि अतिमैथुनसे भी संतोषको प्राप्त न होते उसको अत्यानन्दा कहते हैं । जिसमें कफरुधिकरके कर्णिका (कपलके भीतर जो होता है ऐसा मांसकन्द) हो उसको कर्णिनी कहते हैं । जो योनि थोड़े मैथुनसे लिंगसे पहले स्वये उसको चरणा कहते हैं अर्थात् जबतक पुरुषको सुख नहीं हो उसके पहलेही द्रवी-भूत होकर वीर्यको ग्रहण नहीं करे । जो योनि वहुवार मैथुन करनेसे पुरुषके पीछे द्रवे (लुटे) उसको अतिचरणा योनि कहते हैं यह कफजनित है ॥

स्नाव और पातके लक्षण ।

आचतुर्थात्ततो मासात्प्रस्ववेद्भर्भिद्रवः ॥

ततः स्थिरशरीरः स्यात्पातः पंचमषष्ठ्योः ॥ ११ ॥

भाषा—पांचवें मासपर्यन्त गर्भ पतली अवस्थामें होनेसे जो स्वये उसे स्नाव कहते हैं और चौथे महीनेसे लेकर पांचवें छठे महीनेपर स्नाव और शरीर बननेपर निकले उसे पात कहते हैं ॥

गर्भ अकालमें कैसे गिरे इस विषयमें निदानपूर्वक दृष्टांत ।

गर्भोऽभिवातविषमाशनपीडनाद्यैः पक्वं दुमादिव फलं पतति क्षणेन ॥

भाषा—अभिवात (चोट), विषमाशन (विषमभोजन), पीडनादिक इन कारणोंसे जैसे पका हुआ फल वृक्षसे चोट लगनेसे क्षणभरमें गिर जाता है इसी प्रकार गर्भ अभिवातादि कारणोंसे गिरता है ॥

प्रसूत होते समय मूढगर्भ कैसे होता है उसके लक्षण ।

सूढः करोति पवनः खलु सूढगर्भं

शूलं च योनिजठरादिषु मूत्रसंगम् ॥ १२ ॥

भाषा—मूढ (कुंठितगति) वायु गर्भको मूढ (टेढ़ा) कर दे और योनि तथा येट इनमें शूल उत्पन्न करे तथा मूत्रोत्संग धीरे धीरे पीडासहित मूत्र निकले ॥

मूढगर्भकी आठ प्रकारकी गति ।

**भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः संख्यामतीत्य वहुधा समु-
पैति योनिम् ॥ द्वारं निरुद्ध्य शिरसा जठरेण कश्चित् कश्चिच्छ-
रीरपरिवर्तितकुञ्जदेहः ॥ १३ ॥** एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयैन
तिर्यगतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः ॥ पार्श्वप्रवृत्तगतिरेति
तथैव कश्चिदित्यष्टधा गतिरियं हि परा त्रुर्धा ॥ १४ ॥ संकी-
लकः प्रतिखुरः परिघोऽथ वीजस्तेषु वृद्धिवाहुचरणैः शिरसा च

योनिम् ॥ संगी च यो भवति कीलकवत्सकीलो हृष्येः खुरैः प्रतिखुरः स हि कायसंगी ॥ १६ ॥ गच्छेदुजद्यशिराः स च वीजकाख्यो योनौ स्थितः सपरिघः परिघेन तुल्यः ॥ १७ ॥

माषा-विगुण वायुसे गर्भ विपरीत (टेढा) होकर अनेक प्रकारकरके योनिक द्वारमें आयकर अड जाता है उसकी आठ प्रकारकी संज्ञा है, सो इस प्रकार है । १ कोई गर्भ मस्तकसे योनिके द्वारको बन्द कर देता है । २ कोई पेटसे योनिके मार्गको रोक देय । ३ कोई शरीरके विपरीतपनेसे योनिके मार्गको रोक देय । ४ कोई एक हाथसे योनिके मार्गको रोक दे । ५ कोई मूढगर्भ दोनों हाथोंको बाहर निकालकर योनिके द्वारको रोक दे । ६ कोई गर्भ तिरछा होकर योनिके मार्गको रोक दे । ७ कोई गर्भ मन्यानाडीके मुडनेसे नीचेको मुख होय वह योनिके द्वारको रोक दे । ८ उसी प्रकार कोई पार्श्वभंग (पसवाडे भंग) होनेसे योनिके द्वारको रोक दे । इस प्रकार मूढगर्भके आठ लक्षण हैं । दूसरी चार प्रकारकी गति और होती है उसको कहते हैं । १ संकील, २ प्रतिखुर, ३ परिघ, ४ बीज । इनमें जो गर्भ हाथ पैर ऊपरको कर मस्तकसे योनिको कीलके समान रोक दे उसको संकीलक कहते हैं । जिस गर्भके हाथ पैर खुरके सदृश बाहर निकल आवें और शरीर योनिके मीतर अटका रहे उसको प्रतिखुर कहते हैं । जो गर्भ दोनों हाथ और मस्तक आगे करके अटक जाय उसको बीजक कहते हैं और परिघ (आगड़) के समान योनिमें गर्भ अटक जाय उसको परिघ कहते हैं ॥

असाध्य मूढगर्भ और गर्भिणीके लक्षण ।

अपविद्वशिरा या तु शीतांगी निरपत्रपा ॥

नीलोद्धतशिरा हन्ति सा गर्भ स च तां तथा ॥ १७ ॥

माषा-जिस गर्भिणीका मस्तक नीचेको हो जाय, देह शीतल होय तथा लज्जा जाती रहे और जिसकी कोखमें हरी नीली शिरा (नस) उठ खड़ी होय तो वह गर्भिणी उस गर्भको और गर्भिणीको अन्योऽन्य नाश करते हैं ॥

मृतगर्भके लक्षण ।

गर्भस्यन्दनमावीनां प्रणाशः इयावपांडुता ॥

भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूनतांतमृते शिशौ ॥ १८ ॥

माषा-गर्भ इले चले नहीं प्रसवबेदना (पीढा) बंद हो जाय, देह हरी नीली होय, जिसकी शासमें दुर्गंध आवे, पेटके भीतर सूजन होय अर्थात् पेटमें आंतोंके फूलनेसे पेट सूज जाय ये गर्भमें बालक मर जाय उसके लक्षण हैं ॥

गर्भमरणहेतु । ।

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः ॥

गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥ १९ ॥

माषा-माताके मानसिक तथा आगंतुक दुःखसे अथवा रोगोंसे गर्भकी पीड़ा होय वह बालक गर्भशयमें मर जाता है ॥

गर्भिणीके लक्षण ।

योनिसंवरणं संगः कुक्षौ मक्कल्लमेव च ॥

हन्त्युः स्त्रियं मूढगर्भो यथोत्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ २० ॥

माषा-वायुके योगसे योनिका संक्षेच, गर्भका अटकना और मक्कल्ल शूल (वातरक्तकी पीड़ा) तथा आक्षेपक, खांसी, श्वासादिक उपद्रव होनेसे वह गर्भिणी बचे नहीं अथवा योनिसंवरणं नाम रोग ग्रन्थान्तरोंमें लिखा है सो होय ॥

इति०श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकार्या
योनिव्यापत्तिनिदानं समाप्तम् ।

अथ सूतिकारोगनिदानम् ।

अंगमदौ ज्वरः कंपः पिपासा गुरुगात्रता ॥

शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥ १ ॥

माषा-अंगोंका टूटना, ज्वर हो, कंप, प्यास, अंगोंका भारी होना, सूजन तथा शूल और अतिसार ये सूतिकारोगके लक्षण होते हैं ॥

प्रसूतिरोगकी उत्पत्ति ।

मिथ्योपचारात्संक्षेशाद्विषमाजीर्णभोजनात् ॥

सूतिकाराथ्य ये रोगा जायन्ते दारुणास्तु ते ॥ २ ॥

माषा-जिस स्त्रीके बालक प्रगट हो चुका हो ऐसी स्त्रीके मिथ्या उपचार करनेसे अथवा संक्षेश काहिये दोषजनक अन्नपानके सेवन करनेसे अथवा संक्षेश

१ वातालान्यव्यपानानि ग्राम्यधमे प्रजागरम् । अत्यर्थं सेवमानाया गर्भिण्यां योनिमार्गजः ॥ मातरिश्चो प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम् । कुरुते रुद्धमार्गत्वात्पुरतर्गतोऽनिलः ॥ निरुद्धद्वाराश्चयद्वारां पीडयन् गर्भसंस्थितम् । निरुद्धवदनोच्छासो गर्भश्वाशु विपथते ॥ त्रिविपत्रशूनसर्वांगः सर्वाण्यव्यवयानि च । उच्छासरुद्धद्वयां नाशयत्याशु गर्भिणीम् ॥ योनिसंवरणं नाम व्याधिमेन प्रचक्षते । अंतकप्रतिमं धोर नारमेत्तं चिकित्सितम् ॥ २ इति ।

काहिये अत्थंत कोपके करनेसे अथवा विषमाशन अजीर्ण भोजनादिक करनेसे प्रसूत-रोग होता है वह धोर दुःखदायक है ॥

लक्षण ।

**ज्वरातिसारशोथाश्च शूलानाहृलक्षयाः ॥ तन्द्रास्त्विप्रतेकाद्याः
कफवातामयोद्भवाः ॥ ३ ॥ कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमा-
सवलाग्नितः ॥ ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगस्ते चाप्युपद्रवाः ॥ ४ ॥**

भाषा-ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, अफरा और बलक्षय तथा कफवातजन्य रोगसे उत्पन्न होनेवाले तन्द्रा, अन्नद्वेष और मुखसे पानीका गिरना इत्यादि विकार, अशक्तता तथा अग्नि मंद होनेसे कृच्छ्रसाध्य होता है । इन सब ज्वरादिकोंको प्रसूतिरोग कहते हैं । इन सबमें एक रोग प्रधान होता है वाकीके उपद्रवरूप कहलाते हैं ॥

इति श्रीष्टिदत्तराममायुरप्रणीतमोघवार्थेवोधिनीमाथुरीभाषादीकाय।
सूतिकारोगनिदान समाप्तम् ।

अथ स्तनरोगनिदानम् ।

**सक्षीरौ वाप्यदुर्घौ वा दोषः प्राप्य स्तनौ स्त्रियः ॥ प्रदूष्य मा-
सस्त्रिरे स्तनरोगाय कल्पते ॥ १ ॥ पंचानामपि तेषां हि रक्तजं
विद्रविधि विना ॥ लक्षणानि समानानि वाह्यविद्रविधिलक्षणैः ॥ २ ॥**

भाषा-वादादि दोष गर्भिणी अथवा प्रसूता स्त्रीके सदुर्घ अथवा अदुर्घ स्तनरोगमें प्राप्त हो मांस रक्तको दुष्ट करके स्तनरोग उत्पन्न करे । स्तनरोग वात, पित्त, कफ, सन्त्रिपात, आग्नंहुकके मेदसे पांच प्रकारके हैं । इन पांचोंके लक्षण रक्तविद्रविधिको त्यागकर वाह्यविद्रविधिके समान होते हैं । सो विद्रविधिनिदान जो पीछे कह आये हैं उससे जान लेना चाहिये ॥

स्तन्य (दूध) रोग ।

गुरुभिर्विविधैरन्नैदुष्टदोषैः प्रदूषितम् ॥

क्षीरं धात्र्या कुमारस्य नानारोगाय कल्पते ॥ ३ ॥

भाषा-गुर्वादिक अनेक प्रकारके अन्नसे दोष (वात, पित्त, कफ) दुष्ट होकर माताके दूधका नाश करे उस दुष्ट दूधसे बालकके नानाप्रकारके रोग होते हैं ॥

वातादिकसे दूषित दूधके लक्षण ।
 कषायं सलिलद्वारा स्तन्यं माहृतदूषितम् ॥
 कदूमललवणं पीतराजिमम्पित्तसंज्ञितम् ॥ ४ ॥
 कफदुषं घनं तोये निमज्जति सुपिच्छिलम् ॥
 द्विलिंगं द्वन्द्वजं विद्यात्सर्वलिंगं त्रिदोषतम् ॥ ५ ॥

भाषा—जो दुग्ध कौला अथवा पानीके ऊपर तैरनेवाला होय उसको वातदूषित जानना तथा जो कहुआ, खट्टा और खारी होकर जिसमें पीली रेखासी प्रतीत होवें उसको पित्तदूषित जानना और जो दूध सघन चिकनासा होवे और पानीमें डालनेसे नीचेको बैठ जाय उसको कफसे दुष्ट जानना चाहिये । दो दोषोंके लक्षण जिसमें मिलें उसे द्वन्द्वज जाने और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलें उसे त्रिदोष-दूषित जाने ॥

शुद्ध दूधके लक्षण ।
 अदुष्टं चाम्बुनि क्षिप्तमेकीभवति पाण्डुरम् ॥
 मधुरं चाविवर्णं च तत्प्रसन्नं विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥

भाषा—जो दूध पानीमें डालनेसे मिल जाय तथा जो दूध कुछ पीला हो और मीठा होकर बेरंगका न हो उसको शुद्ध जानना । अब कहते हैं कि खियोंके दूध दीखे नहीं परंतु होता है क्योंकि बालक पिया करते हैं इस बातको शुकवीर्यका वृद्धान्त देकर कहते हैं ॥

विश्वतेष्वपि गत्रेषु यथा शुक्रं न हृश्यते ॥
 सर्वदेहाश्रितत्वाच्च शुक्रलक्षणमुच्यते ॥ ७ ॥

भाषा—जैसे सर्व पुरुषोंके देहमें व्यासभी है परन्तु देहके काटनेसेभी शुक्र दीखता नहीं है उसी प्रकार सर्व खियोंके देहाश्रित जो दुग्ध है सोभी नहीं दीखता है परन्तु निःसन्देह है सही ॥

तदेव चेष्टयुवतेर्दर्शनात्स्मरणादपि ॥ शब्दसंश्रवणात्स्पृशा-
 त्संदर्शपाच्च प्रवर्तते ॥ ८ ॥ सुप्रसन्नं मनस्त्वेव हृषणे हेतुरुच्यते ॥
 आहाररसयोनित्वादेवं स्तन्यमपि खियाः ॥ ९ ॥ तदेवाऽपत्य-
 संस्पर्शादर्शनात्स्मरणादपि ॥ ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत्संप्रव-
 र्तते ॥ स्तेहो निरन्तरस्तत्र प्रसवे हेतुरुच्यते ॥ १० ॥

१ स्तन्यमुच्यते इति शेषः ।

माषा—वही शुक्र इष्ट (प्रिय) स्त्रीके देखनेसे, उसका स्मरण (याद) करनेसे, उसकी वाणी सुननेसे और स्पर्श (आर्लिंगन) से भया जो आनन्द उस आनन्दसे प्राप्त होता है । इस जगह मनका प्रसन्न होना यही आनन्दका कारण है । शुक्रकी उत्पत्ति आद्वारसे होती है सोई हेतु स्तन्य (दूध) का जानना अर्थात् दूधभी जब स्त्री अपने बालकका स्पर्श करे, देखे, उसका स्मरण करे तथा बालकसे गोदमें लेनेसे दूध शुक्रके सहज बढ़ता है । इस जगहभी दूधके उत्तरनेमें स्फृह (प्यार) ही कारण है यह क्षोक संग्रहीत है ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषार्थिकार्था
स्तनरोगनिदान समाप्तम् ।

अथ बालरोगनिदानम् ।

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्तनः ॥

स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसम्भवः ॥ १ ॥

माषा—दूध पीनेवाला और अन्न खानेवाला और दूध अन्न दोनों खानेवाला ऐसे तीन प्रकारका बालक होता है । यदि वही अन्न दुष्ट न होय तो बालक नीरोग रहे और वे दोनों दुष्ट होय तो अनेक रोग प्रगट होते हैं ॥

वातदूषित दूधके रोग ।

वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पित्तन्वातगदातुरः ॥

क्षामस्वरः कृशांगः स्याद्वच्छिष्ठमूत्रमारुतः ॥ २ ॥

माषा—जो बालक वातदूषित दूधको पीता है उसके वातके रोग होते हैं । उसका शब्द क्षीण हो जाय, शरीर कृश होय और मल मूत्र तथा अधोवायु नहीं उतरे ॥

पित्तदूषित दूधके लक्षण ।

स्त्रियो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवाच् ॥

तृष्णालुरुष्णसर्वांगः पित्तदुष्टं पथः पित्तन् ॥ ३ ॥

माषा—जो बालक पित्तदूषित दूधको पीवे उसके पसीना आवे, मल पतला हो जाय, कामलारोग होय तथा पित्तके औरभी रोग होय, प्यासका लगना सर्वांगमें दृढ़ आदि अनेक रोग होय ॥

कफदूषित दूधके लक्षण ।

कफदुष्टं पिवन् क्षीरं लालालुः श्वेषमरोगवान् ॥

निद्रादीर्तो जडः शूनः शुक्काक्षश्छर्दैनः शिशुः ॥ ४ ॥

भाषा—जो बालक कफदूषित दूधको पीवे उसके मुखसे लार बहुत गिरे तथा छक्से रोग होय, निद्रा आवे, अंग भारी होय, सूजन होय, बमन होय, खुजली चले॥
बालकोंकी अंतर्गत पीड़ा जाननेके उपाय ।

शिशोस्तीत्रामतीत्रां च रोदनाल्क्षयेद्वजम् ॥ स यं स्पृशेद् भृशं
देशं यत्र च स्पर्शनाक्षयः ॥ ५ ॥ तत्र विद्याद्वजं मूर्धि रुजं
चाक्षिनिमीलनात् ॥ कोष्ठे विष्वधवमयुस्तनदंशांत्रकूजनैः ॥ ६ ॥
आध्मानपृष्ठनमनज्जठरोश्चमनैरपि ॥ वस्तौ गुह्ये च विष्मूत्रसंगो
त्रासदिगीक्षणैः ॥ श्रोतांस्यंगानि संधीश्च यद्येद्यत्नान्मुहुमुहुः ॥ ७ ॥

भाषा—बालकोंके रुदन (रोने) से उसके थोड़ी वा बहुत पीड़ा जाननी वह बालक जिस ठिकाने बारंबार हाथ लगावे उस ठिकाने और जिस जगह औरके हाथको न लगाने हे उस ठिकाने उसके पीड़ा जाननी चाहिये । नेत्रोंके मूँदनस अस्तकपीड़ा जाने, मलावरोध, बमन, स्तन (छातीको) चवाना तथा पेटका गूंजना, पेटका फूलना तथा पेटका उछलना इन लक्षणोंसे बालकके पेटमें पीड़ा जाननी । अल्मूत्रके रुक्ने तथा डरनेसे और सर्वत्र देखनेसे इन लक्षणोंसे उसकी वस्ति (मूत्रस्थान) और गुदामें पीड़ा जाननी । वैद्य बालकके ल्लोत (नाक, मुख, कान आदि छिंदों) को हाथ पैरसे आदि ले अवयवों और संघियोंको बारंबार देखे तो शेगका यथार्थ ज्ञान होय ॥

द्वंद्ज और सञ्जिपातज दूषित हुग्धके रोग ।

द्विलिंगं द्वंद्जं विद्यात्सर्वलिंगं त्रिदोषजे ॥

भाषा—पूर्वोक्त जो बातादि दूषित हुग्धके लक्षण कहे हैं उनमें दो दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्वंद्ज रोग जानना और त्रिदोषके लक्षण मिलनेसे सञ्जिपातका रोग जानना । यह श्लोक प्रक्षिप्त है माधवका नहीं है ॥

कुकूणकके लक्षण ।

कुकूणकः क्षीरदोषाच्छशुनामेव वर्त्मनि ॥ जायते तेन नेत्रं च
कण्ठूरं च स्ववेन्मुहुः ॥ ८ ॥ शिशुः कुर्याङ्गलाटाक्षिकूटनासा-
विषषणम् ॥ शक्तो नार्कप्रभा द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलनक्षमः ॥ ९ ॥

भाषा—कुक्षणक यह रोग बालकोंके दूधके दोपसे होता है । इस रोगके होनेसे बालकोंके नेत्र खुजावें और पानी बहे, नेत्रोंमें कीचड़ आनेसे वह ललाट, नेत्र और नाकको रगड़े, धूपके सामने देखा न जाय, नेत्र खुलें नहीं इसको लौकिकर्मे कोथसाव कहते हैं । यह रोग बालकोंकेही होता है सो बाग्भट्टमें लिखा है ॥

पारिगर्भिकके लक्षण ।

मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तनं प्रायः पित्रव्यापि ॥

कासाशिसाद्वमश्चुतद्वाकाश्चार्थास्त्रिभ्रमैः ॥ १० ॥

युज्यते क्षोषवृद्धच्चा च तमाहुः पारिगर्भिकम् ॥

रोगं परिभवार्थ्यं च दद्यात्तत्राग्निदीपनम् ॥ ११ ॥

भाषा—बालकोंके गर्भिणी माताका दूध पीनेसे उसके खांसी, मन्दाशि, बमन, तन्द्रा, अस्त्रि, कृशता और भ्रम ये होय और उसके पेटकी वृद्धि होय इस रोगको वैद्यगण पारिगर्भिक वयवा परिभव कहते हैं । इस रोगमें अग्निदीपनकर्ता जौषधि बालकों देनी चाहिये ॥

तालुकंटकके लक्षण ।

तालुमांसे कफः कुद्धः कुरुते तालुकंटकम् ॥

तेन तालुप्रदेशस्य निष्ठता मूर्ध्नि जायते ॥ १२ ॥

तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शक्तुद्व द्रवम् ॥

तृडक्षिकंठास्यरुज्जा श्रीवाङुर्धरता वामिः ॥ १३ ॥

भाषा—तालुके मांसमें कफ कुपित होकर तालुकंटक रोगको करे । इसके होनेसे तालुके ऊपरका भाग नीचा हो जाय तथा भीतरसे बालकका तालुआ विध जाय इसीसे बालक स्तन (छाती) को नहीं दाढ़े और पीवेभी तो बड़े कषसे पीवे, पतला मल हो जाय, प्यास लगे, नेत्र कंठ मुख इनमें पीड़ा होय, नार गिरी पड़े और जो दूध पीवे उसे डाल दे ॥

महापञ्चविसर्पके लक्षण ।

विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो वस्तिशीर्षजः ॥ १४ ॥

पद्मवर्णो महापञ्चो रोगो दोषत्रयोद्धवः ॥

शंखाभ्यां हृदयं याति हृदयाद्वा गुदं ब्रजेत् ॥ १५ ॥

भाषा—बालकोंके जो मस्तक और वस्ति (मूत्रस्थान)में विसर्प होय वह

१ “ कुकूकः शिशोरेव दीनोत्पत्तिनिमित्तजः । ” इति ।

बालककी प्राणनाशक जाननी । जो विसर्प लाल कमलके पत्रके समान लाल होय है यह महापञ्चरोग त्रिदोषज है । यह कनपटीमें उत्पन्न होकर हृदयपर्यंत जाय है अथवा हृदयमें होकर गुदापर्यंत जाता है ॥

और विकार जो बालकोंके होते हैं उनको कहते हैं ।

क्षुद्ररोगे च कथिते अजगङ्घयहिपूतने ॥

ज्वराद्या व्याधयः सर्वे वृद्धतां ये पुरोरिताः ॥

बालदेहेऽपि ते तद्विक्षेयाः कुशलैः सदा ॥ १६ ॥

भाषा-क्षुद्ररोगनिदानमें जो अजगली और आहिपूतना कही हैं सो और ज्वरादिक सर्व रोग जो बडे मनुष्योंके होते हैं अर्थात् जिन रोगोंको पूर्व कह आये हैं वे सब रोग बालकोंकी देहमेंभी होते हैं । ऐसा कुशल वैद्योंको जानना चाहिये ॥

सामान्य ग्रहजुष्टके लक्षण ।

क्षणादुद्विजते बालः क्षणात्वस्यति रोदिति ॥ १७ ॥ नखै-
दृन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च ॥ ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान्-
खादेत्कूजति जृम्भते ॥ १८ ॥ भ्रुवो क्षिपति दंतोष्ठं फेनं
वमति चासकृत् ॥ क्षामोऽतिनिशि जागर्ति शूनांगो भिन्नवि-
द्रस्वरः ॥ १९ ॥ मांसशोणितगन्धश्च न चाक्षाति यथा
पुरा ॥ सामान्यग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥ २० ॥

भाषा-कभी क्षणभरमें बालक विह्वल हो जाय, कभी क्षणभरमें डरे, रोवे, नख और दांतोंसे अपने शरीर और माताको खसोटे, ऊपरको देखे, दांतोंको चबावे, किलकरी मारे, जंभाई लेय, भ्रुव (भौंह) को तिरछी करे, दांतोंसे होठोंको खाय, वारंवार मुखसे हाग डाले, अत्यन्त क्षीण होय, रात्रमें सोवे नहीं, देहमें सूजन होय, मल पतला होय, स्वर बैठ जाय, उसके देहमें रुधिर मांसकीसी वास आवे, जितना पहले खाता होय उतना नहीं खाय ये सामान्य ग्रहव्याप्त बालकके लक्षण हैं । अब कहते हैं कि स्कंदादिक ग्रह पूजाके अर्थ बालकोंको मारते हैं सो वर्कमें लिखा है ॥

स्कंदग्रहगृहीत बालकके लक्षण ।

एकनेत्रस्य गत्रस्य स्नावः स्थंदुनकं एनम् ॥ अर्ज्जहृष्टच्या निरीक्षेत

१ “ धात्रीमात्रोः प्राक्प्रदिष्टोपचाराच्छौचभ्रशान्मगलाचारहीनान् । क्षिष्टास्तास्तांस्त
 इंतांस्तांदितांश्च पूजाहेतोऽहस्युरेते कुमारान् ॥ ” इति ।

**वक्त्रास्थो रत्नगंधिकः ॥ २१ ॥ दंतान् खादति विस्तस्तः स्तन्यं
नैवाभिनन्दति ॥ स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चातपसेव च ॥ २२ ॥**

माषा—बालकके एक नेत्रसे पानी गिरे और अंगमें स्राव (कहिये पसीना) वहे एक ओरका अंग फड़के, थर थर का पे, वह बालक आधी दृष्टिसे देखे, मुख देढ़ा हो जाय रुधिरकीसी दुर्गंधि आवे व बालक दातोंको चबावे, अंग शिथिल हो जाय, स्तनको नहीं पीवे और थोड़ा रोवे ये स्कन्दग्रह लगे बालकके लक्षण हैं । इस जगह स्कन्दग्रहकरके शिवजीके प्रगट करे जो ग्रह हैं इनमेंसे श्रीशिवपुत्र स्वामिकार्तिकका ग्रहण न करना चाहिये ॥

स्कन्दापस्मारके लक्षण ।

नष्टुष्टंज्ञो वमेत्फेनं संज्ञावानतिरोदिति ॥

पूयशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥ २३ ॥

माषा—बालक बेसुध होय, मुखसे झाग डाले, जब होस हो तब रोवे, उसकी दृष्टिमें रुधिरकीसी दुर्गंधि आवे इन लक्षणोंकरके स्कन्दापस्मारके लक्षण जानने ॥

शकुनिग्रहके लक्षण ।

**स्पस्तांगो भयचकितो विहंगगन्धिः संस्नावव्रणपरि-
पीडितः समन्तात् ॥ स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदा-
इपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥ २४ ॥**

माषा—शकुनीग्रहसे पीडित बालकके अंग शिथिल होय, भयसे चकित होय, उसके अंगमें पक्षीके अंगके समान वास आवे, घाव होकर उसमेंसे लस वहे, सर्व अंगोंमें फोड़ा उत्पन्न होय और पक्के तथा दाह होय ॥

रेवतीग्रहका लक्षण ।

ब्रणः स्फोटैश्चितं गात्रं पंकगंधमसृक् स्रवेत् ॥

भिन्नवर्चो ज्वरो दाही रेवतीग्रहलक्षणम् ॥ २५ ॥

माषा—रेवतीग्रहसे पीडित बालकके अंगमें घाव और फोड़ा होय, उनमेंसे रुधिर वहे, उसमें कीचकीसी वास आवे, दस्त होय, ज्वर होय, अंगमें दाह होय ॥

पूतनाग्रहके लक्षण ।

आतिसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्यकप्रेक्षणरोदनम् ॥

१ तदुक्त हिरण्याक्षेण—“ संस्नावो दाहपाकादैवितस्फोटैर्भयान्तिः । संस्नावो विस्त-
गंधः स्याच्छकुन्या पीडितः शिशुः ॥ ” इति ।

नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नः स्त्रस्तः पूतनया शिशुः ॥ २६ ॥

भाषा—पूतनाग्रहकी पीड़ासे बालकको दस्त, ज्वर, प्यास होय, टेढ़ी इष्टिसे देखे, रोवे, सोवे नहीं, व्याकुल होय, शिथिल हो जाय ये लक्षण होते हैं ॥

अंधपूतनाग्रहके लक्षण ।

छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा वसागंधोऽतिरोदनम् ॥

स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च अंधपूतनया भवेत् ॥ २७ ॥

भाषा—अंधपूतनाग्रहकी पीड़ासे बालकके वमन होय, खांसी, ज्वर, प्यास, चर्बीकीसी दुर्गंधि, बहुत रोना, स्तन्य (छाती) को मुखसे दाढ़े नहीं, अतिसार ये लक्षण होते हैं ॥

शीतपूतनाग्रहके लक्षण ।

वेषते क्षासते क्षीणो नेत्ररोगो विगंधिता ॥

छर्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया शिशुः ॥ २८ ॥

भाषा—शीतपूतना ग्रहकी पीड़ासे बालकके मुखकी कांति क्षीण हो जाय, उसके नेत्ररोग होय, देहमें दुर्गंधि आवे, वमन होय और दस्त होय ॥

मुखमंडिकाग्रहके लक्षण ।

प्रसन्नवर्णवदनः शिराभिरिव संवृतः ॥

मूत्रगन्धिश्च बह्वाशी मुखमण्डकया भवेत् ॥ २९ ॥

भाषा—मुखमंडिका ग्रहकी पीड़ासे बालकके मुखकी कांति सुंदर होय और देहकी कांति श्रेष्ठ होय, शिराओंमें बंधा देह हो जाय, उसके देहमें मूत्रकीसी दुर्गंधि आवे, यह बालक बहुत भक्षण करे ॥

नैगमेयग्रहके लक्षण ।

छर्दिस्यन्दनकंठास्यशोषमूच्छाविगन्धिताः ॥

ऊर्ध्वं पश्येदशेदन्तान्नैगमेयग्रहं वदेत् ॥ ३० ॥

भाषा—वमन, कंप, कंठ मुखका सूखना, मूच्छा, दुर्गंधि, ऊपरको देखे, दाँतोंको चबावे इन लक्षणोंसे नैगमेयग्रहकी बाधा जाननी ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनीर्भितमाघवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकार्या
बालरोगनिदानं संमाप्तम् ।

अथ विषरोगनिदानम् ।

स्थावरं जंगमं चैव द्विविधं विषमुच्यते ॥

मूलात्मकं तदाद्यं स्थात्मपरं सर्पादिसम्भवम् ॥ १ ॥

भाषा—विष दो प्रकारका है स्थावर और जंगम तथा मूलात्मक स्थावर और सर्पदिकोंसे जो प्रगट हो वह जंगम विष कहाता है ॥

दृशाधिष्ठानमाद्यं तु द्वितीयं षोडशाश्रयम् ॥

भाषा—आद्य अर्थात् स्थावर विष दश जगह रहता है और जंगम विष सोलह जगह रहता है ॥

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वकक्षीरं सारं एव च ॥

निर्यासा धातवश्वेव कन्दश्व दृशमः स्मृतः ॥ २ ॥

भाषा—जड़, पात, फल, फूल, छाल, दूध, रस, गोंद, धातु और कंद ये दश स्थावर विष हैं । तदां मूलविष क्लीतक, अश्वमार, गुंज, सुगंध, गर्गर, कक्रघाट, विद्युच्छखा और विजया इस प्रकारसे आठ प्रकारका है । विषपत्रिका, लम्बावर, दारुक, करम्भ, महाकरंभ ये पांच पत्रविष हैं । कुमुदती, वेणुका, करम्भ, महाकरम्भ, कर्कटक, रेणुक, सद्योतक, चमरी, इभगन्धा, सर्पघाति, नन्दन, सारपाकिनी ये चारह फलविष हैं । पत्र, कदंब, वल्लिज, करम्भ, महाकरम्भ ये पांच पुष्पविष हैं । अंत्रपाचक, कर्तीरीय, सौरीय, कक्रघाट, करम्भ, नन्दन, वराटक ये सात त्वचा-रसके (गोंद) के विष हैं । कुमुदद्वी, स्तुही, जालक्षीरी ये तीन दूधके विष हैं । फेणाइमभस्म और हरिताल ये धातुविष हैं । कालकूट, वत्सनाभ, सर्षपक, पालक, कर्दमक, वैराटक, मुत्तक, शृंगीविष, प्रपोडीरीक, मूलक, हलाहल, गहाविष, कर्कट ये तेरह कंदविष हैं । सब मिलकर स्थावर विष पचपन हैं ॥

विष 'थान ।

जंगमस्य विषस्योक्तान्यधिष्ठानानि षोडशा ॥

समासेन मया यानि विस्तरस्तेषु वक्ष्यते ॥ ३ ॥

भाषा—जंगम विषके स्थान सोलह हैं, सो मैंने संक्षेपसे कहे हैं । अब विस्तारसे कहता हूँ । दृष्टि, श्वास, दांत, नख, मुत्र, विष्ठा, शुक्र, लार, आर्तव, मुख, संदंश, विशर्द्धित (पादना), गुदा, हड्डी, पिच्छ, शूकशव ये सोलह स्थान हैं ॥

तदां दृष्टि, निश्चास, विष दिव्य हैं, सो दिव्य सर्पादिकका जानना; भीम विष्ठू

देख्येष है । विलाव, कुत्ता, बन्दर, मगर, मेंडक, मच्छी, जलगोधिका, जंबूक (झीप), पंचालक, छिपकरी, मोहरकी मकसी, पीली मकसी तत्त्वया इनसे आदि क्षेये जानवर दंष्ट्रा और नख विषवाले हैं । चिपिट, पिच्चटक, कषाय, वासिक, स्लर्फपथासिक, तोटवर्च, कोटकौटिल्यक इन जानवरोंके विषा और मूत्रमें विष होता है । इनकी लोकप्रसिद्धि नामसे जानना । मूंसेके शुक्रमें विष होता है । मकरी आदि ज्ञेय कीट हैं सो लूता कहाते हैं; इनके लार, मूत्र, विषा, मुख, नख, शुक्र, अर्थव इनमें विष होता है । विच्छू, विश्वभर, तत्त्वया, राजिलमछली, चिर्टिंग, स्लक्ष्मदका विच्छू इनकी पूँछमें जो कांटा होता है उसमें विष होता है । वित्रशिर, क्षुरावकुर्दि, शतदारुक आदि मेडक, शारिकामुख, मुखदंशक इनके मूत्रपुरीषमें विष जानना । मकसी, कणव, जोक इनके मुख और काटनेमें विष है । विषसे मरे हुएकी हड्डी, सर्पकी हड्डी, विषियल मछली इनकी हड्डीमें विष है । शकुलीनामकी मछली, रक्तराजी और वरकी नामकी मछली इनके पित्तमें विष है । सूक्ष्मतुंड, चैटी, बहर, कनखजूरा, शूक, भौंरा, तोता इनके तुण्ड अर्थात् मुखके अग्रभागमें विष है । कीट और सर्प इनके मरे देहमें विष है । और जिनकी गणना यहां नहीं की उनको मुखसंदंशवालोंमें जानना ये जंगम विष हैं ॥

जंगमविषके सामान्य लक्षण ।

निद्रा तन्द्रा कुमं दाहमपाकं रोमहर्षणम् ॥

शोथं चैवातिसारं च कुरुते जंगमं विषम् ॥ ४ ॥

माषा-निद्रा, तन्द्रा, कुम, दाह, अन्नका न पचना, रोमांच, शोथ और अतिस्तर ये लक्षण जंगमविषके हैं ॥

स्थावरविषके सामान्य लक्षण ।

स्थावरं तु ज्वरं हिक्कां दन्तहर्षे गलग्रहम् ॥

फेनच्छर्यरुचिशासं शूच्छीं च कुरुते भृशम् ॥ ५ ॥

माषा-स्थावरविषसे ज्वर, हिक्की, दांतेंका धिसना, गलेका धिरना, झागसे मिली रह, अरुचि, श्वास और अत्यंत मूर्छा ये लक्षण होते हैं ॥

राजा किंवा कोई दूसरा बड़ा सेठ साहूकर जिसको समीपके रहने-

वाले किसी नोकर चाकरने विष मिलाकर अन्न दिया हो उस

विष देनेवालेके ढूँढनेके निमित्त कुछ लक्षण कहता हूँ ।

**इंगितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखैकृतैः ॥ जानीयाद्विषदा-
तारमेतौल्गेश्च बुद्धिमान् ॥ ६ ॥ न हदात्युत्तरं पृष्ठो विवक्षु-**

मौहमेति च ॥ अपार्थे बहुसंकीर्णे भाषते चापि मृढवत् ॥ ७ ॥
हस्त्यक्षमात्स्फोटयत्यंगुलीं विलिखेन्महीम् ॥ वेपथुश्वास्य
भवति त्रस्तश्वान्योऽन्यमीक्षते ॥ ८ ॥ विवर्णवक्ता क्षामश्वनस्वैः
किंचिच्छिनत्यषि ॥ आलभेतासनं दीनः करणे च शिरोरु-
द्धम् ॥ वर्तते विपरीतं च विषदाता विचेतनः ॥ ९ ॥

माषा—मनुष्यके अभिप्राय जाननेवाले वैद्यको बोलने चालने तथा मुखकी चेष्टा इनसे तथा आगे जो कहते हैं इन लक्षणोंसे विषके देनेवाले मनुष्यको दुष्टिमान् जान ले । सो इस प्रकार जो मनुष्य विष दे उससे कोई बात पूछे तो वह उत्तर न दे और जब बोले तब मोहको प्राप्त हो अर्थात् घबडा जावे । तथा कदाचित् बोलेभी तो निरर्थक और बहुत अस्पष्ट बोले तथा अक्षमात् हैंसे, हाथकी उँगली चटकावे, पृथक्कीमें रेखा काढे, भयसे कापे और डरकर चारों ओर बारंबार सबकी तरफ देखे, मुखकी चेष्टा जाती रहे और काला हो जाय, नर्खोंसे कुछ तिनका आदि तोड़े, गरीबके समान एकही स्थानपर बैठा रहे, माथेपर हाथ फेरे, बारंबार इधर उधर ढौलकर बैठ जाय, उसका चित्त ठिकाने न रहे तथा उसका चित्त भागनेकी चाहे ये लक्षण विष देनेवालेके जानने और येही लक्षण घोर अपराध करनेवालेके राजा जान लेवे ॥

मूलादिविषोंके लक्षण ।

उद्देष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च ॥ जम्भणं वेपनं श्वासो
मोहः पत्रविषेण तु ॥ १० ॥ शुखशोथः फलविषैर्द्वाहोऽन्नद्वेष
एव च ॥ भवत्युपविषैश्चर्द्दिश्वामानं श्वास एव च ॥ ११ ॥
त्वक्सारानिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवन्ति द्वि ॥ आस्यदौष्यपारु-
ष्यशिरोरुक्कफसंस्ववाः ॥ १२ ॥ फेनागमः क्षीरविषैर्विङ्गभे-
दो शुशजिह्वता ॥ हृत्पीडनं धात्रुविषैर्मूर्च्छा दाहश्व तालुनि ॥
प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् ॥ १३ ॥

मांपा—मूलविषसे रोगीके हाथ पैरोंमें पीडा और मोह होवे । पत्रविषसे जंभाई, कंप, श्वास और मोह होवे । फलविषसे मुखपर सूजन, दाह, अज्ञाने अलंचि होवे । पुष्पविषसे वमन, अफरा और श्वास होवे । छाल, रस, उद्द इनसे मुखमें दुर्गंधि, अंगमें खरदरापन, मस्तकशूल और मुखके मार्ग कफ गिरे । दुर्गविषसे मुखमें क्षाग जावे, दस्त होय और जीम जकड़ जावे । धात्रुविषसे हृदयमें पीडा होय,

मूर्च्छा आवे, तालुएमें दाह होय ये सब विष बहुधाकरके कालान्तरमें मारनेवाले होते हैं ॥

विषलिस शस्त्रहतके लक्षण ।

सद्यःक्षतं पच्यते तस्य जन्तोः स्वपेद्रक्तं पच्यते चाप्यभीक्षणम् ॥

कूर्णीभूतं क्षिन्मत्यर्थपूति क्षतान्मांसं शीर्यते यस्य चापि ॥ १४ ॥

तृष्णा मूर्च्छा ज्वरदाहौ च यस्य दिग्घाहतं मनुजं तं व्यवस्थेत् ॥

लिङ्गान्येतान्येव कुर्यादमित्रैर्वर्णे विषं यस्य दत्तं प्रमादात् ॥ १५ ॥

भाषा—जिस पुरुषकी जखम तत्काल पक जावे तथा उसमें रुधिर बहे, और बारंबार पके तथा उस जखममेंसे काला सड़ा दुर्गंधियुक्त ऐसा भांस निकले तथा जिसमें प्यास, मूर्च्छा, ज्वर, दाह ये होवें उसके विषमें उड़े वा लिस शस्त्रकी जखम लगी जानना चाहिये । शत्रुओंने कपटकरके जिसके व्रणमें विष डाल दिया हो उसके येही लक्षण हैं ॥

स्थावरविषको कहकर जंगममें सर्पविष यह अतिरीक्षण है इसीसे प्रथम सपोंकी जाति कहते हैं ।

वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलिशजिलाः ॥

यथाक्रमं समाख्याता व्यन्तरा द्वन्द्वरूपिणः ॥ १६ ॥

भाषा—भोगी, मंडली और राजिल ये सर्प अनुक्रमसे बात, पित्त, कफप्रकृति हैं और जो द्वितीय अर्थात् जो दो जातिके सर्प और सर्पिणीसे प्रगट हैं वे द्वितीय कहते हैं । उनकी प्रकृति द्वंद्ज है अर्थात् जिस प्रकारके सर्प- सर्पिणीसे प्रगट उसी उसी प्रकारकी प्रकृति उनकी होती है । जिनके मस्तकपर चक्र, हल, छत्र, स्वस्तिक (सतिया), अंकुश इनका चिह्न हो और जिनका फण करछीके समान चौड़ा हो और जलदी चलनेवाले हो उनको भोगी अथवा राजिल सर्प कहते हैं और जो अनेक प्रकारके चक्रोंसे चित्रविचित्र हों तथा मोटे और मंद चलनेवाले तथा अग्रि और सूर्यकासा प्रकाश जिनका उनको मंडली सर्प कहते हैं । और जो चिकने और अनेक प्रकारकी रेखा उनके ऊपर नीचे विद्यमान हों उनको राजिल सर्प कहते हैं । इन सपोंकी चार जाती हैं । तिनमें मोती, चांदी, छुवर्णीकीसी प्रभा होवे और जो नम्र तथा जिनकी देहमें सुगंध आवे वे ब्राह्मणजातिके सर्प हैं । और जिनका स्वच्छवर्ण, क्रोधी और जिनके मस्तकपर सूर्यचन्द्रके समान तथा छत्र तथा कमलका चिह्न होवे वे क्षत्री जातिके सर्प हैं । काले और हीराके समान तथा लोहेके वर्ण हों और जिनकी धुआं और क्षूतरके समान प्रभा हो-

वे वैश्यजातिके सर्प हैं । जिनकी देह मैसा चीतेके समान हो और जिनकी त्वचा कठोर हो तथा अनेक प्रकारका जिनका वर्ण हो वे शूद्रजातिके सर्प हैं । रात्रिके पिछले प्रहरमें राजिलजातिके सर्प विचरते हैं और रात्रिके पहले तीन पहरोंमें मंडली जातिके सर्प विचरते हैं और दिनमें दर्वीकर जातिके सर्प तरुण हैं और मंडली जातिके वृद्ध और राजिल जातिके मध्यम अवस्थाके हैं । इतनी जातिके सर्प निर्विष जानने । जो नौलेसे हत हैं और चालक तथा जलसे ताडित हैं और कृष्ण वृद्ध तथा जिनकी कांचली छूट रही हो और डर रहे हों ऐसे सर्प विषराहित होते हैं ॥

अब सपोंके भेद कहते हैं ।

तहाँ प्रथम दर्वीकर सपोंके भेद कहते हैं । कृष्णसर्प, महाकृष्ण, कृष्णोदर, श्वेत, कपोल, बलाहक, महासर्प, शंखपाल, लोहिताक्ष, गवेशुक, परिसर्प, खंडफण, ककुदपञ्च, महापञ्च, दर्भपुष्प, दधिमुख, पुंडरीक, भृकुटीमुख, विष्किर, पुष्पामिकीर्ण गिरिसर्प, ऋतुसर्प, श्वेतोदर, महागिरा, अलगर्द, आशीविष ये दर्वीकर जातिके सर्प हैं । आदर्शमंडल, श्वेतमंडल, रक्तमंडल, चित्रमंडल, पृष्ठत, रोधपुष्प, मिलिंदक, गोनस, वृद्धगोसन, पन्स, महापनस, वेणुपत्रक, शिशुक, वभू, वधाय, कल्युष, पारावत, द्वस्तामरण, चित्रक, एणीपद ये मंडलीजातिके सर्प हैं । पुंडरीक, राजिचित्र, अंगुलराजि, विदुराजि, कर्दमक, त्रुणशोपक, संसर्पक, श्वेतहनु, दर्भपुष्प, चक्रक, गोधूमक, किक्सादय राजिलजातिके सर्प हैं । गुलगोली, शूकपत्र, अजगर, दिव्यक, वर्षाहिक, पुष्पशकली, ज्योतिरिष, क्षीरक, पुष्पक, अहिपतानक अंधाहिक, गौराहिक, वृक्षेशय इतने सर्प हीनविष जानने । अब कहते हैं कि द्वयंतर (वर्ण-संकर) सर्पमी तीन प्रकारके हैं । माकुली, पोटगल, स्निग्धराजि । तहाँ कृष्णसर्प-जातिकी सर्पिणी और गोनसजातिके सर्पसे जो सप प्रगट हो वह माकुली कहाता है । इसी प्रकार राजिल और गोनसीजातिकी सर्पिणी सर्पसे जो प्रगट सो पोटगल-कर्सर्प कहाता है । इसी प्रकार कृष्णसर्प और राजमाति जातिकी सर्पिणीसे प्रगट हुए सर्पको स्निग्धराजी कहते हैं । तहाँ अकुछी सर्पमें पिताकासा विष (जहर) होय है और पोटगल स्निग्धराजी इन दोनोंमें माताकासा विष होता है । इन तीनोंके विपरीततासे दिव्येलक, लोध्रपुष्पक, राजिचित्रक, पोटगल, पुष्पामिकीर्ण, दर्भपुष्प, वेण्टिक इन सात जातिके सर्प प्रगट होते हैं । इनमेंभी प्रथमके तीन सपोंमें राजिल सपोंकासा विष होता है और ज्योंमें मंडली सपोंकासा जानना ऐसे सब मिलकर अस्ती प्रकारके सर्प हैं । इनमेंभी जिनके नेत्र, जीभ, मुख, शिर बड़े हो वे पुरुष जानने और छोटे होंय वे खी जाननी और जिनमें दोनों खीपुरुषके लक्षण मिलते होंय तथा मंद विषवाले क्रोधराहित होंय उनको नपुंसक जानना ॥

भोगिप्रसृति सर्पके काटनेपर वातादिकोंके लक्षण ।
 दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत् ॥
 पीतो मण्डलिजः शोथो मृदुः पित्तविकारवान् ॥ १७ ॥
 राजिलोत्थो भवेदंशः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः ॥
 पाण्डुः स्निग्धोऽतिसान्द्रासृक् सर्वश्लेषमविकारवान् ॥ १८ ॥

भाषा—भोगी अथवा राजिल (दर्बीकर) सर्पके काटनेसे काटनेकी ठैर काली हो और सर्व वातके विकार करे इसके सुश्रुतमें बहुत अवगुण लिखे हैं । मंडली सर्पके काटनेकी ठैर पीली सूजनयुक्त और नरम और पित्तके विकार करे और राजिलका दंश चिकना, पीले रंगका वा गाढ़ा तथा उसकी सूजन कठोर होय । उसमें गाढ़ा रुधिर निकले तथा सब प्रकारके कफविकार हों ये लक्षण राजिलसर्प काटनेके हैं ॥

विशिष्टदेशमें तथा विशिष्टक्षत्रमें काटनेके असाध्य लक्षण ।

अथत्थदेवायतनइमशानवल्यीकसंध्यासु चतुष्पथेषु ॥

याम्ये च दृष्टाः परिवर्जनीया ऋक्षे शिरामर्मसु ये च दृष्टाः ॥ १९ ॥

भाषा—पीपलके वृक्षके नीचे, देवताओंके मंदिरमें, मसानमें, बैरां, संध्याकाल (प्रातः और सायंकालकी संधि), चौराहेमें, भरणीनक्षत्रमें, चकारसे आर्द्ध, आक्षेषा, मूल, मघा, कृतिका इन नक्षत्रोंमें और शिगनाडीके मर्ममें सर्पके काटनेसे मनुष्य बचे नहीं ॥

गर्भी होनेसे विषका जोर होता है उसके लक्षण ।

दर्वीकराणां विषमाद्यु हन्ति सर्वाणि चोष्णे द्विगुणीधवन्ति ॥

भाषा—दर्वीकर नागका विष तत्काल प्राणनाश करे और सर्व विष गर्भीके योगसे द्वयुना जोर करते हैं ॥

अजीर्णपित्तातपर्फीडितेषु बालेषु वृद्धेषु दुष्कृतिषु ॥

क्षीणक्षत मेहिनि कुष्टदुष्टे रुक्षेऽवले गर्भदत्तिषु चापि ॥ २० ॥

भाषा—अजीर्ण पित्त और स्वर्धकी घाम इनसे पीडित, बालक, वृद्ध, भूखा, क्षीण हो गया हो, उरक्षती, प्रमेहवाला, कोढ़ी, रुक्षा, निर्बल और गर्भिणी इनको सर्पके काटनेसे तत्काल मृत्यु हो ॥

सर्पके काटेके असाध्य लक्षण ।

शास्त्रक्षत यस्य न रक्तमस्ति राज्यो लताभिश्च न सम्भवन्ति ॥

शीताभिराद्विश्च न रोमहषों विषाभिषृतं परिवर्जयेत्तम् ॥ २१ ॥

माषा—जिसको विषका अमल चढ़ गया हो, उसके शख्के घाव करनस रुधिर निकले नहीं अथवा चाबुक मारनेसे अंगसे उपडे नहीं अथवा^१ शीतल पानी अंगपर डालनेसे रोमांच न हों ऐसे मनुष्यका जहर उतारनेका उद्योग न करे ॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

जिह्वा मुख यस्य च केशशातो नानावसादश्च सकंठभंगः ॥

रक्तः स्फूर्णः श्वयथुश्च दंशो हृन्वोः स्थिरत्वं च विवर्जनीयः ॥ २२ ॥

माषा—जिसका मुख टेढ़ा और स्तब्ध हो जाय, केश (बाल) स्पर्श करनेसे दूट दूटकर गिर पड़ें, नाककी हँड़ी टेढ़ी हो जाय, नार नीचेको झुकी पड़े, ऊँची न होय और काटनेकी जगह सूजन होय तथा वह दंश लाल अथवा काला होय तथा स्थिर होय उस रोगीको त्याग देय ॥

तथा असाध्य लक्षण ।

वर्तिर्वना यस्य निरेति वक्राद्रक्तं स्ववेद्वर्धमधश्च यस्य ॥

दंश्नाभिघाताश्चतुरस्य यस्य तं चापि वैद्यः परिवर्जयेत् ॥ २३ ॥

उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं चाप्यथ वा विवर्णम् ॥

सारिष्टमत्यर्थमवेगिनं च जह्याक्षरं तत्र न कर्म कुर्मात् ॥ २४ ॥

माषा—जिसके मुखसे गाढ़ी लारकी वर्ती गिरे और नाक मुखके मार्ग तथा गुदाके मार्गसे रुधिर निकले और जिसके चार दांत लगे होय उसको त्याग देय । अत्यंत उन्मत्त हो गया हो अथवा ज्वर अतिसार आदि उपद्रवोंकरके पीडित हो, बोलनेमें असमर्थ हो, जिसके देहका वर्ण काला हो गया हो, नासाभंगादि अरीष्युक्त, जिसका वेग (लहर) आवे नहीं ऐसा अथवा विष्ठा मूत्रादि वेगरहित ऐसे विषवाले पुरुषको त्याग देय अर्थात् उसका उपचार चिकित्सा न करे ॥

दूषितविषके लक्षण ।

जर्णि विषग्रौषधिभिर्हृतं वा दावाशिवातातपशोषितं वा ॥

स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतासुपैति ॥ २५ ॥

माषा—जो विष पुराना हो गया हो अथवा विषकी नाशक औषधीसे हतवीर्य होनेसे अथवा सरदी, गरमी, आग्नि इनस सूखी हुई अथवा जो स्वभावसे गुणग्रहित हैं ऐसे स्थावर जंगमात्मक विष दूषीविषताको प्राप्त होते हैं ॥

दूषविषके लक्षण ।

वौर्याल्पभावान्न निपातयेत्तकफान्वितं वर्षगणालुबांधि ॥

तेनादितो भिन्नपुरीषवर्णो विगंधिवैरस्ययुतः पिपासी ॥ २६ ॥

मूर्च्छाभ्रम गद्गदवाग्वमित्वं विचेष्टमानोऽरतिमाष्टयादा ॥ २७ ॥

भाषा-वे दूषीविष अल्पवीर्य होनेसे मारक नहीं होते किंतु कफसंबंध होनेसे उछादि गुण मंद होकर बहुत वर्षपर्यंत गर (विष) रूप होकर रहते हैं । उस विषसे पीडित हुए युरुषके दस्त होते हैं, उसका वर्ण पलट जाय, उसके मुखसे बुरी दुर्गंधि निकले, उसके मुखका स्वाद जाता रहे, प्यास लगे, मूर्च्छा आवे, भ्रम होय वह बोलते समय अक्षर चबावे, बमन करे, विशुद्ध चेष्टा करे और उसको चैन नहीं पडे ॥

स्थानमेदकरके उसके विशिष्ट लक्षण ।

आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ॥

भवेत्समुद्घरुतशिरोहांगो विलूनपक्षस्तु यथा विहंगः ॥ २८ ॥

भाषा-पूर्वोक्त विष आमाशयमें स्थित होनेसे कफवातजन्य रोग होय और पक्वाशयमें आनेसे वातपित्तजन्य विकार होय तथा उस रोगीके मस्तकके और सब देहके बाल उड़कर पंखरहित पक्षी (पर्खेरु) के समान हो जाय ॥

निद्रा गुरुत्वं च विश्वेषहर्षावथ वांगमर्दः ॥

ततः क्लरोत्यन्नगदा विपाकावरोचकं भण्डलकोठजन्म ॥ २९ ॥

मासक्षयं पादकरप्रशोथं मूर्च्छीं तथा छर्दिमथातिसारम् ॥

दूषीविषं श्वासतृष्णौ च कुर्याद् ज्वरप्रवृद्धिं जठरस्य चापि ॥ ३० ॥

उन्मादमन्यजनयेत्तथान्यदाहं तथान्यतक्षपयेच्च शुक्रम् ॥

गद्गदमन्यं जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान्विकाहंश्च बहुषकारात् ॥ ३१ ॥

भाषा-दूषीविषके प्रभावसे निद्रा, भारीपन, जंभाई, अंग शिथिल, रोमांच, अंगोंका टूटना ये प्रथम होकर नदनंतर भोजनके उपरान्त हर्ष होना, अन्न पचे नहीं, असुचि, देहमें चक्कते तथा गांठ उठे, मांसक्षय, हाथ पैरोंमें सूजन, मूर्च्छा, बमन, दस्त, श्वास, प्यास, ज्वर, उदररोग ये विकार होय तथा अनेक प्रकारके रोग होय सो इस प्रकार किसीसे उन्माद रोग होय और किसीसे दाह होय, कोई नपुंसकत्व करे और कोई गद्गदवाणी करे, कोई कुष्ठरोग करे और विसर्प विस्फोटक आदि अनेक प्रकारके रोग होय ॥

दूषीविषकी निश्चलिके लक्षण ।

द्वृषितं देशकालान्नदिवास्वप्नेरभीक्षणशः ॥

यस्मात्संदूषयेद्वातूस्तस्मादूषीविषं स्मृतम् ॥ ३२ ॥

माषा-देश, काल, अब और दिवा निद्रा इनसे बारंबार दूषित हुए विष थाहु-ओंको दुष्ट करे, इसीसे इसको दूषीविष कहते हैं । दूषीविष दो प्रकारका है- एक कृत्रिम और दूसरा गरसंज्ञक । जो विष पदार्थोंसे बनाया जाय वह कृत्रिम और निर्विप द्रव्योंके संयोगसे होय उसको गर कहते हैं । सो वृद्धकाश्यपते और चरकमें लिखाभी है ॥

इन दोनों विषोंका लक्षण ।

**सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदरजो नानांगजान्यलान् ॥ शत्रुप्रयुक्तांश्च
गरान्प्रयच्छंत्यन्नभिश्रितान् ॥ ३३ ॥ तैः स्यात्पाण्डुः कृशोऽल्पा-
मिर्ज्वरश्चाल्पोपजायते ॥ मर्मप्रधस्नाध्मानं हस्तयोः शोथलक्ष-
णम् ॥ ३४ ॥ जाठरं ग्रहणीदोषो यक्षमगुलसक्षयज्वराः ॥ एवंवि-
धस्थ चान्यत्थ व्याधोर्लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥ ३५ ॥**

माषा-घरका अधिकार स्वाधीन करनेको, हुए जर्नोंके कहनेसे, पतिको बशीकरण करनेके निमित्त क्षी अपने पतिको पसीना, आर्तव (रजोदर्शनका रधिर) तथा अपनी देहके अनेक अंगोंका मैल, अन्नमे मिलाकर खिलाती हैं अथवा शत्रुकृत गर विषका प्रयोग अर्थात् वैरी विष अथवा गरको अब तथें जलमें मिलाकर खाय देय इससे मनुष्य पीला और कृश होय । उसकी अश्री मंद होय, सब मर्मोंमें पीड़ा पेट कूल जाय, हाथोंमें सूजन, उदररोग, ग्रहणीरोग, राजयक्षमा, गुलम, क्षय, ज्वर इन रोगोंके तथा इसी प्रकारके रोगोंके लक्षण होते हैं ॥

दूषीविषके असाध्यादि लक्षण ।

**साध्यमात्मवतः सद्यो शाप्यं संवत्सरोषितम् ॥
दूषीविषमुदाध्यं तु क्षीणस्थाद्वितसेविनः ॥ ३६ ॥**

माषा-दूषीविष पेटमें जानेसे तत्काल उपाय करनेसे और रोगी पथ्यमें रहनेसे साध्य है और वर्षादिन व्यतीत हो जाय तो याप्य जानना और क्षीण तथा अपथ्य सेवन करनेवालेके असाध्य होय ॥

द्रूताविषकी उत्पत्तिके लक्षण ।

यस्माद्वूनं तृणं प्राता मुनेः प्रस्वेदर्दिव्यद्वः ॥

तस्माद्वृताः प्रभाष्यन्ते क्षरव्यया तास्तु पोडश ॥ ३७ ॥

माषा-विश्वामित्र राजा वसिष्ठकी कामधेनु जवरदस्ती लेकर चला उस समय

१ वृद्धकाश्यपः—“ संयोगज तु द्विविष तृतीयं विषमुच्यते । गरः स्यादविषस्तत्र सविं-
ष्टं कृत्रिमं यतः ॥ ” चरकः—“ दंशविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे । ” इति ।

वसिष्ठजीको क्रोध आया, उससे ललाटमें पसीनेका बिंदु निकला सो समीप जो कटे तृण गौके चरनेके अर्थ पड़े थे उनपर वे बिंदु पड़े, इसीसे लूता (मकड़ी) प्रगट हुई, इन मकडियोंकी सोलह जाति हैं। इन सोलहोंकेमी दो भेद हैं एक कृच्छ्रसाध्य दूसरी असाध्य ॥

उनके काटनेके सामान्य लक्षण ।

ताभिर्दष्टे दंशकोथप्रवृत्तिः क्षतजस्य च ॥ ज्वरो दाहोऽतिसार-
श गदाः स्युश्र त्रिदोषजाः ॥ ४८ ॥ पिडिका विविधाक्षारा मण्ड-
लानि महान्ति च ॥ शोथा महान्तो मृदबो रक्तश्यावाश्वलास्त-
था ॥ सामान्यं सर्वलूतानाभेतदंशस्य लक्षणम् ॥ ४९ ॥

भाषा—उन मकडियोंके काटनेसे वह स्थान सड़े और उसमेंसे रुधिर वहे, ज्वर, दाह, अतिसार और त्रिदोषज तथा अनेक प्रकारके फोड़ा वडे वडे चकत्ते, नरम, लाल, काली नीली और चंचल ऐसी सूजन होय इत्यादि लक्षण होते हैं। इस प्रकार सर्व लूतार्ओंके सामान्य लक्षण जानने ॥

दूषीविषलूताके काटनेके लक्षण ।

दंशमध्ये तु यत्कृष्णं इयावं वा जालकावृतम् ॥ ५० ॥

ऊर्ध्वाक्षिति भृशं पाकं क्लेक्कोथज्वरान्वितम् ॥

दूषी विषाभिलूताभिस्तं दृष्टिति निर्दिशेत् ॥ ५१ ॥

भाषा—जिस दंशका मध्यभाग काला अथवा पीला अथवा हरा जालके सद्वज ऊंचा होकर शीघ्र पके तथा उसमेंसे दुर्गंधियुक्त लस वहे, उसमें ज्वर होय उसको दूषीविष अथवा लूताका काटा हुआ जानना ॥

प्राणहर लूताके लक्षण ।

सर्पाणामेव विष्मूत्रशवकोथसमुद्धवाः ॥

दूषीविषाः प्राणहरा इति संक्षेपतो भताः ॥ ५२ ॥

शोथाः शेताऽसिता रक्ताः पीताः सपिटिका ज्वराः ॥

प्राणान्तिकाभिर्जायन्ते दाहहिक्काशिरोश्वाः ॥ ५३ ॥

भाषा—सर्पोंके मलमूत्रसे अथवा मरे हुए सर्पके सड जानेसे जो दूषीविषके कीड़ा उत्पन्न होय वे प्राण हरनेवाले होते हैं। उनका काटा हुआ स्थान सूज जावे तथा वह सफेद काला लाल पीला होय और फुंसी हो जाय और रोगीको ज्वर आवे, दाह होय, हिचकी आवे, मस्तकमें शूल होय ॥

दृषीविषाखुलक्षण ।

आदंशाच्छोणितं पाण्डु मण्डलानि ज्वरोऽरुचिः ॥

लोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूपीविषादिते ॥ ४४ ॥

माषा-विषैले आखु (मूसे) के काटनेसे पीला रुधिर निक्ले, देहमें गोल चक्के, उठें, ज्वर होय, अरुचि होय, रोमांच और दाह होय ये मूसेके काटनेके विषपीडित मनुष्यके लक्षण हैं ॥

प्राणहरमूषकविषलक्षण ।

मूच्छांगशोथैवर्ण्ये क्लेदो मन्दश्रुति ज्वरः ॥

शिरोगुरुत्वं लालासृक्षर्दिश्चासाध्यमूषकैः ॥ ४५ ॥

माषा-जिस मूसेके काटनेसे मूच्छा, मूसेके आकार सूजन, देहमें विरणता, क्लेद, मंद सुनाई दे, ज्वर, मस्तक मारी, लाल और रुधिर इनकी रह होय ये लक्षण प्राण-हर्ता मूसेके असाध्य हैं ॥

कृक्लास (नौले) के काटेके लक्षण ।

काष्ण्ये इयावत्वमथवा नानावर्णत्वमेव च ॥

व्यामोदो वर्चसो भेदो दृष्टे स्थात्कृक्लासकैः ॥ ४६ ॥

माषा-नौलेके काटनेसे देहका वर्ण काला अथवा नीला हरा तथा अनेक प्रकारका होय तथा उस रोगीके भ्रांति और अतिसार होय ॥

वृश्चिकविषलक्षण ।

दहत्यग्निरिवादो तु भिनत्तिवोर्ध्वमाशु वै ॥

वृश्चिकस्य विषं याति पश्चादंशोऽवतिष्ठति ॥ ४७ ॥

माषा-विच्छूके काटनेसे उस स्थानमें प्रथम आगसी जले, पीछे ऊपरको चढ़े, पीछे उस काटनेकी जगह फटनेकीसी पीड़ा होय ॥

अब कहते हैं कि विच्छू मन्दविष, मध्यविष, महाविषके भेदसे तीन प्रकारका है । तिनमें जो गौके गोबरसे प्रगट होय वह मंदविष है और काठ ईंट इनसे प्रकट होय वह मध्यविष है और जो सर्पकी सड़ी देहसे प्रगट होय वह अथवा अन्य विषवाली वस्तुओंसे प्रगट होय वह विच्छू महाविषवाला होता है । मंदविषवाले विच्छू बारह प्रकारके हैं, मध्यविषवाले तीन प्रकारके हैं, महाविषवाले पंदरह प्रकारके हैं । ऐसे सब मिलकर तीस प्रकारके विच्छू हैं । कोई आचार्य २७ प्रकारके कहता है । कृष्ण, इयाव, कर्णुर (विचित्रवर्ण), पीत, गोमूत्राम, कर्कश, मेचक, श्रेत, लाल, रोमश, शाद्वलाम, रक्त ये बारह मंदविष हैं । इनके काटनेसे पीड़ा ।

कंप, देहका स्तंभ, काले रुधिरका निकलना इत्यादि रोग होते हैं । रक्तोदर, मित्तोदर, कपिलोदर ये तीन मध्यविषवाले विच्छू हैं । इनके काटनेसे जीभमें सूजन, मोजनका न होना, घोर मूच्छी ये लक्षण होते हैं । श्वेत, चित्र, इयामल, लोहिताभ, रक्तश्वेत, रक्तोदर, नीलोदर, पीत, रक्त, नीलपीत, रक्तनील, नीलशुक, रक्तबधु, एकपर्वा, उपर्वा ये घोर विषवाले १५ विच्छू हैं । इनके काटनेसे सर्पके समान वेग होय, फोड़ोंकी उत्पत्ति होय, भ्रांति, दाह, ज्वर, नाक, कान आदि छिद्रोंसे काला रुधिर निकले, इसीसे शीघ्र प्राणत्याग होवे ॥

वृश्चिकविषके असाध्य लक्षण ।

दृष्टो साध्यस्तु हृदद्राणरसनोपहतो नरः ॥

मांसैः पतद्विरत्यर्थं वेदनातौ जहात्यसून् ॥ ४८ ॥

भाषा-हृदय, नाक, जीभ इनमें निच्छूके काटनेसे मांस गलकर अत्यन्त वेदना होकर मनुष्य मरे ॥

कणभदष्टके लक्षण ।

विसर्पैः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छार्दिरथापि वा ॥

लक्षणं कणभैर्दृष्टे दुःश्श्वैव विशीर्यते ॥ ४९ ॥

भाषा-कणभ एक जातिका कीड़ा होता है उसके काटनेसे विसर्प, सूजन, शूल, ज्वर, बमन ये लक्षण होते हैं और वह काटनेका स्थान गल जाय । अब कहते हैं कि त्रिकंटक, कुणी, इस्तीकक्ष, उपराजित ये कणभ कीड़ोंके चार भेद हैं । इनके काटनेसे पूर्णतः रोग होय और अंगोंका टूटना, देहमें भारीपन और काटनेकी ढौर काली हो जाय ये लक्षण विशेष होय ॥

उच्चिटिंगर (झींगर) विषके लक्षण ।

हृष्टरोमोच्चिटिंगेन स्तब्धलिंगो भृशार्तिमान् ॥

दृष्टः शीतोदकेनेव स्तिक्तान्यंगानि मन्यते ॥ ५० ॥

भाषा-उच्चिटिंगनामक विच्छूके काटनेसे देहमें रोमांच होय, लिंग जकड़ जाय, घोर पीड़ा होय और सब देहपर शीतल जल मानो डाल दिया है । उच्चिटिंगको सुश्रुतवाला झींगर कहता है और कोई उष्ट्रधूम कहते हैं । परन्तु आतंकदर्पण टीका-कारने विच्छूका भेद माना है ॥

मङ्डूक (मेंडक) विषके लक्षण ।

एकदंशार्दितः शूनः सरुजः पीतकः सतृट् ॥

छार्दिनिंद्रा च सार्वपैर्मण्डूकैर्दृष्टलक्षणम् ॥ ५१ ॥

भाषा-विषैल मेंडकके काटनेसे उसका एक दांत लगे उस ठिकाने पीली सूजन होय, दूखे, प्यास, वमन और निद्रा ये लक्षण होय । अब कहते हैं कि कृष्णसार, कुहक, हरित, रक्त, यववर्णाभ, भुकुटी, कोटिक इन भेदोंसे मेंडक आठ प्रकारका है । इनके काटनेसे पूर्वोक्त लक्षण होय और खुजली, सुखमें पीली ज्ञाग आना, इन आठमेंमी भुकुटी और कोटिक इन दोनों मेंडकोंके काटनेसे पूर्वोक्त लक्षण होय और दाह, सूच्छा अत्यन्त होय ये विशेष लक्षण होते हैं ॥

विषैल मत्स्य (मछली) के विषके लक्षण ।

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युदाहं शोथं रुजं तथा ॥

भाषा-विषैल मछलीके काटनेसे दाह, सूजन और शूल ये होय, विषैल मछलीके सताईस भेद हैं । उनके नाम नहीं लिखे इसलिये कि मिले नहीं ॥

सविष जलौका (जोंक) के लक्षण ।

कण्डू शोथं ज्वरं सूच्छा सविषास्तु जलौकसः ॥ ६२ ॥

भाषा-विषैल जोंकके काटनेसे खुजली, सूजन, ज्वर और सूच्छा ये लक्षण होते हैं । विषैल जोंक काली, विचित्रवर्णकी, अलगदा, इंद्रायुध, सामुद्रिका, गोवन्दना इन भेदोंसे छः प्रकारकी है ॥

इनमेंमी अंजनचूर्णवर्णा और पृथुशिरके भेदसे काली जोंक दो प्रकारकी है । वर्मि मछलीके समान लंबी, छिन्नोन्नत, कुक्षिके भेदसे विचित्रवर्णकी जोंक दो प्रकारकी है । रोमशा, महापार्थी, कृष्णसुखी इन भेदोंसे अलगदा जोंक तीन प्रकारकी है । इन्द्रधनुषके समान ऊपरसे विचित्र होय वह इन्द्रायुध जोंक है । कुछ सफेद और पीली तथा विचित्रपुष्पके समान चित्रित ये दो भेद सामुद्रिका जोंकके हैं और वैलके अंडकोशके समान नीचेसे दो भाग होवें उसको गोवन्दना कहते हैं ॥

गृहगोधिका (छिपकली) के विषके लक्षण ।

विदाहं श्वयथुं तोदं स्वेदं च गृहगोधिका ॥

भाषा-छिपकलीके विषसे दाह होय, सूजन, नोचनेकीसी पीड़ा और पसीना आवे । कोई गृहगोधिकाको भाषामें विषखपरा कहते हैं ॥

शतपदी (खानखजूग) के विषके लक्षण ।

दृशे स्वेदं रुजं दृढ़ं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ ६३ ॥

भाषा-कानखजूगके काटनेसे काटनेके स्थानमें पसीना आवे, शूल होय और दाह होय । अब जानना चाहिये कि परुषा, कृष्णा, चित्रा, कपीलिका, पित्तिका रक्ता, श्वेता, अग्निप्रभा ये शतपदीके आठ भेद हैं । इनमेंसे छः तो पूर्वोक्त लक्षण

करती हैं और शेता तथा अग्निप्रभा ये दो जातिकी शतपदीके काटनेसे दाह और मूच्छी अधिक होय यह विशेष लक्षण जानना ॥

मत्रक (मच्छर वा डांस) के विषके लक्षण ।

क्षण्डुमान्मश्चैरीषच्छेथः स्यान्मन्दृवेदनः ॥

भाषा—मच्छर अथवा डांसके काटनेसे जो किंचित् सज्जन होय उसमें खुजली चले तथा थोड़ी पीड़ा होय, सामुद्र, परिमंडल, हस्तिमस्तक, कृष्ण, पार्वतीय ये पांच भेद मच्छरोंके हैं ॥

असाध्य मशकक्षतके लक्षण ।

असाध्यकीटसद्वामसाध्यमशकक्षतम् ॥ ६४ ॥

भाषा—पर्तके ऊपर रहनेवाले मच्छर अथवा डांसके काटनेसे क्षत असाध्य कीटके समान असाध्य है। असाध्य कीटके विषके लक्षण सुश्रुतमें लिखे हैं सो जान लेना ॥

सविषमक्षिका (मकरी) के दंशके लक्षण ।

सद्यःप्रस्त्राविणी स्याद्वा दाहमूच्छाज्वरान्विता ॥

पिण्डिका मक्षिकादंशे तासां तु स्थविकाऽसुहृत् ॥ ६५ ॥

भाषा—विषैल मकरीके काटनेके ठिकाने काली फुंसी प्रगट होय वह तत्क्षण वहने लगे, उस ठिकाने दाह होय और मूच्छी, ज्वर होय, इनमें स्थविका नाम मकरी माणहर्ता जाननी। मकरीके छः भेद हैं जैसे कान्तारिका, कृष्णा, पिंगलिका, मधुलिका, काषायी और स्थविका इनमें काषायी और स्थविका दो असाध्य हैं ॥

चतुष्पदादिकोंके विषके साधारण लक्षण ।

चतुष्पदिद्विपद्विर्वा नखदन्तविषं च यत् ॥

शूयते पच्यते चापि स्नवति ज्वरयत्यपि ॥ ६६ ॥

भाषा—ध्याघ आदि चतुष्पाद और बनमनुष्यादि वानरादि द्विपाद इनके नख दांतोंका विष सूज आवे, पक जावे, वहे तथा इनके योगसे ज्वर आवे। अब कहते हैं कि श्रीमाधवाचार्यने विश्वंभरा, अर्द्धका, वंदूमका, शुब्रवृन्तादि, पिपीलिका, गोधरका और सर्षपिका इनके विषदा नहीं लिखा परंतु इनका निदान सुश्रुतमें कहा है सो ग्रंथकी समाप्तिमें लिखेंगे ॥

विष उत्तर गया हो उसके लक्षण ।

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकांशं सममूत्रविट्कम् ॥

प्रसन्नवणेन्द्रियचित्तदेष्ट देयोऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥ ६७ ॥

माषा—जिस पुरुषके वातादि दोष निर्मल होय, रस रक्तादि धातु नीरोग अब-स्थामें जैसे होते हैं वैसेही होय, अन्न खानेकी इच्छा होय, मलमूत्र जैसे होते हैं वैसे होय, शरीरका वर्ण, इन्द्रिय, मन और व्यापार (देहकी चेष्टा) ये जिसके शुद्ध होय उसका विष उत्तर गया वैद्य जाने ॥

इति श्रीपण्डितदत्तरामभाशुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषादीकार्या
विषरोगनिदान समाप्तम् ।
माधवनिदानं समाप्तम् ।

अथ ग्रंथपरिशिष्टम् ।

विदेत हो कि माधवाचार्य मिष्ठानिरोपणिजीने बहुतसे रोगोंके निदान स्वर्गर्थम् नहीं लिखे परन्तु उन रोगोंके निदानोंसे बहुधा वैद्योंको काम पड़ता है इसी कारण उन निदानोंको अन्य ग्रंथोंसे संग्रह करके इस जगह लिखते हैं । प्रथम क्लीब (नपुंसक) का निदान चरकसे लिखते हैं ।

रेतोदोषोद्धर्वं क्लैब्यं यस्माच्छुद्धचैव सिद्ध्यति ॥ अतो वक्ष्यामि
ते सम्यग्गम्भिवेश यथातथम् ॥ १ ॥ बीजघ्वजोपघाताभ्यां जरया
शुक्रसंक्षयात् ॥ वैक्लैब्यसम्भवस्तस्य शृणु सामान्यलक्षणम् ॥ २ ॥

माषा—क्लैब्य (नपुंसक) होना केवल वीर्यके दोषसे होता है । वीर्य शुद्ध होने-सेही इसकी शुद्धि है इसी कारण है अभिवेष ! मैं तेरे आगे क्लीबका लक्षण कहता हूँ । नपुंसक चार प्रकारका होता है उनको कहते हैं । २ बीजके उपघातसे, ३ ऊजोपघातसे, ३ बुदापेसे और ४ शुक्र (वीर्य) के क्षय होनेसे जो नपुंसकता प्राप्त होती है उसके सामान्य लक्षणको तू सुन ॥

क्लैब्यके सामान्य लक्षण ।

संक्लिपप्रवणो नित्यं प्रियावश्यमथापि वा ॥
न याति लिंगशैथिल्यात्कदाचिद्या ति वा पुमान् ॥ ३ ॥
श्वासार्तस्विन्नग्रात्रांसो मोघसंक्लिपत्तेष्टः ॥
म्लानशिश्रश्च निर्धीजः स्यादेतत्क्लैब्यलक्षणम् ॥ ४ ॥

माषा—जापको प्रिय और वशीभूत खीकोभी प्राप्त होकर जो पुरुष नित्य विषय

न करे और कदाचित् करे तो जब कभी करे, वह पुरुष श्वासके व्याकुल हो, देहमें प्रसीना होय, निष्कल मनोरथ और चेष्टा (विषयादि) होय, लिंग जिसका ढीला और बीजरहित होय ये नपुंसकके सामान्य लक्षण हैं ॥

बीजोपघात छीबके लक्षण ।

**सामान्यलक्षणं ह्येतद्विस्तरेण प्रवक्ष्यते ॥ शीतसूक्ष्मलसंक्षिप्त-
विरुद्धाजीर्णभोजनात् ॥ ६ ॥ शोकचिन्ताभयत्रासात्स्त्रीणां
चात्यर्थसेवनात् ॥ अभिचारादविश्वम्भाद्रसादीनां च संक्षयात्
॥ ७ ॥ वातादीनामोजसश्च तथैवानज्ञानाच्छ्रमात् ॥ नारीणाम-
नभिज्ञत्वात्पंचकर्मापचारतः ॥ ८ ॥ बीजोपघातो भवति पाण्डु-
वर्णः सुदुर्बलः ॥ अत्प्रजोऽपहृष्टश्च प्रमदासु भवेन्नरः ॥ ९ ॥
हृतपाण्डुरोगतमक्कामलाश्रमपीडितः ॥ बीजोपघातं क्षैब्यं-**

माषा—प्रथम जो कहे वे नपुंसकके सामान्य लक्षण हैं उनको विस्तारसे कहता हूँ । शीतल, रुक्ष, योडा मिला हुआ, तथा विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) कच्चा अच्छ इत्यादि पदार्थोंके भोजन करनेसे, आदिशब्दसे खट्टा, चरपरा, कष्ठिला पदार्थ खानेसे, शोक (सोच) चिंता, भय और त्रास तथा अत्यंत खीरमण करनेसे, किसी शत्रुका अभिचार (जादूटोना) से तथा किसीका विश्वास न करनेसे, रसादि धातुओंके क्षीण होनेसे, वातादि दोषोंके बढ़नेसे, इसी प्रकार उपवास (व्रतादि) और श्रम करनेसे खीसुखके न जाननेसे, पंचकर्म (वर्मन विरेचनादि) के अपचारसे बीजोपघात अर्थात् बीजमें किसी प्रकारका विकार होता है । इसके होनेसे बीजिका वर्ण पीला होता है तथा देह दुर्बल हो जाय, उस पुरुषके संतान योडी हो तथा खीगमनमें इच्छा न होना, हृदयवेग और पाण्डुरोग होय, तमक श्वास, कामला अनायास श्रम इनसे पीडित होय ये लक्षण बीजोपघात छीबके हैं ॥

घजभंगक्षीबकी उत्पत्ति ।

**घजभंगकृतं शृणु ॥ ९ ॥ अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धाजीर्णभो-
जनात् ॥ अत्यम्बुपानाद्विषमपिष्टान्नगुरुभोजनात् ॥ १० ॥
दधिक्षारानूपमांससेवनादतिकर्षणात् ॥ कन्यानां चैव गमना-
दयोनिगमनादापि ॥ ११ ॥ दीर्घरोम्बीं चिरोत्सृष्टां तथैव च रज-
स्वलाम् ॥ दुर्गंधां दुष्टयोर्निं च तथैव च परिसृताम् ॥ १२ ॥
नरस्य प्रमदां मोहादृतिहर्षात्प्रगच्छतः ॥ चतुष्पदाभिगमना-**

**च्छेफसश्चाभिघाततः ॥ १३ ॥ अधावनाद्वा मेहस्य शस्त्रदंत-
नखक्षतात् ॥ काष्ठप्रदारनिश्चेष्टूकानां चातिसेवनात् ॥
रेतसश्च प्रतीघाताद् ध्वजभंगः प्रवर्तते ॥ १४ ॥**

माषा—अत्यंत खट्टा, नोनका, खारा, विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि), अपक अन्न मोजन करनेसे तथा बहुत जल पीनेसे, विषमाच्च और मारी ऐसे पदार्थके खानेसे, दही, दूध, जलसमीप रहनेवाले पक्षीका मांस खानेसे, व्याधिकरके कृश होनेसे, कन्याके साथ गमन करनेसे, जिसके योनि नहीं ऐसी खीके साथ गमन करनेसे, अथवा ययोनि काहिये गुदाभंजन करनेसे तथा जिसकी योनिपर बडे बाल हों और जिस खीने बहुत दिनोंसे मैथुन करना छोड दिया हो तथा रजस्वला और जिसकी योनिमें दुर्गंधि आती हो तथा दुष्ट्योनि और जिसकी सोमादि रोगोंसे योनि चुचाती हो ऐसी खियोंसे मैथुन करनेसे तथा उन्मत्त होकर गमन करनेसे और अति इर्षसे गमन करनेसे तथा चतुष्पाद (बकरी कुतिया आदि) से गमन करनेसे तथा लिंगमें किसी प्रकारकी चोट लगनेसे तथा लिंगके न धोनेसे तथा शस्त्र दांत नख इनकरके घाव होनेसे, लकड़ी आदिकी चोट लगनेसे, लिंगके पीस जानेसे तथा लिंगके मोटे करनेके निमित्त शूकादि प्रयोग करनेसे अर्थात् इनका अत्यंत सेवन करनेसे तथा वीर्यके बिगड़नेसे ननुष्यके ध्वजभंग (अर्थात् लिंग खट्टा होकर तुरंत मुरझा जाय) यह रोग होता है इसके लक्षण आगे कहते हैं ॥

ध्वजभंगके लक्षण ।

**श्यथुर्वेदना मेहे रोगश्चैवोपलक्ष्यते ॥ १६ ॥ स्फोटाश्च तावा
जायन्ते लिंगपाको भवत्यपि ॥ मांसवृद्धिर्भवेच्चापि ब्रणाः क्षिप्रं
भवत्यपि ॥ १७ ॥ पुलाकोदङ्गसंकाशः स्नावः इयावाहुणप्रभः ॥
वलयीकुरुते चापि कठिनं च परिग्रहम् ॥ १८ ॥ ज्वरस्तृष्णा
अमो मूच्छो च्छदैश्चास्योपजायते ॥ रक्तं कृञ्चं स्नवेच्चापि नी-
लमाविललोहितम् ॥ १९ ॥ आग्नेव च दृग्घस्य तीव्रो दाहः
सवेदनः ॥ वस्तौ वृषणयोर्वाऽपि सीवन्यां वंक्षणेषु च ॥ २० ॥
कदाचित्पिच्छिञ्चित्तो वापि पाण्डुस्त्रावश्च जायते ॥ श्यथुश्च भवे-
न्मन्दस्तिभितोऽल्पपरिस्ववः ॥ २१ ॥ चिरात्स पाकं ब्रजति
शीघ्रं वाथ प्रपद्यते ॥ जायन्ते कृमयश्चापि क्षिद्यते पूतिगंधि**

च ॥ २१ ॥ प्रशीर्थते भणिश्चास्य मेद्रं सुष्कावथापि च ॥
ध्वजभंगकृतं कैव्यमित्येतत्सुदाहृतम् ॥ एवं पंचविधं
केचिद् ध्वजभंगं वदेत्यपि ॥ २२ ॥

भाषा-ध्वजभंगवाले मनुष्यके लिंगपर सूजन हो और लिंगमें पीड़ा हो तथा लाल हो, उसके ऊपर घोर फोड़ा होते हैं तथा लिंग पक जावे और मांसकी वृद्धि होय तथा लिंगमें फोड़ा होय, उसमें चांदलके मांडके समान और काला लाल स्नाव होय, कंकणके समान गोल लपेटा होय और उसकी जड़ कठिन होय तथा उस पुरुषके ऊर, ध्यास, भ्रम, मूर्च्छा, बमन ये रोग हों तथा लिंगमेंसे काला, नीला, लोहित और दुष्ट रुधिर निकले, उसका लिंग अप्रिसे दग्धके समान हो जाय, सूत्राशय अंडकोश ऊरकी संधियोंमें घोर दाह और पीड़ा होय, कभी कभी गाढ़ा और पीला स्नाव होय और सूजन मंद और गीली होय । तथा योड़ा स्नाव होय और देरमें पके अथवा शीघ्रही पक जावे, उसके लिंगमें कीड़ा पड़ जाय, क्षेदयुक्त और दुर्गंध आवे, लिंगके ऊपरकी सुपारी गल जाय तथा लिंग और अंडकोश दोनों गलकर गिर जाय यह ध्वजभंगकृत नपुंसकके लक्षण कहे हैं । कोई सुश्रुतादिक आचार्य इस ध्वजभंग नपुंसकके ईर्ष्यक सौंगंधिक कुंभिक आसेक्य और महाषंड इन भेदोंसे पांच प्रकार वतलाते हैं । उनकोभी प्रसंगवशसे इस जगह सुश्रुतसे लिखते हैं ॥

आसेक्य नपुंसकके लक्षण ।

पित्रोरत्यल्पवीर्यत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत् ॥

स शुक्रं प्र इय लभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥ १ ॥

भाषा-मातापिताके अति अल्पवीर्यसे जो गर्भ रहे वह पुरुष आसेक्यनाम नपुंसक होता है । वह पुरुष अन्य पुरुषसे अपने मुखर्थे मैथुन कराकर उसके वीर्य-को खा जाय तब उसको चैतन्यता (अर्थात् लिंग सतर) हो तब खीसे मैथुन करे इसका दूसरा नाम सुखयोनि है ॥

सौंगंधिक नपुंसकके लक्षण ।

यः पूतियोनौ जायेत स सौंगंधिकसंज्ञितः ॥

स योनिश्चोक्षसौंगंधमाग्राय लभते बलम् ॥ २ ॥

भाषा-जो पुरुष दुष्ट्योनिसे उत्पन्न होय उसको योनि तथा लिंगके संघनेसे चैतन्यता प्राप्त होय उसको सौंगंधेक कहते हैं । इसका दूसरा पर्यायशाचक नाम नासायोनि है ॥

कुमिभक नपुंसकके लक्षण ।

स्वगुदेऽब्रह्मचर्यादः स्त्रीषु पुंवत्प्रवर्तते ॥ कुमिभकः स तु विज्ञेयः

माषा—जो पुरुष पहले अपनी गुरा भज्जन करावे तब उसको चैतन्यता प्राप्त होय तब स्त्रीके विषे पुरुषके समान प्रवृत्त होय उसको कुमिभक नपुंसक कहते हैं । कोई आचार्य इसका और प्रकारसे अर्थ करते हैं अर्थात् जो पुरुष लौडेवाजी करते हैं वे प्रथम स्त्रीके पीछे बैठकर पशुके समान शिथिल लिंगसेही उसकी गुरा भज्जन करें, इस प्रकार करनेसे जब चैतन्यता प्राप्त होती है तब मैथुन करे, उसका नाम कुमिभक कहते हैं और गुदायोनि यह इसना पर्यायवाचक नाम है । इसकी उत्पत्ति काश्यपने इस प्रकार लिखी है कि ऋतुकालमें अलरजस्क स्त्रीसे श्लेष्मरेतवाले पुरुषके संभोग करनेसे उन खियोंका कामदेव शान्त न हो इस कारण उस स्त्रीका मन अन्य पुरुषसे संभोग करनेकी इच्छा करे तब उसके कुमिभकनाम नपुंसक होता है ॥

ईर्ष्यक नपुंसकके लक्षण ।

ईर्ष्यकं शृणु चापरम् ॥ ३ ॥ दृष्टा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः

प्रवृत्तते ॥ ईर्ष्यकः स तु विज्ञेयो हृग्योनिरयमीर्ष्यकः ॥ ४ ॥

माषा—जो मनुष्य दूसरेको मैथुन करते देख आप मैथुन करे उसको ईर्ष्यक नपुंसक कहते हैं । इसका दूसरा पर्यायवाचक न.म हृग्योनि है । कोई “ हृग्योनिरयमीर्ष्यकः ” इस जगह “ पण्डकं शृणु पञ्चमम् ” ऐसा पाठ कहते हैं अर्थात् षण्डके जो पञ्चम नपुंसक है उसके लक्षण सुन ॥

महाषण्डनपुंसकके लक्षण ।

यो भार्यायामृतौ भेदादंगनेव प्रवर्तते ॥

ततः स्त्रीचेष्टिकारो जयते पण्डक्षंजितः ॥ ५ ॥

माषा—जो पुरुष ऋतुकालमें मोइसे स्त्रीके सदृश प्रवृत्त होय अर्थात् आप नीचेसे सीधा हो ऊपर स्त्रीको चढाकर मैथुन करे उससे जो गर्भ रहे वह पुरुष स्त्रीकीसी चेष्टा करे और स्त्रीके आकार होय, स्त्रीकी चेष्टा (आप स्त्रीके समान नीचे होकर अन्य पुरुषसे अपने लिंगके ऊपर दृर्घ पतन करावे) ॥

नारीषण्डनपुंसकके लक्षण ।

ऋतौ पुरुषवद्वापि प्रवर्त्तेतांगना यदि ॥

तत्र कल्या यदि भवेत्सा ध्वेन्नरचेष्टिता ॥ ६ ॥

माषा—ऋतुसमय यदि स्त्री पुरुषके सदृश प्रवृत्त होय अर्थात् पुरुषको नीचे सुलाय

उसके ऊपर चढ़ पुरुषके समान मैथुन करे उस मैथुनसे जो कन्या प्रगट हो वह पुरुषकेसे आकारवान् होय और पुरुषकी चेष्टा करे (अर्थात् स्वयं स्त्रीरूपभी होकर दूसरी स्त्रीके ऊपर पुरुषके समान उसकी योनिसे अपनी योनि घर्षण करे) ये षण्ठ-नपुंसकके दोनों भेद हैं । इससे पांच प्रकारकेही ध्वजभंगनपुंसक जानने । परन्तु चरकके मतसे नपुंसक स्त्रीपुरुषके भेदसे दो प्रकारका है और जितने पुरुषके नपुंसक भेद हैं उतनेही स्त्रीके जानने ॥

उक्तलेकोंका संग्रह ।

आसेक्यश्च सुगंधी च कुम्भकश्चेष्यकस्तथा ॥

सरेतसस्त्वमी ज्ञेया अशुक्रः षण्ठसंज्ञितः ॥ ७ ॥

भाषा—आसेक्य, सुगंधी, कुम्भक और ईर्ष्यक ये चारों प्रकारके नपुंसक शुक्र-बीर्यसहित जानने और षण्ठसंज्ञक नपुंसकके बीर्य नहीं होता है । वह बीर्यरहित जानना । वोइ शंका करे कि जब बीर्यसहित है तब आप उसको नपुंसक कैसे कहते हो इस बास्ते कहते हैं ॥

अनया विप्रकृत्या तु तेषां शुक्रवहाः शिराः ॥

हृषीत्स्फुटत्वमायान्ति ध्वजोच्छायस्ततो भवेत् ॥ ८ ॥

भाषा—इनकी विरुद्ध चेष्टाके करनेसे उनकी शुक्रके बहनेवाली जो नाड़ी हैं सो हर्ष (आनंद) से फूलती हैं, इससे उनको चैतन्यता (लिंग सतर होना) होती है, बीर्यके प्रभावसे नहीं होती, ये ध्वजभंगनपुंसकके पांच भेद हैं । अब जरासं-भव नपुंसकके लक्षण कहते हैं ॥

जरासम्भव नपुंसकके लक्षण ।

**क्षेत्र्यं जरासम्भवं हि प्रवक्ष्याम्यथ तच्छृणु ॥ जघन्यमध्यप्र-
वरं वयस्त्रिविधमुच्यते ॥ २३ ॥ अथ च प्रवरे शुक्रं प्रायशः
क्षीयते नृणाम् ॥ रसादीनां संक्षयाच्च तथैवावृष्यसेवनात्
॥ २४ ॥ बलवर्णेन्द्रियाणां च क्रमेणैव परिक्षयात् ॥ परिक्षया-
दायुषश्चाप्यनाहाराच्छ्रमात्क्रमात् ॥ जरासम्भवजं क्षेत्र्यमित्येतै-
हेतुभिन्नणाम् ॥ २५ ॥**

भाषा—अब मैं जरा (छुटापे) मैं नपुंसक होनेके लक्षण कहता हूँ उनको सुन । अवस्था तीन हैं, जघन्य अर्थात् छोटी और मध्यम तथा प्रवर (बड़ी) । इन तीनोंमें प्रवर अर्थात् वृद्ध अवस्थामें बहुधा करके शुक्र (बीर्य) क्षीण होता है ।

उसका हेतु यह है । रसादि धातुओंके क्षीण होनेसे तथा वृद्ध्य (वीर्यकर्त्ता) औषधिके न खानेसे, बल वर्ण इन्द्रिय इनके क्रमसे क्षीण होनेसे, आयु (अवस्था) के घटनेसे, भूखा रहनेसे, श्रम (मेहनत) के करनेसे इन कारणोंसे जरासम्भव नपुंसक होता है ॥

जरासम्भव नपुंसकके लक्षण ।

जायते तेन सोऽत्यर्थं क्षीणधातुः सुदुर्बलः ॥ २६ ॥

विवर्णो विह्वलो दीनः क्षिप्रं व्याधिमथाश्वुते ॥

एतज्जरासम्भवं हि चतुर्थं क्षयजं शृणु ॥ २७ ॥

भाषा—पूर्वोक्त जरासम्भव क्षीबके होनेसे मनुष्य धातुक्षीण, दुर्बल देहका, हीन-वर्ण, विह्वल, दीन ऐसा हो जाय और वह शीघ्रही व्याधि (रोग) को प्राप्त होय यह जरासम्भवके लक्षण कहे । अब चतुर्थ क्षयज क्षीबके लक्षण सुनो ॥

क्षयज क्षीबके लक्षण ।

आतिप्रचिन्तनाच्चैव शोकात् क्रोधाद्यादपि ॥ ईर्ष्योत्कण्ठा-

त्थोद्देगात् सुमार्विशातिको नरः ॥ २८ ॥ कृशो वा सेवते रू-

क्षमन्नपानमर्थौषधम् ॥ दुर्बलप्रकृतिश्चैव निराहारो भवेद्यदि-

॥ २९ ॥ अथाल्पभोजनाच्चापि त्वदये यो व्यवस्थितः ॥ रसः

प्रधानधातुर्हि क्षीयेताशु नरस्ततः ॥ ३० ॥

भाषा—अत्यंतं चिन्ता, अतिशोक, अतिक्रोध, अतिभय, ईर्ष्या, उत्कंठा, उद्देग और जो पुरुष वीस बरसका होय तथा जो पुरुष कृश होकर अन्नपानकी वस्तु तथा रूखी औषधियोंका सेवन कर और दुर्बल प्रकृति होकर निराहा रहे अथवा थोड़ा मोजन करे वहमी हृदयमेही स्थित रहे इन कारणोंसे रस है प्रधान जिनमें ऐसी जो धातु सो क्षीण होय, इसी कारणसे वह मनुष्य क्षीण होता जाय ॥

रक्तादयश्च क्षीयन्ते धातवस्तर्य देहिनः ॥ शुक्रावसानास्ते-

भ्यो हि शुक्रं धाम परं मतम् ॥ ३१ ॥ चेतसो वातिहृषेण व्य-

वायं सेवते तु यः ॥ शुक्रं तु क्षीयते तस्य ततः प्राप्नोति सं-

क्षयम् ॥ ३२ ॥ घोरां व्याधिमवाप्नोति मरणं वा स मृच्छति ॥

शुक्रं तस्माद्विशेषेण रक्षयमारोग्यमिच्छता ॥ एतनिदान-

लिंगाभ्यामुक्तं क्षेव्यं चतुर्विधम् ॥ ३३ ॥

भाषा—उस पुरुषके रक्तादि धातु की क्षीण होय, उन धातुओंकी शुक्र अवसान (मर्यादा) है क्योंकि सबका शुक्रही धाम (ठिकाना) है, चित्तके इर्षसे जो मैथुन करे तब उसका शुक्र क्षीण होय; तदनन्तर संक्षयको प्राप्त होय, जब मनुष्यका शुक्र क्षीण हो जाता है तब घोर व्याधि इस मनुष्यको प्राप्त होती है और मरण होता है। अत एव आरोग्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य शुक्र (वीर्य) की जखर रक्षा करे। यह निदान और चिह्नोंसे नपुंसक चार प्रकारका कहा है ॥

कोचित् क्लैब्ये त्वसाध्ये द्वे ध्वजभंगक्षयोद्भवे ॥
वदन्ति शेफस्त्वेदाद् वृषणोत्पाटनेन वा ॥ ३४ ॥

भाषा—कोई आचार्य लिंग और अंडकोशोंके गिर पड़नेसे ध्वजभंग और क्षयज इन दोनों नपुंसकोंको असाध्य कहते हैं ॥

मातापित्रोर्बीजदोषादगुभैश्च कृतात्मनः ॥ ३५ ॥ गर्भस्थस्य
थदा दोषाः प्राप्य रेतोवहाः शिराः ॥ शोषयन्त्याशु तत्त्वाशाद्रेत-
श्चाप्युपहन्यते ॥ ३६ ॥ तत्र संपूर्णसर्वोऽगः स भवत्यपुमान्पुमान् ॥
एते त्वसाध्या व्याख्याताः सञ्चिपातसमुच्छ्रयात् ॥ ३७ ॥

भाषा—गर्भमें नपुंसक कौन कारणसे होता है ऐसा कोई प्रश्न करे उसके निमित्त कहते हैं। मातापिताके बीजदोषसे, पूर्वजन्मके पापोंसे, गर्भमें रेत (वीर्य) के बहनेवाली नाडियोंमें दोष प्राप्त होकर उन नाडियोंको सुखाय देवे। जब रेतको बहनेवाली नाडी सूख जावे तब वीर्यका क्षय हो, इससे बालक जो प्रगट होय उसके सब अंग यथार्थ होय परन्तु लिंग नहीं होवे। सञ्चिपातके बढ़नेसे ये असाध्य रोग कहे हैं ॥

शुक्रार्तवदोषनिदान ।

शुक्रं पारुषमित्युत्तं तस्माद्विक्ष्यामि तच्छृणु ॥ यथा हि वीर्यं
कालाम्बुद्धमिकीटाग्निद्विषितम् ॥ १ ॥ न विरोहाति सन्दुष्टं तथा
शुक्रं शरीरणाम् ॥ अतिव्यवायाद्वयायामादसात्म्यानां च
सेवनात् ॥ २ ॥ अकाले चाप्ययोनौ वा मैथुनं न च गच्छतः ॥
खद्यतिक्लैब्यायातिलवणाम्लोणसेवनात् ॥ ३ ॥ भधुरस्ति-
ग्धगुर्वन्नसेवनाज्जरया तथा ॥ चिन्ताशोकादिविस्तम्भाच्छ्रां-
क्षाराग्निभिस्तथा ॥ ४ ॥ भयात्कोघादभीचाराद्वयाधिभिः क-

र्षितस्य च ॥ वेगाधातात्क्षयाज्ञापि धातूनां सप्तदूषणात्
॥ ६ ॥ दोषाः पृथक् समस्ता वा प्राप्य रेतोवह्नाः शिराः ॥
शुक्रं संदूष्यन्त्याशु तद्व्यामि विभागशः ॥ ६ ॥

भाषा—पूर्व नपुंसकके निदानमें यह कह आये हैं कि मनुष्यमें पुरुषार्थ केवल वीर्यकाही है इसी कारण अब मैं वीर्यका वर्णन करता हूँ उसको सुन । जैसे काल (समय), जल, कृमि, कीट, आग्नि दूषित वीज नहीं हरा होवे उसी प्रकार मनुष्यका दूषित वीर्य गर्भपद नहीं होता है । अत्यंत मैथुन करनेसे, दंड कसरद करनेसे, अपनी प्रकृतिके विरुद्ध भोजन करनेसे, कुसमय और दुष्योग्नि (गर्भीरोग) आदिसे, दूषितसे विषयगमन करनेसे, वैठे रहनेसे, रुक्ष, कडवा कथैला आतिनोनका, खट्टा, गरम ऐसे पदार्थके सेवन करनेसे, मधुर, चिकने, भारी, घनके भोजन करनेसे, वृद्ध अवस्थाके होनेसे, चिंता, शोक, अविश्वास, शख्स, खार और आग्निके प्रयोगसे, भय, कोध खई तथा धातुओंके दूषित होनेसे पृथक् पृथक् दोष अथवा सर्व दोष रेत (वीर्य) के वहनेवाली नाडियोंमें प्रवेश होकर शुक्रको दूषित करते हैं । उस दूषितशुक्रके लक्षण क्रमसे न्यारे २ कहता हूँ ॥

दूषितशुक्रके भेद ।

फेनिलं तत्त्वं शुक्रं च विवर्णं पूति पिच्छिलम् ॥

अन्यथात् प्रसंसृष्टं अवसादि तथाष्टमम् ॥ ७ ॥

भाषा—दुष्ट शुक्र आठ प्रकारका है । फेनिल अर्थात् ज्ञागवाला, शुष्क, विवर्ण (खोटे रंगका), पूति (सडा), पिच्छिल, गाढ़ा और धातुके साथ मिला भया तथा अवसादि ये आठ मेद हुए ॥

वातदूषित शुक्रके लक्षण ।

वातेन फेनिलं शुष्कं कृच्छ्रेण पिच्छिलं तत्त्वं ॥

भवत्युपहृतं शुक्रं न तद्वर्भाय कर्त्तपते ॥ ८ ॥

भाषा—वादीसे शुक्र ज्ञागवाला, सूखा, कुछ गाढ़ा और थोड़ा तथा क्षीण हो । यह गर्मके अर्थका नहीं है ॥

पिच्छिल शुक्रके लक्षण ।

सनीलमथवा पीतमत्युर्ग्णं पूतिगांधं च ॥

दाहलिंगं विनियाति शुक्रं पित्तेन दूषितम् ॥ ९ ॥

भाषा—पित्तसे दूषित शुक्र नीला, पीला अत्यंत गरम होता है । उसमें छुरी बास आवे और जब निकले तब लिंगमें दाह होवे ॥

कफदूषित शुक्रके लक्षण ।

श्वेष्मणा बद्धमार्गं तु भवत्यत्पर्थपिच्छलम् ॥

भाषा—कफसे शुक्र शुक्रवहा नाडियोंके मार्ग रुकनेसे अत्यंत गाढ़ा हो जाता है ॥

व्यिधमत्यर्थगमनादभिघातात्क्षयादपि ॥

शुक्रं प्रवर्तते जन्तोः प्रायेण रुधिरान्वयम् ॥ १० ॥

भाषा—अत्यन्त ढीगमन करनेसे, चोट लगनेसे मनुष्यके रुधिरसंयुक्त वीर्य निकलता है ॥

कृच्छ्रेण याति ग्रथितमवसादि तथाष्टमम् ॥

इति दोषाः समाख्याताः शुक्रस्याष्टौ सलक्षणाः ॥ ११ ॥

भाषा—अष्टम जो अवसादि शुक्र है सो बड़ी कठिनतासे गांठके समान निकलता है । ये शुक्रके आठ दोष कहे हैं ॥

शुद्धशुक्रके लक्षण ।

स्त्रिग्धं घनं पिच्छलं च मधुरं च विदाहि च ॥

रेतोदोषान्विजानीयात् स्त्रिग्धं स्फटिकसन्निभम् ॥ १२ ॥

भाषा—सचिक्कण, गाढ़ा, पिच्छल (मलाई समान), मीठा, दाहरहित और जो स्त्रिग्ध, स्फटिक मणिके समान होय ये शुद्धवीर्यके लक्षण हैं ॥

सुश्रुतसे शुक्रदोषनिदान ।

**वातपित्तश्वेष्मशोणितकुण्ठपगंध्यनल्पप्रयंथि पूर्तिपूयक्षीणरेतसः
प्रजोत्पादने न समर्थाः ॥ १३ ॥ तत्र वातवर्णवेदनम् ॥ वातेन
पीतवर्णवेदनं पित्तेन श्वेष्मवर्णवेदनं श्वेष्मणा शोणितवर्णपित्त-
वेदनं रक्तेन कुण्ठपगंध्यनल्पं च रक्तेन पित्तेन च ग्रंथिभूतं श्वेष्म-
वाताभ्यां पूर्ति पूयनिभं पित्तवाताभ्यां क्षीणशुक्रं प्राशुलं पित्तं
वाताभ्यां मूत्रपुरीषगंधि सर्ववर्णवेदनं सन्निपातेनेति तेषु कुणप-
ग्रंथिपूयक्षीणरेतसः कृच्छ्रसाध्याः मूत्रपुरीषरेतसः असाध्याः ॥**

भाषा—वात, पित्त, कफ, रुधिर इनसे दूषित हुआ; शबगंधि और बहुत दुर्गंधि-
युक्त तथा राधके समान ऐसा जिस पुहषका रेत ('वीर्य') होय उसके संतान नहीं होय । जिसका वीर्य वादीसे हुष होय उसका वर्ण काला, लाल ऐसा होय तथा उसमें तोदादिक पीड़ा होय । पित्तसे हुष हुए शुक्रका वर्ण पीला, नील-

इत्यादि वर्णोंका होय तथा उसमें चोषादि पीडा होय । कफसे दुष्ट हुए शुकका वर्ण इवेत होय उसमें मन्द पीडा होय । रुधिरसे दुष्ट हुए शुकका वर्ण लाल होवे उसमें चोषादि (चूसनेकीसी) पीडा होवे तथा रुधिरसे शुकमें मुर्दाकीसी वास आवे और विशेष ऐसा है कफसे दूषित हुआ शुक गांठदार होय, पित्तकफसे दूषित शुकमें राधकीसी वास आवे, पित्तवादिसे शुक क्षीण होता है, सन्निपातसे दूषित मये शुकमें पूर्वोक्त सब वर्ण होय और पीडा होय तथा उसमें मूत्र और विषाकीसी वास आवे । इनमें कुणप, ग्रंथी, पूय, क्षीणरेत ये चार कृच्छ्रसाध्य हैं । और मूत्र, पुरीष (विषा.) रेतस असाध्य और वाकीके सब साध्य हैं ॥

आर्तवदोषके लक्षण ।

**आर्तवमपि त्रिभिदौषैः शोणितचतुर्थैः पृथक् द्वंद्वैः समस्तै-
श्रोपसृष्टमवीजं भवाति । तदपि दोषवर्णवेदनाभिज्ञैयम् । तेषु
कुणपग्रंथिपूतिपृथक्षीणमूत्रपुरीषप्रकाशमसाध्यम् ॥**

माषा—अर्तव अर्थात् विषयोंका रज वातादि पृथक् दोष, रक्त, द्वंद्व और सन्निपात इनकरके दुष्ट होनेसे गर्भधारणके अयोग्य होय । तिन दोषोंकरके वर्ण और वेदना जाननी चाहिये । तिनमें कुणप, पूरिपूय, क्षीण, मलमूत्रके समान जो होय वह असाध्य है वाकीके साध्य जानने ॥

विष्टमगमक लक्षण ।

गर्भिणीके कुसमय भोजन करनेसे अथवा रुक्षादि पदार्थ खानेसे वायुसे कोपित होकर गर्भ शुक शुष्क अर्थात् गर्भक्षी सुखाय देवे इसीने उस गर्भका हलना चलना, बढना बन्द होय और समय बाकर उसको वादीकी पीडा होकर स्राव होय ॥

उपविष्टगर्भके लक्षण ।

गर्भिणी स्त्रीके अत्यन्त दाहकर्ता पदार्थ खानेसे रुधिरका स्राव बहुत होय, इसीसे वह गर्भ पीछे बढ़ता न दीखे, उसका हलना चलना मात्र होय ऐसे गर्भको उपविष्ट कहते हैं । यह विष्टम गर्भकाही भेद है ॥

**मंथरज्वर (मोतीज्वर) के लक्षण
योगरत्नसे ।**

ज्वरो दाहो भ्रमो मोहो श्वतीसारो वमिस्तृष्णा ॥

अनिद्रा मुखशोषश्च तालु जिह्वा च शुष्यति ॥ १ ॥

श्रीवायां परिहृश्यन्ते स्फोटकाः सर्षपौपमाः ॥

घृताशनात्स्वेदरोधान्मंथरो जायते नृणाम् ॥ २ ॥

भाषा—अधिक वृत्त खानेसे अथवा पसीना रोकनेसे, मनुष्यको मंथरज्वर (मोती-ज्वर) आता है । इसके लक्षण कहते हैं । ज्वर, दाह, अग्नि, मूच्छा, अतीसार, वमन, प्यास, निद्रानाश, मुख तालु और जीभ इनका सूखना, कंठमें सरसोंके समान सफेद भेतीके आकार फोड़ा होय इस ज्वरको माधवने पित्तज्वरके अंतर्गत अर्थात् पित्तज्वरके अंतर्गत माना है इतीसे इसको पृथक् नहीं कहा परंतु व्यवहारमें इसको पृथक् मानते हैं तथा बहुतसे ग्रन्थकारोंने इसका नाम जुदा कहकर चिकित्साभी पृथक् कही है ॥

अर्लक्ष (कुत्ता) विपनिदान वाग्मट्टे ।

शुनः श्वेषमल्लवणा दोषाः संज्ञां संज्ञावहा अतिंताः ॥ छुणन्तः कुर्वते
क्षोभं घातूनामतिदाहृणम् ॥ १ ॥ लालावानं धधिरः सर्वतः सोऽ-
भिधावति ॥ स्रस्तपुच्छहनुस्कंधः शिरोदुःखी नताननः ॥ २ ॥

भाषा—कुत्तेके कफादिक दोष संज्ञाके वहानेवाले स्रोतों (छिद्रों) में प्रवेश करके संज्ञानाशके सदृश करे और उसकी धातुका क्षोभ करे । इस योगसे उस कुत्तेके मुखसे लार वहे तथा वह अन्धा बहरा होकर इधर उधर दौड़ने लगे, इसकी पूँछ सीधी हो जाय और ठोड़ी कन्धा ढीले हो जाय इसको बावला कुत्ता कहते हैं ॥

उसके काटनेके लक्षण ।

दंशस्तेन विदृष्टस्य सुप्तः कृष्णं क्षरत्यसुकृ ॥

हृच्छिरोहृग्ज्वरः स्तम्भस्तृष्णा मूच्छोद्वोऽनु च ॥ ३ ॥

भाषा—उस बावले कुत्तेक काटनेसे काटनेकी जगह शून्य हो जाय, उसमेंसे काला धधिर वहे तथा उस मनुष्यका हृदय और मस्तक दूखे, ज्वर हो, देह जकड़ जाय, प्यास लगे तथा मूच्छा आवे ॥

अनेनायेऽपि बोद्धव्या व्याला दंष्ट्रप्रहारिणः ॥

सुगलाश्वतराश्वर्क्षद्वीपिव्याप्रवृश्चादयः ॥ ४ ॥

भाषा—इस प्रकार ढाढ़ा प्रहार करनेवाले सर्प, स्पार, खिच्चर, घोड़ा, रीछ, चीता, वाघ, भेड़िया, आदिजब्दसे सिंह, वानर आदि इनके लक्षणभी कुत्तेके समान जानने ॥

सविष निर्विषदंशके लक्षण ।

कण्डूनिरतोद्वैषण्यसुसिङ्गेद्वज्वरभ्रमाः ॥ विदाहरागरुकपाक-

शोफग्रीथिविकुचनम् ॥ ६ ॥ दंशावदरणं स्फोटाः कर्णिका
मण्डलानि च ॥ सर्वत्र सविषे लिंगं विपरीतं तु निर्विषे ॥ ६ ॥

भाषा—खुजली, नोचनेकीसी पीड़ा, वर्णका बदलना, शून्धता, हळद, ज्वर,
भ्रम, दाह, लाली, दर्द, पक्ना, सूजन, गांठ, चोटनी, काटनेकी जगह चीरा पहें,
फोडा, कर्णिका, मंडल ये लक्षण सविष दांतके होते हैं । इससे विपरीत लक्षण
निर्विषके जानने ॥

असाध्य लक्षण ।

दृष्टो येन तु तच्चेष्टा रुतं कुर्वन्विनश्यति ॥

पश्यस्त्मेव चाक्स्मादादर्शसलिलादिषु ॥ ७ ॥

भाषा—जिस ग्राणीका काटा हुआ मनुष्य उसी ग्राणीकी सर्व चेष्टा करे और
रुदन करे तथा आदर्श (शीसा) पानी आदि पदार्थोंमें उसी ग्राणीका प्रतिबिंब
देखे वह रोगी मर जाय ॥

जलसंत्रासनामाके लक्षण ।

योऽद्यव्यस्थेददृष्टोऽपि शब्दसंस्पर्शदर्शनैः ॥

जलसंत्रासनामानं दृष्टं तमपि वर्जयेत् ॥ ८ ॥

भाषा—पुरुष धानीके शब्द, स्पर्श और अवलोकन (देखने) से डरपे उसको
जलसंत्रासनामा कहते हैं । उसकोभी वैद्य त्याग देवे । कोई शंका करे कि जल
विना कैसे मनुष्य डरता है इसवास्ते कहते हैं ॥

अदृष्टस्थापि जन्तोऽहं जलत्रासो भयेद्यादि ॥

तस्यारिष्टं हि विषजं ब्रुवते विषचिन्तकाः ॥

जलं विना जलत्रासो जायते श्वेषमसंचयात् ॥ ९ ॥

भाषा—जिस मनुष्यको जलके विना देखेभी भय लगे, उसको विषज वैद्य विषज
रोग कहते हैं । यह जल विना जलसे त्रास कफके संचयसे होता है सो लिखते हैं ।

ब्रुद्धिस्थानं यदा श्वेषमा केवलं प्रातिपद्यते ॥

तदा ब्रुद्धो निरुद्धायां श्वेषमणाधिष्ठितो नरः ॥ १० ॥

जायत्सुतोऽथ वात्मानं मज्जन्तमिव मन्यते ॥

सलिलात्रासदा तंद्रा जलत्रासं तु तं विदुः ॥ ११ ॥

भाषा—जिस समय केवल कफ ब्रुद्धिके स्थानमें जाकर प्राप्त होता है तब इस पुरुषकी

बुद्धि कफकरके आच्छादित होनेसे जागते सोते अपने आपेको जलमें डूबा हुआ जाने । इसी कारण वह मनुष्य जलसे डरता है इसीसे इसको जलन्रास जानना ॥

अब विषनिदानमें कह आये हैं कि विश्वंभरा, अहिंडुका, कंडूमका, शूकवृत्तादि, पिर्णिलिका, गोधेरका और सर्षपिका इनका निदान ग्रंथके अंतमें लिखेंगे सो यहां सुश्रुतसे लिखते हैं ।

गोधेरकदंशके लक्षण ।

**प्रतिसूर्यः पिंगभासो बहुवर्णो महाशिरः ॥ तथा निरूपमश्चापि
पंच गोधेरकाः स्मृताः ॥ १२ ॥ तैर्भवन्तीह दृष्टानां वेगज्ञानानि
सर्पवत् ॥ रुजश्च विविधाकाशा ग्रंथयश्च सुदारुणाः ॥ १३ ॥**

माषा-प्रतिसूर्य, पिंगभास, बहुवर्ण, महाशिरा, निरूपम ये पांच प्रकारके गोधेरक (गोह) होते हैं । इनके काटनेसे वेग और ज्ञान सर्पके समान जानना और अनेक प्रकारके रोग तथा दारुण गांठ प्रगट होय । गोधेरककी उत्पत्ति ग्रंथान्तरमें लिखी है ॥

सर्षपिकादंशके लक्षण ।

**गलगोली श्वेतकृष्णा रक्तराजी तु मण्डला ॥ १४ ॥ सर्वश्वेता
सर्षपिकेत्येवं षट् ताभिर्दृष्टे सर्षपिकावर्ज्ये दाहशोफक्षेदा
भवन्ति सर्षपिकया हृदयपीडातिसारश्च ॥ १५ ॥**

माषा-गलगोली, श्वेतकृष्णा, रक्तराजी, रक्तमण्डला, सर्वश्वेता, सर्षपिका इस-प्रकार सर्षपिकाके छः भेद हैं । इनमें सर्षपिकाको छोड़कर बाकी गलगोली आदि काटनेसे दाह, सूजन और क्लेद होय और सर्षपिकाके काटनेसे पूर्वोक्त लक्षण होवे और हृदयमें पीडा तथा अतिसार होय ॥

विश्वंभराके लक्षण ।

**विश्वम्भराभिर्दृष्टे दंशः सर्षपिकाकाराभिः पिडिका-
भिश्रीयते शीतज्वरात्मश्च पुरुषो भवति ॥ १६ ॥**

माषा-विश्वंभराके काटनेवाली डौर सरसोंके समान फुसियोंसे व्यास हो और शीतज्वरकरके रोगी व्याकुल होय ॥

अहिंडुकाके लक्षण ।

अहिंडुकाभिर्दृष्टे तोदादाहकण्डुश्यथवो मोहश्च ॥

१ कृष्णसर्पेण गोधायां भवेजन्तु भतुषपदः । सर्पेण गोधेरको नाम तेन वृष्टो न जीवति ॥ ” इति ।

—अहिंडुकाके काटनेसे नोचनेकीसी पीड़ा होय, दाह, खुजली, सूजन और माइ होय ॥

कंडूमकादष्टके लक्षण ।

कण्डूमकाभिर्दृष्टे पीतांगच्छर्वतीसारज्वरादिभिर्हन्यते ॥ १७ ॥

माषा—कंडूमकादि कीडाओंके काटनेसे देह पीली हो जाय, वमन, आतिसार और ज्वरादि रोगोंसे मनुष्य पीड़ित होय ॥

शूकवृन्तादिदृष्टलक्षण ।

शूकवृन्तादिभिर्दृष्टे कण्डूकोटाः प्रवर्द्धन्ते शूकश्वात्र लक्ष्यते ॥

माषा—शूकवृन्तादि कीडोंके काटनेसे खुचली, चक्का और शूकरोग होय ॥

पिपीलिकादंशलक्षण ।

पिपीलिका स्थूलशीर्षा संवाहिका ब्राह्मणिका ॥ १८ ॥

गुलिका कापिलिका चित्रवर्णेति षट् ताभिर्दृष्टे दंशो

श्वयथुरग्रिस्पर्शवदाहशोफौ भवतः ॥ १९ ॥

माषा—स्थूलशीर्षा, संवाहिका, ब्राह्मणिका, अंगुलिका, कपिलिका, चित्रवर्णा ये छः प्रकारकी पिपीलिका (चेंटी) हैं । इनके काटनेकी ज़गह सूजन अग्रिस्पर्श समान दाह और चक्कते होते ॥

स्नायुके निदोन ।

~ **शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत् ॥ भिनति तक्षते तत्र सोष्मा मांसं विशोष्य च ॥ १ ॥** कुर्यात्तनुनिभं जीवं वृत्तं सितद्युतिं बहिः ॥ शनैः शनैः क्षताद्याति च्छेदात्कोपमुपैति च ॥ २ ॥ तत्पाताच्छोफशान्तिः स्यात्पुनः स्थानांतरे भवेत् ॥ स स्नायुकेति विस्ख्यातः क्रियोक्ता तु विसर्पवत् ॥ ३ ॥ बाह्वर्थदि प्रमादेन जंघयोस्तुद्यते क्वचित् ॥ संकोचं खंजतां चैव छिन्नो जन्तुः करोत्यसौ ॥ ४ ॥

भाषा—हाथपैरोंमें दोष कुपित होकर विसर्पके सदृश सूजन होय वह सूजन कूटकर धाव पड़ जावे और उसमें आगसी बले तथा मांस शुष्क होकर सूतके समान गोल सफेद जीव डेरेके सदृश बाहर निकल आवे धीरे धीरे धावसे बाहर निकलते समय दूढ़ जावे तो बहुत दुःख देता है, यदि वह समग्र बाहर निकल आवे तो सूजन जाती रहे और उसमेंसे कुछ ढुकडा बाकी रह जाये तो वह फिर दूसरे

स्थानपर निकले उस रोगको सायुक (नहरुआ) कहते हैं । इसपर चिकित्स विसर्परोगकीसी कही है । कदाचित् हाथ वा पैरोमें नहरुआ होकर टूट जाए तो हाथपैरसे टौंटा अथवा लूला हो जाय ॥

ध्वजभंगके संगृहीतश्लोक ।

यौवनेऽनंगवेगेन शिशुना केलिमाचरेत् । गुद्यदोषेण तद्दिं-
गे शैथिल्यमुपजायते ॥ स्वगुदोत्पाटनं बाल्ये परैः कारयति
स्वयम् । कुरुते तेन दोषेण ध्वजभंगोऽभिजायते ॥ अथवा
यो भवेन्मत्यः करमैथुनलम्पटः । तस्य नूनं प्रजायेत ध्वज-
भंगं सुदुर्जयम् ॥

रोगानुक्रमणिका ।

ज्वरोऽतिसारो ग्रहणी अङ्गोऽजीर्णो विषूचिका ॥ अलसँश्च विल-
म्बी च कूमिरुक्कु पाण्डुकामलां ॥ १ ॥ हलीमैकं रक्तोपितं राज-
यंक्षमा उरःक्षतमैः ॥ कासो हिङ्कां सहशासः स्वर्वेदस्त्वरोचकंम्
॥ २ ॥ छेदिस्तृष्णां च मूर्च्छाद्यां रोगाः पानात्ययादयः ॥ दौ-
होन्मादावपस्मारः कथितोऽथाऽऽनिर्णयः ॥ ३ ॥ वातरक्त-
मुखस्तंभ आमैवात्तोऽथ शूलरुक्कु ॥ पित्तजं शूलमानाह उदाव-
त्तोऽथ गुलमरुक्कु ॥ ४ ॥ हृद्रोगो मूत्रकुर्च्छ्रं च मूत्राघातस्तथा-
मैर्णी ॥ प्रमेहो मधुमेहश्च पिटिकांश्च प्रमेहजाः ॥ ५ ॥ मेहस्त-
थोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगंडकः ॥ गण्डमालाऽपेचीश्चिरंबुद्धं
श्रीपंदं तथा ॥ ६ ॥ विद्धिर्विषयशोथश्च द्वौ व्रेणौ भग्नानादिके ॥
भग्नदरोपदंशो च शूकंदोषस्त्वग्नामयः ॥ ७ ॥ शीतपित्तमुद्द-
द्धश्च कोठश्वैवाऽस्त्वपित्तकम् ॥ विसर्पश्च सविस्फोटः सरोमान्त्यो
मसूरीकाः ॥ ८ ॥ क्षुंद्राऽस्यकर्णनासांऽक्षिंश्चिरः स्त्रीवालंक-
श्रृः ॥ विषं चेत्ययमुद्दशो रुग्विनिश्चयसंग्रहे ॥ ९ ॥

माषा-वर्षा (ववासीर), छार्दि (रद), मूर्च्छाद्या (मूर्च्छा, भ्रम, तन्द्रा निद्रा, संन्यास), पानात्यय (मदात्यय), अप्स्मार (मृगी), अनिलामय (जात-
करमैथुनं हृथरस इति मसिद्धः ।

व्याधि), आनाह (अफरा), गुलम (गोलेका रोग), अश्मरी (पथरी), वृद्धि (अंडवृद्धि), ग्रंथि (गांठ), त्वगामय (कोहरोग), आस्य (मुखरोग) प्रह (पूतनादि बालग्रह) ये हमने कठिन शब्दोंके अर्थ लिख दिये हैं ॥

रोगानुक्रमणिका लिखनेका यह प्रयोजन है कि इतने रोग इस ग्रंथमें कहे हैं इससे, विशेष रोग प्रक्षेप जानने । इस रोगानुक्रमणिकाके रोगोंके ऊपर हमने १-२-३ ऐसे अंक धर दिये हैं बुद्धिवान् समझ लेंगे ॥

टीकाकर्त्ताकी वंशावली ।

**श्रीमन्मायुरमण्डले द्विजकुले श्रीमायुराणां कुले
धासीराम इति प्रथामधिगतो जातः सत्तां मोदकृत् ॥**
**श्रीचन्द्रः किञ्च रामचन्द्रविबुधो जातो हरिश्चन्द्रकः
पुत्रास्त्रीणि त्रयीवि धर्मनिषुणाः सर्वे नृपैः पूजिताः ॥ १ ॥**

भाषा-श्रीमान् मायुरमण्डल द्विजकुल श्रीमायुर (चौबे) के कुलमें श्रीधासी-राम इस नामसे प्रतिष्ठ सज्जन मनुष्योंके आनंदकर्त्ता प्रगट भये उसके श्रीचन्द्र और परम बुद्धिवान् रामचन्द्र और हरिश्चन्द्र ये तीन पुत्र वेदत्रयी (कक्ष, साम, यजु) के समान और सर्व राजमान्य प्रगट भये ॥

तेषां हरिश्चन्द्रसमानकीर्तिर्जातो हरिश्चन्द्रगुणाभिरामः ॥

वभूव तस्मात्किलं कृष्णलालो संगीतशास्त्रार्थविचारदक्षः ॥ २ ॥

भाषा-तिन धासीरामके तीन पुत्रोंमें हरिश्चन्द्रके समान कीर्ति जिनकी ऐसे हरिश्चन्द्र भये तिनके संगीतशास्त्र (गानविद्या) के अर्थविचारमें कुशल कल्हैयालाल प्रगट होते भये ॥

तस्य पुत्र अहं जज्ञो दत्तरामो विष्वदधीः ॥

भाषायां माधवस्त्यार्थौ यथामति निष्फितः ॥ ३ ॥

भाषा-तिन कल्हैयालालका पुत्र मैं तुच्छ बुद्धिवाला दत्तराम प्रगट हुआ मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार माधवनिदानका अर्थ भाषामें निष्फूण किया ॥

इति ग्रंथपरिशिष्टं समाप्तम् ।

समाप्तोऽयं ग्रंथः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
“लक्ष्मीवेङ्गुटेश्वर” छापाखाना, कल्याण—मुंबई,

बालदात्तं ज्ञा—प्रभाष्याद्युपक्रमन्तर्या

इसमें बन्धया खियोंके लक्षण और उनका उपाय अनुरूपी विस्तारपूर्वक लिखा गया है। लगभग तीन से ३५ प्रकारकी बन्धयाकी चिकित्सा अनुभूत पर्वंशालोक रीतिसे बिंगत है। जिसको पहकर सामान्य मनुष्यमी अलगही कालमें चिकित्स करनेकी योउथा प्राप्त कर सकता है। आयुर्वेदमें योडाभी अनुयात रखनेवालेमनुष्य इसके द्वारा घटन करनेमें सफलता प्राप्त कर सकते हैं और वैद्यवरोंके लिये तो कहनाही क्या है वे इसे अचलेकन कर जैसा अनुत्त चमत्कार दिखा सकते हैं वर्णन शक्तिसे सर्वथा परे हैं। बालकके माँहोंका लक्षण तथा उनका निवारण मंत्रविधान आदि अत्यन्त सरल रीतिसे लिखे हैं तथा उनेकोनेक रोगोंके लक्षण और उनके विना, शार्थं क्षपरिक्षित परीक्षित औषधियोंका जो रोगोंके नाश करनेमें रामबाणके समान प्रत्यक्ष गुण दिखाती हैं उल्लेख किया गया है। जो आयुर्वेदविद्या जाननेके मूले है अथवा

जगद्वर्में अनुत्त चमत्कार दिखाकर तत्त्वमुच्च यशा और अर्थ, लामकी इच्छा रखते हैं उन वैद्यवरोंको इस नव आविष्कृत आयुर्वेदीय मन्त्रकी पुक प्रति अवश्यही मंगाकर इच्छो-फन करना चाहिये। अचलेकन करनेपर आप स्वयं इस पुस्तककी छुलांठसे प्रशंसा करेंगे, इसकिये इस विद्येप्रशंसा न करके यही कहेंगे कि इसे न मंगाइयेगा तो पीछे पछताना पड़ेगा। सर्वं साधारणके लुभीतार्थं पैसे अमूल्य मन्त्रका केवल एक डियना भावं सुनह्य बहुता गया है। शक्तमहसुल अरुगा होगा।

शास्त्रद्वीपिकाप्रकाशा.

यह ग्रंथ मीमांसाशास्त्रका है इसमें ग्रंथकारने बहुतसे दर्शनोकामी संग्रह किया है इसका मूल मीमांसाशास्त्राध्युरंधर महामहोपाध्याय श्रीपार्थसारथिमिश्रका बनाया है, ग्रन्थ बहुत ही उत्तम है। मूल्य रु. ७.

धन्वन्तरि [वैद्यकभन्ध].

लालाशिंशेय बुरादानिवासिकृत 'सर्वथीसिद्धि' नाम

भाषाटीकास्थाहित ।

पठकरण । यद्यपि आजकल आयुर्वेदिय चिकित्साके बडे बडे अन्य शुल कीर मापाटीकासाइट बहुद्वित हो जाते हैं। परन्यु जो सर्वसाधारणको उपयोगी और शुलम हो ऐसा कोई अन्य आजतक कठीन नहीं छाया, इस ग्रन्थकी चिकित्सापाली प्राचीन क्राधिप्रणित सम्पूर्ण अन्यसे निराकी है, इसके प्रयोग यहे विळक्षण और रामचाणकी समान गुणकारी हैं, जो प्रयोग इस अन्यमें लिखे हुए अन्य ग्रन्थोंमें नहीं है। इसमें ऊरसे लेकर विषरोगपर्यंत सब रोगोंकी अन्यन्य विस्तारपूर्वक सरल गीतिसेनिदान और चिकित्सा कही है, जो क्राण, चूर्ण, अवक्षेह, तेल, शूर, गुहिका, शीदल, रस, त्वाषण ग्रस्ति इस अन्यमें लिखे हुए वे अन्य अन्योंकी नपेशा अन्यन्त सरल और तत्काल फलदायक हैं, इसमें चिकित्साके चार पाद, तीयके छत्तण, रोगीके दक्षण, परिचारकके उपाण, औषधिके दक्षण, वैयक्ति कर्म, वैष्णकी

शिसा, आयुर्वेदके लक्षण, आयुर्वेदकी प्रशंसा, दूतके कक्षण, शुगाशुम भक्तुन और स्वप्नका घर्णन, नाडीपरीक्षा, शूषपरीक्षा, मछपरीक्षा, जिहापरीक्षा, शब्दपरीक्षा, स्पष्टपरीक्षा, दृष्टपरीक्षा, नेत्रपरीक्षा आदि रोग निश्चय करनेके लिये रोगी, की बानेक परीक्षा कीर ऊरसे लेकर विषरोगपर्यंत सम्पूर्ण रोगोंकी चिकित्सा अन्यन्त विस्तृतफूपसे लिखी है। अन्यमें रसायन और वार्जीकरण अधिकारमी भले प्रकार वर्णन किया है। वाल्यचिकित्सा और वन्द्ययाचिकित्सा तथा लीचिकित्सामें पृथक् २ अनुपम गीतिसे कही है, यदि इसमें प्रत्येक रोगकी चिकित्सा अलग २ की जाय तो पहुँच अन्य वर्ण स्वयं है। लिखे लहजेसे लशा ग्रन्थोंन १ गहोगी नहीं छपा कीमत ५ रुपये.

सांवत्सरीपद्धति भाषाटीकासाहित ।

यह अपेतिष्यन्य संवत्सरपर्यंत फल कहजेम परमोपयोगी है संघरसवाहनज्ञान तथा फल, संवत्सरवास फलसाहित, वर्षा आदि जाननेकी रीति है मूल्य १ रु.

प्रथम परीक्षार्थ-रघुवंशके द्वितीयादि चार सर्ग सटीक.

विदित हो कि गवर्नर्मेंट संस्कृत कालेज बनारसकी प्रथम परीक्षामें उपस्थित होनेवाले विद्यार्थियोंके उपकारके लिये इमने मुरादाबादके अनुवादकलाप्रबोध पं. वज्रन भट्टचार्यसे परीक्षामें नियत हुए रघुवंशके द्वितीयादि चार सर्गोंका परीक्षाकी शैलीपर सरल संस्कृतमें व्याख्यान करके सुझाच्य अक्षरोंमें सुद्धित किया है। परीक्षाके प्रश्नपत्रोंके उच्चर जिस प्रकार लिखे जाते हैं उसी प्रकार यह व्याख्या बनाई गई है, आवश्यकतानुसार कोशके प्रमाण और व्याकरणके द्वारा शब्दसिद्धिमी दीगई है, समुचित स्थानोंमें टिप्पणीयेमी दीगई है, जिससे ग्रन्थ सभीके लिये उपादये हो गया है। इम साहसके साथ विश्वास दिलाते हैं इसके अनुसार अभ्यास करनेवाले विद्यार्थी अवश्यही परीक्षामें उत्तीर्ण होंगे मूल्य ८ अना।

संवत्सरीपद्धति भाषाटीकासहित.

यह ज्योतिषग्रन्थ संवत्सरपर्यन्त फल कहनेमें परमोपयोगी है, इसमें चतुर्युगी, साठ संवत्सरोंका पूर्ण फल तथा राजा, मंत्री, मेधाधिप, धान्याधिप, सस्याधिप, रसाधिप, नीरसाधिप आदि जाननेकी रीति और उनका फल, आर्द्धप्रवेशफल, रोहिणीवासफल, संवत्सरवाहनज्ञान तथा फल, संवत्सरवास, फलसहित तथा संवत्सर और वर्षा आदि जाननेकी रीति शुरुराशिफल, शनिराशिफल, वर्षभरमें प्रत्येक वस्तुके महर्घ (महँगे) समर्घ (भद्रे) के जानकेकी रीति भली भाँति वर्णित है यह ग्रन्थ जगन्मोहन, मेधमाला आदि ग्रन्थोंके आधारसे निर्माण किया गया है, केवल इस एकही ग्रन्थसे संवत्सरका फल और वर्षा आदिका ज्ञान पूर्ण रीतिसे जाना जा सकता है। बहुत दिनोंके परिश्रमसे खोजकर और शुद्ध करके देशभाषामें इसकी टीका ज्योतिर्किंपंडित नारायणप्रसादमिश्र लखीमपुरखीरीनिवासीने लिखकर प्रकाशित किया है। इसको बहुत शुद्धतापूर्वक छापकर सबके सुगमार्थ इसका मूल्यमी केवल ५ रु.रखा है।

पुस्तक भिलनेका डिकाना—गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
“लक्ष्मीवेंकटेश्वर” छापाखाना, कल्याण—मुंबई।



COLLECTION OF VARIOUS

- > HINDUISM SCRIPTURES
- > HINDU COMICS
- > AYURVEDA
- > MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!

